ISSN-2394-2355

समास - 13

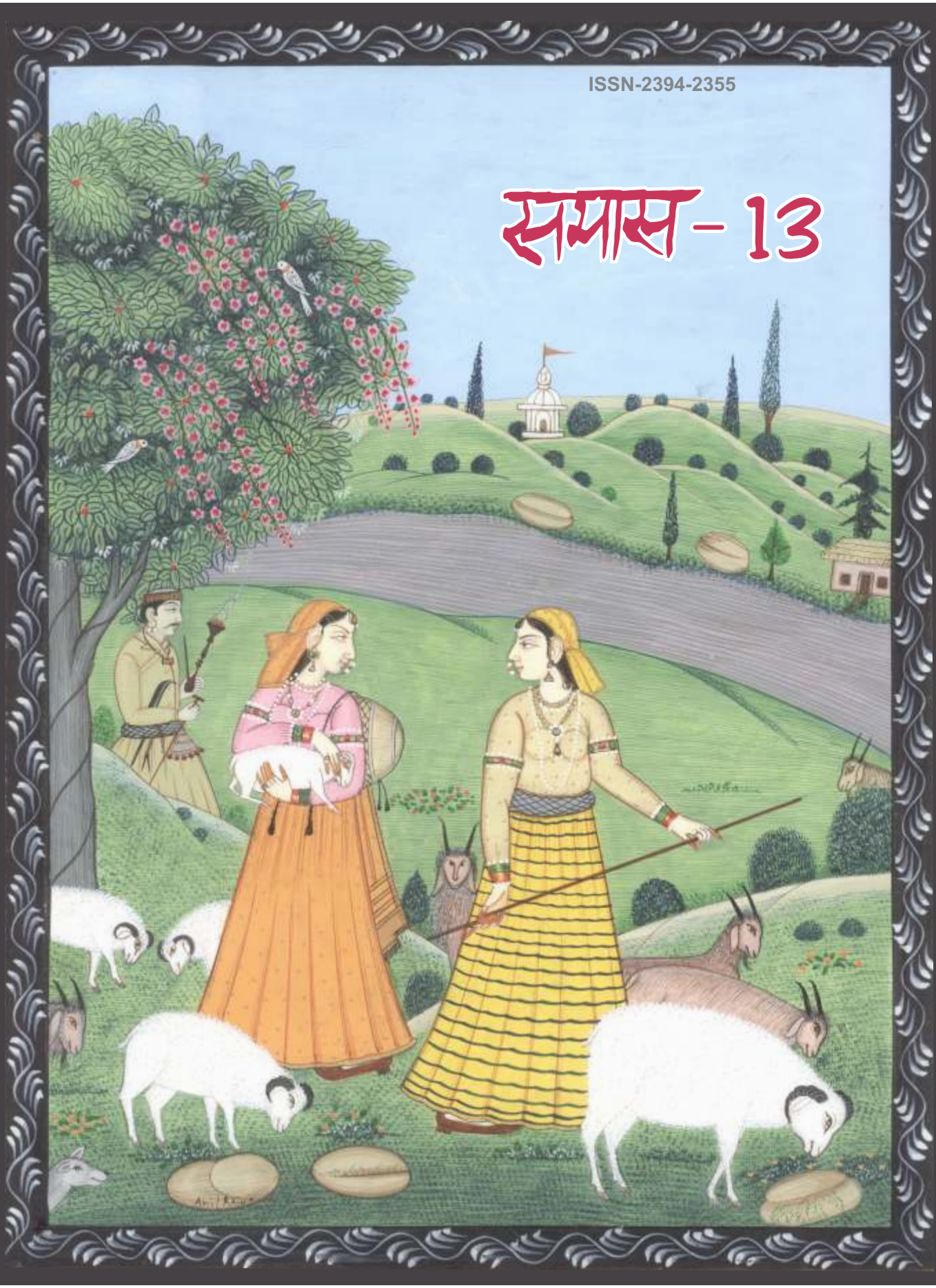

समास - 13

समास की सदस्यता ग्रहण करें

सम्पादक
समास
नयी दिल्ली

प्रिय महोदय,

समास के एक वर्ष (४ अंक+डाक व्यय) ३४०/- तीन वर्ष (१२ अंक) १०००/- पाँच वर्ष (२० अंक) १६००/- रुपए का चैक/ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे वार्षिक/तीन वर्ष के लिए/पाँच वर्ष के लिए ग्राहक बना लें और मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ।

अगर आप दिल्ली के बाहर का चेक हमें भेज रहे हैं तो कृपया बैंक कमीशन के ४०/- रुपए उसमें अतिरिक्त जोड़ दे।

नाम .....
पता .....
.....
.....
.....
टेलीफ़ोन नं. .....
ईमेल : .....

(चेक/ड्राफ्ट- समास के नाम पर बनाएँ जो नयी दिल्ली में देय हो और निम्नलिखित पते पर हमें भेजने की कृपा करें)

मनोज मोहन, प्रसार प्रबन्धक

रज़ा फाउण्डेशन, सी-४

१३६ सफ़दरजंग डेव्हलपमेण्ट एरिया,

नयी दिल्ली- १६

ई मेल : manojmohan2010@yahoo.com
टेलीफ़ोन : 8506014917, 9425674851

विदेश में :

हवाई डाक : एक प्रति १२ अमेरिकी डॉलर / ६ ब्रिटिश पाउण्ड

समुद्री डाक : एक प्रति ६ डॉलर / ४ पाउण्ड

यहाँ से काटिए

समास-13

साहित्य, कला और सभ्यता पर एकाग्र
त्रैमासिक

सम्पादक
उदयन वाजपेयी

रज़ा फाउण्डेशन | THE RAZA FOUNDATION

समवेत लेखकों के विचारों का 'समास' आदर करता है
लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह उनसे सहमत ही हो।

समास : 13 © 2015
पंजीयन क्रमांक : F-2 (S-46)Press/2012

त्रैमासिक पत्रिका

प्रकाशक : अशोक वाजपेयी
कार्यकारी न्यासी, रज़ा फाउण्डेशन, सी–4
139 सफ़दरजंग डेव्हलपमेण्ट एरिया, नयी दिल्ली–16
फ़ोन – 011–46526269

आवरण : अनिल रैना

सहयोग : मिथिलेश चौबे, संगीता गुन्देचा

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : उदयन वाजपेयी
एफ 90/45 तुलसी नगर
भोपाल (म.प्र.) 462003
फ़ोन – 0755–2556940

ईमेल – <udayanvajpeyi@gmail.com>

मूल्य : 60 रुपये

कम्पोज़िंग : रामवीर, मनोज डेकाटे
प्रूफ़ रीडिंग : शिवनारायण सिंह राजपूत
मुद्रण : भण्डारी आफ़सेट, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)

सम्पादकीय - ५

okrkyki

भारतीय चित्रकला : परम्परा और घराने

बी. एन. गोस्वामी से उदयन वाजपेयी की बातचीत - ७-३४

;k=k oRrkUr

एक चित्रकार की डायरी के कुछ अप्रकाशित (काल्पनिक) पन्ने - बी. एन. गोस्वामी - ३५-४५

कृष्णनाथ - कमलेश - ४६-५४

बनारस - स्वप्न और यथार्थ : जयशंकर - ५५-६१

अन्तर्यात्रा बहिर्यात्रा : राधावल्लभ त्रिपाठी - ६२-७४

यात्रा, यात्री और वृत्तान्त : गगन गिल - ७५-८३

सर्बिया में सायकल : सीरज सक्सेना - ८४-८६

देश - विदेश : सैयद मुज़्तबा अली - ६०-१२१

दीन मुहम्मद का भ्रमण वृत्तान्त : अरुण नाग - १२२-१५८

ckyh e oRrkUr

अमरनाथक यात्रा : विवेकानन्द - १५६-१७३

dfork,

अशोक सेक्सरिया की कविताएँ - १७४-१७८

आह्वान एवं अन्य कविताएँ : संगीता गुन्देचा - १७६-१८२

dgkuh

शीशा घाट : नय्यर मसूद - १८३-१६७

lLej.k

अनन्तमूर्ति का आत्मकथ्य : ज.न. तेजश्री - १६८-२१६

leh{kk

ब्रह्मपुत्र के तट पर : मोहन कृष्ण बोहरा - २१७-२२६

y[kd ifjp; & २३०-२३१

सम्पादकीय

समास का यह अंक जब हम तैयार कर रहे थे, हमारे सबसे नियमित और विशिष्ट लेखक कमलेश का देहावसान हो गया। इस तरह हमने यह अंक उनके अभाव के अवसाद में निकालने का प्रयास किया है। समास के पाठकों को यह पता होगा कि कमलेश समास के पिछले लगभग हर अंक में कुछ-न-कुछ योगदान देते रहे हैं। अगर इस पत्रिका में किसी तरह की कोई समृद्धि है, उसमें कमलेश के योगदान का बड़ा हाथ है। कमलेश देश के उन विरले कवि-चिन्तकों में थे जिन्होंने अपनी कवि प्रतिभा का निवेश भारतीय सभ्यता के नितान्त कठिन भूदृश्य को समझने में किया। उन्होंने लगभग अपनी सारी उम्र भारतीय सभ्यता के अतीत की विडम्बनाओं और उसकी समकालीन सम्भावनाओं को गहनतम स्तर तक समझने में लगा दी। इसी प्रक्रिया में उन्होंने स्वयं कविता की अपनी सम्भावनाओं को निरूपित करने की सफल कोशिश की। ऐसे लेखक पिछले कुछ सौ सालों में कम ही हुए हैं जिन्होंने हमारी सभ्यता को निर्मम दृष्टि से देखने की कोशिश की हो। भक्ति कवियों के बाद कुछ रीतिकालीन कवि, मिर्ज़ा बेदिल, ग़ालिब, मीर, रबीन्द्रनाथ टैगोर और प्रसाद-निराला के बाद शायद निर्मल वर्मा ही ऐसे लेखक चिन्तक थे जिन्होंने कथा सृजन के साथ-साथ भारतीय सभ्यता के मूल तत्वों को किसी हद तक प्रकाश में लाकर भारतीय चित्त का स्थायी भाव बनाने में अपनी तरह से भूमिकाएँ निभायी हैं। कमलेश इसी परम्परा के कवि-चिन्तक रहे हैं।

हमारी भाषा में लेखकों को अकसर उनके राजनैतिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में देखने का प्रयास होता रहा है। मुक्तिबोध जैसे समर्थ लेखक तक यह करने से बाज़ नहीं आ सके। लेखक को इस तरह से देखने पर जो चीज़ देखने से रह जाती है, वह लेखक का सत्य से सम्बन्ध है। जैसे-जैसे लेखकों को उनकी राजनैतिक दृष्टि के सन्दर्भ में देखा जाना बढ़ता गया वैसे-वैसे सामान्य जन में उनके वक्तव्यों को उस गम्भीरता से लिया जाना कम होता गया, जिसके वे अधिकारी थे। बहुत लम्बे समय तक हमारे प्रगतिशील लेखक अपने से भिन्न दृष्टि या दृष्टियाँ रखने वाले लेखकों को उनकी राजनीति के आधार पर लांछित करने का एक भी अवसर ज़ाया नहीं करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जब युवा लेखक दृश्य पर आते, वे अपनी सृजनशीलता पर उचित ध्यान देने के स्थान पर अपनी राजनैतिक अवस्थिति को दुरुस्त करने में श्रमशील हो जाते। ज़ाहिर है इससे जो समय उन्हें अपने लेखन कार्य पर देना होता था, वह कम होता गया। इसका परिणाम यह निकला कि हमारी भाषा के साहित्य का स्तर गिरता चला गया। आज जब लेखकों को उनकी राजनीति के आधार पर लांछित कर उनकी वाजिब चिन्ताओं का तिरस्कार करने की विराट कोशिशें चल रही हैं, हमारी भाषा के प्रगतिशील कर्णधारों को अपने किये पर दोबारा विचार करना चाहिए। ऐसा करके वे अपना भला तो करेंगे ही, हिन्दी साहित्य की संस्कृति को भी परिष्कृत होने की राह में आयी बाधा को किसी हद तक दूर कर सकेंगे। इस सबको कहने का आशय यह नहीं है कि लेखक की अपनी कोई राजनीति नहीं होती। लोकतान्त्रिक समाज में ऐसा एक भी नागरिक नहीं होना चाहिए जिसकी अपनी कोई राजनैतिक दृष्टि न हो। अगर

ऐसा होता है तो करोड़ों नागरिक किन्हीं राजनैतिक दलों की दोयम दर्ज़े की राजनैतिक दृष्टि में अनुकूलित हो जाने को अभिशप्त होंगे। इससे लोकतन्त्र निश्चय ही कमज़ोर होगा। लोकतन्त्र अनिवार्यतः अनवरत नागरिक भागीदारी पर निर्भर होता है। यह ऐसी व्यवस्था नहीं जो या तो अपने आप चलती रह सके या इसे सिर्फ़ दो-तीन-चार राजनैतिक दल चलाये रख सकें। जैसे ही साधारण नागरिक लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं में भागीदारी करने से कतराना आरम्भ कर देते हैं, लोकतन्त्र भीतर से ही नष्ट होने लगता है। लोकतान्त्रिक समाजों में राजनीति करने की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ राजनैतिक दलों की नहीं है और न ही ऐसा होना चाहिए। हालाँकि राजनैतिक दलों की यही मंशा रहा करती है कि उनके अलावा राजनैतिक विमर्श में कोई और भागीदारी न कर सके और इस तरह सारे समाज की प्रभुतायी का अधिकार दो या चार या इससे अधिक राजनैतिक दलों में सिमटकर रह जाये। अगर ऐसा होता है, और आज ऐसा ही हो रहा है, लोकतन्त्र सिर्फ़ कहने की बात रह जाती है और समाज पर कुछ राजनैतिक दलों का एकछत्र अधिकार हो जाता है। एशिया के अनेक देशों में ऐसा ही कुछ पिछले कुछ दशकों से होता आ रहा है। कुछ देशों में तो सीधे-सीधे फौजी या साम्यवादी या दूसरे तरह की तानाशाही है या रही है। बाकी देशों में लोकतन्त्र कहने भर को है। आज हम यूरोप और अमरीका की कितनी भी निन्दा क्यों न करें, और ऐसा करके हम ठीक ही कर रहे होंगे, पर यह मानना ही होगा कि उन देशों में लोकतान्त्रिक व्यवहार और संस्थाएँ एशिया के देशों की तुलना में कहीं अधिक शक्ति सम्पन्न और क्रियाशील हैं। शायद इसका कारण वहाँ की संस्कृति में नागरिकता-बोध को पाने के लिए हुए निरन्तर संघर्ष में है। कारण जो भी हो पर यूरोप के देशों और अमरीका में आज यह स्थिति बन गयी है कि राजसत्ता को अपने विरुद्ध उठी हुई छोटी-छोटी आवाज़ पर ध्यान देने मजबूर होना पड़ता है। यह सच है कि वहाँ भी जब मसला किसी बड़े व्यापार का हो, इन आवाज़ों की सुनवायी भले हो, पर उनकी सलाहों पर अमल की ज़रा भी कोशिश नहीं होती। पर तब भी उन्हें लांछित करने का जोख़िम बड़ी-से-बड़ी राजसत्ता या राजनैतिक दल नहीं उठा सकते। जिस तरह लोकतन्त्र में हर नागरिक को राजनैतिक दृष्टि सम्पन्न होना चाहिए, वैसे ही लेखक को भी। पर क्या लेखक अपनी राजनीति को किन्हीं विचारधाराओं या राजनैतिक दलों की दृष्टि के अनुकूल रखकर अपने नागरिक कर्त्तव्य का वहन कर सकता है ? शायद नहीं। लेखक की राजनीति का सन्दर्भ न विचारधारा हो सकती है और न कोई राजनैतिक दल। उसकी राजनीति का सन्दर्भ केवल उसका सत्य का अपना अनुभव ही हो सकता है। शायद इसीलिये उसकी राजनीति विचारधाराओं और राजनैतिक दलों को अन्तर्विरोधी जान पड़ सकती है। यह इसलिये है क्योंकि विचारधाराएँ और राजनैतिक दलों की दृष्टियाँ अपेक्षाकृत स्थायी बनी रहती हैं। यह इसलिये नहीं कि इनके भीतर कोई शाश्वत तत्त्व रहते हों बल्कि यह इसलिये होता है क्योंकि वे अन्तर्विरोधी दिखने से घबराती हैं। अपनी अन्तर्निष्ठता को बनाये रखने ये दृष्टियाँ सत्य की बलि चढ़ा दिया करती हैं। जबकि लेखक सत्य के सन्दर्भ में अपनी राजनीति को परिभाषित करते हुए स्वयं अपने को दाँव पर लगा देता/देती है। हमारा यह दुर्भाग्य रहा है कि हमारे अनेक लेखकों ने अपनी राजनीति को सत्य के सन्दर्भ में परिभाषित करने के स्थान पर किन्हीं जड़ विचारधाराओं के सन्दर्भ में प्रकाशित किया है। शायद इसीलिये समाज में लेखकीय वक्तव्य की वह महिमा बाकी नहीं है जो कम-से-कम भारतीय सभ्यता में बहुत समय तक रही है। अब समय है जब इन तमाम प्रश्नों पर लेखक समाज को साथ बैठकर चिन्तन मनन करना चाहिए जिससे लेखकीय विमर्श की हमारे लोकतान्त्रिक समाज में प्रतिष्ठा बढ़ सके और लेखकों की राजनैतिक दृष्टियाँ वे भूमिकाएँ निभा सकें जो किसी भी जीवन्त लोकतान्त्रिक समाज के लिए अनिवार्य हुआ करती हैं।

उदयन वाजपेयी

भारतीय चित्रकला : परम्परा और घराने

बी. एन. गोस्वामी से उदयन वाजपेयी की बातचीत

यह बातचीत १७ जुलाई २०१५ को नयी दिल्ली के उस फ्लेट में हुई थी जिसमें मैं कुछ महीनों के लिये अपनी शल्य चिकित्सा के बाद रह रहा था। यह जानकर कि मेरा फ्लेट से बाहर निकलना मुश्किल होगा, गोस्वामी जी कृपापूर्वक स्वयं मेरे पास आ गये थे। प्रोफ़ेसर गोस्वामी भारतीय चित्रकला के उद्भट विद्वान और दृष्टा हैं। इन्होंनें लघु चित्रों का इतिहास और उनका तत्त्व समझने की बिल्कुल नयी दृष्टि विकसित की हैं। इस विषय पर आपकी कई किताबें प्रकाशित हैं जिनमें अभीहाल में आयी 'द स्पिरिट ऑफ इण्डियन पेण्टिंग' प्रोफ़ेसर गौस्वामी के वर्षों के चिन्तन और अन्वेषण का सार भी हैं और एक नया प्रस्थान भी। प्रोफेसर गोस्वामी चण्डीगड़ में अपनी पत्नि करुणा जी के साथ रहतें हैं, व्याख्यान देने निरन्तर देश-विदेश जाते रहतें हैं, निरन्तर किसी न किसी नयी किताब के लिये अन्वेषण में डूबे रहतें है और उसे रुप देने प्रयासरत रहते है। उनकी हर नयी किताब पाठकों के लिये चित्रों और भारतीय सभ्यता को समझने के नये द्वार खोल देती है। अस्सी से अधिक वर्ष के प्रोफेसर गोस्वामी में आज भी बच्चों जैसी जिज्ञासा है पर साथ ही गहरा सयानापन भी जो केवल उम्र से नहीं, स्वभाव से आता है। यह बातचीत अभी खत्म नहीं हुई है। इसका एक हिस्सा यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। - **उदयन वाजपेयी**

उदयन वाजपेयी - हम अपनी बातचीत आपके बचपन से शुरू करते हैं। बचपन से मेरा आशय उन घटनाओं भर से नहीं है, जिनमें आपके मिनिएचर चित्रों तक आने का आख्यान अंकित है।

बी.एन.गोस्वामी- मेरी यादें थोड़ी-सी धुँधली हैं, लेकिन कुछ चीज़ें दिमाग में एकदम से उभरती हैं। हम किसी एक जगह पर टिक कर नहीं रहे। मेरे पिता जज थे। उन दिनों दो साल या ज़्यादा से ज़्यादा तीन साल में तबादला कर दिया जाता था। वे जहाँ भी जाते थे, हम सब उनके साथ जाते। हम चार भाई और दो बहनें थे। हमारे रिश्ते बड़े क़रीबी थे। उन दिनों की दो-तीन चीज़ें मुझे याद हैं। एक का ज़िक्र मैंने कल अपने व्याख्यान में किया था, हमारे घर में रामायण-पाठ का। इसकी मुझे बहुत अच्छे से याद है, मैं इस परम्परा को बहुत इज़्ज़त से देखता हूँ। बचपन में हम गुरुदासपुर में थे। वहाँ हनुमान प्राथमिक विद्यालय था, यह उस तरह का विद्यालय था जहाँ आप जाते हैं और आपका दाखिला हो जाता है। हम लोग ज़मीन पर टाट पर बैठते थे। हमारे उस्ताद हमारे बीच घूमते रहते थे। वे हमें कोई काम दे देते थे, जैसे पहाड़ा याद करना और खुद कुछ गुनगुनाते हुए घूमते रहते थे। हमें ये पता था कि वे कोई शे'र बोलते हैं और हम सोचते थे कि मास्टर जी का दिमाग़ चल गया है। समझ में हमें कुछ नहीं आता था पर लफ़्ज कान में पड़ जाते थे, कोई न कोई लफ्ज़, और वे याद में बैठ जाते थे। चालीस बरस बाद मैंने इक़बाल की किताब खोली और एक नज़्म सामने आयी, वह वही थी जो मास्टर जी गुनगुनाया करते थे। मैं चकित हो गया। उसके तीन शे'र वे बोला करते थे या शायद

चार। नज़्म तो बड़ी है पर वे तीन शे'र मैंने दिमाग़ में बैठा लिये :

हरेक में इक सवाल है

पालता है बीज को मट्टी की तारीकी में कौन ?

कौन दरियाओं की मौजों से उठाता है सिहाब ?

कौन लाया खींचकर पच्छम से बादे साज़गार ?

ये ज़मी किसकी है, किसका है ये नूरे आफ़ताब ?

किसने भर दी मोतियों से ख़ोशा-ए-गन्दुम की जेब ?

मौसमों को किसने सिखलायी है ख़ू-ए इन्क़लाब ?

ये अशआर औपनैषदिक लगते हैं। इक़बाल में इस तरह के शेर आते हैं। मुझे मास्टर जी की आवाज़ और उनका मस्त होकर गुनगुनाते हुए घूमना याद है। जब मैंने इक़बाल के शेरों को अपने उन दिनों से जोड़कर देखा, मुझे महसूस हुआ कि हमने क्या चीज़ खोयी थी।

मुझे मेरी माँ बहुत प्रिय थीं। पिता भी। उनकी याददाश्त बड़ी पैनी थी। उन्हें बहुत चीज़ें याद थीं। हर मौके पर कोई मिसरा, कोई शेर, कोई दोहा उनके ज़ेहन में आ जाता था। मान लीजिए हमें कोई काम करना था और हमने वादा किया था कि हम वो काम शाम तक कर देंगे और नहीं कर पाये तो माताजी पास से गुज़रते हुए बोलेंगीं- 'रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन न जाई।' इस पर हम शर्मिन्दा हो जाते। इस तरह इशारों में बातें हो जाया करती थीं। हमारे माता-पिता बहुत शालीन थे, मुझे याद नहीं कि उन्होंने हम पर कभी हाथ उठाया हो, किसी भी बच्चे पर। उस ज़माने में यह असामान्य था। तब बच्चों पर सख़्ती से पेश आया जाता था। हमारे यहाँ सख़्ती नहीं थी।

उदयन- आप कितने शहरों में गये होंगे?

गोस्वामी- बहुत से। सबसे पहले जब मैं स्कूल में दाखिल हुआ, हम जिला सियालकोट के पसरूर में थे, वहाँ मैंने पहली और दूसरी की पढ़ाई की। मेरे बड़े भाई मुझे आज भी छेड़ते हैं कि इसने ए. बी. सी. बहुत जल्दी सीख ली थी और अपने साथियों से कहता था कि सुननी है ए. बी. सी. तो दो सलेटियाँ लाओ। वे मुझे बहुत छेड़ते हैं और कहते हैं कि यह शुरू से ही ऐसा है। हमारे घर में इस तरह की बहुत नोंक-झोक चलती रहती थी। मेरी याददाश्त अच्छी है, अगर किसी चीज़ में दिलचस्पी हो, वो बहुत जल्दी याद हो जाती है। ज़िन्दगी में सलेटियाँ तो बहुत नहीं मिलीं पर सुनाया कई जगह। घर में अगर कोई ऊँची-नीची बात हो जाए, पिताजी कहते थे :

सुनहू भरत भावी प्रबल बिलख कहे हुँ मुनिनाथ
हानि लाभ जीवन मरण जस अपजस विधि हाथ।

यह सुनकर ठण्डक-सी महसूस होती थी। लगता था कि हमारे हाथ में बहुत कुछ है ही नहीं। यह सोचने का एक ढँग है और इससे ज़िन्दगी भर सान्त्वना मिलती रही। हमारे पिता के पास बहुत

पैसे-वैसे नहीं थे पर वे हमें हर साल छुट्टियों में किसी पहाड़ पर ले जाते थे। यह नियम था कि जाना है। जाने से दस दिन पहले तैयारियाँ शुरू हो जाती थीं। हम बचपन में चार बार कश्मीर गये, चार या पाँच मर्तबा डलहौज़ी गये। इस आने-जाने से दिमाग़ खुलता। हम एक बार डलहौज़ी गये, हमारे पिताजी ने कहा कि आज शाम को यहाँ मुशायरा है। हमने तब तक मुशायरा सुना नहीं था। मुशायरा सुनने हम उनके साथ गये, वहाँ ज़्यादातर छोटे-मोटे स्थानीय शायर थे। एकाध कोई शायर बाहर से आया रहा होगा। ये विभाजन से पहले की बात है। अँग्रेज़ों के बारे में उन शायरों में से एक ने बोला -

ए गोरी गां असील ए,
न जाने सिंग हिलाण,
खावे पीवे हिन्द विच,
दुध देवे इंगलिस्तान।

ये अच्छा शेर था। सिर्फ़ दो लाइनों में अच्छी बात कही है, उसमें व्यवस्था की खिलाफ़त तो थी ही। मुझे कविता का बहुत शौक़ है। अच्छी चीज़ पढ़ने की ललक-सी रहती है। ये मुझे मेरे पिताजी से मिला है, वैसे मेरी माँ और मेरे भाई को भी बहुत याद था पर मौके पर ऐसा कुछ कहना कि वह ठीक बैठ जाय, पिताजी ही करते थे। बहुत पहले, मेरे बचपन में ही, पिताजी की अपने बड़े भाई से कोई अनबन हुई होगी। उन्होंने एक कार्ड पर ग़ालिब का यह शेर लिखकर भेज दिया :

'जब तवक्को ही उठ गयी ग़ालिब क्या किसी का गिला करे कोई ?'

बस उन्होंने इतना लिखकर भेज दिया, नीचे अपना नाम भी नहीं लिखा। हमारे ताया जी उन दिनों लाहौर में रहते थे और हम लोग शायद लायलपुर में। वे यह कार्ड पढ़कर इतना हिल गये कि उन्होंने तुरन्त गाड़ी पकड़ी और लायलपुर आ गये। इक़बाल ने कहा है, दिल से जो बात निकलती है असर रखती है, पर नहीं ताक़ते परवाज़ मगर रखती है। स्थितियों के मुताबिक या किसी चीज़ को उठाने या बिठाने के लिये कविता के असर का मुझे बचपन से ही एहसास रहा है। चाहे वह शेर रहा हो, जो मैंने डलहौज़ी के मुशायरे में सुना था या वह जो हमारे पिताजी हमें बाद में सुनाया करते थे कि उनके और उनके बड़े भाई के बीच क्या हुआ था, (वे उस सबका हमारे बचपन में हमसे साझा नहीं करते थे, अपने बच्चों से कौन अपने भाई के बारे में वह सब साझा करेगा) इन सबमें मुझे कविता का असर महसूस होता था। आयरिश कवि शेमस हेनी ने चेश्वाव मिवोश की मृत्यु पर कहीं लिखा है कि मिवोश एक बड़ी अच्छी बात कहता था; कविता, मृत्यु और खालीपन (नथिंगनेस) का सामना करने का हमारे पास एकमात्र रास्ता है। वो मृत्यु और खालीपन (नथिंगनेस) में अन्तर करता है। ये चीज़ें दिमाग़ में रहती हैं। शायद इसीलिए कोई न कोई शे'र ज़ेर-ए-लब रहता है। उसे बोलकर मुझे लगता है कि जो मैं कह रहा था, उसमें वज़न आ गया है और वह बात मुझे और श्रोताओं को आसानी से समझ में आ रही है।

उदयन- आप कल बता रहे थे* और आपने लिखा भी है कि आपके घर में राधेश्याम रामायण पढ़ी जाती

थी। क्या तब पंजाब में तुलसी रामायण का चलन नहीं था?

गोस्वामी- नहीं था। राधेश्याम रामायण ही थी। वह उर्दू लिपि में थी। देवनागरी में नहीं थी पर मेरी माँ को वह बहुत याद थी। वे समय-समय पर उसे बोलती थीं, उनकी आवाज़ कोई उतनी बेहतर नहीं थी पर वे अपनी तरह से राधेश्याम रामायण के पद बोला करती थीं। उनकी तबियत भक्ति की त र फ माईल थी।

उदयन- आपके पिता सभी बच्चों को बिठाकर रामायण पढ़ा करते थे...।

गोस्वामी - हम सब आसनों पर बैठते थे, साथ में माँ बैठती थीं और पिताजी उनसे अलग सामने बैठा करते थे। एक आसन हनुमान जी के लिए खाली रखा जाता था। वे रामायण को पूरे अदब से खोलते थे। वह कपड़े में लपेटकर रखी होती थी, उसे आराम से खोलकर माथे पर अदब से लगाया जाता था। तस्वीर सामने लगी होती, उस पर फूल चढ़ाये जाते, हनुमान जी के लिए खाली छोड़े गये आसन पर भी। क्या आपके यहाँ भी ऐसा होता है?

उदयन- लगभग ऐसा ही होता था। माँ करती थीं। पर अब नहीं होता। हमारे पिता अपने भाई के प्रभाव में आर्य समाजी हो गये थे। उस कारण भी ये सब कम हो गया था। आर्य समाज ने भी हमें अपनी परम्परा से काटने में अपनी तरह की भूमिका निभायी है...।

चण्डीगढ़ में इन दिनों आपकी क्या दिनचर्या रहती है?

गोस्वामी- चण्डीगढ़ में सुबह उठकर मैं कुछ देर घूमता हूँ, क़रीब आधा घण्टा। मैं सुबह रोज़ाना विष्णु सहस्रनाम पढ़ता हूँ। वह मुझे कई सालों से कण्ठस्थ है। कई सालों का मतलब कोई बीस-पच्चीस साल है। इसके पहले मुझे यह नहीं आता था। विष्णु भगवान में आस्था है। सुना था इसके बारे में। राष्ट्रीय संग्रहालय के निदेशक शिवराम मूर्ति बड़े अध्येता थे। वरिष्ठ होने पर भी वे मुझे अपने क़रीब रखते थे। उन्होंने एक बार मुझसे कहा कि हो सके तो विष्णु सहस्रनाम का पाठ किया करो और उसे याद कर लो। यह उन्नीस सौ उन्यासी की बात है। मैंने उसे याद करना शुरू किया। रोज़ के पाँच श्लोक याद करता था। अगले दिन उन्हें दोहराकर पाँच नये श्लोक याद करता था। कुछ दिनों में मुझे सारे श्लोक याद हो गये। यह पाठ मैं बैठकर नहीं करता। बैठना वैसे भी मेरे लिए मुश्किल हैं। मैं टहलते हुए यह पाठ करता रहता हूँ। रात में सोने से पहले मैं हनुमान चालीसा पढ़ता हूँ। वह भी मुझे कण्ठस्थ है। विष्णु सहस्रनाम में क्रियापद हैं नहीं, सिर्फ़ विशेषण हैं, उसे एक बार शुरू करो तो जैसे ऑटो पायलट पर जहाज़ चलता है वैसे ही पढ़ते जा सकते हैं। इसके बाद कम्प्यूटर पर बैठ जाता हूँ। सारा दिन फिर वही। बीच में कहीं किसी चीज़ के लिए उठ गया वरना सारा दिन जो किताब दिमाग में चढ़ी हुई है, उसी पर काम करता रहता हूँ। इसी बीच चिट्ठी-पत्री और अख़बार का स्तम्भ लिखता हूँ। लेकिन कोई बँधा हुआ वक़्त नहीं है। दोपहर के खाने तक अपना कुछ काम पूरा करूँगा फिर खाना खाकर थोड़ी देर आराम करता हूँ। इसके बाद फिर लिखता हूँ। मेरी पत्नी करुणा अक्सर कहती है कि आप घर में दिखते नहीं हैं, सिर्फ़ आपकी पीठ दिखती है। उन्होंने एक बार मुझसे कहा कि आपके कपड़ों पर कुछ लिखवा दें तो मैंने कहा कि यह लिखवा दीजिए: 'कीप ऑफ माई

*रज़ा फाउण्डेशन, नयी दिल्ली द्वारा दिनांक १७ जुलाई, २०१५ को आयोजित व्याख्यान

बैक।' घर वालों को मुझसे शिकायत रहती है कि इनसे बात करने के लिए समय लेना पड़ता है। हमारे विश्वविद्यालय के कुलपति थे, उन्हें हम बाम्बा साहब कहते थे, उनका नाम रामप्रकाश है। उनकी हम बड़ी इज़्ज़त करते थे। उनके चाचा मैनी साहब उनके साथ रहते थे। जब हम उनसे पूछते थे कि क्या उनकी बाम्बा साहब से बातचीत हुई है, वे कहते थे, 'क्या यार, रामप्रकाश तो डायरी देखकर बात करता है।' घरवालों को मुझसे यह शिकायत रहती है कि इनसे कोई बात करनी हो तो समय लेना होता है। लेकिन यहाँ यह नहीं है कि कोई सरकारी किस्म का कायदा हो। दरअसल मैं पूरे समय काम करता हूँ। आजकल मैं गुलेर के चित्रकार मानकू पर किताब लिख रहा हूँ।

उदयन- गुलेर के पण्डित सेऊ के घराने से आपके गहरे सम्बन्ध होने का क्या कारण है? आपने इसी घराने के नैनसुख पर किताब लिखी है, पण्डित सेऊ पर भी आपने पर्याप्त लिखा है। अब आप मानकू पर किताब लिख रहे हैं। इस घराने की चित्रकला में ऐसी क्या विशेषता है कि आप इनके प्रति ऐसे आकर्षित हैं? क्या इस घराने में अन्य घरानों की तुलना में कुछ खास है?

गोस्वामी- जब मैं अपने शोध प्रबन्ध पर काम कर रहा था, उस वक़्त मैं इस परिवार से नहीं मिला था, क्योंकि मेरे शोध का मुख्य विषय 'पहाड़ी चित्रकला की सामाजिक पृष्ठभूमि' था। इत्तेफ़ाक होगा कि मैं इस घराने को नहीं जान पाया। बाद में मैंने इस घराने के बारे में थोड़ा-बहुत सुना और पढ़ा। मैं इस घराने के सदस्यों को ढूँढ़ने गया। मुझे चन्दूलाल नाम का आदमी मिला। वह नैनसुख की सन्ततियों में था। उसके गाँव का नाम था गग्गल और ताल्लुका रजौल। मैं पूछते-पाछते वहाँ पहुँचा। चन्दूलाल ने चित्रकला छोड़ दी थी। वह कुछ-कुछ सुनार का काम करता था, उसे चाँदी का काम आता था। उसी से उसका गुज़ारा चलता था। बच्चे काफ़ी थे। छोटा-सा घर था। वह खूबसूरत था। एकदम साफ़-सुथरा। स्लेट की छत थी। घर के बीच से कूल बह रही थी। घर के बाहर निकलो तो धौलाधार नज़र आता था। जैसे सिर के ऊपर शेषनाग हो। वह बड़ी खूबसूरत जगह पर रह रहा था। बहुत आतिथ्य प्रिय था। उसे यक़ीन ही नहीं हो रहा था कि कोई उसका नाम जानता होगा और यह भी कि वह चित्रकार है और उस घराने से है। तब तक मैंने इस बारे में कुछ शोध कर लिया था। खासतौर पर तब जब मैं पण्डों के साथ काम कर रहा था। वो और उसकी बीवी बड़े ही हलीम लोग थे। मीठे लोग थे, उस वक़्त बच्चे छोटे थे। ये अपना नाम चन्दूलाल रैना लिखता था। यह अजीब था, क्योंकि रैना तो कश्मीर के होते हैं। उससे बातचीत होती रही। मैं उससे पूछता रहा कि आपका परिवार यहाँ कब से बसा है। वो कहने लगा कि मैं एक चीज़ आपको दिखाना चाहता हूँ। वो अन्दर से कागज़ लाया, जिसकी आठ तहें थीं। वह काफ़ी बड़ा चित्र था। एक अजब चीज़ थी। देवी का रेखाचित्र था। देवी का सिर्फ़ एक पाँव। शरीर लगभग नग्न। मैंने उसे प्रकाशित भी किया है। मैं उसे देखकर भौंचक रह गया कि यह क्या है! देवी के चारों ओर छोटे-छोटे दायरों में नाम लिखे हुए थे। सब टाकरी में, टाकरी मैं पढ़ लेता हूँ। बड़ी साफ़ टाकरी थी। पहले कोई नाम पाँव के नीचे लिखा गया था पर उसे मिटा दिया गया था। कई सालों बाद मैंने उस मिटे हुए नाम को देखा, वहाँ हरिपुर लिखा था। रियासत गुलेर की है, हरिपुर उसका मुख्यालय है। किसी पण्डित ने कहा होगा कि पाँव के नीचे हरि का नाम नहीं लिखना, इसलिए उसे मिटा दिया गया होगा। देवी के सिर के ऊपर 'श्री गुलेर' लिखा है और भी कई रियासतों के नाम देवी के चारों ओर लिखे हैं। चन्दूलाल बोला, 'ए

हमारी देवी हैं, इदे आसरे ही सब चल्दा है, देवी दी शक्ति इतनी है कि तसी ग़ल्त कम करी लौ, तो मन्जी ते सुत्ते होओ ते मन्जी उल्टा दएगी जे खुश हो जाए ते त्वाड्डे नाल बैठ के चौपड़ खेलेगी।' देवी उसके लिए बिल्कुल वास्तविक थीं। उसने देवी के बारे में और भी कई बातें कीं। मैं उस बातचीत से बड़ा अचम्भित हुआ। भारतीय चित्रकला से जुड़े तमाम दस्तावेज़ों में देवी का यह चित्र अनोखा है। इसके नज़दीक की भी कोई चीज़ नहीं है। यह एक परोक्ष दस्तावेज़ है, इसमें पहली बात तो यह है कि यह परिवार देवी को पूजता है। उसके अलावा इसमें इस बात का दस्तावेज़ है कि इस परिवार ने कितनी रियासतों में काम किया है। 'श्री गुलेर' से शुरू होकर इसमें कांगड़ा, नदौर, बसोहली, जसरोटा, जम्मू आदि सारे नाम हैं। तीन सिक्ख सरदारों के नाम भी हैं। उस वक़्त पंजाब में सिक्ख काफ़ी हावी हो गये थे। इनमें एक जयसिंग कन्हैया है, एक उसका लड़का। यह निश्चय ही एक अद्वितीय दस्तावेज़ है। मैंने चन्दूलाल से कहा कि आप चित्र नहीं बनाते? उसने कहा, 'यहाँ कोई पूछने वाला है ही नहीं।' मैंने उससे कहा, 'तुम मेरे साथ चण्ड़ीगढ़ चलो'। उसने कहा, 'आप जब कहोगे, मैं आ जाऊँगा।' मैंने कहा, 'अपना सामान लेकर आना।'

उदयन- उसके घर पर तब तक भी चित्रकला का सामान बाकी था ?

गोस्वामी- हाँ था। उसके पास पुराने क़लमदान थे, सीपियाँ थीं और गऊगोली थी, जो गोमूत्र से बनती है। उसके पास रंग भी थे। वह अपने पिता लछमनदास की बात करता था, दादा की भी जिनका नाम रामदयाल था। उसने मुझे बेशुमार कहानियाँ सुनायीं, बड़ी दिलचस्प। उनमें उसकी पारिवारिक परम्परा आदि के बारे में बीसियों क़िस्से थे। उसने ही मुझे वह कहानी सुनायी थी, जो मैंने लिखी भी है। उसने यह भी बताया कि वहाँ एक मटौर नाम की जगह है जहाँ अँग्रेज़ों ने प्रतियोगिता करायी थी। उन्होंने कपड़े का एक थान लगा दिया और कहा कि जो भी चित्रकार एक ही धागे को लेकर उसपर लक़ीर खींचेगा, वही जीतेगा। वो बोला कि उसके दादाजी ने यह कर दिखाया। अब उन्होंने किया या नहीं किया, यह दीगर बात है। ऐसी ही न जाने कितनी कहानियाँ उसके पास थीं और मैं उनके प्रति बहुत आकर्षित हुआ। वो चण्डीगढ़ आया। मैंने उससे कहा कि मेरी तुमसे कोई अपेक्षा नहीं है कि तुम क्या करो। तुम काम करो। जब अच्छा लगे तब करो। सुबह करो या शाम को और तबियत न हो तो न करो। उसने तस्वीरें बनाना शुरू कर दिया। उसने बचपन में तस्वीरें बनायी थीं पर वे न बिकीं और न कोई सरपरस्त था। चण्डीगढ़ में अब वह बहुत सालों बाद तस्वीरें बना रहा था। मैंने उसकी तस्वीरों को देखकर पूछा कि क्या वह उन्हें बेचेगा? वह बोला, 'इन्हें कौन खरीदेगा?, मैंने कहा, 'मैं मदद करता हूँ।' वह हैरान-सा हो गया। उसने तीन-चार तस्वीरें बनायी थीं। उनमें बहुत जान नहीं थी पर वे सब उसने अपनी याददाश्त के सहारे बनायी थीं। मैंने वे तस्वीरें अपने दोस्तों को दिखायीं। उसकी पहली तस्वीर जो बिकी, उसके उसे पैंतीस रुपये मिले थे।

उदयन- क्या यह १९६२-६३ की बात है?

गोस्वामी- हाँ। उसे लगा जैसे उसे दुनिया मिल गयी हो, जब पैंतीस रुपये उसके हाथ आये, मुझे उसके चेहरे के भाव अच्छी तरह याद हैं। कुछ ऐसा लगा मानो कह रहा हो कि मेरी ज़िन्दगी बदल गयी।

मुझे अच्छा लगा। उसका काम अच्छा रहा हो या न रहा हो, मुझे लगा वह धीर-धीरे करके निकाल लेगा। फिर हमारा पारिवारिक रिश्ता बन गया। एक-दूसरे के घर आना-जाना शुरू हुआ। एक बार वो अपनी बीवी को भी लाया। बच्चों को भी लाता था। मैं भी उसके घर जाता था। वह मुझे चिट्ठियाँ लिखता था। वह उर्दू में लिखता था और मुझे हुजूर, जनाब, ऑफिसर साहब लिखता था। प्रोफ़ेसर उसकी समझ में नहीं आता था। ये चिट्ठियाँ मेरे पास आज भी पड़ी हैं। हमारा एक रिश्ता-सा बन गया। मैंने कई जगह उसकी बात की। कभी-कभार अख़बार में भी लिखा। सरकार ने मेरे कहने से चन्दूलाल से कहा कि तुम अपने गाँव में स्कूल खोलो। उसमें जितने बच्चे आएँ, उन्हें छात्रवृत्ति दी जाएगी। उसने अपने दो-तीन बच्चे दाखिल कर लिये। जो ठीक ही था। बाकी कुछ दूसरे बच्चे थे। इस तरह स्कूल शुरू हो गया। वो मेरे प्रति कृतज्ञ बना रहा। जैसा कि मैं उसके प्रति। उसने इतनी सारी सूचनाओं और अन्तर्दृष्टियों का मेरे साथ साझा किया था। यह याद रहे कि वह नैनसुख के परिवार से था। उस परिवार में बड़ी प्रतिभा थी। यह अजीब-सी बात है, गुलेर छोटा-सा कस्बा है, वहाँ बहुत आना-जाना नहीं था, लेकिन दोनों भाई नैनसुख और मानकू बेहद प्रतिभा सम्पन्न थे, उनके पिता पण्डित सेऊ भी वैसे ही थे और इन सबसे ज़्यादा प्रतिभा सम्पन्न नैनसुख और मानकू के बेटे थे। पहाड़ी लघु चित्रों की पाँच सबसे अधिक महत्वपूर्ण चित्र शृँखलाएँ इस परिवार के सदस्यों ने बनायी हैं। गीत-गोविन्द, भागवतपुराण, रामायण, (जिसे पण्ड़ित सेऊ ने बनाया था और वे ऐसी खूबसूरत हैं कि जान निकाल लेती हैं) आदि। प्रतिभा का जैसा विस्तार इस परिवार में हुआ था, दूसरी जगह देखने को नहीं मिलता। मुझे मानकू को लेकर अपने आप से गिला सा रहता था। मुझे वह बहुत पसन्द था, लेकिन किताब मैंने नैनसुख पर लिखी। मानकू उससे अधिक नहीं तो उतना तो जाना-माना होना चाहिए था, इसलिए मैं उस पर किताब लिख रहा हूँ। ये एक इत्तिफ़ाक है कि उस छोटी-सी जगह गुलेर में एक आदमी ने एक कहानी लिखी, उसे लोग अब तक याद रखते हैं। मैं चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का ज़िक्र कर रहा हूँ। कई बार ऐसा होता है, आप इसे ऐतिहासिक संयोग कह लीजिए। उस धरती में कुछ रहा होगा, कोई चुम्बकीय तत्त्व...

उदयन- आपने इस बात का इशारा एक से अधिक बार किया है कि इस घराने में नैनसुख और मानकू के बीच बहस रही होगी। नैनसुख अपने पिता की तरह राह छोड़ कर चल रहे थे। लेकिन मानकू को अपना पारम्परिक रास्ता छोड़ना स्वीकार्य न था। वह उलझते होंगे। यह किस किस्म की बहस रही होगी। क्या इसमें मिनिएचर की शैली को लेकर बहस होती होगी!

गोस्वामी- मैं इन दिनों कुछ ऐसी चिट्ठियाँ लिख रहा हूँ जो मानकू ने लिखी हो सकती थीं। मैंने दस-बारह चिट्ठियाँ लिख ली हैं, यह कल्पना करते हुए कि वह किससे किस किस्म की बातें किया करता होगा। ये चिट्ठियाँ नैनसुख को, अपने पिता को, बच्चों को और अपने संरक्षक (पेट्रन) को लिखी गयी हैं। इनमें वही कल्पना सक्रिय है, जिसका आप ज़िक्र कर रहे हैं। मैं मानता हूँ कि जब भी परिवार में कोई काम हाथ में लेता था, बाकी लोगों से उस पर बातचीत ज़रूर करता था। घर में ये लोग एक-दूसरे के काम में नुक़्स निकालते रहे होंगे। एक-दूसरे की तारीफ़ भी करते रहे होंगे। शाम को साथ बैठते होंगे और एक-दूसरे की तस्वीरों पर नज़र डालते होंगे, पूछते होंगे, 'ये

क्या बनाया है,' या 'पण्डित तो ये कह रहा था' वगैरह। यह मान्यता कई बरसों तक चलती रही कि १७१६ में नादिरशाह आक्रमण के बाद मुगल चित्रकारों का सारा सामान लूटकर वापस चला गया, सारे चित्रकार पहाड़ों में बिखर गये। यही बात खण्डालावाला ने कही और ऑर्चर ने भी शुरू में यही कहा। मैं यह नहीं मानता। अगर ऐसा होता तो इन पहाड़ी चित्रकारों के पास एक असली मुगल मिनिएचर चित्र होना चाहिए था या मुगल चित्रकारों की कोई तो सीधी छाप वहाँ होती थी। मैं समझता हूँ कि कुछ चित्र या कुछ ख़ाके यहाँ पहाड़ों में आये। कुछ लोग उन्हें ले आये हो सकते हैं। मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। हरिद्वार में पण्डे की बही में लिखा है : 'फलाँ-फलाँ' चितेरा आया, पोथी रागमाला की लाया। कोई चित्रकार ले आया होगा। मिनिएचर चित्र हाथ की चीज़ें हैं, उन्हें एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता है। हो सकता है, वे चित्र किसी ने बनवाये हों या कोई पण्डे को देने ले गया हो। इसमें कोई शक नहीं कि कई चीज़ें इधर से उधर जाती थीं। एक कवि हुए हैः कवि उत्तम। उन्होंने राजा दिलीप सिंह का इतिवृत्त लिखा है, 'दिलीपरंजनी।' करुणा ने उसका अनुवाद किया है। वो भाटों के जैसी शैली में लिखा गया है। मिसाल के तौर पर अगर दिलीप सिंह घोड़े पर जा रहे हैं तो लिखा होगा कि घोड़ा चलने से धरती काँप रही थी वगैरह। उत्तम कवि उत्तरप्रदेश से आये होंगे। राजा दिलीप सिंह के राजगुरु दिनमनी रैना थे। उत्तम कवि का दिनमनी रैना से किसी ने परिचय कराया होगा। वे दोनों दोस्त हो गये थे। इस मण्डली में दिलीप सिंह के चाचा मियाँ गोपाल सिंह भी शामिल हुए। इन तीनों का साथ उठना-बैठना था। इन तीनों में कौन बाहर गया होगा, यह पता लगाना मुश्किल है, पर बाहर आना-जाना तो होता था। दिलीप सिंह १६६५ में गद्दी पर बैठा था और उत्तम कवि ने सन् १७०३ तक 'दिलीपरंजनी' लिख दी थी। अब इनमें से कौन बाहर जाता है, कौन वापस आता है, कैसे कहा जाये। दिलीप सिंह के दादा विक्रम सिंह मुगलों की फ़ौज में काबुल तक गये, इसके दस्तावेज़ हैं। ये मुगलों के फरमांबरदार भी थेः मुगल इन राजाओं को जगह-जगह भेजते थे। वे इनसे कहा करते होंगे कि तुम फलाँ जगह ये फ़ौज ले जाओ और वहाँ जाकर लड़ो। फिर इनमें से कोई दक्खिन जा रहा है, कोई ओर कहीं जा रहा है। जगत सिंह नूरपुर का राजा था, वह बड़ा जुझारू था, उसका शाहजहाँ बहुत लोहा मानते थे। ये लोग जाकर सारा समय लड़ते नहीं थे। वहाँ उठना-बैठना होता होगा। लोगों से मिलते होंगे। इस तरह मिनिएचर चित्रों को हासिल करने के कुछ रास्ते तो थे ही। फिर पहाड़ के लोग तीर्थ यात्राओं पर भी जाते थे, कम से कम हरिद्वार तो जाते ही थे। पहाड़ों में कहा भी जाता है कि अगर वहाँ ज़िन्दा रहते नहीं गये तो मर कर तो जाओगे ही। हरिद्वार के अलावा कुरूक्षेत्र भी आना-जाना रहता होगा। बसोहली के राजा अमृतपाल थे। नैनसुख के संरक्षक बलवन्त सिंह की मौत के पहले उस ने लिखा है कि वो अमृतपाल के साथ जगन्नाथ पुरी की यात्रा के लिए गया। अब सोचिए कि वो पहाड़ों से उड़ीसा तक गया। नैनसुख का बेटा राँझा जब बुज़ुर्ग हो गया, उसके दो बेटे उसे तीर्थ यात्रा पर ले गये। बही के अन्दर यह लिखा मिलता है, 'गयाजी के दर्सन को, प्रयागराज के परसन को, लेके जा रहे हैं।' ये सब छोटी-मोटी बातें नहीं हैं। जब वे लोग कहीं जाते होंगे, सराय या धरमशाला में रुकते होंगे। जहाँ रुकते होंगे, वहाँ अपनी तरह के या अपनी पसन्द के लोगों को ढूँढ़ते होंगे। उन दिनों यात्राओं में महीनों लगा करते थे, लोग रुकते-रुकाते जाते थे। उन

दिनों ऐसा नहीं था कि रात पहुँचे, सुबह सामान बाँध लिया। मैं यह मानता हूँ कि सम्प्रेषण के अनेक रास्ते खुले हुए थे और वे अनेक स्तरों पर थे। चितेरे भी जाते थे, तरखान, पण्डित या सुनार सभी आते-जाते थे। इनमें कौन-क्या ला रहा है, कैसे ला रहा है, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी आधार पर मेरा मानना है कि मुगल चित्र पहाड़ों में ज़रूर आये होंगे, उनमें से किसी चित्र को मिसाल के तौर पर किसी राजा ने अपने चितेरे को दिखाया होगा : 'भाई, देखो ये क्या है?' इसकी प्रतिक्रिया में पहाड़ी चित्रकारों ने चित्र बनाये होंगे। जब कोई नयी चीज़ आयी है, उसकी प्रतिक्रिया होती होगी जैसे मुगल काल में ईसाई कला आयी। उसकी भी प्रतिक्रिया हुई। अठारहवीं सदी में कच्छ में यूरोप से प्रिण्ट्स आये। वहाँ के चित्रकार थे क़मानगर, उन्हें कमग्गर कहा जाता है। उनके राजा ने उन्हें वे प्रिण्ट्स दिखाये होंगे और कहा होगा कि ये दिलचस्प चित्र हैं, ज़रा इन्हें देखो। वे बड़ी खूबसूरती से चित्र बनाते थे। कच्छ का ही एक व्यक्ति पानी के जहाज़ की दुर्घटना के कारण हॉलैण्ड पहुँच गया था, वह वहाँ ग्यारह साल रहा। अन्दाजा है कि वह वहाँ से प्रिण्ट्स लेकर आया। राजा ने अपने चित्रकारों को वे प्रिण्ट्स दिखाकर कहा कि क्या तुम ऐसा कर सकते हो? इनकी नकल करो। तब एक यूरोपीय प्रिण्ट की पाँच भारतीय प्रतिकृतियाँ तैयार हुईं। चित्रों के पीछे चित्रकार अपना नाम नहीं लिखते थे। अपनी निशानी लगाते थे। किसी ने अपना नाम गुलाब रखा हुआ है, कोई नारसिसस है। आप चित्रों को देखकर समझ सकते हैं कि गुलाब को नरसिसस से ज़्यादा समझ है। इस तरह का सिलसिला बहुत समय से चल रहा है, चाहे वह पहाड़ों में हो या कच्छ में। जब चित्र बाहर से आते होंगे, फिर वे यूरोपियन प्रिण्ट्स हों या मुगल मिनिएचर, उन्हें देखकर स्थानीय चित्रकार सोचते होंगे कि इनमें से क्या लिया जा सकता है, क्या नहीं लिया जा सकता। पण्डित सेऊ खुले दिमाग के थे, उन्होंने अपना ढंग छोड़ा नहीं पर अपनें बेटों को यह प्रोत्साहन दिया कि जो मुगल चित्रों से ले सकते हो, ले लो। नैनसुख दोनों भाइयों में छोटा था, ज़्यादा जोखिम उठाने वाला, या उसकी तबियत ही ऐसी रही होगी। इसलिए उसने अनेक तरह से चित्र बनाने के ढँगों को अपने अन्दर जल्दी समो लिया। इस तरह उसने अपनी एक खास शैली इजाद की। उसका कमाल का काम है। एक पतली-सी लाइन खींच देता है और स्पेस दो में विभाजित हो जाता है। मानकू संरक्षणवादी है। उसने जो काम अपने पिता या दादा से सीखा है, उसे छोड़ना नहीं चाहता। संस्कृत में एक उक्ति है, जिसका अर्थ है कि दो द्वार हैं, एक आँखों का और दूसरा मन का। आँखों के द्वार से दिखायी भर देता है पर समझने के लिये मन के द्वार का उपयोग होता है। मानकू मुगल चित्रों को देखकर भी उनसे प्रभावित नहीं होता। यहाँ भी चक्षुद्वार और मनोद्वार वाली बात ही है। उसके हिसाब से जो सामने दिख रहा है, उसे क्या चित्रित करना, जो नहीं दिख रहा है, उसे बनाना है। यहाँ प्रमुखता किस बात की है? अवलोकन की या कल्पना की ? नैनसुख भी फ़ोटोग्राफ़र नहीं है, वो भी कल्पना का इस्तेमाल कर रहा है, पर वह और तरह से है। हालाँकि मानकू ने भी कुछ तत्त्व मुगल चित्रों से लिये हैं पर इसमें उसे बहुत वक़्त लगा। उसकी एक कमाल की तस्वीर है, उसे देखकर मुझे लगा कि वह कुछ भी बना सकता था। मानकू ने भागवतपुराण को चित्रित करने का काम हाथ में लिया। उसमें तारीख वगैरह कुछ भी नहीं हैं। शैली के आधार पर वह 'गीतगोविन्द' के चित्रों के बाद का लगता है। यह शृँखला सन् १७४० से ४५ के बीच बनी होगी। गीतगोविन्द के चित्र

१७३० के हैं। मानकू की भागवतपुराण देखने वाली चीज़ हैं, उसके १०५ पन्ने राजस्थान में पड़े हैं मानो सारे के सारे अनछुए हों। उनमें सिर्फ़ चौथा स्कन्ध है, कुछ बिखरे हुए पन्ने पहले स्कन्द के भी हैं पर वहाँ नहीं। एकाध पन्ना दूसरे और तीसरे का भी है, पाँचवें और छठे का कुछ नहीं है। उसके बाद ख़ाके शुरू हो जाते हैं। मैं समझता हूँ कि भागवत की पूरी शृंखला क़रीब १५०० पन्नों की रही होगी। वो पूरी ही नहीं हो पायी। जब पेंटिंग खत्म हो जाती है इस शृंखला में तो ड्राइंग शुरु होती है, ऐसा क्यों हुआ? कारण जो भी रहा हो, लेकिन क्या जान है, उन चित्रों में। भागवत के मिथकीय चरित्र जैसे ब्रह्मा, विष्णु भगवान, शिव जी, राजा पृथु या ध्रुव हैं। इनके अवधारणात्मक व्यक्तिचित्र उसने बनाये हैं। जैसे नारद ऐसे दिखेंगे या कोई और ऋषि लम्बी दाढ़ी वाले रहें होगे। एक पन्ना राजा पृथु के अश्वमेध यज्ञ के बारे में हैं। उन्होंने घोड़ा खड़ा किया। इन्द्र को पृथु से बड़ी जलन हुई कि इससे तो मेरा सिंहासन डोल जाएगा। इन्द्र ने अश्वमेध का घोड़ा चुरा लिया। पृथु के लड़के ने उसका पीछा किया। इस पर इन्द्र ने तरह तरह के पाखण्डी भेष धरे। यह प्रसंग भागवत में आता है पर उसमें केवल इतना लिखा है कि कभी वह दिगम्बर साधु बन गया, कभी वह लाल कपड़े पहने साधु बना। ज़ाहिर है, यह वैष्णव ग्रन्थ है इसलिए यहाँ इसमें कटाक्ष है। मानकू ने एक तस्वीर में सात पाखण्डी इकट्ठा किये हैं। यह अद्‌भुत चित्र है। इसमें इन्द्र के सभी रूप एक से बढ़कर एक हैं। वे सचमुच के देखे गये व्यक्तिचित्र हैं। जिन लोगों को उसने वास्तविक ज़िन्दगी में देखा होगा, उसने अपनी तरह से देखा है और इसका कोई ज़िक्र नहीं है कि कौन-कहाँ का है। उसने नागा साधु बनाया है, कोई दिगम्बर जैन नहीं बनाया, कोई भिक्षु नहीं बनाया। एक कनफटा जोगी बना दिया, एक डेरे वाला, जो झाड़फूँक करता है, एक जंगम, एक कापालिक बना दिया। इन्द्र के इन सब रूपों का भागवत के पाठ में कोई ज़िक्र नहीं हैं, ये लोग उसने अपनी ज़िन्दगी में देखे होंगे और उन्हें उसने हूबहू बना दिया। अगर वो इस तरह के व्यक्तिचित्र (पोर्ट्रेट) बना सकता है जो पूरी तीव्रता से देखे गये हैं तो इसका यही मतलब है कि यह कला पूरी तरह उसकी पकड़ में है और अगर वह परिपाटीगत शैली में ही चित्र बनाता है तो यह उसका अपना फैसला है कि मैं देवताओं की दुनिया में ही हूँ और वहीं रहूँगा। वह अवधारणात्मक, आदर्शीकृत आईकोनोग्राफी (प्रारूपिक प्रतिमाकरण) करता है। लेकिन जब उसके दिमाग़ में आया कि वास्तविक लोगों के व्यक्तिचित्र बनाना है, उसने वे बना दिये। आप उन्हें देखकर यह पहचान सकते हैं कि यह आदमी कल ही इस गाँव में घूम रहा था, वह किसी गली में दिखा था।

उदयन- मानकू ने अपने पाखण्डियों को चित्रित किया...

गोस्वामी - मानकू की ताक़त यहाँ है। लेकिन उसका यह सजग निर्णय है कि उसे मुगल लघुचित्रों की तरह काम नहीं करना है। यह सोच की बात है। इसी कारण उस कलाकार के प्रति मेरे मन में बहुत इज्ज़त है। वह पूरी उम्र अपने पुरखों की राह पर ही चला।

उदयन - इस राह पर चलने का संस्कृति में बड़ा स्थान होता है, मिसाल के तौर पर ध्रुपद संगीत में इसकी इजाज़त नहीं है कि आप हनुमान चालीसा गाएँ या भजन गाएँ...

गोस्वामी - वह वर्जित होता है।

उदयन – क्योंकि वहाँ भी मानकू वाली बात है। ऐसा करके वे न सिर्फ़ यह बताते हैं कि हमारे यहाँ संगीत कैसा होता था, बल्कि यह संगीत अन्य संगीत रूपाकारों को नापने का आधार बन जाता है। यह बात अलग है कि परम्परा में रहते हुए इस संगीत में भी संगीतकार की अपनी कल्पना के लिए पर्याप्त स्थान होता है जैसा कि मानकू के चित्रों में भी होता है।

गोस्वामी – हमारे यहाँ एक बार छाऊ वाले आये थे, उनके गुरु ने बताया कि हम अपने शिष्यों को पहला पाठ यह पढ़ाते हैं कि इस शरीर की सीमाएँ क्या हैं जिनका उल्लंघन नहीं किया जाना है....

उदयन – बहुत अच्छी बात है यह.....

गोस्वामी – मानकू ने जैसा किया, उसके लिए गहरी नैतिक शक्ति चाहिए होती है। बड़ा हौसला चाहिए होता है। ऐसा नहीं है कि वे दूसरी तरह का काम कर नहीं सकते पर वे करेंगे नहीं।

उदयन – उन्होंने जगह-जगह यह दिखा दिया कि वे वैसा काम भी कर सकते थे पर उन्होंने किया नहीं, यह बड़ी बात है।

भारत के शुरुआती मिनिएचर चित्रों और फ़ारस के मिनिएचर चित्रों के बीच आप क्या बुनियादी फ़र्क देखते हैं ? मेरा आशय भारत के शुरुआती मिनिएचर चित्रों से है। स्वयं आपके लेखों के अनुसार उसकी शुरुआत भारत में ग्यारहवीं शताब्दी में होती है और वहाँ से ये चित्र कम्पनी चित्रों के बनने तक उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक आ जाते हैं। शुरुआती मिनिएचर चित्रों और ईरान से आये चित्रों के बीच आप आकाश (स्पेस) के बर्ताव में क्या अन्तर देखते हैं ? यह है भी या नहीं ?

गोस्वामी – एक फ़र्क तो मैं इसी वक़्त बता सकता हूँ। हमारे यहाँ शुरू से यह परम्परा रही है कि पृष्ठभूमि के बारे में वक्तव्य देना ही नहीं है उसे अमूर्त छोड़ देना है। यह दर्शाते हुए कि वह अन्तहीन आकाश (स्पेस) है इसलिए यहाँ पृष्ठभूमि सपाट बनायी जाती थी। कहीं ऊपर से नीचे तक यह सपाट छोड़ा जाता था। कहीं बहुत थोड़ी-सी पट्टियाँ बना दी जाती थीं लेकिन यह बहुत कम मिलता है। शिराज़ी चित्रकला में ऐसा कुछ थोड़ा बहुत मिलता है, लेकिन वे यह घिरे हुए आकाश (क्लोस्ड स्पेस) में करते थे, घर के भीतर, बजाय इसके कि वे दरवाज़ा वगैरह दिखाएँ, वे उसे सपाट चित्रित करते थे। लेकिन खुले आकाश (आउट डोर) में वे ऐसा नहीं करते थे। उसमें वे कुछ न कुछ दिखाते हैं। हमारे यहाँ आउट डोर (खुले आकाश) की कई तस्वीरें मिलती हैं, लेकिन उनमें पृष्ठभूमि सपाट होती है या ऐसे लगता है कि कोई परदा जैसा गिरा दिया गया है। इसलिए हमारी चित्रकला में अमूर्तन कहीं अधिक है। मैंने अपनी किताब में श्वेताश्वेतरोपनिषद् से एक श्लोक उद्धृत किया है जो ऐसे शुरु होता

यदा चर्मवद् आकाशं वेष्टयव्यिंति मानवाः

बहुत सुन्दर श्लोक है। क्या अद्भुत कल्पना है। इन चित्रों में जैसे काल का स्वरूप है वैसे ही आकाश का। वह बँधा हुआ नहीं है, वहाँ लचीलापन है। मैं समझता हूँ, यह बुनियादी फर्क है। मैंने यह कई बार लिखा भी है कि लघुचित्रों की मुगल परम्परा फ़ारसी लघुचित्रों से बहुत प्रभावित है। वे उसकी कई बार नकल भी करते हैं। इन सारे मुगल चित्रों में तीन या चार ही ऐसे होंगे, जो

बिल्कुल अलग हैं, जिन में एक ही मानव आकृति को चित्र में कई बार दिखाते हैं, जिसे 'कन्टीन्यूअस पिक्टोरियल नैरेशन' कहते हैं। क्योंकि उनका समय का विचार कुछ इस तरह से है कि समय एक जगह से होता हुआ, एक ही चित्र में, दूसरी जगह और वहाँ से तीसरी जगह चला जाता है। यह बात उन चित्रकारों के ज़ेहन में बैठी हुई है। यह एक किस्म की जातीय स्मृति है या जातीय सजगता। वह कितना खूबसूरत दृश्य है जिसमें वराह बाहर निकलते हैं और पृथ्वी उनके सींग पर लटक रही है। तब वराह भूदेवी के कान में कहते हैं कि यह यात्रा हमने कई बार की है, यहाँ आकर बात ब्रह्माण्डीय आयाम पा जाती है। वह दुनियावी नहीं रहती। ऐसा ही कुछ आकाश (स्पेस) के साथ है। स्पेस रूपान्तरित हो जाता है। या तो वे उसको बन्द करेंगे, उस पर परदा डाल देंगे या फिर पीछे का दृश्य दिखा देंगे।

उदयन – अजन्ता के चित्रों के बाद और लघुचित्रों की शुरुआत के बीच के वक्फ़े का क्या कुछ मिलता है ?

गोस्वामी – कहीं-कहीं पर निशान मिलते हैं। उसकी तारीख नहीं बतायी जा सकती पर शैली से अन्दाज़ा लगता है कि यह बीच के काल का रहा होगा। एक चीज़ किसी ने कही है जो बहस तलब है पर दिलचस्प है। भित्ती चित्र वहीं बने होंगे जहाँ स्थायित्व रहा होगा। वहाँ परम्परा पनपती है। आराम से बैठे हैं और कुछ काम कर रहे हैं। पर अगर आसपास में हल्ला-गुल्ला हो रहा हो या हड़बड़ाहट है तो यह नहीं हो सकता। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी तक लोग सोना दबाकर रखते थे और यह तर्कसंगत था क्योंकि सोना एक ऐसी वस्तु है जो कहीं भी बिक सकती है। सोना दबाकर रखना अनिश्चित दौर का लक्षण है। इसी दौरान पाठ यानी ट्रैक्टर का लिखा जाना शुरू होता है। पहले केवल पाठ यानि टैक्स्ट लिखा जाता है, बाद में उसमें चित्र भी आ जाते हैं, चाहे यह जैनों के यहाँ शुरू हुआ हो या अन्यत्र। सन् १००४ ईस्वीं में दिनांकित पहली जैन पाण्डुलिपि मिलती है।

उदयन – अजन्ता के बाद चित्र बनाने की परम्परा जैनों और बौद्धों के यहाँ शुरू हुई है। अन्य सनातनियों के यहाँ यह इतने आरम्भ में नहीं मिलती।

गोस्वामी – यहाँ दरअसल बात साक्षर होने की है, लिखने के सामर्थ्य की। जब एक भयंकर अकाल पड़ा, जिसकी बहुत बात होती है, लोगों ने वल्लभी में बैठकर यह सलाह की होगी कि जिसको जो भी याद हो, लिखते जाते हैं। आपने त्रुफ़ो की वह फ़िल्म देखी है, जिसके अन्त में कोई बन्दा जा रहा होता है, तो उसके लिए कहा जाता है कि वह 'टेल ऑफ टू सिटीज़' जा रहा है, किसी और के लिए कहा जाता है कि वह 'डिवाईन कॉमेडी' जा रहा है। यह इसलिए कि उन्होंने वे पुस्तकें याद कर रखी हैं। ऐसा कुछ हुआ होगा। जब अकाल पड़ा होगा लोगों ने यह सब अंकित करने का सचेत निर्णय लिया होगा। इसका दस्तावेज़ मिलता है।

उदयन – वल्लभी क्या है ?

गोस्वामी – यह स्थान का नाम है।

उदयन – वहाँ पर लिखने वाले बैठते होंगे.....

गोस्वामी – जैनियों की विमर्श सभा के बाद यह तय किया गया कि अब से लिखना शुरू किया जाए। ऐसी मान्यता है

उदयन – जब लिखना शुरू हुआ होगा तभी चित्र बनने भी शुरू हुए होंगे....

गोस्वामी – यह ज़रूरी नहीं था। धीरे-धीरे चित्रों का आना कैसे शुरू हुआ, कहना मुश्किल है। शुरुआती पूरी पाण्डुलिपि में केवल दो या तीन चित्र हैं।

उदयन – चूँकि इन चित्रों का सम्बन्ध भित्ति चित्रों से नज़र आता है इसलिए यह कहा जा सकता है कि इन लोगों को भित्ती चित्रों की जानकारी रही होगी....

गोस्वामी – उन्हें पता रहा होगा।

उदयन – यानी उन्हें शुरू से शुरू नहीं करना पड़ा होगा ?

गोस्वामी – ऐसा नहीं हुआ होगा। मैं नहीं मानता कि ऐसा हुआ होगा। हम लोगों को एक वहम-सा है कि सारे लोग जिस दायरे में रहते थे, वहीं बने रहते थे, वे एक ही जगह बैठे रहते थे या वे जो करते थे, वही करते रहते थे। ऐसा हो ही नहीं सकता। इस बारे में राय ज़रूर हो सकती है कि काम का स्केल क्या था, उसे कौन करता था, कौन-सी जाति वाले करते थे।

उदयन – पण्डित सेऊ के घराने के अलावा पहाड़ी चित्रकारों में ऐसे कौन-से दूसरे चित्रकार परिवार हैं, जिनका काम आपको विलक्षण जान पड़ता हो ?

गोस्वामी – नूरपुर के चित्रकार। नूरपुर गुलेर से लगा हुआ है। नूरपुर में बहुत बड़ा परिवार था जिन्होंने 'रसमंजरी' पर चित्र बनाये हैं या फिर मण्डी के चित्रकार। नूरपुर की बात करें तो वहाँ चित्रकारों का एक बड़ा परिवार था जिसमें कृपाल नाम का चित्रकार था, जिसका बेटा देवीदास और उसका बेटा गोलू थे। तीनों ने अपनी-अपनी 'रसमंजरी' बनायी है। वह ग्रंथ एक ही था। लेकिन तीनों रसमंजरियाँ अलग हैं हालाँकि कृपाल का काम देवीदास से मिलता है पर देवीदास का अपने बेटे गोलू से कुछ अलग है। इन तीनों में कृपाल की 'रसमंजरी' अद्‌भुत है, वह अद्वितीय काम है। वह सन् १६७० के क़रीब का है। देवीदास का काम सन् १६९४ का। गोलू की कृतियों में तारीख नहीं है, पर वे १७२०-३० के करीब की लगती हैं।

उदयन – यानी लगभग मानकू के समय की।

गोस्वामी – फिर यह पता नहीं चलता कि इनमें रिश्तेदारियाँ क्या थीं। चितेरे-चितेरों के यहाँ शादियाँ करते थे या नहीं ? लड़कियों को सिखाते थे या नहीं सिखाते थे ? अपने परिवार के कलात्मक रहस्य बनाये रखते थे या नहीं ? ये इस तरह की बातें हैं जो सुनने में आती हैं। पर यह अत्यन्त प्रतिभावान परिवार था। मण्डी के चितेरों का मामला थोड़ा अलग है। उनके काम के बारे में सुनते रहते थे, देखते भी थे, वह काम बड़ा ही प्रभावशाली है लेकिन उसमें एक खुरदुरापन है। मानो वह देहाती काम हो। उसमें वह चमक नहीं होती जो रगड़ने से आती हैं। वे रगड़ाई नहीं करते थे। वहाँ के एक राजा का नाम मिलता है सिद्धसेन। उनकी तस्वीरों में वे कच्छा पहने चलते हुए नज़र आते हैं। आप किसी मुगल बादशाह की कच्छा पहने तस्वीर की कल्पना नहीं कर सकते।

सिद्धसेन के नाम के आगे महाकाय जैसी उपाधियाँ लगायी जाती थीं, मानो वो यक्ष हो। दरअसल वह तान्त्रिक था। मण्डी की वे तस्वीरें मेरे ज़ेहन में रही हैं, वे बड़ी ताकतवर तस्वीरें थीं। लेकिन जिसे नफ़ासत कहा जाता है, वह मण्डी के भागवत चित्रों में मिलती है। कुछ लोग उसे बीकानेर में डालते हैं। इन तस्वीरों का उन तस्वीरों से बहुत कम ताल्लुक बनता है, जिन्हें हम पहले मण्डी के चित्र मानते थे। ये तस्वीरें मण्डी के राजा हरिसेन के ज़माने में बनी हैं। ये तस्वीरें अन्य लघुचित्रों की तुलना में काफ़ी बड़े आकार की हैं। मैं कहता हूँ कि उन्हें देखते हुए हैरानी होती है, ऐसा कमाल का वह काम है। वे अत्यन्त परिष्कृत और हिला देनेवाली कृतियाँ हैं। अभी हाल में उनमें से पाँच तस्वीरों का पोर्टफोलियो बम्बई के हमारे मित्र ने मेरी सलाह पर निजि तौर पर प्रकाशित किया है। यह बड़ी श्रृँखला रही होगी लेकिन इसकी अब केवल पाँच-छः तस्वीरें बची हैं। इन तस्वीरों में कृष्ण जन्म का आख्यान है। इनमें देवकी हैं, वासुदेव हैं। वे जेल में हैं। मैंने इसकी भूमिका में लिखा है कि सूरदास अपने इस पद 'अहो पति कोऊ उपाय कछु कीजे' में यह कहते हैं कि देवकी कह रही है कि कंस को लेकर हमने सभी उपाय कर लिये पर हमारी किस्मत में शायद यही है कि हम सुन भर सकेंगे कि हमारा बच्चा कैसा था। मैंने आगे लिखा कि सूरदास वहाँ तक जाते हैं, जहाँ से मण्डी का चित्रकार अपने चित्र शुरू करता है। मैं यह नहीं कह रहा कि उन्होंने सूरदास को पढ़कर चित्र बनाये हैं पर दोनों जगह स्थितियाँ एक जैसी हैं। मैं आपको बता नहीं सकता कि उन तस्वीरों में क्या जान है। जब कंस लड़की को कृष्ण समझकर पटकने की कोशिश करता है, वह हवा में उड़ती है। चित्र में उसकी आकृति बेहद छोटी है पर अगर आप उसे ध्यान से देखेंगे तो पाएँगे कि वह लड़की देवी है, अष्टभुजा है, उसके हर हाथ में एक अलग आयुध है। उसके पीछे एक रंग के बादल हैं, उन बादलों के पीछे अलग रंग के बादल हैं, उनके पीछे किसी ओर रंग के बादल। दूसरी ओर अनेक देवी-देवता खड़े हैं। पूरा चित्र ऐसा विलक्षण हैं कि उसे बयान करना मुश्किल है। यह एक और लघु चित्रों की परम्परा है, जो मण्डी में विकसित हुई। भागवत के साथ रामायण की तस्वीरें भी बनी हैं। हैदराबाद के श्री जगदीश मित्तल के पास उसके दो पन्ने थे। मण्डी की तस्वीरों को लेकर यह बहस बहुत दिनों तक रही कि वे मण्डी की हैं या बीकानेर की ? पर मैं शुरू से ही उन्हें मण्डी की मानता रहा हूँ। बाद की तस्वीरों से बहुत थोड़ा सम्बन्ध मिलता है। वह इसलिए होगा क्योंकि अलग-अलग घराने होंगे, यह बात विदेश में बैठे बहुत से अध्येताओं को समझ में नहीं आती।

उदयन - क्या उस परम्परा का अब एक भी चितेरा बाकी नहीं है ?

गोस्वामी - मण्डी में एक भी चित्रकार का नामोनिशान नहीं मिलता। मैंने बहुत देखा, बहियों में तलाश की, स्थानीय स्तर पर ढूँढने की कोशिश की।

उदयन - आपने शायद तुर्की उपन्यासकार ओरहान पामुक का लघुचित्रों और चित्रकारों पर आधारित उपन्यास 'माय नेम इज़ रेड' पढ़ा होगा, वहाँ भी चित्रकारों के घराने हैं और वहाँ भी वेनिस के चित्रों के प्रभाव की बात हो रही है। पण्डित सेऊ के घराने से तुर्की के घरानों का फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि वहाँ हत्याएँ हो रही हैं और मानकू केवल बहस कर रहा है।

गोस्वामी - बिल्कुल। प्रभावों को लेकर बहसें होती रही हैं।

उदयन – भारत से इतने सशक्त लघुचित्र अचानक विलुप्त कैसे हो गये। एक बात तो यह है कि कोई भी कला कमोबेश तब तक बची रहती है जब तक उसका सिद्धान्त जीवन्त रहता है। जैसे आधुनिक चित्रकला अपने सिद्धान्त पर खड़ी है, अगर उसे हटा लिया जाये, वह ढह जाएगी। मेरी जिज्ञासा यह है कि इतनी बड़ी परम्परा, इतनी सशक्त चित्रकारी उन्नीसवीं सदी के अन्त तक लगभग समाप्त कैसे हो गयी ? अगर वह रही भी तो उसे हमारे आधुनिक चित्रकार अधिक से अधिक अजूबा मानते रहे। संगीत और नृत्य में हमारी अपनी परम्पराएँ चलती रहीं। चित्रकला में क्या हुआ ?

गोस्वामी – मैं यह समझता हूँ कि संगीत और नृत्य इसलिए बच गये क्योंकि अंग्रेज़ों को न उनकी कोई समझ थी, न उनमें दिलचस्पी। अंग्रेज़ों के कई यात्रा वृत्तान्तों में यह मिलता है कि जैसे ही सभा में संगीत शुरू होता था, इनकी जान निकल जाती थी कि कहाँ फँस गये, कहाँ बैठना पड़ा। इन कलारूपों में उनका कोई दखल नहीं था लेकिन चित्रकला ऐसी चीज़ थी, जिसका वे इस्तेमाल कर सकते थे। सारी कम्पनी पेण्टिंग हिन्दुस्तानी चित्रकारों ने बनायी है और उन्होंने बहुत अच्छा काम किया है पर अपने पारम्परिक कथ्य से दूर जाते हुए। इन चित्रकारों की दृष्टि इतनी पैनी थी कि वे मानो उड़ती चिड़िया के पर गिन लेते हों। अंग्रेज़ों ने इस तीक्ष्ण दृष्टि का अपने वैज्ञानिक अध्ययनों में इस्तेमाल किया। उस दौर में हमारे पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों की ऐसी खूबसूरत तस्वीरें बनी हैं कि हैरत होती है। जो मंसूर की वनस्पति और पशु जगत को चित्रित करने की परम्परा थी, क़रीब उसी टक्कर के ये चित्र बने हैं। चित्रकारों का पोषण करने वाले राजा-महाराजाओं की ताकत क़रीब-क़रीब खत्म हो गयी थी। वह ताकत अंग्रेज़ों के पास आ गयी थी। इनका उद्देश्य इन चित्रकारों का इस्तेमाल करना भर था। कुछ को इन्होंने पी.डब्ल्यू. डी. विभाग में ड्राफ्ट्स मेन की तरह रख लिया और उनसे कहा कि ये नक़्शे बनाओ, वो नक़्शे बनाओ। जब १८५० के आसपास फ़ोटोग्राफ़ी आ गयी, बहुत कुछ खत्म हो गया। हालाँकि चित्रकला के होने का तर्क यह नहीं है कि जो यथार्थ सामने है, उसका अनुकरण किया जाए पर आम आदमी के दिमाग में यही बैठा हुआ है। आज भी लोग चित्रकला को फोटो कहते हैं। मैं फिर कहूँगा कि कम्पनी चित्रकारी अद्भुत हुई है पर उसकी विषयवस्तु बदल गयी क्योंकि अधिकतर अंग्रेज़ों को उनमें कला की तरह कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने कलाकारों का इस्तेमाल दस्तावेज़ तैयार करने (डाक्यूमेण्टेशन) में किया। मूर की जो हिन्दू पेन्थियॉन (हिन्दू देवी-देवता) वाली किताब है, उसमें इन चित्रकारों से जो चित्र बनवाये गये थे, वे एकदम रूखे हैं, उसमें यह दिखाया गया है कि ये गंगा है, ये यमुना है, ये विष्णु हैं, ये शिव हैं आदि। इन सबको उन चित्रकारों ने बड़े विस्तार से चित्रित किया है, लेकिन वे केवल दस्तावेज़ हैं और कुछ नहीं। दक्षिण भारत में सिर्फ़ एक जगह लघु चित्र बचे, मैसूर में। मेरी एक किताब 'डोमेन्स ऑफ वण्डर' में मैंने मैसूर के कुछ चित्रों को प्रकाशित किया है। वहाँ के चित्रकार अत्यन्त प्रतिभावान थे। उनमें से जिस चित्र में नरकासुर विष्णु पर हमला कर रहा है, वह बड़ा खूबसूरत चित्र है। उसी समय की एक और तस्वीर है, 'खाण्डवदाह' की, जिसमें पाण्डव इन्द्रप्रस्थ बनाने के लिए खाण्डव वन जला रहे हैं। ऊपर से इन्द्र बारिश कर देते हैं। आग बुझ जाती है पर इन्हें तो इन्द्रप्रस्थ बनाना है इसलिए अर्जुन कहता है कि मैं इन्द्र का इलाज करता हूँ। वो ढेरों तीर आकाश में छोड़ता है और

मैसूर के चित्रकार ने उन तीरों का ऐसा खूबसूरत चंदोबा बनाया है कि बारिश नीचे नहीं आ पाती। वह देखने वाली तस्वीर हैं। वह बहुत बाद में बनी है, लगभग १८२५ में।

उदयन - क्या वहाँ तब तक भी राजाश्रय उपलब्ध था ?

गोस्वामी - हाँ। इन तस्वीरों के बनने में अंग्रेज़ों का दखल नहीं था हालाँकि वे लोग अंग्रेज़ों के विषय में जानते थे, वहाँ के समुद्र में ब्रिटेन के झण्डे लगे जहाज़ चला करते थे। लेकिन चित्रकला में उनकी कोई दखल नहीं थी। वहाँ, मैसूर में, बहुत तस्वीरें बनीं। क्योंकि वहाँ चित्रकारों के लिए पोषण था। राजा की दिलचस्पी भी इनमें बनी रही। उत्तर भारत में सब खत्म हो गया। वहाँ कभी वारेन हैस्टिंग्स की पत्नि अपनी तस्वीर बनवा रही हैं, कभी कोई और। कुछ विदेशी यहाँ आये हुए थे जैसे स्विस वास्तुकार पोलिए ने भी अनेक चित्र बनवाये और वह उनका खज़ाना लेकर अपने देश लौटा। मेरे ख़याल से उत्तर भारत में राजाश्रय के अभाव में यह कला समाप्त हुई। अंग्रेज़ों ने इसे जानबूझकर खत्म नहीं किया। वे यह मानते थे कि ये लोग अच्छा काम करते हैं और उन्हें भारत विषयक दस्तावेज़ तैयार करवाने थे, उन्होंने इन चित्रकारों को इसमें लगाया जैसे भाषा विषयक सर्वेक्षण हो रहे हैं या वानस्पतिक या जैव सर्वेक्षण इन सबमें इन चित्रकारों का इस्तेमाल किया गया। एक और कारण मुझे लगता है कि बाद के वर्षों में निष्ठा में कमी आयी। जब मानकू जैसे चितेरे 'भागवत' के चित्र बनाते थे, वे यह नहीं सोचते थे कि वे ये चित्र कल्पना से बना रहे हैं, उन्हें लगता था कि वैसा सचमुच हुआ है। चित्रकारों का यह विश्वास धीरे-धीरे कम हो गया। जैसा कि मैं कल के अपने व्याख्यान में कह रहा था कि आज के लघुचित्र बनाने वाले चित्रकारों में कौशल अवश्य है पर भीतर कुछ नहीं है।

उदयन - इन चित्रों के विषय में समाज में शिक्षा का अभाव भी रहा होगा और यह भी इस कला के समाप्त होने का कारण बना होगा। आज कोई कलाकार अपने लघुचित्रों की प्रदर्शनी किसी कला दीर्घा में लगाए तो आधुनिक दर्शकों को वह अटपटी जान पड़ेगी।

गोस्वामी - एक कारण यह भी है कि पिछली शताब्दी में परिवर्तन की गति बहुत तेज़ हो गयी है। जितने परिवर्तन शताब्दियों में हुआ करते थे, वे एक शताब्दी में ही हो गये।

उदयन - क्या आपको लगता है कि चित्रकला की यह अद्‌भुत परम्परा दोबारा गतिशील हो पाएगी?

गोस्वामी - मुझे नहीं लगता। उसकी तकनीकि दोबारा जीवन्त हो सकती है, कुछ लोग प्रयास कर भी रहे हैं लेकिन वह चित्रकला दोबारा जीवन्त नहीं हो पाएगी। हमारी आँखें बहुत भ्रष्ट हो चुकी हैं। विशेषकर नये यन्त्रों से, चाहे वह केमरा हो या इसी तरह का कोई और यन्त्र। आम आदमी के देखने का ढंग बदल गया है। हम सब कुछ उचटती निगाह से देखते हैं। कुछ ऐसा भाव रहता है कि 'चलो भई, आगे चलो।' हम हड़बड़ाहट में ज़िन्दगी जी रहे हैं। इस तरह की ज़िन्दगी में धैर्य और सोच वाले काम की जगह सिकुड़ गयी है। संगीत को ही देख लीजिए और वहाँ भी गाँव तक चले जाइए, हर जगह चालू काम हो रहा है। आज जिन गानों के लिए लोग जान देने को तैयार हैं, दो-तीन साल बाद लोगों को वे याद तक नहीं रहेंगे।

मुझे नहीं लगता कि यह फिर से शुरु हो सकेगी। कुछ कलाकारों ने पाकिस्तान में इसे दूसरे रूप

में शुरु करने की कोशिश की है, वह कोशिश कुछ दिलचस्प है लेकिन उसमें गहरायी नहीं है। सारा कुछ सतही है पर वह दिलचस्प है। उसमें कई बार व्यंग्य जैसी कुछ विषयवस्तु मिल जाएगी।

उदयन- हमारे यहाँ यह शायद कहीं नहीं सिखायी जाती?

गोस्वामी- सेवा से निवृत्ति होने के बाद मैंने विज़िटिंग प्रोफ़ेसर की तरह पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में चार-पाँच साल काम किया। वहाँ के कुलपति को बहुत समय लगा मुझे राज़ी करने में कि मैं वहाँ आकर पढ़ाऊँ। मैनें उनसे कहा सारी ज़िन्दगी पढ़ा चुका, अब बहुत हुआ। जब वे तीसरी-चौथी बार मेरे पास आये, वे बोले, 'आप किस तरह आएंगे, क्या मैं आपके लिए अपना घर खाली कर दूँ, आप वहाँ आकर रहिए और हमारे बच्चों को पढ़ाईये।' जब कोई कुलपति आपसे इस तरह कहता है, मना करना मुश्किल हो जाता है। मैंने उनसे कहा, 'मै यहाँ (चण्ड़ीगढ़) से ही हफ़्ते में दो-तीन बार वहाँ आ जाया करुँगा।' पटियाला चण्ड़ीगढ़ से बहुत दूर है भी नहीं। उन्होंने मुझसे पूछा कि हम विश्वविद्यालय में क्या नया कर सकते हैं? मैंने कहा, 'हमें लघुचित्र बनाने को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए,' वह भारत का शायद अकेला विश्वविद्यालय है जहाँ यह हुआ।

उदयन- क्या वहाँ पारम्परिक चित्रकार आकर सिखाते थे?

गोस्वामी- मैंने जयपुर के एक कलाकार को पटियाला आने के लिए राज़ी कर लिया था। उन्होंने वहाँ सिखाना शुरु किया था। दूसरी चित्र शैली सीखने की जगह आधे से अधिक छात्र उस पाठ्यक्रम में शामिल हुए थे। वे बहुत अच्छा सिखाते थे। अब क्या स्थिति है, मैं नहीं जानता, मुझे वह विश्वविद्यालय छोड़े कई बरस हो गये। वहाँ से कुछ बच्चे अच्छे निकले, वे अभी भी लघुचित्र कला शैली में काम कर रहे हैं।

उदयन- क्या इस चित्र परम्परा पर लिखने वाले कुछ ऐसे आलोचक या इतिहासकार हैं, जिनकी इस परम्परा में आपके जैसी गहरी रुचि और किसी हद तक समझ हो? आप जिस तरह इन चित्रों को रेशा-रेशा देख पाते हैं, कुछ वैसा। मैं आपकी पुस्तक पढ़ते समय हमेशा ही पहले देर तक चित्र देखता हूँ फिर उस चित्र पर आपकी टीका पढ़ता हूँ। मुझे हर बार आश्चर्य होता है कि मैंने जो देखा आपने उससे कहीं अधिक देखा होता है।

गोस्वामी- मैं आपको इस प्रश्न का जो जवाब देने वाला हूँ उसमें कुछ अवसाद है और कुछ अहंकार। मुझे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं इस समय देखता। इसके इतिहास का अध्ययन करने वाले तो हैं पर ऐसे लोग बहुत कम है, जो इनमें प्रवेश करना चाहते हैं। कुछ प्रतिभाशाली लोग हैं जैसे कविता सिंह, नचिकेत चंचानी अगर इस क्षेत्र में लगन से काम करें, यह क्षेत्र जिसे हम Visual Entry का क्षेत्र कह सकते हैं तो बात काफ़ी आगे जा सकती है।

उदयन- आपको काम करने के लिए कोई अनुदान नहीं मिला था, आपने सारा काम अपनी रुचि से किया।

गोस्वामी– हाँ, मैंने पढ़ाया अगर उसको अनुदान माना जाए तो बात अलग है।

उदयन– वह नौकरी थी...

गोस्वामी– हाँ, नौकरी थी और मैं पीएच. डी. कर रहा था। जैसा अनुदान विदेशों में मिलता है कि आपको एक बड़ी रकम दे दी कि करो अपना काम, ऐसा कुछ नहीं हुआ।

उदयन– आपने अपना शोध किस तरह किया था, क्या आपको काँगड़ा चित्रकारों की खोज में अलग-अलग जगहों पर जाने के लिए आपके शोध निर्देशक ने कहा था?

गोस्वामी– सही मानों में मेरे शोध निर्देशक कोई नहीं थे जो थे अगर कोई उनसे मेरे बारे में पूछता कि वह कहाँ है तो वे कहते कहीं बैठा पढ़ रहा होगा, कुछ तस्वीरें देख रहा होगा। मेरे शोध निर्देशक प्रो. गुप्ता सरल रुप से कहा था कि मैं तुम्हारे शोध में कुछ नहीं करुँगा। यह नहीं कि मुझे तुम्हारे काम में दिलचस्पी नहीं है, बात यह है कि मुझे इसकी कोई समझ नहीं है, तुम अपना काम करते रहो, जब तुम मेरे पास थिसिस लेकर आओगे और मुझे ठीक लगेगा तो मैं दस्तखत कर दूँगा।

उदयन– लघुचित्रों के अन्य विशेषज्ञ डब्ल्यू. जी. आर्चर से आपका किस तरह का व्यक्तिगत सम्बन्ध रहा है?

गोस्वामी– मैं उनसे मिलता था, मैं उनके घर पर रहा हूँ, वे मेरे घर पर रहे हैं। हमारी उनसे बड़ी अच्छी दोस्ती थी। उससे मुझे और आर्चर को कुछ फ़ायदा भी था। उनसे अभिलेख पढ़ते नहीं बनता था।

उदयन– आपने उनके लिए कुछ अभिलेख पढ़े थे....

गोस्वामी– उनको हिन्दुस्तान की कोई जुबान नहीं आती थी। बोलनी भी नहीं आती थीं, पढ़नी भी। बड़ी कड़ी सोच वाले आदमी थे। जब मैंने एक बार रायकृष्णदास से आर्चर का ज़िक्र किया, उन्होने कहा, 'अरे छोड़ो, वो आदमी अच्छा है, पर है साम्राज्यवादी।' आर्चर मेरी बहुत मदद किया करते थे। उनका कवि का हृदय था। वे लिखते बहुत अच्छा थे। मेरी बहुत इज्ज़त करते थे। तब मैं इस क्षेत्र में कुछ नहीं था, इक तरह का नौसिखिया था, जो अपने आप चल रहा था। आर्चर की मेरे पास अनेक चिट्ठियाँ हैं, उनमें वे अभिलेख लिखकर भेजते थे और उनके बारे में विस्तार से पूछते थे। वे सीखना बहुत चाहते थे। वे एक-एक लफ़्ज का शाब्दिक अर्थ जानना चाहते थे और उससे जुड़ा हुआ सबकुछ।

उदयन– और यह शायद लन्दन में शुरु हुआ था, जहाँ आपने एक लघुचित्र में टाकरी में लिखा अभिलेख, उनके लिए पढ़ा था।

गोस्वामी– वह नैनसुख के चित्र का था। मैं उनसे लन्दन मिलने नहीं गया था। मैं जर्मनी में पढ़ा रहा था। छुट्टियाँ हुई तो मैंने कहा चलो लन्दन चलते हैं। मैंने एक जगह VDA म्यूज़ियम में डब्ल्यू. जी. ऑर्चर का नाम पढ़ा, मैंने सोचा ये मेरे परीक्षक रहे हैं, मैंने दस्तक दी और मैं अन्दर चला गया। इस तरह दोस्ती शुरु हो गयी।

उदयन- ऐसा कुछ नहीं था कि आपने उनसे मिलने का समय लिया हो फिर जाकर मिले हों?

गोस्वामी- नहीं, नहीं। मैंने वहाँ देखा कि लिखा है, 'कीपर ऑफ इण्डियन-पेण्टिंग,' मैंने दस्तक दी और अन्दर चला गया। उन्होंने कहा, 'शाम को घर पर आओ', और हमारी बात शुरु हो गयी। हमारी बहुत दोस्ती हो गयी। वे अत्यन्त मज़ाकिया स्वभाव के थे। बाद में हमारे बीच हुए विवाद में दोष किसी का नहीं था। वे बूढ़े हो रहे थे। वे उन दिनो अपनी सबसे बड़ी कृति (मेग्नम ओपस) पर काम कर रहे थे। वह काम दो ज़िल्दों में छपा, जो बेहतरीन है। वे बिल्कुल लचीले नहीं थे, उनका कार्य अत्यन्त व्यवस्थित था। हर चीज़ अलग-अलग फाईलों में अच्छे से जमी हुई थी। मुझसे बिल्कुल उल्टा। मैंने उनसे कहा कि वे अपनी किताब के अध्यायों के शीर्षक बदल दें। 'गुलेर चित्रकला' कहने की बजाय 'गुलेर में चित्रकला' यह कहा जाए। 'बसहोली चित्रकला' कहने की जगह 'बसहोली में चित्रकला' कहा जाए। वे इस पर राज़ी हो गये। यही एकमात्र सलाह थी, जिस पर वे राज़ी हुए। १९६८ में मैंने लघुचित्रों पर अपना अध्ययन 'फेमिली एज़ द बेसिस ऑफ़ स्टाईल' प्रकाशित कर दिया था। आर्चर उससे बहुत नाराज़ थे। क्योंकि वह उस सबसे उलट था, जो वे कर रहे थे। मैंने उस अध्ययन का एक प्रारूप उन्हें पढ़ने भेजा। मेरी उनसे किसी किस्म की रंजिश नहीं थी। मैंने अपने उस निबन्ध के सम्भवतः पहले या दूसरे पेराग्राफ में यह लिखा था कि अगर आप किसी एक इलाके से दूसरी जगह जाते हैं तो शैली बदल नहीं जाती, या ऐसा ही कुछ। उन्होंने मुझे लिखा कि आपका तो काम मूल्यवान है पर अगर मैं अपने निबन्ध से उसके पहले और दूसरे पेरेग्राफ हटा दूँ, उन्हें अच्छा लगेगा।

उदयन- उन्हें शायद यह लगा हो कि आप उन पर व्यंग्य कर रहे है?

गोस्वामी- मैं उनके जवाब से यह समझ गया कि वे मरे काम से परेशान हैं। वे समझ गये कि मेरा काम उनसे उलटी दिशा में जा रहा हैं। मैंने उन्हे लिखा 'आर्चर भाई (मैं उन्हें यही कहता था) मुझे लगता है, आप शायद मेरे काम से खुश नहीं हैं। हमारी दोस्ती की खातिर अगर आप चाहते हैं, मैं यह प्रकाशित ही नहीं करुँगा। मैंने लगभग इन्हीं शब्दों में लिखा था। आपको अंग्रेज़ों की एक सतही किस्म की न्यायबुद्धि का पता ही होगा। आर्चर का जवाब आया, 'नही ऐसा मत करो, इसे प्रकाशित करो और हम असहमत बने रहते हैं।' उन्होंने इतना ही लिखा और तब मैंने अपना अध्ययन प्रकाशित किया, 'शैली का आधार घराने। मुल्कराज आनन्द उन दिनों 'मार्ग' के सम्पादक थे और हमारे विश्वविद्यालय में पढ़ा रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'मैं छापता हूँ।' दिलचस्प बात ये है कि 'मार्ग' के उस अंक में केवल मेरा निबन्ध ही था और कुछ भी नहीं था। मुल्कराज आनन्द ने उसकी अपनी तरह की भूमिका लिखी है। उसके प्रकाशन के बाद आर्चर और मेरे बीच इतनी रंजिश हो गयी कि सारा मज़ा जाता रहा। कुछ बरस बाद 'एले काऊण्टी संग्रहालय' में एक सम्मेलन हुआ, उसमें बहुत लोग थे। प्रताप (पाल) ने उसे आयोजित किया था। उसमें मैं भी था। तब तक मैं किसी हद तक स्थापित हो चुका था। उस सम्मेलन में आर्चर मेरे प्रति बेहद शुष्क रहे। वे मेरे साथ दिखना भी नहीं चाहते थे। आर्चर की बीबी बहुत भली औरत थी, वे शान्ति स्थापक थीं। उन्होंने मुझसे कहा कि बिल को बहुत दुःख है कि आपकी दोस्ती टूट गयी। क्या हम एक बैठक रखें जिसमें आप दोनों बात कर लें। फिर हम मिले।

संग्रहालय से अलग किसी जगह पर। बैठकर बातें हुई, दरारों को भरने की कोशिश हुई। संयोगवश उसके कुछ ही दिनों बाद वह चल बसे, ऐसा कहा जाता है कि खुदकुशी थी।

उदयन- यह आपके निबन्ध के छपने के बहुत बाद की बात रही होगी?

गोस्वामी- हाँ, उसके बहुत बाद की।

उदयन- क्या उन्होंने आपके अध्ययन पर कोई प्रतिक्रिया प्रकाशित की थी?

गोस्वामी- उनकी जो किताब उन दिनों चल रही थी, उसमें उन्होंने मेरे अध्ययन का हवाला दिया, लेकिन उसका प्रतिवाद किया। उन्होंने मेरी खोज को चुनौती दी, ऐसा उन्होंने अपनी किताब में जगह-जगह पर किया। उस किताब में हर दूसरे पन्ने पर मेरा नाम है। मेरा या करुणा का। करुणा के शोध का विषय था, 'लघुचित्रों पर वैष्णव दृष्टि का प्रभाव।' करुणा के शोध में तिलक के निशानों पर एक अध्याय था। आर्चर ने अपनी पुस्तक में उसका बहुत इस्तेमाल किया। वे करुणा का नाम जगह-जगह लेते हैं। उन्होंने मेरे द्वारा खोजे गये तथ्यों का उपयोग अवश्य किया पर मेरी समझ से वे कभी मुझसे सहमत नहीं हुए।

उदयन- क्या आपके दिमाग में चित्रकला के घरानों का विचार संगीत से आया था?

गोस्वामी- हाँ। मेरी अपने मित्रों के साथ edited एक किताब है, 'मास्टर्स ऑफ इण्डियन पेंण्टिग'। उसमें क़रीब चालीस निबन्ध चित्रकारों पर हैं। उसमें मैंने एक निबन्ध लिखा था, जिसकी विलियम डैलरिम्पल बहुत तारीफ़ करते हैं। उस नबन्ध में मैंने लिखा था कि मुगल और राजपूत चित्रकला में ज़मीन और आसमान का फ़र्क इस तरह है कि इन दोनों के काम करने का ढ़ंग अलग है। मुगल कार्यशालाएँ व्यवस्थित थी, वे एक व्यक्ति 'उस्ताद' के नियन्त्रण में होती थीं। राजपूत लघुचित्रों की कार्यशालाएँ घरों में होती थी, इसलिए उनमें बातचीत की सम्भावना अधिक होती थी। उनका वातावरण ही बिल्कुल अलग था। मैं यह अभी भी मानता हूँ कि आर्चर का दिमाग़ यूरोप में रेनेसाँ काल में अटका हुआ था, जहाँ चित्रों को वैनिस के चित्र, पारमा के चित्र, फ्लारेन्स के चित्र नाम से जाना जाता था। हरेक जगह पर अपनी अपनी शैली है। पर शैली फैल भी सकती है, एक जगह से दूसरी जगह भी जा सकती है। दो-तीन पीढ़ियों के बाद शैलियों का बदलना भी शुरु हो जाता हैं। माइलो बीच ने एक बार एक दिन की गोष्ठी न्यूयार्क में रखी थी। उस वक्त आर्चर थे नहीं और मुझे बुलाया नहीं था। पूरे दिन कुछ भारतीय और अधिकतर विदेशी क्षेत्र के अध्येताओं के बीच बहस होती रही, इस बात पर कि इन चित्रों को देखने को दो ढंग है, एक आर्चर का और एक मेरा।

उदयन- घरानेदारी की बात समझना भारतीयों के लिए आसान है, अंग्रेज़ों के लिए कठिन होगा?

गोस्वामी- उनको वह समझ में नहीं आता।

उदयन- हमारे संगीत के घराने भी अधिकतर बहुत पास-पास की जगहों के ही हैं पर हर जगह का संगीत अलग है...

गोस्वामी- यह सामाजिक संरचना की बात भी है। हमारे अदब बिल्कुल मुख़्तलिफ़ हैं। मेरी उम्र अस्सी से

ऊपर है। मेरे एक उस्ताद मिले, जो मुझे कभी थोड़ा बहुत हिन्दी पढ़ाया करते थे। वे बहुत बुजुर्ग थे, वे मुझे बोले, 'अरे यार! तू.....' उनकी आवाज़ बिल्कुल बारीक सी हो गयी है, लेकिन मेरी सहज प्रवृत्ति यह थी कि मैंने उठकर उनके पाँव छुए, यह बात अलग है कि उन्होंने मुझे कुछ सिखाया वगैरह नहीं था। आप अपने बुजुर्ग से असहमत हो सकते हैं पर उनकी इज्ज़त करते हैं। वहाँ यह बिल्कुल नहीं है। घरानों में जो उस्ताद के लिए इज्ज़त है, उसका कोई बदल नहीं है। यह जानने में कि यह उचित पात्र है या नहीं, सालों साल इम्तहान लिया जाता था। हमारे चित्रकारों से ऐसी कई कहानियाँ सुनते हैं। मुहम्मदी नाम का मण्डी का चित्रकार था, वह सजनू चितेरा का चेला था। कहानी सुनते हैं कि सजनू पहाड़ पर मकान बना रहा था, वह मुहम्मदी से साल भर तक पहाड़ के नीचे से रेत मँगवाता रहा। इस दौरान उसने कुछ नहीं सिखाया। इस दौरान मुहम्मदी दरिया किनारे से रेत उठाकर पहाड़ तक ले जाता रहा। सजनू उसकी लगन देखना चाहता था कि यह अपने उस्ताद या गुरु को मानता है कि नहीं। चित्रकला और संगीत में आपको ऐसी बीसियों कहानियाँ मिल जाएँगी।

उदयन– हमारे उस्ताद मणि कौल से हम जीवन भर बातें करते रहे और उनसे तरह-तरह की चीज़ें सीखते भी रहे पर अपने जीवन के लगभग अन्त में उन्होंने मुझसे अपनी एक फ़िल्म की पटकथा लिखने को कहा था।

आपने काँगड़ा चित्रशैली के सामाजिक आधार पर किये अपने शोध के दौरान ऐसा क्या पाया, जिससे आप अचम्भित हो गये हों? मैं यह इसलिए पूछ रहा हूँ कि आपने भी जो इतिहास पढ़ा होगा, वह अँग्रेज़ों की दृष्टि से प्रेरित रहा होगा, जिसका हमारी सभ्यता की वास्तविकता से गहरा सम्बन्ध नहीं रहा हैं। बहुतों की ज़िन्दगी में ऐसे अवसर आये हैं, जब उन्होंने भारतीय सभ्यता की कोई ऐसी सच्चाई देखी जो उन्हें अपनी औपनिवेशिक शिक्षा के कारण नहीं दिख सकी थी और जिसने उनके जीवन की दिशा बदल दी।

गोस्वामी– मैं कभी गाँव में नहीं रहा। मैं जब पहली बार पहाड़ के गाँवों में अपने शोध के सिलसिले में गया, मैंने पाया कि वहाँ सादगी है और बातचीत का भाईचारा है। वैसा शहरों में नहीं मिलता। इससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। मुझे लगा कि ग्रामीणों की गहरी बात को सादगी से कहने की कुव्वत सीखने वाली चीज़ है, यह देखकर मैं चौंका कि ऐसे लोग भी होते हैं। मीर साहब का वो शेर है नः

पैदा कहाँ हैं ऐसे परा गन्द़ा लोग
अफसोस तुमको मीर से सोहबत नहीं रहीं

इस तरह की सोहबत ने मुझ पर गहरा असर डाला। वहाँ मुझे जो दूसरी चीज़ नज़र आयी, वो थी निष्ठा। वह वहाँ बहुत गहरी है। वह शहरों में नहीं है। शायद कुछ परिवारों में बची हो। वहाँ हर चीज़ निष्ठा से ताल्लुक रखती है। हम चण्ड़ीगढ़ में रहते हैं, अगर वहाँ हमें कोई कर्मकाण्डी पण्डित ढूँढ़ना हो तो या तो वह उत्तराखण्ड से मिलेगा या पहाड़ों में। वे पूरा कर्मकाण्ड पूरी निष्ठा से करते हैं और यह मैं आज की बात कर रहा हूँ। मैं तो पचास-साठ साल पहले उस इलाके में घूम रहा था। मुझे यह भी लगा कि चित्रकला और लोगों की निष्ठा के बीच बहुत गहरा

ताल्लुक है। वह ताल्लुक वास्तविक है, सरसरी नहीं है। यह बात मेरे दिमाग में बैठ गयी। कला-ऐतिहासिक दृष्टि से मुझे नहीं लगता मुझे वहाँ कोई खास दृष्टि मिली हो। मेरा वो शोधकार्य लगभग छः सौ पन्ने का था, उसे मैंने सोलह दिन में लिखा था।

उदयन- वह सब आपने हाथ से लिखा था?

गोस्वामी- नहीं। मैं बोलकर लिखवाता था। मैंने अपने पिता के स्टेनो को शाम को काम पर रख लिया था। मैं उसे बोलता था और वो शार्ट हेण्ड में लिखता था। वो अगले दिन टाइप करके मुझे दे देता था।

उदयन- उतनी तेज़ी से शायद आपने कभी न लिखा हो?

गोस्वामी- नहीं। सिर्फ़ नल-दमयन्ती की किताब को जल्दी लिखा था पर तब उससे जुड़ी सारी सामग्री व्यवस्थित रूप में मेरे पास थी। अब मैं खुद लिखता हूँ लेकिन पहले मैं जो भीतर है, उसे पन्नों पर निकालता हूँ। मैं यह तय करता हूँ कि आज इतने लफ़्ज लिखने हैं खासकर तब जब किताब एक खास समय पर खत्म करनी हो। मानकू की किताब के बारे में मैंने तय किया हुआ है कि इसको मुझे अगस्त के अन्त तक खत्म करना है। जो निबन्ध है, उसे जुलाई के अन्त तक और चित्रों पर टीका अगस्त के अन्त तक पूरी लिख लेना है।

उदयन- निबन्ध कितना विस्तृत होने वाला है?

गोस्वामी- क़रीब चालीस हज़ार शब्दों का। यह नैनसुख पर लिखी किताब के निबन्ध से थोड़ा छोटा है। इसका पहला भाग, जो मानकू के बारे में है, वह नैनसुख वाले निबन्ध जितना ही है पर इसके बाद का हिस्सा जहाँ अध्येताओं से शास्त्रार्थ हो रहा है, छोटा है।

उदयन- आपकी एबरहार्ड फ़िशर से बहुत लम्बी दोस्ती रही है, उसकी शुरुआत कैसे हुई?

गोस्वामी- मैं जर्मनी के हाईडलबर्ग विश्वविद्यालय में पढ़ा रहा था। वहाँ मैंने नौ साल पढ़ाया है। इकट्ठा नहीं पढ़ाता था। एक सेमेस्टर यहाँ पढ़ाता था, एक वहाँ पढ़ाता था। सन् १९७३ से १९८१ तक। हाईडलबर्ग में मेरी जो सहयोगी थीं, दाला पिकोला, उन्होंने कहा, क्या मैं कहीं और व्याख्यान देना चाहूँगा। मैं उस समय वहाँ किसी को जानता नहीं था। इसके पहले १९६२-६३ में मैं यूरोप गया था, कील विश्वविद्यालय में पढ़ाने तब मैं वहाँ इतिहास पढ़ाया करता था। मैंने वहाँ गाँधी जी पर एक सेमेस्टर पढ़ाया था। तरह-तरह के पापड़ बेले हैं। दाला पिकोला ने पूछा, 'क्या आप ज़्यूरिख़ जाएँगे।' मैं इससे पहले कभी ज़्यूरिख़ नहीं गया था। कील जाते समय वहाँ से गुज़रा भर था। उसने कहा कि मेरी वहाँ के संग्रहालय वालों से पहचान है। मैं १९७३ में वहाँ गया। एबरहार्ड संग्रहालय में तभी आये ही थे। वे तब युवा थे। उनके पिता का शोध अफ़्रीका की पारिवारिक परम्पराओं पर था। वह काम शिल्प की शैली पर था कि वह किस तरह पिता से पुत्र और फिर उससे उसके पुत्र तक जाती है। एबरहार्ड ने अपने पिता की उनके काम में सहायता की थी। उसने मेरा 'मार्ग' मे प्रकाशित निबन्ध पढ़ा था। वह उससे बहुत प्रभावित था। मैं वहाँ सिर्फ़ दो दिन रहा। उसने मुझे अपने घर बुलाया और हमने महसूस किया किया कि हमारे पास साझा करने को बहुत-सी चीज़ें हैं। उसके बाद से मैं हर साल ज़्यूरिख़ के संग्रहालय में व्याख्यान देने

जाने लगा। वह संग्रहालय में था पर तब उसे चित्रकला में कोई विशेष रुचि नहीं थी। उसने मुझे कहा कि मुझे अपना अकेला विद्यार्थी मानकर पढ़ाओ। वह बहुत अच्छा विद्यार्थी है। उसने बहुत जल्दी समझा। अब वह इस विषय में बहुत जानता है। वह यह मानता है कि उसने मुझसे बहुत सीखा है। फिर हमारे पारिवारिक सम्बन्ध बन गये। उसने भारत से ही दो बच्चे गोद लिये। उसने राष्ट्रीय डिजाईन संस्थान (एन. आई. डी.) अहमदाबाद में रहकर किताब लिखी है और वहीं से उसने दो बच्चियाँ गोद ली हैं। उसकी बड़ी बेटी की गॉड मदर संयुक्ता पाणिग्रही थीं, दूसरी का गॉड फादर मैं हूँ। इस तरह की दोस्ती के बाद हमने बहुत चित्रों के विश्लेषण का काम शुरु किया।

अब उसके पास इन चित्रों के लिए पैनी आँख है।

उदयन – ज़्यूरिख़ के संग्रहालय में मिनिएचर चित्रों का जो संग्रह हुआ, क्या वह आप दोनों के मिलने के बाद हुआ ?

गोस्वामी – नहीं। वहाँ कुछ थोड़ा-बहुत पहले से था। फिर वहाँ एलिस बोनर का संग्रह आ गया। फिर वे चित्र खरीदने लगे। उसका ससुराल पक्ष फोल्कार्ट परिवार से है। उनका भारत में बड़ा व्यापार था। यह बहुत पहले की बात है। उनके पास भी कुछ तस्वीरें थीं। वे ज़्यादा नहीं थी पर उनकी रुचि थी। उसके ससुर अद्‌भुत व्यक्ति थे, मुझे बहुत पसन्द थे। वे बेहद धनाड्य लोग थे। शायद स्वीटज़रलैण्ड का सबसे अधिक सम्पन्न परिवार। उस परिवार का कपड़ा उद्योग था। इनका काम मशीनों में भी था, फोल्कॉट जिसे वोल्टाज़ कहा जाता है, का टाटा के साथ सम्बन्ध था। उनके साथ मेरा सम्बन्ध बना रहा और अब तक है। अब मेरा बाहर आना-जाना कम हो गया है और एबरहार्ड भी सेवा से निवृत्त हो गये हैं। हालाँकि उन्होंने उसे वरीष्ठ निदेशक की उपाधि दी हुई है लेकिन अब संग्रहालय को लेकर उनकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। उनकी वहाँ बहुत इज्ज़त है।

उदयन – क्या अधिकतर लघुचित्र भारत से बाहर हैं ?

गोस्वामी – यह तो मैं नहीं कहूँगा। मेरा दुःख यह है कि सबसे अच्छे मुगल मिनिएचर चित्र भारत में नहीं है। भारत में सिर्फ़ दो या तीन मुग़ल पाण्डुलिपियाँ ही पूरी हैं। पश्चिम में पूरी श्रृंखलाएँ या पाण्डुलिपियाँ या जिल्द में पाण्डुलिपियाँ हैं। उनकी दिलचस्पी भारतीय चित्रों में मुगल चित्रों से शुरू हुई। राजपूत चित्रों पर तो आनन्द कुमारस्वामी का काम है। राजपूत चित्रों को तब तक कोई देखता भी नहीं था। वे तस्वीरें चार-चार आने में बिका करती थी। उन्होंने बहुत इकट्‌ठा किया। चार्ल्स प्रथम के आर्च बिशप के पास राजपूत चित्रों की रागमाला का एक सेट था, सत्रहवीं शताब्दी में रेम्ब्राँ के पास भारतीय लघुचित्र थे, उन्होंने उनकी नकल भी की थी।

उदयन – क्या इसके साक्ष्य उपलब्ध हैं ?

गोस्वामी – हाँ। प्रकाशित भी हैं। यह लिखा हुआ मिलता है कि रेम्ब्राँ की बुनियादी दिलचस्पी यह थी कि पूर्व के लोग कैसे दिखायी देते हैं। वह बायबिल से सम्बन्धित चित्र बनाता था और उनमें इनकी ज़रूरत होती थी। वो कभी इस ओर आया नहीं था। उसके पास कुछ मुगल तस्वीरें आयीं, कैसे आयीं, कहा नहीं जा सकता, उसने उनके खाके बनाये। वे अद्‌भुत खाके हैं। उनमें बैठे हुए

शाहजहाँ, चार सूफ़ी दरवेशों, औरंगज़ेब आदि के खाके हैं। आस्ट्रिया की मारिया टेरेसा के चेम्बर में सारी सजावट भारतीय चित्रों से की गयी थी, लघु चित्रों से। रॉकोको शैली में तस्वीरें काट-काट कर उन्हें लकड़ी में लगाया गया है। वे अभी भी वहाँ हैं। उसे ''मिल्लियोनन ज़िम्मर'' यानी 'लाखों का कमरा' कहा जाता है। इसका अर्थ है कि यूरोप में हमारे लघुचित्रों की जानकारी थी पर उनमें से ज़्यादातर मुगल मिनिएचर चित्र थे। आर्च बिशप की रागमाला के चित्र भी मुग़ल चित्रों से प्रभावित हैं। वे ठीक-ठीक राजपूत नहीं है। फिर पादशाहनामा ब्रिटेन चला गया। अवध के नवाब का अँग्रेज़ों से कोई काम फँसा होगा, सो उसने उन्हें ये दे दिये होंगे। मुगल चित्रों को समझना आसान है क्योंकि वे अधिक प्रकृतिवादी हैं। राजपूत चित्रों का स्वीकार बहुत बाद में शुरू हुआ, राजस्थानी और पहाड़ी चित्रों का। लेकिन ये चित्र भी अब मुगल चित्रों की तरह ही मँहगें हैं। उनसे शायद थोड़ा-सा कम होंगे।

उदयन - क्या ज़्यूरिख़ संग्रहालय ने नैनसुख के चित्रों की कोई प्रदर्शनी की है ?

गोस्वामी - संग्रहालय ने अपने पास की नैनसुख की तस्वीरों की एक प्रदर्शनी वाशिंगटन में की थी। एक प्रदर्शनी ज़्यूरिख़ में की थी, मुख्य संग्रहालय में नहीं बल्कि शहर की अपनी एक शाखा में। वाशिंगटन संग्रहालय के निदेशक मायलो बीच और एबरहार्ड बहुत अच्छे मित्र हैं जैसे मेरे हैं। ज़्यूरिख़ संग्रहालय ने उनके साथ मिलकर वाशिंगटन में प्रदर्शनी की योजना बनायी। शुरु-शुरु में उसकी कोई खबर मुझे नहीं थी पर बाद में मुझे दोनो मित्रों से पत्र आये कि इस प्रदर्शनी में आपको भी आना है। सो मैं और करुणा दोनो वहाँ गये। इस प्रदर्शनी की एक दिलचस्प कहानी है।

उदयन - तब तक आपकी किताब आ चुकी थी...

गोस्वामी - जी हाँ। जबतक वहाँ पहुँचे तो देखा कि प्रदर्शनी में उद्घाटन में बाहर के कोई लोग नहीं, केवल न्यासी थे। वहाँ के न्यासियों का अर्थ आपको पता होगा। ये वे लोग होते हैं जिन्होंने संग्रहालय को एक करोड़ डॉलर या पचास लाख डॉलर दिये होते हैं। वे आमतौर पर बेहद उच्चवर्ग के लोग होते हैं। उस शाम वे पच्चीस-तीस थे। न्यासियों के अलावा कुछ मित्र भी थे। मैं जब प्रदर्शनी के हॉल में गया, मैंने देखा वहाँ मेरे काम का आभार ठीक ढँग से माना गया था। जैसे ही कार्यक्रम शुरू हुआ, न्यासियों को चित्र दिखाना शुरू किया गया। एक के बाद दूसरा फिर तीसरा...। जब यह चल रहा था, बिजली चली गयी। क्या आप विश्वास करेंगे कि यह वाशिंगटन में हुआ और वह भी वहाँ के एक महत्वपूर्ण संग्रहालय में। कभी किसी ने ऐसा सोचा भी नहीं होगा। चारों ओर हड़बड़ाहट फैल गयी। एकाध मिनट सब रूक गया। तब मैं आगे आया। मैंने कहा, मोमबत्तियाँ मँगाओ, ये चित्रकार उसी रोशनी में काम करते थे। मोमबत्तियाँ आ गयीं। तब मैंने बोलना शुरु कर दिया। मैं नैनसुख की भूमिका में आ गया ओर नैनसुख की जुबान में बात करने लगा। मैंने कहा, 'मेरे पिता कहा करते थे कि उन्हें मौन बहुत पसन्द है।' मोमबत्ती लेकर मैं नैनसुख की जुबान बोलता रहा। मैंने कहानियाँ बनाना शुरू की, 'मैंने यह चित्र बनाकर अपने पिता को दिखाया, वे बोले....।' सब चमत्कृत थे। एक महिला जो सबसे वरिष्ठ न्यासी थीं, वे देर से आकर पीछे खड़ी थीं। वे दखल नहीं देना चाहती थीं। बाद में मुझे किसी ने बताया कि वे पूछ रही

थीं कि क्या ये सारे चित्र इस व्यक्ति ने बनाये हैं। बहुत लोगों को वह वाकया याद है। उन्हें नैनसुख भले याद न होगा पर मेरा हस्तक्षेप याद है।

उदयन – तब तो आप मानकू की जो चिट्ठियाँ लिख रहे हैं, वह ठीक ही है ?

गोस्वामी – लेकिन मैं उन्हें प्रकाशित नहीं करूँगा। मैंने नैनसुख की जो fictional डायरियाँ लिखी थीं, वे भी नैनसुख की किताब में प्रकाशित नहीं कीं। उन्हें अलग से प्रकाशित किया था, खण्डालावाला के सम्मान में मैंने जो किताब सम्पादित की थी, वे उसमें हैं। एबरहार्ड ने मुझे बड़ी नेक सलाह दी थी, क्या मैंने आपसे कभी ज़िक्र किया है कि वे डायरियाँ मैंने कैसे लिखी थीं ?

उदयन – नहीं।

गोस्वामी – मैं ज़्यूरिख़ में था और अचानक मेरी आँख का परदा, रेटीना, आँख की दीवार से अलग हो गया। बड़ी मुश्किल आ गयी थी। एबरहार्ड ने अपने मित्रों आदि से कहकर मेरे इलाज की व्यवस्था करायी। मेरा वहाँ आँख का ऑपरेशन हुआ। वहाँ मेरे साथ न करूणा थी न बच्चे, मैं अकेला था। मेरे ऑपरेशन के लिए इन्तज़ार नहीं किया जा सकता था। करूणा दो दिन बाद आ गयी तब मैं अकेला वार्ड में पड़ा था, आँखों पर पट्टियाँ बँधी थी। मेरे पास एक रिकार्डर था। मैं हमेशा रिकार्डर साथ रखता था। पहाड़ी मास्टर्स वाली पूरी किताब रिकार्डिंग्स ही हैं। मैं हाथ से लिखने की जगह रिकार्डर में बोल देता था। संग्रहालय में मेरी एक मित्र उसे सुनकर टंकित (टाईप) कर देती थीं। सारी किताब इसी तरह लिखी गयी थी, अलावा उन दो अध्यायों के जो एबरहार्ड ने लिखे थे। रिकॉर्डिंग मशीन की मुझे आदत थी। अस्पताल में लेटे-लेटे मैंने सोचा कुछ करना चाहिए। वहाँ न कुछ देखने को था न सुनने को था, तब मैंने नैनसुख की वह डायरी अपने रिकार्डर में बोलना शुरू की। करूणा जब आयीं तो वह चौकीं कि ये मैं क्या कर रहा हूँ। पर वे यह आज भी कहती हैं कि वह उनकी ज़िन्दगी का बहुत अहम पल था। बिल्कुल बेबस बैठे हैं पर फिर भी काम चल रहा है।

उदयन – जब वे वार्ड में आयी होंगी, तब शायद आप नैनसुख की डायरी बोल रहे होंगे.....

गोस्वामी – हाँ, ऐसा ही था।

उदयन – क्या वे डायरियाँ काफ़ी सारी हैं ?

गोस्वामी – हाँ। उनमें मैंने नैनसुख के अपने संरक्षक बलवन्त सिंह के अन्तिम दिनों के साथ के बारे में लिखा है। जो बात मुझे चिन्ता में डालती थी, वो यह थी कि जो तस्वीरें नैनसुख ने बलवन्त सिंह के लिए की थीं, वे बिखर कैसे गयीं। वे राजा के संग्रह में होना चाहिए थी, पर वे चित्रकार के परिवार में कैसे निकल आयीं। मैं यह कल्पना कर रहा था कि जब बलवन्त सिंह बीमार पड़ गया तो उसने नैनसुख को तस्वीरें देते हुए कहा होगा कि मेरे वंशजों को इनमें कोई दिलचस्पी नहीं है, ये तू ही रख ले। मैं वह सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश कर रहा था। एबरहार्ड को वे डायरियाँ बहुत पसन्द आयीं, पर वह मुझसे बोला कि इन्हें अपनी नैनसुख पर किताब में शामिल मत करना। मैंने उससे पूछा, 'क्यों?' वह बोला, 'इन डायरियों में तुम्हारी कल्पना इतनी शक्तिशाली है कि

लोग यह समझेंगे कि तुमने अपनी किताब में जो तथ्य दिये हैं, वे भी कल्पना है।' यह बहुत अच्छी सलाह थी। मैंने वह मानी। इसी तरह मानकू की चिट्ठियाँ भी मैं कहीं और प्रकाशित करूँगा।

उदयन – आपका कार्ल खण्डालावाला से क्या सम्बन्ध रहा ?

गोस्वामी – खण्डालावाला दूसरे समूह के थे। वे आर्चर के विरूद्ध थे। रन्धावा और खण्डालावाला भी कभी एक-दूसरे से सहमत नहीं हुए। उनकी आपस में दुआ-सलाम अवश्य होती थी पर सिर्फ़ उतना ही। खण्डालावाला बहुत सख़्त थे, उनमें लोच ज़रा भी नहीं था। वे वकीलों की तरह तर्क करते थे। मैंने उन पर एक-दो लेख भी प्रकाशित किये थे, पर वे उनके प्रति थोड़े कटु थे, उन्होंने कुछ अभिलेख प्रकाशित कराये थे पर उनके किये कुछ अनुवाद ग़लत थे। जैसे राधिका का विभ्रम भाव है। वह अलंकार शास्त्र में आता है लेकिन उन्होंने लिखा कि यह चित्र विभ्रम भाव नामक चित्रकार ने बनाया है। वो खुद तो पढ़ नहीं सकते थे, किसी और ने पढ़कर बताया होगा। ऐसे आठ-नौ अभिलेख उन्होंने ग़लत पढ़े थे। उन पर मैंने एक लेख लिखा था, 'खण्डालावाला के कुछ अभिलेखों का पुनर्पाठ।' इस पर आर्चर बहुत खुश हुए। जब मैं खण्डालावाला से मिलता था, वे कहते थे कि तुमने मुझे अच्छी लगायी। पर मैंने अपने लेख में उन पर कोई भी व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किया था। मैंने वह लेख उनके प्रति पूरे सम्मान से लिखा था। तब तक आर्चर के साथ मेरी कुछ बिगड़ चुकी थी। खण्डालावाला उन तीन लोगों में थे, जिनसे मेरे गाईड ने मेरे काम के बारे में पूछा था और उन्होंने कुछ बहुत खूबसूरत लिखा था। तब तक हम लोग मिले भी नहीं थे। वे बेरिस्टर थे और बम्बई में वकालत करते थे। मैं जिस तरह आर्चर के कमरे में घुस गया था वैसे ही इनके कमरे में भी चला गया था। मैं कचहरी पहुँचा तो सोचा इनसे मिलता चलूँ। वे गर्मजोशी से मिले। वे अद्‌भुत व्यक्ति थे। वे बहुत इज़्जत से मिले और कोई गिला-शिकवा नहीं किया। हम अच्छे दोस्त हो गये। ये इस हद तक हुआ कि मैंने यह सोचकर कि इन्होंने इतना काम किया है, उनके सम्मान में एक किताब की योजना बनायी : खण्डालावाला के सम्मान में कुछ निबन्ध।

उदयन – इनमें से क्या किसी के पास भी रस सिद्धान्त आदि की वैसी समझ थी, जैसी आपकी विस्तृत रूप से है ?

गोस्वामी – बिल्कुल नहीं। न रन्धावा की, न आर्चर की और न कार्ल खण्डालावाला की।

उदयन – तब तो उनकी लघुचित्रों के सन्दर्भ में बुनियादी किस्म की विकलांगता थी।

गोस्वामी – बिल्कुल थी।

उदयन – आपने अपनी पुस्तक 'एसेन्स ऑफ इण्डियन आर्ट', भारतीय चित्रकला सार को रस सिद्धान्त के आधार पर ही लिखा है।

गोस्वामी – रस सिद्धान्त की समझ आनन्द कुमारस्वामी को थी। हालाँकि उन्होंने रस के बारे में सीधे नहीं लिखा है। लेकिन अपने निबन्ध 'एशियायी कला का सिद्धान्त' में उन्होंने रस का बहुत अच्छा

ज़िक्र किया है। वह छोटा-सा लेख है, पर है बहुत पैना। कुमार स्वामी को मैं बहुत समझ वाला आदमी मानता हूँ। ग़लतियाँ सबसे होती हैं और वे कला इतिहासकार थे भी नहीं पर उनकी पकड़ कमाल की थी और उनकी ज़ुबान बहुत सूबसूरत थी, बहुत सुथरी, कुछ वैसी ही जैसे 'ज़िक्र उस परीवश का और बयाँ अपना....।' उन्होंने रस के बारे में सीधे-सीधे तो नहीं कहा है पर पढ़कर लग जाता है कि उन्हें उसकी समझ है।

उदयन - आप रस सिद्धान्त तक किस तरह पहुँचें ?

गोस्वामी - मेरी समझ नाटी-सी है। मुझे याद नहीं कि मैं इस सिद्धान्त के करीब कब और कैसे आया। अभिनवगुप्त पर इतालवी लेखक रानियोरो न्योली की किताब है, 'एस्थेटिक एक्स्पीरियन्स एकोर्डिंग टू अभिनवगुप्त' वह किताब मैंने पढ़ी थी। वह मुझे बड़ी अच्छी लगी। वह काफ़ी पहले लिखी हुई किताब है। वह किताब रस पर लिखते समय मेरे ज़हन में थी। विदेशों में भारत महोत्सव शुरू हुए थे। उसमें पुपुल जयकर शामिल थीं। आई.ए.एस. का मेरा बेचमेट शशिकान्त मिश्रा भारत महोत्सव का महानिदेशक बन गया था। यह सन् १९८४ की बात है। प्रदर्शनी के लिए जो जगहें चुनी गयी थीं, उनमें एक पेरिस थी। पेरिस में म्यूज़ी गीमे। मुझसे उसने कहा, 'यार तू करेगा ये प्रदर्शनी ?' मैंने कहा, 'मैंने की नहीं कभी, लेकिन मैं कर सकता हूँ।' मिश्रा ने कहा कि फ्रांसीसी दल आ रहा है, उसके साथ इस बारे में बैठक करते हैं कि प्रदर्शनी किस विषय पर हो। म्यूज़ी गीमे का निदेशक रूसी मूल का बन्दा था, वादिम एलीसिएव उसका नाम था। वो रूसियों जैसा ही तगड़ा था। तीक्ष्ण बुद्धि। हम दस-बारह लोग बैठे। यह सोच रहे थे कि किस विषय पर प्रदर्शनी की जाए ? किसी ने कहा कि भारत के 'मास्टर पीसेस' पर करते हैं। मैंने कहा, 'वो बहुत उबाऊ होगी।' मैंने कहा, 'मेरे दिमाग़ में एक विचार है कि हम रस पर आधारित प्रदर्शनी करें।' ये किसी को समझ में नहीं आया। मेरे दोस्त मिश्रा को भी उस बारे में पता नहीं था। उसने कहा, 'बताओं ये क्या है ?'

एलीसिएव ध्यान से मुझे सुनता रहा। उसे लगा यह चित्रकला को देखने का नया तरीका है। उसने मिश्रा को कहा, 'यह मुझे दिलचस्प लग रहा है लेकिन मुझे भरोसा हो सकना चाहिए कि किस तरह की कला वस्तुएँ उस प्रदर्शनी में होंगी। मैं अपने संग्रहालय से दो लोगों को यहाँ भेजूँगा, वे प्रदर्शित होने वाली सामग्री को देखेंगे और उन्हें प्राप्त करने प्रोफ़ेसर गोस्वामी जहाँ भी जाएँगे, वे उनके साथ जाएँगे।' जैसे जासूस जाते हैं। एक लड़का और एक लड़की अमीना ओकाड़ा, आये। अमीना बहुत तेज़ थी। उन दोनों ने मेरे साथ यात्राएँ कीं। हम कई जगहों पर साथ गयेः दिल्ली, खजुराहो, बनारस, एक छोटी-सी जगह धुबेला आदि। वे दोनों यह समझ गये कि इसकी आँख तेज़ हैं और चीज़ें अच्छी निकलेंगी। रस की उन्हें ज़्यादा समझ नहीं थी। एलिसिएव की चिन्ता वाजिब थी कि सिद्धान्त भले अच्छा हो पर ऐसा न हो कि प्रदर्शनी देखने में खराब लगे। वे लोग क़रीब सात-आठ महीने यहाँ रहे और मेरे साथ घूमते रहे। फिर उन्होंने एलीसियेव को इस बारे में बताया। फिर एलीसियेव ने मुझसे बात की और यह कहा कि यह अद्‌भुत विचार है, इसे करते हैं। इस तरह विषय तय हुआ और उसी प्रदर्शनी के लिए मैंने वह निबन्ध लिखा था। पेरिस में जो प्रदर्शनी हुई उसका शीर्षक था, 'रस' और उपशीर्षक था 'भारतीय कला के नौ चेहरे।' उन्होंने

फ्रांसीसी में बड़ा सुन्दर कैटलॉग निकाला था। यह भी तय हुआ था कि यही प्रदर्शनी सेन फ्रांसिसको जाएगी। वहाँ के 'एशियन आर्ट म्यूज़ियम' में। संग्रहालय का निदेशक और परिकल्पक पेरिस आये, प्रदर्शनी देखने। उसी समय मुझे गुर्दे की बीमारी हुई थी। उन्होंने यह प्रदर्शनी सेन फ्रांसीसको में आयोजित की। परिकल्पक चीनी कला का विशेषज्ञ था, नाम मुझे याद नहीं पर बड़ा भला आदमी था। उसने यह कहीं पढ़ लिया कि रस के रंग हुआ करते हैं। उसने ये जोखिम उठाया कि नौ रसों के लिए नौ दीर्घाएँ बनायीं और रसों के अनुसार दीवारों को रँगा। जब मैं वहाँ गया, मैं आपको बता नहीं सकता, मुझे कैसा आश्चर्य हुआ। दीर्घाओं के रंग चित्रों और मूर्तियों के साथ जूड़े इतने बढ़िया लग रहे थे कि कहना मुश्किल था। मैं इसकी कल्पना तक नहीं कर सकता था। प्रदर्शनी के आगे मीलों लम्बी लाईनें लगीं। यह देखना ऊर्जा से भर देता था कि लोग प्रदर्शनी में इतनी दिलचस्पी ले रहे हैं। वहाँ उन्होंने शीर्षक अपने हिसाब से रखा था। वैसे भी मैं बीमार था। वह प्रदर्शनी बहुत चुनौतीपूर्ण थी और सफल हुई। उसे देखकर भारतीय अध्येता भी थोड़ा चौंके थे। लोग भी हैं कई लोग जिनमें प्रताप पाल भी है मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे और ना हैं। पर इस किताब का कहते है कि बहुत असर हुआ। कई लोग कलाओं को रस की दृष्टि से भी देखने लगे हैं। वैसे तो कोई सिद्धान्त कला पर पूरी तरह लागू नहीं होता।

(बातचीत अधूरी रही पर सम्भव है कि आगे भी चले...)

एक चित्रकार की डायरी के कुछ अप्रकाशित (काल्पनिक) पन्ने

बी. एन. गोस्वामी

(वह काल्पनिक डायरी, जिससे ये पन्ने लिये गये हैं, गुलेर के मशहूर चित्रकार नैनसुख (१७१०-१७७८) की हो सकती थी। इसे निश्चय ही नैनसुख ने नहीं लिखा है-लेकिन इसमें उसके समय और परिस्थितियों का पुनर्निर्माण करने में उसी की आवाज़ का सहारा लिया गया है।) यह डायरी मूलतः पहाड़ी जुबान में लिखी गयी थी, बाद में इसका तर्जुमा अंग्रेज़ी में हुआ फिर अंग्रेज़ी अब यह हिन्दी में आ गयी हैं।

चैत्र प्रविष्टे १४, वि.सं. १८२० (१७६३ ई.)

कोठरी कुछ छोटी थी और उसमें हम कुछ अधिक ही लोग थे। मैं थोड़ी दूरी पर बैठा था, सो वहाँ चल रही सारी बातचीत नहीं सुन पाया। महाराज कष्ट में थे। उनका बुखार नहीं उतरा था। जब भी उन्हें खाँसी का दौरा पड़ता, वे अपने बाजू थाम लेते और तकलीफ़ से दोहरे हो जाते। जब-जब भी महाराज को यह दौरा पड़ता और वे दर्द से कराहते, मियाँ जी उछल पड़ते। मियाँ तारा सिंह बिस्तर के पैताने पर थे और हल्के-हल्के महाराज के पाँव और तलुओं को सहला रहे थे। वे उनके चेहरे की ओर देखते जा रहे थे। पण्डित और गंगू सरोच महाराज के बहुत करीब बैठे थे, जो बहुत फुसफुसाकर बोल पा रहे थे। वे कुछ काग़ज़ पलट रहे थे। एक कागज की ओर देखकर वे मियाँ साहब और पण्डित से कुछ बोले। यह कुछ देर तक चलता रहा। वे किसी ज़मीन से सम्बन्धित निर्देश दे रहे थे। मुझे 'पट्टा' शब्द बार-बार सुनायी दे रहा था। तरह-तरह की चीज़ों की एक छोटी-सी पोटली पर उनकी आँखें बार-बार ठहर जाती थीं। वे लेटे हुए थे। अचानक उनकी आवाज़ थोड़ी ऊँची हुई और पण्डित ने मेरी ओर मुड़कर मुझे इशारा किया। कमरे में फ़ीकी-सी रोशनी थी। मैं महाराज के बिस्तर की ओर हुआ। उन्होंने अपने सीधे हाथ से उसे हलका-सा धक्का दिया और मुझसे बोले, 'नैण्या, ए तू ही सम्भाल।' मैंने अपने दोनों हाथ जोड़कर आगे झुकते हुए रेशम का बस्ता उठा लिया। जब मैं उसे उठा रहा था, मैंने देखा कि महाराज की आँखों में ललक की छाया-सी डोल गयी और वे क्षणभर को बस्ते पर ठिठक गयी। फिर वे कहीं और देखने लगे। मैं अपने दोनों हाथों में बस्ता उठाये कोठरी के पीछे की ओर चला आया, जहाँ मैं कुछ और लोगों के साथ पहले से बैठा हुआ था।

कोठरी की हवा में गहरा अवसाद था। महाराज उम्मीद हार चुके थे। वैद्य जी अपने घर से दवाईयाँ लेकर लौटे नहीं थे और कोठरी में बैठा हरेक व्यक्ति महाराज को दर्द सहते निस्सहाय देख रहा था।

हम वहाँ इसी तरह कुछ देर बैठे रहे। कुछ बेहद धीमी बातचीत हो रही थी जिसे बीच-बीच में खाँसी तोड़ देती थी। तभी लगभग चुपचाप वैद्य जी आये। उनके बाएँ हाथ में लकड़ी का एक डिब्बा था और कुछ औषधियाँ सूखे तूम्बे में जो उनकी दायीं कलाई से एक पतली रस्सी के सहारे झूल रहा था। उन्होंने सब पर एक नज़र दौड़ायी और हमें बाहर

जाने को कहा। ज़ाहिर है महाराज को आराम की ज़रुरत थी।

मैं हाथों में बस्ता उठाये अपने छोटे-से टप्रू (कुटिया) की ओर चल पड़ा। वहाँ दीवे (दीये) की रोशनी में मैंने उसके चारों ओर लिपटी सुतली को खोला और उसमें बन्द चीज़ों को बाहर निकाला। मैं उन्हें देखकर चौंक गया। वे मेरे चित्र थेः महाराज और उनके परिजनों के वे ही चित्र, रेखांकन और ख़ाके जो मैंने पिछले कई सालों में उनके लिए बनाये थे। उन्हें देखते हुए मेरा दिल भारी हो आया। अचानक उन्हें थामना मेरे लिए पीड़ादायक हो उठा। वे बेहतर समय और खुश दिनों की यादें थे लेकिन उन्हें सरसरी तौर से देखते हुए भी जिस बात पर मैं ठिठका वह यह थी कि इन पन्नों में ऐसे कई रेखांक और अध्ययन और अधूरे काम थे जिन्हें मैं पूरी तरह भूल चुका था। वे अतीत में कई बरस पीछे ले जा रहे थे। लेकिन ज़ाहिर है, महाराज हर चीज़ अपने पास सम्भाले हुए थे। उनमें एक रेखांकन महाराज और उनके पिता, बड़े महाराज, के सिर का था। चित्र में महाराज नौ-उम्र और जवान लग रहे थे। यह बड़े महाराज की मौत के पास का समय था। जब मैं यह छोटा-सा रेखांकन कर रहा था, मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि इस नौ-उम्र, जवान व्यक्ति के साथ मैं अपने जीवन के बीस से अधिक बरस गुजारने वाला हूँ। ये सारे पूरे या अधूरे चित्र किसी तरह महाराज की जीवन यात्रा बता रहे थे। बस्ते में एक भी नायिका या भागवत या महाभारत का चित्र नहीं था। वे किसी दूसरे बस्ते में रखे होंगे। शायद महाराज ने किसी को भेंट कर दिये हों। पर ये वाले चित्र उनके दिल के बहुत क़रीब थे, बहुत ज़्यादा व्यक्तिगत।

उन्होंने इन्हें मुझे क्यूँ लौटा दिया, मैंने खुद से पूछा। यह साफ़ था कि महाराज के बेटों और दूसरे परिजनों में चित्रकला के प्रति ऐसा लगाव नहीं था जैसे महाराज या उनके पिता को था। शायद वे नहीं चाहते थे कि वे चित्र बेपरवाह हाथों में जाएँ। शायद उनमें केवल घटनाएँ भर नहीं, वे ख्वाब और महत्वाकाँक्षाएँ भी अंकित थी जिन्हे उन्होंने सिर्फ़ मुझसे साझा किया था। मुझे महसूस हुआ कि यह गौरव सिर्फ़ मुझे हासिल था। यह हमारा आपस का संसार था।

मैं जानता था कि वे इनके सहारे जीते रहना चाहते थे। लेकिन मैं यह भी देख सका था कि बस्ते को वापस देना महाराज का आखिरी इशारा था। मेरा दिल डूबने लगा।

चैत्र प्रविष्ट १५ वि.सं. १८२०

सारे दिन महाराज की कोई खबर नहीं मिली। वे मुझे या किसी दूसरे से मिलने की हालत में नहीं थे। मैं सिर्फ़ इतना जानता था कि वैद्य जी और पण्डित सारा दिन उनकी कोठरी से आते-जाते रहे। उनकी नज़रें बेचैन बनी रहीं, कदम भागते हुए और कन्धे झुके हुए।

पिछली रात महाराज के दिये बस्ते के पन्नों को देखते हुए मैं दिन गुज़ारने की कोशिश करता रहा। इन रेखांकनों और खाकों को देखना दर्द का सबब था, यह जानते हुए कि महाराज किस हालत में हैं। लेकिन उन्हें पलटना दर्द पर मरहम भी लगा रहा था क्योंकि उनमें किसी हद तक खुशी फैली थी। वही खुशी जो मैंने और महाराज ने अपने जीवन के पिछले बीस सालों में साझा की थी। पहले मैं वे पन्ने भारी दिल से पलटता रहा पर धीरे-धीरे मैं उनमें खो गया। मैं यह सोचकर अचम्भित हुआ कि इनमें से कई रेखांकनों को मैं भूल चुका था। कई अपेक्षाकृत पूरे चित्र ऐसे भी थे, जिन्हें याद करने में मुझे कोई मुश्किल नहीं हुई, जिन्हें बनाने का खास मौका या दिन भी मैं याद कर सकता था। लेकिन ऐसे कुछ और चित्र थे, जिनकी याद धुँधला गयी थी। कुछ के ऊपर, सामने या पीछे, कुछ लफ़्ज लिखे थे, जिनमें खास लोगों के नाम या खयाल गायन या टप्पा के बोल लिखे थे जो उस दिन की हवा में तैर रहे थे जब मैंने वे

चित्र पूरे किये थे। महाराज उन बोलों को सारा दिन गुनगुनाते रहते थे और ऐसा जान पड़ता था मानो वे उस मौके के चित्रों का रेखांकनों का ही हिस्सा हों। लेकिन ज़्यादातर चित्रों पर कुछ लिखा नहीं था। समय या स्थान का कोई इशारा नहीं। कुछ मौके मेरी याददाश्त से बाहर हो गये थे, मैंने सोचा जहाँ भी हो सके, इन पर कुछ लिख देने में कोई हर्ज नहीं। यह मानकर कि कोई कितना भुलक्कड़ हो सकता है और यह कि ये पत्र बहुत मायने रखते हैं, इनमें ज़िन्दगी की तामीर थी। मुझे भरोसा था कि अगर मेरी लिखावट से चित्रों में कोई खराबी नहीं आती, महाराज को यह बुरा नहीं लगेगा । मैं जानता था कि वे मेरी उस लिखाई के प्रशंसक थे, जिसमें मैं टाकरी के साफ़ छोटे अक्षरों को लिखा करता था।

अचानक मेरी आँख एक शुरुआती चित्र पर ठहर गयी, वह मेरा नहीं, महाराज के लिए किया मेरा शुरुआती चित्र था। तब वे जवान थे और अपने पिता के गुज़र जाने के बाद महाराज बने थे। मैंने उन्हें अकेला बैठा हुआ, हुक्का पीते हुए भव्य पोषाक में चित्रित किया था। पोर-पोर से वे राजा लग रहे थे, खुद पर और भावी ज़िन्दगी पर भरोसे से भरे हुए। चित्र के ऊपरी हिस्से में खराब लिखायी में मुझे चार लाइनें टाकरी में लिखी हुई नज़र आयीं। मैंने यह चित्र इसे पूरा करने और महाराज को भेंट करने के बाद देखा नहीं था। मैं उसे आज बीस साल बाद देख रहा था। मैं अभिलेख को ठीक से पढ़ पा रहा था। वह देई की लिखाई में था। उसे पढ़ते ही मेरे दिमाग वो कठिन समय झूल गया। बड़े महाराज ने दुश्वार ज़िन्दगी जी थी। परिवार के सभी सदस्यों, विशेषकर देईजी के अनुसार, उन्होंने अपनी मुश्किले खुद ही पैदा की थी। खासकर अपने ऐश-पसन्द मिजाज़ के कारण। लम्पट, उनमें से कुछ कहते थे। जब युवा महाराज ने गद्दी सम्भाली, उन्हें एक शब्द का भी मशविरा नहीं दिया गया। लेकिन देई ने ये चार लाइनें, मेरे खयाल से वह राह दिखाने के लिए लिखी थीं, जो बर्बादी की ओर ले जाती हैं। अगर कोई भी दूसरा इस चित्र को देखेगा, वह महाराज के आत्मविश्वस्त और युवा रुप और नसीहत या चेतावनी के इन शब्दों के बीच का सम्बन्ध नहीं देख पाएगा। अन्जाने ही वह चित्र मैंने अपने हाथ में उठा लिया। उसके ऊपरी भाग में कोई जगह नहीं थी लेकिन मैंने उसके कोने पर बहुत छोटा-सा कुछ लिखा, यह दर्ज करने कि ये पंक्तियाँ देईजी की नसीहत थी, मैंने वह समय भी लिखा जब यह बनायी गयी थी। मैंने सोचा अब से जब भी कोई बरसों बाद इस चित्र को देखेगा, अगर यह चित्र बच गया, वह सब जान पाएगा।

मैंने देखा कि एक शुरुआती चित्र के ऊपरी हिस्से में कुछ लफ़्ज लिखे हैं जो मैंने महाराज के आग्रह पर खुद लिखे थे। वह बारादरी का चित्र था जहाँ महाराज बैठकर अक्सर संगीत सुनते थे, उन विलक्षण रातों में जब हवा, रोशनी और उनमें घुले संगीत के स्वर अनोखी फिज़ा रच देते थे। लगभग बीस बरसों की दूरी से भी मैं उस औरत को पहचान सकता हूँ जो महाराज के लिए गा रही थी, जिसे मैंने चित्रित किया था। वह अद्वितीय आवाज़ की धनी सुरतु थी। मैंने जैसे ही चित्र को देखा, उस समय का पूरा माहौल मानो आंखों के आगे घूम गया। मैं वो दिन आज भी याद कर सकता हूँ क्योंकि उस दिन ही यह खबर पहाड़ों में आयी थी कि मन्नू नवाब ने पठानों पर सनसनीखेज जीत हासिल की है। चित्र को देखते हुए मेरे मन में गाने की पँक्तियाँ तैरने लगीं और साथ ही मुझे कलावन्त, तबलिए और उस आदमी का भी नाम याद हो आया जो मोरछंग पर अलौकिक संगीत बजा रहा था। वह जमाली अटपटा आदमी था। वह अपने दाँतो के बीच छोटे-से लोहे को फँसाकर कुछ ऐसा बजा सकता था जो अविश्वसनीय था।

कुछ रेखांकन महाराज के पास यूँ ही रखे हुए थे, उन्हें वस्ली पर चिपकाया नहीं गया था, उनके किनारे मुड़ रहे थे, मैंने उन्हें दुरूस्त करना तय किया। मुझे ये जल्दी ही करना होगा। चित्रों के ढेर में एक ऐसा रेखांकन भी था, जो मैंने बहुत पहले नहीं बनाया था, महाराज के जसरोटा छोड़ने के ही कुछ पहले। वह रात मुझे याद है, वे चुपचाप

ठाकुरद्वारा गये थे वहाँ महाराज और मेरे अलावा केवल पण्डित था। महाराज वहाँ मानो अपने इष्ट विष्णु भगवान से विदा लेने गये हों। वे वहाँ कुछ देर बैठे, आँखें बन्द करके, ईश्वर से आर्शीवाद लेने, क्योंकि वे मुश्किल दिन थे और वे एक ऐसी राह पकड़ने वाले थे जो उन्हें कहाँ ले जाएगी, कोई नहीं जानता था। पण्डित वहाँ बैठा था, निरुद्विग्न, एक पोथी से कुछ पढ़ता हुआ। मैंने पण्डित को बगल बैठा दर्शाया था, अपनी पोथी को हाथ में लिए यह सोचकर कि आगे भयानक जटिलताएँ आने वाली हैं, बड़ी-सी गड़बड़ी, जो हरेक के अनुसार पण्डित के कारण उत्पन्न हुई थी, मैं पोथी के पन्ने पर कुछ लिखना चाहता था। महाराज का पण्डित से सामंजस्य बैठ चुका था और वे उसके निर्दोष होने पर भरोसा कर चुके थे लेकिन मेरा सन्देह कभी नहीं गया मैंने पोथी के पन्ने पर संस्कृत में प्राचीन वैदुष्य के वे शब्द लिखे। मैंने शायद ज़्यादती की। लेकिन जैसा कि बापूजी, अतीत से उद्धृत करके मुझे कहा करते थे, 'एक रहस्य तभी तक महफूज रहता है, जब तक वह किसी एक के दिल में रहता है। जिस पल उसका साझा हुआ, वह तुम्हारी पकड़ से बाहर चला जाता है। इसके आगे सिर्फ़ धोखा है।'

अब मुझे समय का भी होश नहीं रहा। मैं वहाँ बैठा रहा, अतीत को खंगालते हुए, चित्रों और रेखांकनों पर गाहे-ब-गाहे टिप्पणियाँ लिखते हुए, उन्हें अपने हाथों में लेकर, बीते हुए कुछ पलों का स्वाद लेते हुए, अपने ही रेखांकनों में दोष देखते हुए।

वैशाख प्रविष्टे ३० वि.सं. १८२०

मैंने उसे देखने के पहले दो शब्द सुन रखे थेः गंगा माँ, वे जो पवित्र करती हैं, जो तुम्हें पार ले जाती हैं। जब हमारा सारा काफ़िलाँ हरिद्वार के बाहर पहुँचा रात गहरा चुकी थी। हम दिन भर की लम्बी यात्रा के बाद थक चुके थे। हमारे डेरे की जगह चुनी गयी। हमने अपना बोरिया-बिस्तर, कम्बल, लाठियाँ और छवियाँ और बक्से नीचे रक्खे ही थे कि नदी के पानी की आवाज़ प्रशान्त सहलाती-सी मानो उसे कही जाने की हड़बड़ी न हो, हमें बुला रही थी। किनारे बैठे हुए और सिर्फ़ इस आवाज़ को सुनते हुए मुझे अजीब-सी ताज़गी महसूस होने लगी मानों मैंने नहा लिया हो। उन असंख्य स्त्री-पुरुषों के विषय में सोचते हुए जिन्हे गंगा माँ ने अपने पार दूसरे लोक में पहुँचाया था, स्वयं मेरे पुरखों, बापूजी भाई (मानकू) को भी, मेरे रोंगटे खड़े हो गये।

मैं थक चुका था। मैं उठा और अपने समूह को चुपचाप छोड़कर हर की पौड़ी की ओर बढ़ चला, यह वह जगह थी, जहाँ गणेशो चाहती थी कि, मैं वे कुछ सिक्के नदी में डालूँ, जो वह समय-समय पर इस काम के लिए रखती रही थी। मुझे दो-तीन लोगों से रास्ता पूछना पड़ा लेकिन बाद में जब मुझे नदी की आवाज़ आने लगी, इसकी ज़रुरत नहीं पड़ी और तब जैसे ही मैं इक मोड़ घूमा, मेरे सामने एक अद्भुत दृश्य था। रात गहरी अँधेरी और बीच के मकानों में जलते झुटपुट दीये उसकी तीव्रता और रेशमीपन को कम नहीं कर पा रहे थे। लगता था उस अँधेरे ने सारे संसार को लपेट लिया था। तभी अचानक मैंने देखा कि लहरों पर ऊपर-नीचे होते हुए थोड़े-थोड़े अन्तरालों पर छोटे मिट्टी के दीये पानी की धारा के साथ लपकते जा रहे थे। मैं इतनी दूर से यह नहीं देख पाया कि वे दीये काहे पर रखे हुए थे लेकिन दूर जाती हुई ऊपर उठती, कभी-कभी झुकती सी और पानी पर एक दूसरे से मिलती हुई-सी, एक दूसरे से असम्बद्ध वे रोशनियाँ भव्य लग रही थी मानो रहस्यमय ढंग से आत्माएँ गंगा माँ की छाती में समाती जा रही हों। ज़मीन कठोर हो आयी थी और मैं अब कह सकता था कि मैं नदी किनारे के बहुत क़रीब था, बल्कि हर की पौड़ी पर ही था (मुझे इसका निश्चय कल कर लेना होगा।) इस वक़्त मैं केवल कभी-कभी आती कोई आवाज़ सुन पाता था, शायद ये उन लागो की थी, जो पानी में जलते हुए दीये छोड़ रहे थे और मुझे सिर्फ़ छोटी-छोटी रोशनियाँ दिख रही

थीं, यह कुछ ऐसा था मानो महादेवी की विराट आरती हो रही हो। मैं वहाँ सम्मोहन में कई घण्टों तक बैठा रहा। लेकिन अगली सुबह काम भी किये जाने थे। हम हरिद्वार अनुष्ठान करने आये थे, महाराज की अस्थियाँ विसर्जित करने। लेकिन इस क्षण यह रात, यह समूची रात केवल मेरी थी।

ज्येष्ठ प्रविष्टे १, वि.सं. १८२०

आज का दिन व्यस्त होने वाला था। मियाँ तारासिंह-शायद अब मुझे राजा तारा सिंह कहना चाहिए- ने बहुत सुबह आदेश दिया था कि पूरे राजकीय सम्मान से महाराज की छाई (अस्थियाँ) को रखने के स्थान को चारों ओर से घेर दिया जाए। रेवटों ने यह जल्दी से कर डाला, उन्होंने जाने-पहचाने अन्दाज में ज़मीन में खूँटे गाड़े और सफाई से उनमें रस्सियाँ बाँधकर, उस जगह को साफ़ कर चारों ओर कनातें तान दीं। इस घेरे के भीतर चमकीले सफ़ेद कपड़े में सुन्दर ढँग से लिपटे कलश को विधिवत् स्थापित कर दिया गया। उसके ऊपर वह सब जमा दिया गया, जिसकी महाराज हर सुबह पूजा करते थे। छोटे काले शालीग्राम, गोल और चमकीले, सफ़ेद कपड़े के आगे दिव्य लग रहे थे। मानो बहुत सुबह की रोशनी में पीताम्बर धारण किये विष्णु का साँवला शरीर चमक रहा हो। शंख, चक्र, गदा और पद्म को विधिवत् और सफ़ाई से उनके नीयत स्थानों पर रख दिया गया था। छाई कलश वाले इस अस्थायी मन्दिर को सजाने के लिए ताज़ा फूलों की मालाएँ मिलना मुश्किल नहीं थी। उसके दोनों ओर उनके वफ़ादार सहयोगी मोरछल लिए खड़े थे। इस सबके बीच सिर्फ़ एक कमी थी, महाराज की। मुस्कराहटें भी नदारद थीं। चारों ओर खड़े हम सबके चेहरों पर खुशी का कोई हल्का-सा भी संकेत नहीं था। मोरछल लिए लोग धीरे-धीरे मोरछल चला रहे थे, पूरे ध्यान से। मुझे विश्वास है, उनका मन भी बीत गये बेहतर समय की ओर खिंच रहा था। लेकिन अब तक महाराज के न रहने को तथ्य से हम समझौता कर चुके थे। महाराज की छाई के विसर्जन के अनुष्ठान में अभी कुछ समय बाकी था। हरिद्वार में महाराज के पुरोहितों से सम्पर्क किया जाना अभी बाकी था। हम लोग चारों ओर बैठे हुए ही थे कि अचानक कलावन्त गुन्नू और तबलिया रायमल ने अपने वाद्य बाहर निकाले और उस घेराव के एक कोने में दरी पर बैठ गये। कलावन्त गुन्नू ने बहुत सुन्दर भजन गाया। वह विष्णु भगवान का भजन गा रहा था। उनकी विनयशील और स्वर्गवासी आत्माओं को अपने भीतर समो लेने और उन पर कृपा करने की अन्तहीन सामर्थ्य पर। वह गंगा माँ के भजन भी गा रहा था। हम लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। उसकी तानें हमारी थकान को कम कर रही थी। तभी अप्रत्याशित ढंग से भजन समाप्त हो गया और गुन्नू खयाल गाने लगा। उसने उन्हीं शब्दों का इस्तेमाल किया जो महाराज बरसों पहले आनन्द से सुनते थे।

प्यारा मैनू दिस्दा नाहीं
पपिया वे मेडी गल सुन जावी

वह ख्याल के बोल जिस तरह गा रहा था, जिसमें वह 'प्यारा' को लगातार दोहरा रहा था, उससे लग रहा था कि वह महाराज के बारे में गा रहा हो न कि दूर बैठे किसी प्रेमी के बारे में, जिसे उसकी प्रेमिका याद कर रही हो। गुन्नू को सुनकर उस समय किसी की भी आँखों में आँसू आ जाते।

रात सर्द गुज़री थी पर दिन अब गर्म होना शुरु हो गया था। बालू पण्डित घाटों की ओर जा चुके थे। वे जल्द ही महाराज के परिवार के तीर्थ पुरोहित को लेकर वापस आ गये। पण्डित और मियाँ तारा सिंह के बीच सम्वाद हुआ जिसमें उन्होंने अपनी और परिवार की पहचान करायी, पुरोहित ने सहमति में ज़ोर से सिर हिलाया और पोथी का वह पन्ना खोला जिसमें जसरोटा के राजघर की पहले की प्रविष्टियाँ दर्ज थीं। मियाँ तारासिंह ने तेज़ी से कुछ पन्नों को

देखा और सन्तुष्ट होकर पुरोहित के पैरों में झुक गये, जिसने सौम्यता से अपना हाथ उनकी पीठ पर रख दिया। दिन चढ़ रहा था। अनुष्ठान से सम्बन्धित ढ़ेर से प्रश्नों और उस अवसर की विशिष्ट आवश्यकताओं को लेकर बातचीत हुईं। हमें रह-रहकर प्रवाह, श्राद्ध, छाई, दक्षिणा और इसी तरह के दूसरे शब्द सनायी देते रहे। मियाँ जी यह सलाह देते हुए लगे कि श्राद्ध में इक्कीस ब्राम्हाणों का भोज भी आयोजित होना चाहिए। इसमें पुराहित को कोई मुश्किल नहीं थी। हमें वहीं रुकने को कहा गया और छोटे से अस्थायी मन्दिर को उठाकर धीरे-धीरे घाट की ओर ले जाया गया। मोरछल धारक उसके ऊपर अभी भी लगातार पंखा चला रहे थे और मरतू झीवर के सिर पर रखा जा रहा था।

घाटों तक यह खबर स्वाभाविक रुप से पहुँच गयी थी कि जसरोटिया के अलावा भी कुछ दूसरे यात्री पहाड़ों से आये हैं। हमारे बीच राजपूत और ब्राह्मण, सुनार और महाजन, लुहार और तरखान, घिरथ और चंग थे। हम सभी जसरोटा या गुलेर से नहीं आये थे, हमें बड़ी संख्या में हरिद्वार आता देखकर दूसरे कई लोग हमारे साथ हो लिये थे, बड़ी संख्या में होने से सुरक्षा मिलती है । तीर्थयात्रा, जो कई महीनों से टल रही होगी अब पूरी हो रही थी। मियाँ जी के जाने के बाद हमने देखा कि पुरोहितों का एक बड़ा समूह हमारी तरफ आ रहा है। वे तेज़ी से अपने यजमानों को पहचानने के काम में जुट गये फिर भले ही वे गरीब हों या निचले तबके के। हमारे समूह में कई को यह पता था कि हरिद्वार में उनके पुरोहित कौन हैं और इसलिए उन्हें एक-दूसरे को पहचानने में कोई मुश्किल नहीं हुई। लेकिन मुझे थोड़ी परेशानी थी। हरिद्वार में हमारे परिवार के पुरोहित का नाम मुझे याद नहीं था। भाई ने बहुत पहले उसका नाम लिया था, मुझे यह भी पता था कि भाई यहाँ आया था। लेकिन मुझे पुरोहित का नाम याद नहीं आ रहा था। जब यह पता चल गया कि मैं गुलेर से आया हूँ, एक पुरोहित ने मुझसे मेरी जात पूछी, मैंने कहा 'रैना', पुरोहित ने अपने एक साथी को पुकारकर कहा कि घाट पर जाकर कश्मीर के पुरोहित को बुला लाये। मैंने तुरन्त उसे टोककर कहा कि मैं गुलेर का 'रैना' हूँ। इससे कुछ देर ऊहापोह बनी रही। आखिरकार पुरोहित बोला कि वह गुलेर के सभी लोगों को पुरोहित है और अगर मैं सचमुच वहाँ का हूँ तो मैं उसका यजमान हूँ और वह मेरा पुरोहित।

जब मुझसे मेरे परिवार के कुछ वरीष्ठ सदस्यों के नाम पूछे गये, मैंने बापूजी और भाई के नाम लिये। पुरोहित ने सिर हिलाया और कहा, वह ये नाम जानता है और वही हमारे परिवार का पुरोहित है। मैं इससे पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हुआ। मैंने पण्डा की बही देखने पर जोर दिया लकिन उसे तब तक टाल दिया गया, जब तक मैं पुरोहित की मदद से घाट पर जाकर गंगा माँ के पानी में पवित्र डुबकी न लगा आया।

कुछ लोगों को अपने सामान की हिफ़ाजत के लिए पीछे छोड़कर हमसे से कई लोग घाट की ओर चले आये। वहाँ मैंने गंगा माँ का फिर से पूरी गरिमा के साथ बहते देखा। धारा क्षिप्रता-से बही चली जा रही थी पर अपेक्षाकृत बेआवाज़। किसी पहाड़ी जलधारा 'खड' की तरह नहीं, जिसे हम अपने घर में सुनते रहते हैं। पानी में उतरती हुई चौड़ी और लम्बी सीढ़ियाँ हर तरह के लोगों से भरी हुई थी लेकिन इस समय मैं नदी में उतरने को उद्यत था। अपने कपड़े उतारकर कमर में गमछा बाँधे मैं पवित्र जल में प्रवेश कर गया। मेरी आँखें बन्द थीं। मैं अपने चारों ओर से बेखबर आँख मीचकर कुछ देर खड़ा रहा। उस अनुभूति ने मुझे घेर लिया। मैं अपने शरीर नहीं, आत्मा की होती सफाई महसूस कर सकता था, मैं कमर तक गहरे गंगा माँ के पानी में खड़ा था, धीरे-धीरे मैं बचपन में याद की हुई प्रार्थना दोहराने लगा। गणेशो ने जो सिक्के मुझे दिये थे, जिन्हें मैंने गमछे के छोर में बाँध रखा था, मैं धीरे-धीरे पानी में छोड़ने लगा, माँ से अनुनय करता हुआ कि वे उन्हें स्वीकार करें। जल ठण्डा था पर इस गर्माते दिन में ताज़गी देने वाला। मैंने तीन डुबकियाँ लगायी और पूरे समय प्रार्थना दोहराता रहा।

जब मैं बाहर आया, पुरोहित, जिसका नाम हरिराम था-सीढ़ियों पर मेरा इन्तज़ार कर रहा था। उसने पूछा कि क्या मैं

कोई खास अनुष्ठान करना चाहता हूँ या मैं यहाँ 'सुख के अस्नान' करने आया हूँ। बाद में पता चला कि 'सुख अस्नान' का आशय यह था कि जब किसी व्यक्ति को अनुष्ठान या अस्थि विसर्जन या इसी तरह का कुछ न करना हो। लेकिन एक दूसरे अर्थ में वह सुख का अस्नान नहीं था क्योंकि आखिरकार महाराज नहीं रहे थे और मैं उनकी 'छाई' के साथ यहाँ आया था। जो भी हो स्नान के बाद पुरोहित ने मुझे इन्तज़ार करने को कहा और मेरे परिवार से सम्बद्ध बही लेने चला गया। मुझे आसपास को ध्यान से देखने का समय मिल गया। पानी में लोगों का हुजूम उतरा हुआ था। पर सीढ़ियों पर भी हर प्रकार के साधु, फकीर और जोगी जगह-जगह बैठे हुए थे। उनमें से एक की लम्बी जटाएँ थीं। वे उसके सिर को लपेटते हुए ज़मीन तक आ रही थीं जैसे उस पर बहुत से सर्प लिपटे हों। पास ही बैठा एक आदमी था जिसकी घनी और लम्बी दाढ़ी थी, चेहरे पर गहरी प्रशान्ति, आँखें ध्यान में बन्द और हाथ में घूमती हुई रुद्राक्ष की माला। प्राचीन काल के ऋषि ऐसे ही दिखते होंगे, मैंने सोचा। एक आदमी छोटे बच्चे के साथ जो शायद उसका पोता था, उसके कन्धे पर हाथ रखे चल रहा था। उनके कपड़े मैले थे लेकिन चेहरे पर प्रसन्नता का भाव था। वह थोड़ी मुश्किल से चल रहा था और मैंने देखा कि उसका दायाँ टखना थोड़ा सूजा हुआ था, किनारों पर हल्का-सा नील जैसे हाल ही में चोट लगी हो।

जितनी देर मैं बैठा और देखता रहा, देखकर इस अद्‌भुत दृश्य को आँखों में भरता रहा, हरिराम हाथ में बही दबाये लौट आया। वह लाल कपड़े में एक मज़बूत डोरी से बँधी थी, जैसी डोरी से हमारे शहर के बूढ़े ज्योतिषि अपनी बही बाँधने के काम में लाते थे। मैं अपने को सुखा कर दोबारा कपड़े पहन चुका था। पुरोहित मेरी बग़ल में बैठकर बही पलटने लगा। पहाड़ से आये कुछ और लोग मुझसे कुछ ही दूर बैठे थे, उनके पुरोहितों को उनके पास बैठा मैं देख पा रहा था। हरिराम पुरोहित अपनी बही को ध्यान से देख रहा था। मैं यह देख पा रहा था कि जो जानकारी वह चाहता था, उसे मिल नहीं रही थी। जैसे ही वह आगे मुड़ा उसकी दायी भौंह पर एक बड़ा मस्सा धूप में चमकने लगा पर जैसे ही उसने अपना सिर दूसरी ओर घुमाया, मस्सा छिप गया और उसकी यह भौंह दूसरी जैसी ही लगने लगी। कुछ समय बाद पुरोहित के चेहरे में थोड़ी-सी चमक आ गयी और वह कुछ नाम पढ़ने लगा, इनमें भाई मानक और बापूजी और ग्वाल का भी नाम था। मुझे पता था कि भाई ने बही में अपने हाथ से लिखा है, हरिद्वार से लौटने पर उसने मुझे यह बताया था। मैं उसके हाथ की लिखी प्रविष्टि देखना चाहता था। पुरोहित उसे ढूँढ नहीं पाया।

अब तक मैं लगभग निश्चिन्त हो गया था। पुरोहित बोला कि भाई के हस्ताक्षर-चौपत्ता में होंगे, जो बही में सिला नहीं जा सका होगा, यह पुरानी प्रविष्टियों का उतार या नकल है। यह देखकर कि कोई और पुरोहित अब तक मेरे पास नहीं आया था और पुरोहित हरिराम को कम से कम मेरे परिवार के कुछ सदस्यों के नाम मालूम थे, मैंने उसे अपना पुरोहित मान लिया। मुझसे पूछे गये जात के प्रश्न में बहुत विस्तार हो चुका था क्योंकि मैंने यह कहा कि मैं तरखान हूँ, इससे यह अन्दाजा लगाकर कि मैं भी दूसरे तरखानों की तरह कुछ खास पढ़ा-लिखा नहीं हूँगा, पुरोहित ने मुझसे पूछा कि क्या मैं बही पर अपने हाथ से कोई निशानी बनाना चाहूँगा। इस पर पुरोहित को समझाने की जगह मैंने चुटकी लेते हुए कहा, 'हाँ, निशानी बनाना अच्छा रहेगा।' दुर्भाग्य से मैं अपनी कूचियों और रंगों का डिब्बा डेरे में ही छोड़ आया था, सो अब पुरोहित की सरकण्डे की कलम को लेकर मैंने काली स्याही की दवात में डुबाया और तय किया कि आम तौर पर बनायी जाने वाली जैसे फूल या कोई आकृति, जो आमतौर पर हरिद्वार में तरखान और सुनार अपनी उपस्थिति दर्ज करने अक्सर बनाते थे, न बनाऊँ। एक रेखांकन मेरे दिमाग में आया, जो इस पवित्र स्थान के अनुकूल था। लगभग कुछ वैसा ही हुआ मानों मैं बापूजी के मुहँ से वह कहानी सुन रहा होऊँ, जिसमें राजा भागीरथ भगवान शिव से आग्रह कर रहे हैं कि वे स्वर्ग से उनकी प्रार्थनाओं के फलस्वरुप नीचे आती गंगा का भार

अपने सिर पर ले ले। मैंने कलम उठायी और कैलाश पर बैठे शिव जी और पार्वती माँ का ऐसा रेखांकन बना दिया जिसमें गंगा शिव जी की जटाओं से निकल रही हैं। उनसे थोड़ी दूरी पर मैंने भागीरथ की आकृति बनायी, जो थोड़े-से आगे झुके हुए हैं, हाथ जोड़कर बैठे हैं। रेखांकन जल्द ही तैयार हो गया। वह उतना अच्छा नहीं बन सका, जितना अगर मैं अपनी कूची से बनाता तो बनता और फिर स्याही भी लगातार सूख रही थी, पर वह ठीक-ठाक ही बन गया और उसे देखकर पुरोहित जी चकित हो गये। अब आमतौर पर बनायी जाने वाली तरखान या सुनार निशानी से अलग, उनकी बही के पन्ने पर एक छोटा-सा रेखांकन भी आ गया था। जब मैं यह बना रहा था, पुरोहित ने कुछ लोगों को पास बुला लिया। कुछ ही समय में मेरे चारों ओर छोटी-सी भीड़ इकट्ठा हो गयी। मैंने रेखांकन पूरा कर पुरोहित की ओर देखा और बिना कुछ कहे मुस्करा दिया। फिर मैंने उससे पूछा कि क्या मैं उसकी बही में अपने हाथ से कुछ लिख सकता हूँ, उसने उत्साह से सिर हिलाया। मुझे भरोसा है कि उसे उम्मीद रही होगी कि मैं टाकरी में एक-दो पँक्तियाँ लिखूँगा जैसा कि और बहुत से लोगों ने उसकी बही में लिखा था। मैंने तय किया कि मैं इससे कुछ अलग करुँगा और उसकी कलम एक बार फिर लेकर मैंने साफ़-सुथरी देवनागरी में लिखना शुरु किया, जो अन्ततः कुछ अधिक ही लम्बा हो गया। जैसा कि अपेक्षित था, मैंने अपना नाम, जात और जहाँ से मैं आया था, उस स्थान का नाम गुलेर लिखा। फिर बापूजी के विषय में सोचते हुए मैंने उनका नाम लिखा, अपनी आँखे बन्द करने पर मुझे लगा मानो वे मेरी बग़ल में हैं। फिर मैंने इसका विस्तार किया, पिता और माँ दोनो ही पक्षों के पुरुषों के नाम लिखे। यह कर चुकने के बाद मैंने कुछ ऐसा लिखा, जिससे यह ज़ाहिर होता था कि मुझे इस पुरोहित के पास भाई के हाथ की लिखी प्रविष्टि नहीं मिली। यह लिखते समय मेरे मन में यही संकोच है यह लिखा। इसके बाद तारीख आदि लिखी।

पुरोहित जी एक बार फिर चकित जान पड़े। उन्होंने मेरी 'शास्त्रीय' लिखाई पर टिप्पणी भी की। अब वे चाहते थे कि वे अपने यजमान के रुप में मेरी चारों ओर खड़े लोगों के आगे मेरी डींग हाँके। मेरे लिख चुकने के बाद पुरोहित ने मेरे हाथ से बही ले ली और मेरे लिखे के नीचे अपनी प्रविष्टि दर्ज की, जो, मैंने सोचा, गैरज़रुरी थी। वह मेरे लिखे का उनकी लिखाई और अन्दाज में संक्षेप था। उन्होंने सिर्फ़ मेरे इस यात्रा पर आने के अवसर को जोड़ दिया था। उन्होंने महाराज की छाई का ज़िक्र किया, जिसके साथ मैं हरिद्वार आया था और साथ ही बहुत संक्षेप में उन्होंने महाराज के वंश का भी हवाला दिया।

यह समाप्त कर मैंने अपनी जेब से कुछ पैसे निकाले और पुरोहित जी को देते हुए उनके पैर छूने झुक गया। उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए आर्शीवाद के शब्द कहे। मैंने उनकी दो बातें दर्ज की थीं। उनकी देवनागरी की लिखाई मेरी लिखावट के आसपास भी नहीं थी। और यह कि उनके दोनों पैरों की पहली अँगुली उनके अँगूठे से बड़ी थी। पहाड़ में हम यह मानते थे कि इसका आशय यह है कि ये अपनी पत्नी के दबाव में रहते होंगे। मैंने आशा की कि ऐसा न रहा हो।

ज्येष्ठ प्रविष्टे २, वि.सं. १८२०

पिछली रात हमारे डेरे में वापस लौटने की चर्चा की। मैं अपनी सूचियों का डिब्बा और कूचियाँ निकालकर पुरोहित हरिराम के चेहरे के रेखांकन पर काम कर रहा था। वह ग़ैरदिलचस्प चेहरा नहीं था। मैंने सोचा था कि वहाँ घर पर लड़के हमारे पारिवारिक पुरोहित को इस तरह पहचान लेंगे। उनका चेहरा बनाने के बाद मैंने लम्बी जटाओं वाले उस साधु के रेखांकन पर काम किया, जिसे मैंने घाट पर तब देखा था, तभी ऊधो सुनार मेरे पास आकर मुझसे बोला कि मियाँ जी मुझसे बात करना चाहते हैं। मियाँजी छोटे-से समूह के साथ बैठे थे। दिन के सारे काम समाप्त हो चुके थे, विर्सजन का अनुष्ठान, ब्राह्मण-भोज, श्राद्धकर्म। लोगों के ऊपर अवसाद छाया था पर थोड़ा सन्तोष भी था क्योंकि

सभी कुछ बिना विध्न के सम्पन्न हुआ था, और यह महाराज की आत्मा के लिए अच्छा था। मुझे बैठने को कहकर मियाँजी ने विनयपूर्वक मुझसे पूछा कि मेरा क्या इरादा है? खासकर यह कि क्या मैं उनके और बाकी लागों के साथ वापस लौटना चाहूँगा। मैंने कहा मैं वापस चलूँगा पर मैंने अब बसोहली जाने का मन बना लिया है। मियाँ जी ने पूरी उदारता से कहा कि अगर मैं चाहूँ उनके साथ महाराज की तरह ही काम करता रह सकता हूँ। वे मुझे बहुत कुछ नहीं दे सकेंगे, वे बोले, पर मुझे इसकी परवाह नहीं थी। मियाँ जी अच्छे आदमी थे, दयालु और महाराज की तरह आसानी से आपा न खोने वाले। पर उनकी चित्रकला में कम ही रुचि थी और मुझे पता था कि मुझे उनके साथ काम करने में मज़ा नहीं आएगा। मैंने विनयपूर्वक उनसे क्षमा माँगी और कहा कि घर लौटने के बाद मैं बसोहली जाऊँगा, जहाँ के महाराज अमृतपाल ने मुझे अपने यहाँ आने का न्यौता दे रखा था। मैंने जोड़ा कि मैं तब भी उनके परिवार का साथ देता रहूँगा और उन इलाको और गुलेर में बार-बार लौटूँगा और मियाँ जी से मिलता रहूँगा। मियाँ जी उदारता से राज़ी हो गये। उस पल मुझे यह पता चल गया कि मैं उस परिवार से हमेशा के लिए दूर नहीं जा सकूँगा, जिसकी मैंने सेवा की है : महाराज और पहले उनके स्वर्गवासी पिता। पर यह मेरे मन में साफ़ था कि मैं, बल्कि मेरा कौशल, महाराज अमृतपाल के संरक्षण में ही बेहतर रहेंगे। मुझे इस क्षण की सोचकर डर लग रहा था। पर इसके गुज़र जाने पर मुझे राहत महसूस हुई। मैंने कृतज्ञता महसूस की।

पहाड़ लौटने के बारे में समूह के लोगों में आगे भी बात हुई। मैं हरिद्वार कुछ और दिन रुकना चाहता था क्योंकि वह अद्‌भूत जगह थी, तरह-तरह के लोगों से और गंगा माँ की पवित्र उपस्थिति से स्पन्दित। पर मुझे पहाड़ का कोई और दल वहाँ दिखायी नहीं दिया और अकेले वापस लौटना न तो सुरक्षित होता न आरामदेह। ज़ाहिर है मियाँ जी अपने इलाके आदि में वापस जाने को उत्सुक थे क्योंकि जागीर आदि के मसले ठीक किये जाने थे और भी बहुत कुछ किया जाना था। यह तय हुआ कि हम यहाँ एक और दिन रूकेंगे फिर परसों के दिन जो मंगलवार था चल देंगे, पश्चिम की ओर जाने के लिए अच्छा दिन। आज का दिन अपेक्षाकृत शान्त था, अलावा दोपहर को हुई थोड़ी-सी उत्तेजना के। बहुत सुबह अपने हाथ की गणेशों के छोटी डिब्बी में रखे घी से मालिश करने के बाद मैं घाट की ओर चल दिया, इस बार मुझे हर की पौड़ी तक जाने का रास्ता किसी से पूछना नहीं पड़ा। वह बहुत सुबह का समय था और वहाँ ज़्यादा लोग नहीं थे। मैं चुपचाप बैठकर हवा का, हमारे इलाके से बिल्कुल अलग यहाँ फैली रोशनी का और निश्चय ही गंगा माँ के बहते पानी की जादुई आवाज़ का आनन्द लेता रहा। इस समय मुझे पानी में दोबारा प्रवेश करना था, मैं वहाँ खड़ा होकर आँखे बन्द किये बापूजी, भाई और परिवार के उन अन्य लोगों के बारे में ध्यान करने लगा, जो अब संसार में नहीं थे। मैंने गणेशों और बेटों के बारे में भी सोचा। जब मैंने पानी में डुबकी लगायी, मुझे लगा कि मेरी तरह उनके भी पाप धुल रहे हैं।

मैं थोड़ी सी देर को घाट पर दोबारा आ गया। घटियार से थोड़ा-सा-आटा लिया और उसके छोटे-छोटे गोले बनाये और उन्हें एड़ी तक पानी में खड़े होकर नदी में फेंक दिया। कितनी जल्दी मछलियाँ उन्हें लेने इकट्‌ठा हो गयी। वे अद्‌भूत थीं, उनमें से कुछ काफ़ी बड़ी थीं। वे बड़ी तेज़ी से पानी में गिरती गोलियों की आवाज और गति का पीछा करती तेज़ी से वहाँ आ रही थीं। जल्दी ही मेरे चारों ओर वे बड़ी संख्या में जमा हो गयीं। उनके पंख हल्के-हल्के मेरे पाँवों को छू रहे थे, मैं वहाँ खड़ा रहा, उस दृश्य का मज़ा लेता और मछलियों को उनका हिस्सा देता हुआ। यह उचित ही है, मैंने सोचा कि ये सभी मछलियाँ गंगा माँ के वाहन के रुप में काम करती हैं। बापू ने हमेशा उन्हें मछली की पीठ पर सोने का कलश हाथ में लिए, शान्त बैठे हुए चित्रित किया था। मैं उन्हें इस समय देख सकता था, किसी एक बड़ी मछली की पीठ पर बैठकर जाते हुए।

मैं बाज़ार में टहलता रहा। वहाँ से अपने पास के थोड़े-से पैसों से घर के लोगों के लिए छोटी-छोटी सौग़ातें ख़रीदता रहा। फिर मुझे वह ख़रीदना ही था जो गणेशो ने मुझसे बार-बार लाने को कहा था : गंगा जल से भरी पीतल की लोटी, जनेऊ की गट्टी और प्रसाद। कई पुड़ियों में फूले और मीठे चने। कामा के छोटे लड़के के लिए मैंने छोटी-सी लकड़ी की गाड़ी ली। वे यहाँ अच्छी बनती हैं। लेकिन मैंने बहुत ख़रीददारी नहीं की, क्योंकि सबकुछ को आखिरकार अपनी ही पीठ या सिर पर ढोना था। एक छोटी-सी दुकान ने मुझे अपनी ओर खासतौर पर खींचा। वहाँ बोरों पर कई तरह की ऐसी जड़ी-बुटियों के ढ़ेर लगे थे, जिन्हें मैं जानता नहीं था। वहाँ कुछ पत्थर और खनिज भी थे, जो शायद पास की पहाड़ियों से लाये गये थे। मुझे विशेषकर हड़ताल पसन्द आया, जो उससे अधिक चमकीला था, जो हमारे घर के पास मिलता था। मैंने इसे कम मात्रा में खरीदा। मुझे इन चीज़ों की ओर ध्यान से देखते हुए देखकर दुकानदार ने एक बूँटी के रंग-लक्षण बताये, जो मेरे लिए अनजाने थे। 'इससे गहरा लाल रंग बनता है', वह बोला, 'अगर इसे दो-तीन दिन पानी में भिगोकर रखा जाए, यह मुझे दिलचस्प लगा और मैंने थोड़ा सा उसे भी खरीद लिया और हड़ताल व बूटी को अपनी कम्बली के एक छोर में बाँध लिया।

उस बाज़ार में देखने को बहुत कुछ था, सुनने को भी और खाने के लिए भी। लोगों के चेहरे बहुत अलग-अलग और बहुत सारे थे। कई ऐसे लोग भी थे, जिनकी तरह के लोगों को मैंने पहले कभी नहीं देखा था। वे पहाड़ पर रहनेवालों से कहीं अधिक साँवले थे और ऐसी ज़ुबान बोल रहे थे, जिसका एक शब्द भी मेरी समझ से बाहर था। वे छोटे-छोटे समूहों में घूम रहे थे, तेज़ कदमों से। स्त्रियाँ कम कद थीं और वे अपनी धोतियाँ कुछ नीचे बाँधे हुए थीं, जो उनके पैरों से होकर पीछे की ओर जाती थीं, ताकि उन्हें चलने में आसानी हो। इस तरह नीचे आती हुई चुन्नटें बहुत सुन्दर थीं, हालाँकि उनके कपड़े सादे थे, मँहगे या सजीली बनावट वाले नहीं थे। पगड़ियों के इतने प्रकार थे, जिनकी मैं सपनों में भी कल्पना नहीं कर सकता थाः लम्बी, छोटी, भरी-पूरी, संकरी, नुकीली, सपाट। ऊँचे पूरे चुस्त लोगों का एक समूह भी वहाँ था, जिनकी पगड़ियाँ काफ़ी बड़ी थीं, सारी सफेद जिनके बीच-बीच में सुनहरा या पीला रंग लगा था। मैं उनकी ज़ुबान को कुछ-कुछ समझ पा रहा था। मेरे पता करने पर मालूम हुआ कि वे गुजरात से आये थे। लेकिन उनकी पगड़ियाँ उन गुजरातियों से अलग थी, जिन्हें मैंने पहाड़ पर देखा था। वे तेज़ी से चल रहे थे। और मैंने पाया कि उनमें से एक के भी शरीर पर अतिरिक्त गोरापन नहीं था। वे सब के सब चुस्त-दुरस्त लग रहे थे।

मैं कई मन्दिरों के भीतर गया और बाहर आया, छोटे मन्दिर, बड़े मन्दिर। लगभग हर मोड़ पर एक न एक मन्दिर ज़रूर था। वहाँ विष्णु भगवान, शिवजी और गंगा माँ के मन्दिर तो थे ही और बहुत-से दूसरे भी, जो हमें पहाड़ों में नहीं मिलते। कम अज कम हर जगह। यहाँ हर तरफ लोग उनमें जा रहे थे और कुछ न कुछ चढ़ाकर बाहर आ रहे थे। जब खाने का समय हुआ, अपने डेरे पर वापस आकर मैंने खाना बनाया। बाकी सब भी यही कर रहे थे, सुनार, तरखान, लुहार, धिरथ आदि सभी। ब्राह्मणों ने अपना भोजन खाया। उनमें से एक बुलाकी पर मियाँ जी और उनके साथियों के भोजन की जिम्मेदारी थी। वो यह तब से कर रहा था, जबसे हम घर से हरिद्वार के लिए निकले थे। जब मैं खाना खाने के बाद आराम करने पीपल के पेड़ के नीचे लेटा, एक आदमी मुझे ढूँढता हुआ आया। जैसे ही वह मेरे क़रीब आया, मुझे याद आ गया कि कल जब मैं पुरोहित की बही में रेखांकन कर रहा था, वह उस छोटे-से समूह का हिस्सा था, जो मेरे चारों ओर इकट्ठा हो गया था। उसने अपना परिचय देते हुए यह कहा कि वह अपने महाराणा के साथ राजस्थान से आया हैं। 'उदयपुर' शायद उसने यह कहा था। यही उसके स्थान का नाम था। उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं थोड़ी देर के लिए उसके साथ चल सकता हूँ क्योंकि उसे महाराणा ने मुझे लाने भेजा है। मैं थोड़ा अचम्भित हुआ पर विचलित नहीं। अपने समूह के धिन्नू लुहार को कहकर कि मैं जल्दी ही लौट आँऊगा, मैं उसके

साथ चल दिया। खासी देर चलने के बाद हम एक हवेली पर जा पहुँचे। यह एक बहुत बड़ी इमारत थी, जिसके अत्यन्त प्रभावी लकड़ी के फाटक थे। वह मुझे अन्दर ले गया और मुझे वहाँ बैठाकर थोड़ा इन्तज़ार करने को कहा। ज़ाहिर है इस हवेली में उसकी हर ओर पहुँच थी। शायद यह उसी के मालिक की थी। इन्तज़ार करते हुए मैं चारों ओर देखना लगा। मेरा ध्यान दीवारों पर टँगे चित्रों पर गया। ऐसा लगता था मानो सारी दीवार ही चित्रों से ढ़ँकी हो, जो अधिकतर शिकार और महलों के भीतर के दृश्य थे। मुझे वे काम आकर्षक और कई जगहों पर कौशलसम्पन्न जान पड़े। यह कोई भी देख सकता था कि कागज़ पर कलम से काम करने पर जो परिष्कार सहज प्राप्त हो जाया करता है, इन चित्रों में नहीं था। उसकी कोशिश भी नहीं की गयी थी। पर काम जीवन्त था। कई रंगों का उपयोग हुआ था, खासकर चटख लाल का जिसके प्रति चित्रकार में अधिक ही आर्कषण था। आकृतियाँ थोड़ी छोटी थीं और थोड़ी भारी। कुछ देर देखते रहने के बाद मैं कुछ-कुछ थक गया। चित्रों में बहुत कुछ था। वहाँ ढेर सारे मनुष्य थे, पर उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता था। हर हाल में इन चित्रपटों पर कुछ ज़्यादा ही घट रहा था।

मेरे यह सब देखने के दौरान ही, मुझे मेरे डेरे से यहाँ लाने वाला आदमी वापस आया और उसने मुझे अपने पीछे आने को कहा। ज़ाहिर है उसके मालिक, महाराणा, तीर्थ यात्रा पर आये हुए थे। हवेली के ठीक बगल में मैंने हाथियों, घोड़ो और पालकियों का विराट शिविर देखा। तम्बू समृद्ध थे और उनमें कढ़ाई की गयी थी। मुझे छोटे रास्तों से ले जाकर एक बड़े तम्बू में जहाँ महाराणा साहब गाव तकिये से टिके बैठे थे, ले जाया गया। वे हुक्का पी रहे थे और उनके मुसाहिब उनके चारों ओर बैठे थे मानो उनके राज्य से दूर उनका छोटा-सा दरबार लगा हो। मुझे महाराणा के सामने प्रस्तुत किया गया। मैं हाथ जोड़कर झुक गया। महाराज मुझसे बहुत गम्भीर और प्रभुता सम्पन्न आवाज़ में कुछ बोले पर मैं उनके शब्द पूरी तरह समझ नहीं पाया क्योंकि वे अजनबी किस्म की हिन्दी बोल रहे थे। लेकिन उनका आशय समझने में मुझे कोई मुश्किल पेश नहीं आयी। लगता था वे पुरोहित की बही में मेरे यकलख़्त रेखांकन करने के पिछले दिन के किस्से से प्रभावित थे। वे चित्रकला के प्रशंसक थे और मेरे चित्रों और रेखांकनों का बस्ता देखना चाहते थे अगर वह मेरे साथ हो। मैं कुछ भी साथ नहीं लाया था और जो रेखांकन मैंने रास्ते में किये थे, उन्हें मैं डेरे पर छोड़ आया था। संयोगवश महाराणा साहब ने अपने एक मुसाहिब से कहा कि वह मुझसे पूछे कि क्या मैं उनकी सेवा में आना और उनके साथ उद्यपुर जाना चाहूँगा। प्रस्ताव आकर्षक था और शायद इससे मेरे साधन और मेरा सामाजिक स्तर भी ऊपर उठ जाता। वे बहुत रईस और चित्रकला में बहुत दिलचस्पी लेने वाले सरंक्षक थे। लेकिन मैं अपने प्रिय पहाड़ को छोड़कर कहीं और जाना नहीं चाहता था। न ही मुझे महाराणा की हवेली की चित्रकला इतनी पसन्द आयी थी। वे ख़राब नहीं थी पर मैं उस तरह का काम नहीं करना चाहता था।

शायद मेरी प्रतिक्रिया कुछ अधिक ही जल्दी में दी गयी थी। वैसे भी प्रस्ताव बहुत अचानक आया था। मैं इतना ही कर सका कि बहुत झुककर दोनों हाथ जोड़कर यह कहूँ कि मैं उनका बहुत आभारी हूँ पर मेरा दिल पहाड़ों में अटका है। महाराणा धीरे मुस्कुराए, उन्होंने अपना सिर हिलाया और उस आदमी की ओर इशारा किया, जो मुझे वहाँ लाया था कि मैं जा सकता हूँ। दूसरे आदमी की तरह ही मैंने तीन कदम पीछे लिये और तम्बू से बाहर निकल बाया। मैंने उस आदमी से विदा ली, जो मुझे वहाँ लाया था, अपनी कृतज्ञता व्यक्त की लेकिन इसके पहले मुझे यह पता चल गया कि वे उदयपुर के महाराणा नहीं, उनके छोटे भाई थे।

मन में मिली जुली अनुभुतियाँ लिये, मैं अपने डेरे पर वापस आ गया : कुछ उत्साह, कुछ असमंजस।

(अँग्रेज़ी से अनुदित)

कृष्णनाथ

कमलेश

यह निबन्ध कमलेश जी से 'समास' के इस अंक के लिए लिखने को कहा था। उन्होंने कृपापूर्वक हमारा आग्रह स्वीकार कर उसे पूरा किया। कृष्णनाथ जी हिन्दी के उन अनोखे लेखकों में थे जिन्होंने अन्य चीज़ों के अलावा विलक्षण यात्रा-वृत्तान्त लिखे हैं। कमलेश जी और उनका साथ पुराना था। कमलेश जी उनकी कुछ कृतियों के सम्पादक और प्रकाशक रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि वे दोनों जो इस लेख के लिखे जाने के समय जीवित और सक्रिय थे, आज कालकवलित हैं। यह निबन्ध इन दोनों उत्कृष्ट लेखकों की स्मृति का शिखालेख है।

कृष्णनाथ जी के नाम से कोई साठ वर्ष पहले ही परिचित हो चुका था। गोरखपुर में समाजवादी आन्दोलन का मैं छोटा-सा कार्यकर्ता था। सन् १९५६ में जब लोहिया जी ने नयी समाजवादी पार्टी बनायी, कृष्णनाथ जी के बड़े भाई रंगनाथ जी पार्टी के महामन्त्री बने। कृष्णनाथ जी के काशी विद्यापीठ के द्वार के साथ स्थित निवास पर सभी समाजवादी नेता ठहरा करते थे। लोहिया जी भी वहीं ठहरते थे। हम छोटे समाजवादी कार्यकर्ताओं को काशी विद्यापीठ के निवास का पता चलने में और फिर वहाँ पहुँचने में बहुत समय नहीं लगा। जब हम स्वयं थोड़े पुराने कार्यकर्ता हो गये, बनारस पहुँचने पर स्टेशन से काशी विद्यापीठ जाकर कृष्णनाथ जी के घर पर ही सामान रखकर, कुछ खा-पीकर तब शहर में अन्यत्र जाना, दिनचर्या का यह क्रम निश्चित हो गया।

कृष्णनाथ जी चार भाई थे। सबसे बड़े भाई श्रीनाथ शर्मा जी कुछ दिनों तक लखनऊ और बनारस के बीच राजनीति में समय लगाने के बाद दिल्ली में रहने लगे थे। उन्होंने मध्यप्रदेश के काग़ज मिल, जे.के. पेपर्स को दिल्ली के प्रेसों से निकलने वाली काग़ज कतरनों की आपूर्ति करने का व्यवसाय विकसित कर लिया था। कृष्णनाथ जी शुरू-शुरू में दिल्ली आने पर पहले श्रीनाथ जी के पहाड़गंज स्थित निवास पर ही रुकते थे। उनसे मिलने के लिए वहाँ बार-बार जाने से श्रीनाथ जी से भी घनिष्ठता बढ़ने में ज़्यादा समय नहीं लगा। अब श्रीनाथ जी दिवंगत हैं। पहाड़गंज की दिशा में जाने पर उनके निवास पर बरबस ध्यान जाता है। उनकी रम्य स्मित मुखाकृति मस्तिष्क में कौंध जाया करती है। वे अक्सर दिल्ली के टी हाउस में आया करते थे। वहाँ उनके अनेक परिचित बैठे होते थे। टी हाउस जाने पर वहाँ किसी से भी श्रीनाथ जी के आने-जाने का समाचार मिल जाया करता था।

श्रीनाथ जी के बाद दूसरे भाई जयनाथ जी थे। उनको प्रोफ़ेसर आनन्द कुमार और नारी आन्दोलन की नेता रंजना कुमारी के पिता के रूप में जाना जा सकता है। मुझसे जयनाथ जी भी बहुत स्नेह से मिलते थे। वे कुछ बहुधन्धी व्यक्ति लगते थे और अलग-अलग जगहों पर मिला करते थे। उनसे मेरी मुलाकात कभी लखनऊ, कभी बनारस और बाद में दिल्ली में हुआ करती थी। उन्होंने ही अपने पुत्र बिल्लू (आनन्द कुमार) का परिचय कराया था। बिल्लू बाल्यावस्था में ही अपने घर आने वाले समाजवादी आन्दोलन के नेताओं से परिचित हो चुके थे। लोहिया जी जब १९६३ में

फर्रुखाबाद से लोकसभा के सदस्य बनकर दिल्ली आ गये, आनन्द कुमार अपने बचपन के नाम से लोहिया जी को चिट्ठियाँ लिखते थे।

तीसरे भाई रंगनाथ जी अपने अन्य भाइयों से भी अधिक सुन्दर व्यक्तिव के धनी थे। गौरवर्ण, चौड़ा कन्धा, मैंने उन्हें सदा मुस्कुराते हुए ही देखा। मैंने जब पहली बार उन्हें देखा, उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी के महामन्त्रित्व पद से छुट्टी ले ली थी और विद्यापीठ में समाजशास्त्र के अध्यापक हो गये थे। उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय में राधाकमल मुखर्जी और डी. पी. चट्टोपाध्याय जैसे ख्यातिप्राप्त अध्यापकों का सान्निध्य मिला था। समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में रंगनाथ जी की अच्छी ख्याति थी। डॉ. लोहिया के आग्रह के कारण उन्हें सोशलिस्ट पार्टी का महामन्त्रित्व सँभालना पड़ा था। जब वे पुनः विश्वविद्यालयी जीवन की ओर लौटे तो लोगों को बड़ी आशाएँ थीं। अपनी एक बंगाली सहपाठिनी से उनका प्रेम विवाह भी हो चुका था। पढ़ी-लिखी बंग महिला को पूरबिया संयुक्त परिवार में रहने में कुछ कठिनाई हो रही थी। रंगनाथ जी इस समस्या से निपट ही रहे थे। उनकी अकाल मृत्यु बृहत्तर समाजवादी परिवार पर घोर वज्रपात बनकर आयी। उनके परिवार ने इसे कैसे सहा होगा? इसे सहन कर पाना परिवार के लिए कितना कठिन रहा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। अपने बड़े भाइयों की एक-एक कर अकाल मृत्यु होने से कृष्णनाथ जी के जीवन में कैसा अवसाद आया होगा, यह कभी-कभी ही (किन्हीं-किन्हीं मित्रों के बीच ही) कृष्णनाथ जी की अभिव्यक्तियों में प्रकट हुआ है। उन्होंने आजीवन विवाह न करने का निर्णय इसी अनुभव के कारण लिया।

चारों भाइयों में कृष्णनाथ जी सबसे छोटे थे। काशी विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए कृष्णनाथ जी की प्रसिद्धि क्रिकेट के खिलाड़ी के रूप में भी थी। अन्य भाइयों की तरह उनकी काया भी लम्बी थी, चौके-छक्के मारने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं होती थी। क्रिकेट के खिलाड़ी जिस तरह स्वआयु-उचित जीवन का आनन्द उठाते हैं, वैसा करते तो वे कभी नहीं लगे, लेकिन कृष्णनाथ जी को खेलने में आनन्द बहुत आता था। फिर भी किसी क्षण में उन्होंने क्रिकेट खेलना छोड़ दिया।

कृष्णनाथ जी ने अध्ययन काल के बाद सामाजिक कार्यों में लगने का निर्णय कर लिया। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र पलामू को चुना। तब तक पलामू के आदिवासियों में राजनीतिक सक्रियता नगण्य रही थी। कृष्णनाथ जी वहाँ आदिवासियों में कार्य करने के लिए चले गये। वहाँ उन्हें एक सिरे से राजनीतिक जागृति लाने का काम करना पड़ा। उन्हें शीघ्र ही आदिवासियों को संगठित करके एक आन्दोलन चलाना पड़ा। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। कई महीने बाद भी जब वे नहीं छोड़े गये, सोशलिस्ट पार्टी को उनकी रिहाई के लिए कुछ क़दम उठाने पड़े। आदिवासी लोगों के बीच काम करने से कृष्णनाथ जी का मानसिक जीवन गहन रूप से समृद्ध हुआ। हम लोग अनेक वर्षों तक कृष्णनाथ जी से उनके इन अनुभवों को सुनने की कामना किया करते थे।

डॉ. राममनोहर लोहिया ने कृष्णनाथ जी को सोशलिस्ट पार्टी का महासचिव बनाकर हैदराबाद बुला लिया। पार्टी के कार्यों के अतिरिक्त वे लोहिया जी के द्वारा सम्पादित और प्रकाशित वैचारिक मासिक पत्र (अंग्रेज़ी) मैनकाइण्ड के सम्पादक मण्डल में भी सम्मिलित हुए और उसके लिए अनेक लेख अंग्रेज़ी में लिखे। हैदराबाद में रहते हुए उनका सम्बन्ध साहित्यिक मासिक पत्र 'कल्पना' से भी हुआ। वे कल्पना में भी लिखने लगे। भाषा पर उनका अनुशासन किसी भी बड़े साहित्यकार से कम नहीं रहा है। शीघ्र ही उन्हें हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्रों में साहित्यकार के रूप में पहचाना जाने लगा। कल्पना के प्रकाशक व सम्पादक बद्री विशाल पित्ती जी से भी उनकी घनिष्ठता हो गयी, जो पित्ती जी के जीवनभर बनी रही।

काशी के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन के प्रमुख लोगों से कृष्णनाथ जी के स्नेहपूर्ण सम्बन्ध थे। कृष्णनाथ जी से आत्मीयता बढ़ने के बाद इनमें से अनेक से हमें भी मिलने का सुअवसर मिला।

एक तो जयनाथ जी के मित्र थे, वे रिश्ते में महामना मदनमोहन मालवीय जी के भांजे लगते थे। उनके पिता की गणना काशी के बड़े वैद्यों में होती थी। वैद्य के रूप में उनकी भी प्रसिद्धि थी। उन्हें यूरोप में हॉलैण्ड आदि देशों में और कई दक्षिण अमेरिकी देशों में निदान के लिए बुलाया जाता था। संगीत में भी उनकी गति थी। सितार वादन में रविशंकर उनके गुरुभाई थे। जब जयनाथ जी हमें उनके यहाँ ले जाते तो पहले तो हम लोग दिव्य ठंडाई का आस्वादन करते थे, उसके बाद मनुहार करके उनका सितार वादन सुना जाता था।

कृष्णनाथ जी के घनिष्ठ मित्रों में प्रमोद जी थे जिनका परिवार रायकृष्ण दास जी के परिवार का निकट सम्बन्धी था। उनकी भी साहित्य और कलाओं में गहरी रुचि थी। प्रारम्भ में आकृति मूलक चित्र बनाने के बाद वे अब अमूर्त चित्र बनाने लगे थे। कृष्णनाथ जी हमें उनके घर भी अवश्य ले जाते और उनके यहाँ कभी भोजन तो कभी प्रातःकालीन जलपान हुआ करता था। बाद में उनके चित्रों की बानगी ली जाती थी।

कृष्णनाथ जी जिस विद्या का भी अध्ययन करते थे, भली-भाँति करते थे। उस विद्या में उनकी गहरी पैठ हो जाती थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उन दिनों जब वे दिल्ली आते, हमारे साथ कनॉट प्लेस की सारी पुस्तक की दुकानें छान मारते। प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों की पुस्तकें वे खरीदते ही, विश्व के नये-नये अर्थशास्त्रियों की पुस्तकें ढूँढ़ने में भी उनका समय लगता था।

अपने शोध कार्य के लिए उन्होंने भारत के प्रतिरक्षा बजट को अपना विषय चुना था। अब उन्हें बार-बार दिल्ली आना पड़ता था। सप्रू हाउस के पुस्तकालय में वे घण्टों नोट लेते रहते। परिचित संसद सदस्यों के यहाँ से बजट दस्तावेज मिल जाते। संसद की कार्यवाही के विवरणों में से भी उन्होंने काफ़ी जानकारी ढूँढ़ निकाली। तब हमें भारत की प्रतिरक्षा नीति में कृष्णनाथ जी की गहन पैठ का पता चला। विदेशों से होने वाली सामरिक सामग्री की खरीद में कैसा भ्रष्टाचार होता है यह बात भी उन्हीं दिनों सामने आने लगी। कृष्णनाथ जी की थीसिस का प्रकाशन हैदराबाद से हुआ। उसके प्रकाशन में बद्रीविशाल पित्ती जी की गहरी दिलचस्पी थी। दुर्भाग्यवश वह पुस्तक उत्तर भारत में बिकती हुई नहीं दिखी। इसके कारण कृष्णनाथ जी के इस महत्त्वपूर्ण अवदान से लोग अपरिचित लगते हैं।

उन दिनों बाराखम्भा रोड पर स्थित सप्रू हाउस हम लोगों का अड्डा हुआ करता था। भारतीय नेतृ वर्ग ने सप्रू हाउस का निर्माण अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों की परिषद के लिये किया था। इण्डियन कौन्सिल ऑफ़ वर्ल्ड अफ़ेयर्स वहीं से चलता था। इसका त्रैमासिक पत्र इण्टरनेशनल अफ़ेयर्स का सम्पादन और प्रकाशन भी वहीं से होता था।

भारत को स्वतन्त्रता मिलने के बाद एशियायी और अफ्रीकी देशों को भारत से बहुत आशाएँ थीं। इसलिए इस संस्था ने १९४६ में एशियायी सम्बन्ध कॉन्फ्रेन्स का आयोजन किया था। इसमें एशिया के सभी देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। गाँधी जी और जवाहरलाल नेहरू सहित अनेक भारतीय नेताओं ने भी इसे सम्बोधित किया था। आशा की जाती थी कि ऐसे सम्मेलन भविष्य में भी होते रहेंगे। इन सम्मेलनों के माध्यम से भारत की विदेश नीति ऐसे मार्ग पर अग्रसर होगी कि विश्व में भारत का सुनिश्चित स्थान बनेगा। बाद में प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने जिस तरह की विदेश नीति चलायी, उससे यह आशा धूमिल ही होती गयी।

इण्डियन कौन्सिल ऑफ़ वर्ल्ड अफ़ेयर्स को भारत सरकार के विदेश मन्त्रालय का अनुदान मिलता था। भारत आने

वाले विदेशी नेताओं की सभाएँ भी इसके हॉल में हुआ करती थीं। अध्येताओं को वैदेशिक मामलों में प्रशिक्षित करने के लिए यहाँ स्कूल ऑफ़ इण्टरनेशनल स्टडीज की भी स्थापना हुई। इसका बहुत अच्छा पुस्तकालय भी खुला। प्रारम्भिक पदाधिकारियों के प्रयत्नों से यह पुस्तकालय समृद्ध भी होता रहा। सप्रू हाउस की देख-रेख पर बहुत ध्यान दिया जाता था। उसके 'लॉन ' इतने सुन्दर थे कि बहुत से लोग वहाँ घूमने आया करते थे। यह कहा जाने लगा था कि सप्रू हाउस तो एक लॉन है जिसके साथ एक पुस्तकालय जुड़ा हुआ है। बहुत से लोग वहाँ हरियाली पर बैठकर गपशप मारने के लिये आया करते थे।

सम्बन्धित विषयों के विद्यार्थी और शोधछात्र सप्रू हाउस के पुस्तकालय का पूरा लाभ उठाते थे। मेरे जैसे लोग भी वहाँ पत्रिकाएँ पढ़ने जाया करते थे। धीरे-धीरे वहाँ काम करने वाले शोध छात्रों से भी हमारी घनिष्ठता हो गयी। उनमें से अनेक लोग आजीवन मित्र बन गये। कृष्णनाथ जी जब अपने शोध कार्य के सिलसिले में दिल्ली में दीर्घकाल के लिये रहने लगे तो सप्रू हाउस हम लोगों का रोज़ मिलने-जुलने का अड्डा हो गया।

कृष्णनाथ जी के बड़े भाई रंगनाथ जी के अनेक सहपाठी समाजशास्त्री थे। उनमें से कई कृष्णनाथ जी के भी मित्र हो गये। प्रोफ़ेसर रमेश चन्द्र तिवारी लखनऊ विश्वविद्यालय में रंगनाथ जी के सहपाठी रहे थे। आग्रह करके उन्हें भी कृष्णनाथ जी लखनऊ से काशी विद्यापीठ ले आए। उन लोगों ने मिलकर काशी विद्यापीठ से समाज विज्ञान की एक पत्रिका निकाली। हिन्दी में विद्वतापूर्ण प्रबन्धों की इस तरह की गम्भीर पत्रिकाएँ नहीं निकलती रहीं थीं। कृष्णनाथ जी जब तक विद्यापीठ में रहे, उन्होंने इसे नियमित निकालते रहने का पूरा प्रयास किया।

सोशलिस्ट पार्टी की अनेक मूलभूत माँगें हुआ करती थीं। इन माँगों को लेकर पार्टी के लोग हर साल सत्याग्रह किया करते थे। सत्याग्रह करने के बाद उन्हें जेल की सज़ा होती थी। जमानत देकर तुरन्त छूट पायी जा सकती थी, लेकिन सत्याग्रही की मर्यादा होती थी कि वह जमानत पर न छूटे और पूरी सज़ा भुगते। इस तरह प्रति वर्ष हजारों लोग इन माँगों को लेकर जेल जाते थे। ये माँगें सोशलिस्ट पार्टी की नीतियों के आधार पर निश्चित की गयी थीं। इनमें एक माँग थी दामों की सीमा बाँधने की। पार्टी के अनुसार वस्तुओं के लागत मूल्य और बिक्री मूल्य में ड्योढ़े से ज़्यादा का फ़र्क नहीं होना चाहिए। उसी तरह सोशलिस्ट पार्टी की एक हिमालय नीति थी, जो देश की प्रतिरक्षा से जुड़ी हुई थी। पार्टी के लोग प्रति वर्ष हिमालय बचाओ सम्मेलन करते थे। उसी तरह पार्टी की विशेष जाति नीति थी। माना जाता था कि पिछड़ी जातियों के लोगों और शूद्रों-आदिवासियों के साथ पिछली शताब्दियों में बहुत अन्याय हुआ है, इसलिए उनको विशेष अवसर देना चाहिए। सोशलिस्ट पार्टी ने इसका गणित भी कर रखा था। इसे साठ सैकड़ा का सिद्धान्त कहा जाता था। अर्थात् जीवन के हर क्षेत्र में, पार्टी संगठन में भी इन जातियों के लोगों के लिए (इनमें स्त्रियाँ भी शामिल थीं) साठ प्रतिशत स्थान आरक्षित रहने चाहिए। इसीलिए सोशलिस्ट पार्टी के पदाधिकारियों में पिछड़ी जातियों के कार्यकर्ताओं की संख्या अधिक हुआ करती थी।

सोशलिस्ट पार्टी की एक भाषा नीति भी थी। भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में, राज-काज़ में भी भारतीय भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए। अँग्रेज़ी अख़बार और अँग्रेज़ीदाँ लोग इस नीति का मज़ाक उड़ाया करते थे। अँग्रेज़ी अख़बारों के कारण ही यह नीति कुछ अहिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी लाओ नीति कह कर के बदनाम की गयी। तमिलनाडु और बंगाल में इसी नाते इसका विरोध भी हुआ। लोगों ने अपनी भाषा बाँग्ला या तमिल की बजाय अँग्रेज़ी को पसन्द किया, ताकि हिन्दी को दूर रखा जा सके। अँग्रेज़ी अख़बारों का सोशलिस्ट पार्टी से विद्वेष इस नीति के कारण इस हद तक बढ़ा कि पार्टी की ख़बरें यहाँ तक कि डॉक्टर लोहिया के राष्ट्रीय समस्याओं पर महत्वपूर्ण बयान भी उनके द्वारा

नहीं छापे जाते थे। अनेक हिन्दी दैनिक पत्र भी इन्हीं अँग्रेज़ी प्रकाशकों द्वारा निकाले जाते थे। इन हिन्दी समाचार-पत्रों में इतना भी आत्मसम्मान नहीं था कि वे जिस भाषा की रोटी खा रहे थे, उस राष्ट्रभाषा का समर्थन कर सकें। ऐसा वातावरण बनाने में प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के दबदबे का और उनकी अँग्रेज़ीपरस्त नीति का बहुत बड़ा योगदान था। सोशलिस्ट पार्टी हर साल अँग्रेज़ी को हटाकर भारतीय भाषाओं को लाने के लिए जगह-जगह पर सत्याग्रह और सम्मेलन करती थी।

कृष्णनाथ जी की भाषा आन्दोलन में गहरी रुचि थी। वे शुरू से ही भाषा आन्दोलन से जुड़े हुए थे। उन्होंने कई वर्षों तक अँग्रेज़ी हटाओ सत्याग्रहों में भाग लिया। राजनीति से थोड़ा अलग होकर जब वे काशी विद्यापीठ में पढ़ाने लगे तब अँग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन उनकी राजनीतिक सक्रियता का प्रमुख रूप बन गया। बनारस में रहते हुए वे अँग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन के महामन्त्री हो गये। उन्होंने कई अँग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन भी आयोजित किये। एक अँग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन बनारस में भी हुआ। उस अवसर पर जो स्मारिका निकाली गयी, वह भी औपचारिक मात्र नहीं थी। उस स्मारिका में कृष्णनाथ जी के आग्रह पर मैंने भी एक लेख लिखा था। बाद में भी कृष्णनाथ जी का अँग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन से सम्बन्ध बना रहा। अनन्तर अँग्रेजी हटाओ आन्दोलन का दायित्व डॉ. वेद प्रताप वैदिक ने सँभाल लिया।

काशी में जितनी भी विद्वता की संस्थाएँ थीं वहाँ कृष्णनाथ जी का आना-जाना था। वहाँ काम कर रहे विद्वानों से उनका वैचारिक सम्वाद भी चलता रहता था। श्री जयप्रकाश नारायण ने जब राजघाट, वाराणसी में गाँधी अध्ययन संस्थान की स्थापना की, वहाँ के अनेक शोधकर्ता कृष्णनाथ जी की मित्र मण्डली में शामिल थे। जब भी अवसर लगे कृष्णनाथ जी वहाँ जाया करते थे। वहाँ होने वाले परिसम्वादों में तो वे भाग लेते ही थे। संस्था के लिए कृष्णनाथ जी का क्या अनुदान था, इसका पता गाँधी अध्ययन संस्थान की प्रकाशित रिपोर्टों में पाया जा सकता है।

इसी तरह जब सारनाथ में तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान की स्थापना हुई, वहाँ के विद्वानों से भी कृष्णनाथ जी का अभिन्न सम्बन्ध हो गया। (संयोग ही है कि जब प्रोफ़ेसर आनन्द कुमार ने अपने गृहनगर में मकान बनाने का निर्णय लिया तो उन्होंने इसके लिए भूमि सारनाथ में खरीदी और उनका अपेक्षाकृत विशाल भवन तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान के निकट ही बना हुआ है। कृष्णनाथ जी जब भी बनारस की ओर लौटते हैं, वहीं रहते हैं।) प्रोफ़ेसर समदण्ड रिनपोचे तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान के विद्वान अध्यक्ष थे। उनसे कृष्णनाथ जी की अन्तरंगता स्थापित होने में ज़्यादा समय नहीं लगा। बौद्ध विद्या में कृष्णनाथ जी की रुचि बढ़ती गयी। अपने स्वभाव के अनुसार कृष्णनाथ जी जिस भी विद्या को पकड़ते हैं, उसमें गहरी पैठ बना लेते हैं। उसी तरह बौद्ध दर्शनों और साधनाओं को समझने में भी उन्होंने खूब मन लगाया और उनमें पारंगत होते गये।

श्री जगन्नाथ उपाध्याय और डॉ. रमाशंकर तिवारी जी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में बौद्ध विद्या के प्राध्यापक थे। रिनपोचे जी ने इनको भी तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान से जोड़ लिया था। उपाध्याय जी विद्वत्ता के अतिरिक्त सामाजिक (कभी-कभी राजनीतिक) रूप से भी सक्रिय थे। इस सिलसिले में उनकी समाजवादी नेता राजनारायण के साथ हुई हाथापाई प्रसिद्ध थी। वे लोकप्रिय अध्यापक थे। लद्दाख, लाहुल स्पीति, किन्नौर आदि के अनेक विद्यार्थी उनके यहाँ रहकर पढ़ते थे। उपाध्याय जी उनके उच्च उपाधि प्राप्त करने तक उनकी देखभाल करते थे। कृष्णनाथ जी से उपाध्याय जी की कई स्तरों पर मित्रता थी। समाजवादी आन्दोलन की मित्रता, बौद्ध विद्याओं के सहअध्ययन में बदल गयी। रमाशंकर तिवारी जी को तो रिनपोचे जी ने तिब्बती अध्ययन संस्थान में भी बुला लिया। कृष्णनाथ जी

बौद्ध विद्या में रुचि बढ़ने के बाद रमाशंकर तिवारी के साथ भी काफ़ी बातचीत और सलाह-मशविरा करने लगे। कुछ ही वर्षों में ऐसा लगने लगा जैसे कृष्णनाथ जी अर्थशास्त्र के अध्यापक अवश्य हैं, समाजशास्त्र में भी उनकी गति है, लेकिन वे मूलतः जैसे बौद्ध विद्या के विद्वान हैं।

कृष्णनाथ जी का तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान में आना-जाना बढ़ता रहा। वहाँ के अनेक शोधकर्ताओं से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध हो गये। समदण्ड रिनपोचे जी से भी उनकी घनिष्ठता लगातार बढ़ती रही। रिनपोचे जी अद्वितीय विद्या सम्पन्न थे। वे उनके किसी भी प्रश्न का सम्यक समाधान कर सकते थे। साथ ही वे अपनी लामा परम्परा के अनुसार गहन साधना में भी दीक्षित थे। उनकी साधना ने उनकी विद्या को अप्रतिम गहराई प्रदान की थी। कृष्णनाथ जी ने उनसे अपने प्रश्नों का समाधान पाया ही होगा साथ ही उनके मार्गदर्शन में उनकी बौद्ध साधनाओं में भी गति बढ़ती गयी।

कृष्णनाथ जी एक बार श्री सत्यनारायण गोयनका द्वारा बर्मा से लाकर भारत में पुनः प्रचलित की गयी विपश्यना ध्यान पद्धति की साधना के लिए शिविर में भी एक मास के लिए सम्मिलित हुए। वहाँ उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ साधना की। वहाँ से आने के बाद जब हमने उन्हें देखा तो पाया कि उनका वज़न बहुत कम हो गया है। साथ ही उनके मुख पर एक तरह की शान्ति विराज रही है। उनका चित्त पहले से ही निर्मल था। साधना के बाद उसमें विशेष स्थिरता आ गयी है। कृष्णनाथ जी ने अन्तरंग बातचीत में विपश्यना के अपने अनुभव की कुछ बातें बतलायीं।

कृष्णनाथ जी सम्भवतः मन्त्र साधना में भी तल्लीन थे। तरह-तरह की आध्यात्मिक साधनाओं ने उनके जीवन में सहजता, दुर्भावशून्यता, अपरिग्रह जैसे अनेक सद्भावों का समावेश कर दिया है। उनके साथ या उनके आसपास रहकर हमारे जैसे लोग इस तरह के सद्भावों का कुछ स्पर्श पा जाते हैं। कभी-कभी बौद्ध धर्म और उसकी साधनाओं के सम्बन्ध में उनकी विद्वता के भी कुछ उदाहरण सामने आ जाते हैं।

उनकी विद्वता का मैं भी एक बार साक्षी रहा हूँ। कृष्णनाथ जी दिल्ली आये थे। उन्हें एक शाम मैं श्री निर्मल वर्मा से मिलने के लिए ले गया। करोलबाग में वेस्टर्न एक्सटेंसन एरिया में स्थित निर्मल जी के घर की छत पर हम लोग बैठे। उनके मित्र दार्शनिक प्रो. रामचन्द्र गाँधी पहले से वहाँ बैठे हुए थे। कृष्णनाथ जी से परिचय होने के बाद उन्होंने कृष्णनाथ जी से नागार्जुन के दर्शन के बारे में प्रश्न पूछ लिया। सबको ज्ञात था कि नागार्जुन कितने कठिन दार्शनिक हैं। मन में तीनों उपस्थित जन यही सोचते रहे होंगे कि कृष्णनाथ जी नागार्जुन के बारे में कुछ सामान्य बातें ही बता पाएँगे।

कृष्णनाथ जी ने रामू गाँधी का प्रश्न सुनकर नागार्जुन के दर्शन के बारे में कुछ कहना शुरू किया। हम सभी लोग २०-२५ मिनट तक उनकी बात मन्त्रमुग्ध सुनते रहे। मुझे तो उस समय यही लगा कि हमने नागार्जुन का दर्शन पूरी तरह समझ लिया। रामू (रामचन्द्र गाँधी) भी विस्मित थे। कृष्णनाथ जी बौद्ध दर्शन में, महायान में, वह भी नागार्जुन के दर्शन में कितनी गहरायी तक पैठ चुके थे, यह उस दिन समझ में आया। रामू गाँधी और निर्मल वर्मा ने भी इस विषय में कृष्णनाथ जी का लोहा मान लिया। उन्हें किसी और से शून्यवाद की इस तरह की प्रामाणिक व्याख्या सुनने का सौभाग्य नहीं मिला था, न कभी आगे मिला होगा। बौद्ध विद्या की विविध समस्याओं के बारे में उनके कुछ व्याख्यानों और लेखों में भी उनकी सिद्धि के प्रमाण पाये जा सकते हैं।

कृष्णनाथ जी का मन केवल दार्शनिक विद्वता से नहीं भर सकता था। भारतीय दर्शन साधनापरक होते हैं। उन्हें केवल

युक्तियों से समझना आंशिक ही हो सकता है। कृष्णनाथ जी को दर्शन का मर्म साधना में ही मिल सकता था। उस समय जो भी साधनाएँ उपलब्ध थीं, कृष्णनाथ जी ने हर एक को परखा और कुछ को पकड़ लिया। उन्होंने कई सप्ताह तक विपश्यना की साधना की। श्री सत्यनारायण गोयनका जी के साधकों में कृष्णनाथ जी अनूठे रहे होंगे। विपश्यना साधना करने से कृष्णनाथ जी के शरीर का भराव कम होता गया, वे थोड़े कृश शरीर हो गये। साधनाओं के कारण उनकी मानसिक क्षमताओं में आज तक कोई क्षीणता नहीं आयी है।

राजनीतिक कार्य के लिए पलामू में निवास, आन्दोलन और जेल यात्रा में एक और बात कृष्णनाथ जी के जीवन से जुड़ी हुई है। कृष्णनाथ जी हमेशा भ्रमणशील व्यक्ति रहे हैं। हिमालय में बौद्ध धर्म प्राचीन काल से ही बचा हुआ है। यह जानकर उन्होंने उन सब स्थानों में जाने का मन बना लिया। ज़्यादातर स्थान हिमालय की प्रत्यन्त पहाड़ियों में थे। पहाड़ियों में घूमने में कृष्णनाथ जी का खूब मन लगा। उनकी पहली यात्रा लद्दाख से शुरू हुई। उसके बाद वे हिमाचल में लाहुल, स्पीति और किन्नौर की यात्राओं पर जाते रहे। उन्होंने अरुणाचल की यात्रा भी की। नेपाल तो वे कई बार गये। यात्रा करने में उन्हें कभी आलस नहीं लगता। वे पूरे विश्व की यात्रा कर चुके हैं।

कृष्णनाथ जी ने यात्राएँ कीं और उनके वृत्तान्त भी लिखे। संयोगवश मुझे उनके कई यात्रा वृत्तान्त सम्पादित करने और प्रकाशित करने का सौभाग्य मिला। 'लद्दाख में राग विराग' उनका पहला यात्रा वृत्तान्त था। इसके बाद मैंने 'स्पीति में बारिश' का प्रकाशन किया था। स्पीति में वर्षा किन्हीं-किन्हीं वर्षों में ही होती है। भारत में पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर आने वाला मानसून कभी-कभी ही हिमालय की इन घाटियों में पहुँच पाता है। वे वर्ष बहुत सौभाग्य के वर्ष होते हैं। कृष्णनाथ जी जब स्पीति में थे, तभी वहाँ वर्षा हुई थी। वहाँ अनेक लोगों ने कृष्णनाथ जी के आने को इस सौभाग्य का लक्षण माना था।

स्पीति की सीमा तिब्बत को छूती है और वहाँ सीमा पर चीनी सैनिक तैनात होते हैं। उसी तरह अरुणाचल में भी सीमा पर चीनी सैनिक देखने को मिलते हैं। कृष्णनाथ जी अरुणाचल भी गये और वहाँ की यात्रा का वृत्तान्त लिखा। उन्होंने विश्व के देशों में की गयी यात्रा का वृत्तान्त भी लिखा है। कृष्णनाथ जी के यात्रा वृत्तान्त उन स्थानों के बाहरी रूपों के बारे में बतलाते ही हैं, उनकी यात्रा उन स्थानों की आत्मा का अन्वेषण भी होता है, जिनमें आत्मान्वेषण भी साथ-साथ चलता रहता है। कृष्णनाथ जी के यात्रा वृत्तान्तों की यही विशेषता है। वे मात्र स्थानान्वेषण नहीं हैं, आत्मान्वेषण भी हैं। इन्हें लिखने में कृष्णनाथ जी की भाषा वर्णनात्मकता की ऊँचाइयों को छू गयी है। ये पुस्तकें उनकी हिन्दी साहित्य को अनुपम देन हैं।

राजघाट (बनारस) में थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा संचालित एक विद्यालय है। उसका प्रबन्ध जिद्दू कृष्णमूर्ति जी के कुछ अनुयायी किया करते हैं। सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापकों में से प्रमुख श्री अच्युत पटवर्धन भी राजनीति तजकर वहाँ एकान्तवास किया करते थे। पटवर्धन जी के परिवार के कुछ अन्य लोग भी पुणे और दिल्ली में कृष्णमूर्ति जी की अनुयायी मण्डली में थे। कृष्णनाथ जी श्री अच्युत पटवर्धन से भी मिला करते थे। उन्होंने अच्युत जी को कई बार काशी विद्यापीठ में भी बुलाया। इस सम्पर्क से उनकी धीरे-धीरे कृष्णमूर्ति जी के अनुयायियों से अन्तरंगता स्थापित होने लगी।

श्री कृष्णमूर्ति की बातें सुनने और गुनने के लिए कृष्णनाथ जी देश में अन्यत्र होने वाले उनके कार्यक्रमों में भी भाग लेने लगे। इन्हीं दिनों कृष्णनाथ जी का विश्व के अन्य देशों की यात्रा करने का भी मन बनने लगा। बौद्ध संघ के कुछ कार्यक्रम कभी जापान, कभी यूरोप और कभी अमेरिका में होते रहते थे। तिब्बती प्रवासी भी अनेक देशों में बसे हुए

और सक्रिय थे। इन देशों में दलाई लामा जी की यात्रा भी होती रहती थी। कृष्णनाथ जी विश्व यात्रा पर निकले तो अमेरिका, जापान, इंग्लैण्ड सहित अनेक देशों की यात्रा कर आये। इस यात्रा का वृत्तान्त उन्होंने 'पृथ्वी परिक्रमा' में लिखा है।

कृष्णनाथ जी एक बार नागार्जुन सागर की यात्रा पर भी गये थे। आन्ध्र में नागार्जुन कोंडा को नागार्जुन के जन्म स्थान या कार्यक्षेत्र से जोड़ा जाता था। यह बड़े बौद्ध केन्द्र के रूप में विकसित हुआ था, लेकिन जब यहाँ सरकार ने बाँध बनाने की योजना बनायी तो सारा नागार्जुन कोंडा पानी में डूब जाने वाला था। इसलिए नागार्जुन सागर के बीच में एक द्वीप जैसा स्थान रहने दिया गया जहाँ लोग नागार्जुन की स्मृति जाग्रत करने के लिए नाव से आ-जा सकते थे। नागार्जुन सागर की खुदाई में प्राप्त सामग्री के लिए सागर के किनारे एक संग्रहालय बना दिया गया, जहाँ खुदाई में निकली मूर्तियाँ इत्यादि रखी गयी थीं। कृष्णनाथ जी के मन में नागार्जुन का आकर्षण बसा हुआ था। वे नागार्जुन सागर हो आये, बल्कि वहाँ कुछ दिन रहे भी। यात्रा की कुछ कठिनाइयाँ भी उन्हें झेलनी पड़ीं। नागार्जुन सागर की यात्रा का सुन्दर वृत्तान्त भी उन्होंने लिखा है।

बौद्ध धर्म दर्शन के तीव्र आकर्षण के दिनों में कृष्णनाथ जी प्राचीन बौद्ध धर्म की प्रतीति देने वाले सभी स्थानों में हो आये थे। प्रत्यन्त हिमालय में बसे लद्दाख, लाहुल, स्पीति और किन्नौर, सिक्किम और भूटान, अरुणाचल आदि के यात्रा वृत्तान्त भी उन्होंने लिखे थे। विदेश में जापान, यूरोप और अमेरिका के नये बौद्ध केन्द्रों से भी उनका परिचय हो चुका था। कृष्णनाथ जी के मन में दिग्भ्रमण के प्रति जो भी आकर्षण था, वह प्रायः बीस-पच्चीस वर्ष तक हर साल की गयी यात्राओं से कुछ शान्त हो चुका था। वे कभी-कभी अस्वस्थता के दिनों में भी पहाड़ों की चढ़ाई करते रहते थे। हिमाच्छादित शिखर उन्हें अपनी ओर खींचते रहते थे। वे सीमान्त पर जाकर ही साँस लेते थे। हर यात्रा उनके लिए ज्ञान की पिछली से अगली भूमिका की वाहक होती थी। उनके यात्रा वृत्तान्त आत्मान्वेषण के विविध पड़ावों के रूप में पढ़े जा सकते हैं।

कृष्णनाथ जी जब कृष्णमूर्ति की ओर आकृष्ट हुए तो धीरे-धीरे उनका यात्राओं के प्रति आकर्षण कम होता गया। अब एक जगह जमकर बैठने जैसा मन हो गया। कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन के लोगों ने उन्हें फाउण्डेशन का ट्रस्टी चुन लिया। फाउण्डेशन ने उन्हें बंगलुरू के पास हरित वन में रहने की सुविधा प्रदान की। अब वे बसन्त ऋतु से वर्षा ऋतु तक हरित वनम में ही निवास करते हैं। उनके भतीजे आनन्द कुमार ने सारनाथ में ज़मीन लेकर एक बड़ा मकान बनवा लिया है। वर्षा ऋतु के बाद जाड़ों में कृष्णनाथ जी वहीं आ जाते हैं। बंगलुरू और सारनाथ के बीच यात्राओं में वे दिल्ली में भी २-४ दिन के लिए रुक जाते हैं। यहाँ के मित्रों को भी उनसे मिलने का अवसर मिल जाता है।

कृष्णनाथ जी मृदु स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनसे मेरी अनेक बार बहसें भी हुई हैं जिनमें सहज ही आवाज़ ऊँची हो जाया करती थी। दोनों पक्षों में बड़ी वैचारिक दूरी हुआ करती थी, लेकिन उसका कोई असर या चिन्ह मन में शेष नहीं रहता था। यह कृष्णनाथ जी की मैत्री बनाये रखने की अपरिमित क्षमता के नाते ही सम्भव था। उनके जैसी मैत्री की गहन क्षमता कम लोगों में ही देखने को मिलती है। वे पचासों वर्षों से लोगों से मित्रता बनाए हुए हैं और यह उसी रूप में बरकरार है, जिस रूप में शुरू हुई होगी। इस बीच में उनके अनेक मित्र देह त्याग कर चुके हैं। उनकी मित्रता की स्मृति भी कृष्णनाथ जी के मन में शेष है। सौभाग्यवश वर्षों पहले बने हुए बहुत से मित्र अब भी जीवित हैं। वे अनेक नगरों में फैले हुए हैं। अनेक प्रकार से अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं। इनमें से अनेक मित्रों की कृष्णनाथ जी के जीवन के आध्यात्मिक पक्षों के बारे में उत्सुकता नहीं के बराबर है। वे मिलने पर घर-बार की ही बात करते हैं।

कृष्णनाथ जी के मन में उनसे भी उतनी ही मित्रता बनी हुई है, जितनी मित्रता शुरू के दिनों में रही होगी। जिन मित्रों के मन में कृष्णनाथ जी के आध्यात्मिक जीवन के बारे में जिज्ञासा उठती रहती है, उन्हें भी उस जीवन के रहस्य एक सीमा तक ही पता चल पाते हैं।

कृष्णनाथ जी ने जीवन और जगत के व्यापार को उसकी यथा-तथता में पहचान लिया है। यह पहचान उनके चित्त का अंगभूत हो गया है। उसी तरह उनकी साधना भी अब पूरे जीवन में फैल गयी है। वे जो कुछ भी करते हैं, जो कुछ भी कहते हैं, जितना भी चलते हैं, जितना भी बैठे रहते हैं, सारे कार्यों में जैसे साधना ही चलती रहती है। वे हमारे बीच रहते हुए भी जैसे किसी अन्य लोक में रह रहे हैं। कभी-कभी उनके साथ रहने में, उनके साथ बैठने में, उनसे बातचीत करने में, उस लोक की झाँकी मिल जाया करती है और हम निहाल हो जाया करते हैं।

कृष्णनाथ जी अनन्त काल तक इसी प्रकार बने रहें। जब तक हम इस लोक में हैं, उनके संग से इसी प्रकार निहाल होते रहें। उन्होंने अस्सी वर्ष पूरे कर लिए, अपनी अनन्त यात्रा में उन्होंने अभी कुछ ही सीढ़ियाँ पार की हैं। अभी हिमालय के अनेक शिखरों को देखना शेष रह गया है। हमें वे उनमें से कई एक शिखरों पर खड़े दीख रहे हैं।

बनारस : स्वप्न और यथार्थ

जयशंकर

बनारस के गदौलिया इलाके में एकदम सुबह ही भीड़ हो जाती है। कल रात बारिश होती रही। अब भी बूँदा-बाँदी शुरू है। बनारस में बारिश। मानसून का मौसम। एकदम ही अप्रत्याशित। कल दिन भर बादल छाये रहे लेकिन बारिश मध्यरात्रि के आसपास हुई थी। मेहमूरगंज के अपने गेस्ट हाउस की खिड़की से सुबह-सुबह ही भीगे हुए पेड़ों, भीगने से बचते हुए बन्दरों को देखा था। बनारस और बन्दर। कितनी पुरानी याद है सत्यजित राय की फ़िल्म के ओपू, मन्दिर की घण्टियों और बन्दरों की।

दशाश्वमेघ घाट यहाँ से बहुत ही करीब है। इसी घाट पर कभी ब्रह्मा के दस अश्वमेध यज्ञ करवाने की कथा प्रचलित है। जगप्रसिद्ध विश्वनाथ मन्दिर इसी के आसपास खड़ा हुआ है। बारिश और बाढ़ से डूबा हुआ घाट। नावें बँधी हुईं। अपने बढ़े हुए जलस्तर के साथ तेज गति से बहती गंगा। घाट के आसपास यात्रियों-तीर्थयात्रियों की भीड़। अपने-अपने कैमरे लिए हुए विदेशी मुसाफिर। बँधी नाव में कर्म-काण्ड करवाते हुए पुरोहित और कर्मकाण्ड करते हुए लोग।

नदी में डुबकी लगाकर निकली हुई एक युवा स्त्री की तस्वीर खींचती एक विदेशी सैलानी। मेरे पड़ोस में अपने-अपने पिटारों में साँप लिए खड़े दो किशोर। क्या मैंने इन दोनों किशोरों को परसों शाम इलाहाबाद में त्रिवेणी के संगम पर भी देखा था ? यात्राओं में इतने-इतने चेहरों से सामना पड़ता है कि स्मृति गड़बड़ा जाती है। हम रोज़मर्रा के अपने जीवन में कितने कम और वे भी परिचित, पहचाने चेहरों के सम्पर्क में आते हैं। यात्राएँ हमारे सामने सिर्फ नये-नये चेहरों को ही नहीं लाती है बल्कि खुद भी हमारे मन में एक चेहरे की तरह बस जाती है। अपनी यात्राओं के दिनों को याद करो तो अपने जीवन का एक नया ही चेहरा नज़र आता है।

मानसून में बनारस का धार्मिक जीवन नदी से हटकर शहर की तरफ केन्द्रित हो जाता है। इस वक्त नदी के आसपास के लोगों से कहीं ज़्यादा लोग बनारस के मन्दिरों में पूजा-अर्चना कर रहे होंगे। घरों, धर्मशालाओं, मन्दिरों, गलियों, सड़कों, बाज़ारों और पाठशालाओं में कुछ ज़्यादा जीवन खड़ा हुआ मिलेगा।

गौतम बुद्ध चातुर्मास के दिनों को बनारस में बिताया करते थे। बौद्ध और जैन संन्यासियों के साथ यह भी रहा होगा कि बारिश में बाहर निकल आये जीव-जन्तुओं को उनके पैर कुचल न दें। मानसून में यात्रा करना वैसे भी कठिन हो जाता है। इन दिनों में साधु-सन्त और संन्यासी किसी एक ही जगह पर अपना डेरा डाल लेते हैं। वैसे भी भारत में संन्यासियों के घुमक्कड़ होने, एक ही जगह पर नहीं टिकने, अपने भीतर के रागों के मोह में न पड़ने के उदाहरण

मिलते ही रहते हैं। साधु-सन्तों के देशभर में घूमते रहने की हमारी परम्पराएँ विवेकानन्द-गाँधी जी जैसे व्यक्तित्वों को भी शामिल करती हैं।

दशाश्वमेघ घाट गंगा के मटमैले पानी में डूबा हुआ है। क्या यह वही घाट है जिसकी सीढ़ियों पर से सत्यजित राय की फ़िल्म ''अपराजितो'' के हरिहर चढ़ते हैं ? बनारस की वह कौनसी गली होगी जिसमें किशोर ओपू खेलता रहता है ? बनारस में तीन दिनों से बराबर ''अपराजितो'' का वह दृश्य याद आता रहा है, जिसमें ओपू के पिता हरिहर अपनी आखरी साँस लेते हैं और कबूतरों का झुण्ड का झुण्ड गुम्बद से उड़कर आसमान में चला जाता है।

बनारस में सत्यजित राय की फ़िल्म ''अपराजितो'' की ही नहीं, चित्रकार रामकुमार के बनारस शृंखला के लैण्डस्कैपों की भी यादें आती हैं। श्रीकान्त वर्मा की उन कविताओं की भी, जिसमें मणिकर्णिका का ज़िक्र आता है। श्रीकान्त वर्मा के संग्रह ''मगध'' में एक कविता में ये पंक्तियाँ आती हैं-

दुःखी मत होओ मणिकर्णिका,

दुःख मणिकर्णिका के

विधान में नहीं

दुःख उनके माथे है

जो पहुँचाने आते हैं

दुःख उनके माथे था

जिसे वे छोड़ चले जाते हैं।

सुनता आया हूँ कि मणिकर्णिका घाट पर एक पवित्र अग्नि सदियों से जलती आ रही है। इस अग्नि को बनाये-बचाये रखने का काम डोम का होता है। इसी अग्नि से चिताएँ जलायी जाती हैं, पर कुछ लोग आग अपने घर से ही ले आते हैं। मणिकर्णिका घाट में निरन्तर चिताएँ जलती रहती हैं। यही हरिश्चन्द्र घाट में भी होता रहता है। ये दोनों ही श्मशान घाट शहर के बीच में खड़े हैं। राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा हरिश्चन्द्र घाट पर ही ली गयी थी। यहीं उनकी पत्नी उनके बच्चे की लाश लिए हुए आयी थीं।

कितना अजीब है कि भारत में श्मशान घाट शहरों-गाँवों की सरहद पर खड़े होते हैं और ये दोनों घाट शहर के बीच में हैं। किस्सा और विश्वास है कि यहाँ जिसका दाह-संस्कार होता है वह स्वर्ग में जाता है। उसके रिश्तेदारों को पुण्य मिलता है।

बनारस की कुछ चौड़ी, कुछ सँकरी गलियों को पार कर शवयात्राएँ मणिकर्णिका घाट तक आती हैं। लकड़ियों के इतने टाल। जलाऊ लकड़ियों के ढेर के ढेर। अपने स्कूली दिनों में अपने शहर के लकड़ियों के टालों में जाता रहा था, पर इतने विशालकाय लकड़ियों के टाल का अनुमान भी नहीं था। मानसून की बूँदाबाँदी में एक जगह से मणिकर्णिका घाट की चिताओं से उठती आग की लपटें नज़र आती हैं, उस आग का धुँआ नज़र आता है।

एक के बाद एक जलाये जाते शव। प्रतीक्षारत शव और उसके रिश्ते-नाते। ''राम नाम सत्य है'' की गूँजें। कभी-कभार किसी दूसरी भाषा के दोहराये जाते शब्द समूह।

शव और शिव।

शिव का आत्मीय शहर बनारस। शिव को बनारस में न रह पाने का अवसाद सताता है। कहते हैं कि धरती पर काशी उनकी सबसे ज़्यादा प्रीतिकर जगह है। यह भी कहा जाता है कि बनारस में मरे आदमी का शव, शिव में बदल जाता है। इसीलिए देश के कोने-कोने से लोग बरसों से बनारस में आकर मरते रहे हैं। इसी बात से अपनी असहमति जताने के लिए कबीर मरते समय बनारस से मगहर चले गये।

बनारसः मृत्यु का शहर।

वाराणसीः मुक्ति का शहर।

काशीः प्रकाश का शहर।

बनारस, दुनिया के उतने ही पुराने शहरों में आता होगा, जितने पुराने जेरूशलम, बेथलेहम, मक्का, एथेन्स और पेकिंग होंगे। पर आज भी बनारस अत्यन्त जीवन्त, जीवित और अपनी तरह से जीवित, अपनी शर्तों पर जीवन्त जगहों में आता होगा। किसी लेखक ने यूँ ही नहीं कहा होगा कि "The city (Banaras) is a living text of Hinduism" (बनारस, हिन्दू धर्म का जीवन्त पाठ है)।

कल शाम गदौलिया के यूनिवर्सल बुक शॉप में गया था। इसका जिक्र आजमगढ़ के मेरे मित्र और अत्यन्त सजग पाठक डॉ. उपाध्याय से सुन चुका था। वहाँ एक बूढ़ी और विदेशी महिला बनारस पर कुछ सचित्र, बड़े आकार की, महँगी पुस्तकें पलटते हुए खड़ी थी। उसका बूढ़ा होता चेहरा और उसकी कमज़ोर होती जाती निगाहें बरबस ही मुझे स्विस चित्रकार, मूर्तिशिल्पी और कलामर्मज्ञ एलिस बोनर का ख्याल आया था, जिनका बनारस के अस्सी घाट का मकान अपनी पिछली वाराणसी यात्रा में देखा था। अब शायद उनका घर ''एलिस बोनर फाउंडेशन'' के नाम से जाना जाता है।

एलिस बोनर ने शायद बीसवीं सदी के तीसरे दशक में कभी ज़्यूरिख़ में उदयशंकर का नृत्य देखा था। उस नृत्य से प्रभावित होकर वे भारतीय कला को जानने-सीखने में लग गईं। वे भारत चली आयीं। बनारस में रहने लगीं। बनारस उनकी कला-साधना की भूमि बन गयी। उनके बुढ़ापे में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से नवाजा था। अब उनकी अपनी कृतियाँ, उनके अपने कलासंग्रह, उनकी और उनसे जुड़ी चीज़ें कला भवन की एलिस बोनर गैलरी में रखी हुई नज़र आती हैं।

अकेले एलिस बोनर ही क्यों ? बनारस ने देश-विदेश के कितने ही लेखकों, कलाकारों, विद्वानों, घुमक्कड़ों, संन्यासियों, गृहस्थों और तपस्वियों को अपनी तरफ नहीं खींचा है। इसके 'वाराणसी' नाम का ज़िक्र महाभारत में मिलता है।

अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने इस अजीब, जीवन्त और अद्भुत शहर के बारे में कभी कहा था कि-Banares is older than history, older than tradition, older even than legends, and looks twice, as old as all of them put together.

हमारे बड़े कवियों में तुलसी और कबीर का यह कर्मस्थल रहा। बुद्ध, महावीर और शंकर इससे जुड़े। गौतम बुद्ध ने तो अपना पहला प्रवचन ही यहाँ से थोड़ी दूर स्थित सारनाथ में दिया। जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, भारतेन्दु, निराला और महादेवी जैसे लेखकों का इससे नाता बना रहा। ग़ालिब के यहाँ इसका ज़िक्र आया। सिद्धेश्वरी देवी ने यहाँ

गाया। बिसमिल्ला खान ने यहाँ बजाया। कबीर पर महत्वपूर्ण काम करने वाली लिंडा हेस इस शहर से जुड़ी रहीं। अमेरिकी विदूषी डायना आइक यहाँ के चक्कर लगाती रहीं। पण्डित मदनमोहन मालवीय का अपना एक बड़ा स्वप्न –''बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय'' के नाम से यहीं साकार हुआ। गाँधी जी यहाँ बराबर आते रहे। राजाओं, धनाढ्यों की जीवनशैली और भारत की गरीबी, बदहाली का अपना अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याख्यान गाँधी जी ने इसी बनारस के विश्वविद्यालय के परिसर में दिया था।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय १९१६ में स्थापित किया गया था। इधर इसके सौ बरस होने को आ रहे हैं। इस बार सिर्फ इसके कला भवन में ही घूमना हो सका। यहाँ की कलाकृतियाँ, उनकी गुणवत्ता और देखभाल इन संग्रहों को यहाँ ले आने का संघर्ष, समर्पण और साधना सचमुच ही इसे एशिया के महत्वपूर्ण संग्रहालयों में से एक कहलाने के लिए विवश करती है।

कला भवन के चित्रों की गैलरी की मरम्मत शुरू है। मुझे शुरुआत मूर्तियों के विशालकाय कक्ष से करनी पड़ती है। दहलीज से ही मेरी निगाहें 'नटराज' की प्रतिमा पर ठहरती है। पता चलता है कि स्वर्गीय रायकृष्ण दास के प्रयत्नों से इस प्रतिमा को मद्रास म्यूजियम से मँगवाया गया था। 'नटराज' की इस असाधारण कलाकृति से शिव का ताण्डव का ख्याल आता है, चिदम्बरम के मन्दिर में शिव के नृत्य पतन्जलि ऋषि के शिष्यों आदि का ध्यान आता है। कला भवन की शुरुआत के हॉल ही में 'प्रसाधिका' शीर्षक से एक और मास्टरपीस है।

कला भवन में अगस्त की दुपहरी में प्रतिमाओं के बीच मुझे अपनी कल की दुपहर की याद आ जाती है। मैं खिड़की के पास चला जाता हूँ। बारिश के दिनों के पेड़ नज़र आते हैं। उन पेड़ों पर गिलहरियाँ खेलती रहती हैं। कल की अपनी दुपहर मैंने सारनाथ में बितायी थी। मेरे मित्र डॉ. उपाध्याय मेरे साथ थे। उनकी थकान का ख्याल बार-बार न लौटता तो मैं संग्रहालय के चक्कर पर चक्कर लगाना चाहता। उस संग्रहालय की असाधारण कलाकृतियों के बीच यह अहसास लौट-लौट आता कि हम एक बहुत बड़ी, एक बहुत पुरानी सभ्यता से आये हुए लोग हैं और हमें अपनी सभ्यता से सम्वाद बनाये रखना है। अपनी सभ्यता की जाँच-पड़ताल उसको अपने-अपने आलोचनात्मक विवेक के, आलोक में देखना, उसकी भूलों और भटकावों से सीखते चला जाना उसको प्रश्नांकित करते रहने का सिलसिला, हम लोगों को एक अलग तरह का आलोक, एक अलग तरह की आस्था प्रदान कर सकता है।

महाभारत की ही तरह काशी के बारे में यह कथन सुनने के लिए मिलता रहा है कि जो काशी में नहीं है, वह और कहीं भी नहीं है। साल-दर-साल बनारस के आध्यात्मिक भूगोल पर, वहाँ की प्राचीन और आधुनिक जीवनशैलियों पर, वहाँ मानवीय समय और समाज के विभिन्न आयामों पर किताबें प्रकाशित होती रहती हैं। डाक्यूमेन्टरी फिल्में बनती रहती हैं। लाखों मुसाफिर यहाँ पर आते हैं और लौटते हैं, बार-बार लौटकर आते हैं और कुछ यहाँ आकर कभी अपने घर नहीं लौटते हैं। वे बनारस में ही अपनी अन्तिम साँस लेने की आकांक्षा के साथ रहने लगते हैं।

कुछ के साथ यह विश्वास भी बना रहता है कि जिसने काशी की तीर्थयात्रा कर ली उसे और किसी तीर्थ पर जाने की ज़रूरत नहीं है। कल सुबह मैंने एक अधेड़, बंगाली स्त्री को घाट से अभी-अभी लाये गंगाजल को एक पेड़ के तने पर छिड़कते हुए देखा था। वह शायद उस जल को अपने साथ अपने घर ले जा रही होगी। उनके घर-परिवार का जब कोई मर रहा होगा, तब उसे इसी जल को पिलाया जायेगा। यह सिलसिला सदियों से इस देश में चलता आ रहा है। गंगाजल की शुद्धता और पवित्रता की भी बातें होती हैं, उसकी अशुद्धता और उसके पीने योग्य नहीं होने की भी बातें होती हैं। गंगा की सफाई का अभियान शुरू होता है, बन्द होता है। गंगा के गन्दी हो जाने, मैली हो जाने पर लगातार

खबरें आती रहती हैं। तीर्थस्थलों पर अच्छी तरह साफ-सफाई नज़र नहीं आती है। मन्दिरों के आसपास शोरगुल बढ़ता चला गया है। वहाँ वैसी शान्ति, खामोशी और स्वच्छता दुर्लभ ही हो गयी है, जैसे इस तरह की जगहों में होना चाहिए, लेकिन यह सब भी बना रहता है और लाखों लोगों का वहाँ आना-जाना भी हमेशा की तरह जारी रहता है। आये दिन मन्दिरों में दर्शन के लिए खड़े भक्तों के बीच भगदड़ की खबरें भी आती रहती हैं, उनमें हुई मौत के आँकड़े भी आते हैं, पर फिर भी कहीं भी भीड़ कम नहीं होती।

यह सब उत्तर भारत के मन्दिरों के साथ जितना सच है उतना ही दक्षिण भारत के मन्दिरों के साथ। इतना अन्तर ज़रूर है कि दक्षिण के मन्दिर, उत्तर भारत के मन्दिरों की तुलना में साफ-सुधरे नज़र आते हैं, वहाँ लाउडस्पीकर के अत्यधिक शोर से बचा जा सकता है। भारत में मन्दिर कहीं भी हों, उनमें ज़्यादातर के खड़े होने के पीछे कोई कहानी चलती रहती है। किसी मन्दिर को चाँद और वायु अपने कन्धों पर कहीं से लाते हैं तो कहीं शक्ति (पार्वती) के दाँत के गिरने का जिक्र मिलता है।

भारतीय अंग्रेज़ी कवि ए.के. रामानुजन ने किस्से-कहानियों को एकत्र कर प्रकाशित करवाने का महत्वपूर्ण काम कुछ बरसों पहले किया ही था। भारत के किसी भी इलाके में जायें, वहाँ किस्से-कहानियों का विशाल भण्डार नज़र आता है। कितनी ही रामायण हैं। महाभारत के बाहर खड़ी लेकिन महाभारत से जुड़ी कथाएँ। साल में कहीं न कहीं, कभी न कभी देश के किसी भी एक हिस्से में रामायण और महाभारत के किसी अंश पर नाटक या नृत्य होते हैं, उसके किसी पात्र पर कविता, कहानी या उपन्यास लिखे जाते हैं।

बनारस के मन्दिरों के आसपास भटकते हुए, मैं यह सब सोचता रहता हूँ।

वाराणसी में मेरा चौथा और आखिरी दिन। एक पत्रकार की मदद से बनारसी साड़ी बनाने वाले कारीगरों के इलाके में जाना होता है। बुनकरों के उस इलाके की शुरुआत लड़कियों के स्कूल से होती है। आसमानी रंग का कुरता और सफेद सलवार पहनी हुईं किशोरियाँ स्कूल से बाहर निकल रही हैं। कुछ के पास साइकिल हैं, कुछ पैदल, कुछ के माता-पिता आये हैं और कुछ को ले जाने के लिए ऑटो-रिक्शा खड़े हैं। स्कूल के संचालक रईस अहमद बताते हैं कि लगभग बारह सौ लड़कियाँ यहाँ हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी माध्यमों में हायस्कूल तक पढ़ती हैं। वे मुझे स्कूल की प्रयोगशाला, लाइब्रेरी और कम्प्यूटर कक्ष में ले जाते हैं। स्कूल को सरकार से ग्राण्ट नहीं मिल रही है। यहाँ बुनकरों के बच्चे भी पढ़ने आते हैं।

एक लम्बी-चौड़ी गली के दोनों ओर बुनकरों के मकान खड़े हुए हैं। सामने खुली हुईं नालियाँ बहती हैं। मकानों की हालत उनके अभावग्रस्त लोग होने के संकेत देती रहती है। अलग-अलग चरणों में अलग-अलग कारीगर बनारसी साड़ी को तैयार करते हैं। इसी इलाके के कुछ कारीगर किसी भारतीय महोत्सव में पेरिस लन्दन तक हो आये हैं। यहीं के बुनकरों में से किसी एक ने अपनी तंगहाली से तंग आकर हाल ही में आत्महत्या की है।

कबीर के इन उत्तराधिकारियों पर जीवन का बोझ कुछ ज़्यादा ही बढ़ा हुआ नज़र आता है। एक अत्यन्त वृद्ध बुनकर, उस इलाके के उजड़ने वहाँ कुछ भी न हो सकने की निराशाएँ व्यक्त करते-करते अपना आखरी वाक्य कहते हैं-

''अब अल्लाह का ही सहारा है'' आसमान की तरफ जाती उनकी बूढ़ी आँखें, कितना कुछ कह जाती हैं, कितना कुछ समझा जाती हैं। गलियों में कुछ टूटे-फूटे मकान आते हैं, कुछ खण्डहरनुमा जगहें, जहाँ लोग ताश या शतरंज खेलते

नज़र आते हैं। मैं बुनकरों के घरों में जाता हूँ कारीगरों से बात करता हूँ शायद ही किसी घर से निकलने पर मन में उदासी नहीं होती है, एक किस्म की निराशा नहीं घेरती है।

हमारे पास संकल्प और समझ होती तो हम आज़ादी मिलने के बाद अपने परम्परागत कारीगरों, कलाकारों को एक बेहतर जीवन जीने का परिवेश दे सकते थे। यह हमने क्या किया कि अपने इतने कुशल कारीगरों को हमारी इतनी पुरानी कलाओं को बचाये रखने वालों को, उनकी छोटी-मोटी ज़रूरतों से भी वंचित कर दिया। हाथ से काम करने वाले परिश्रम और पसीने के बीच रहने वाले परिवार के परिवार उजड़ते चले गये। गाँधी जी हमें इन और इन जैसे पूरे देश में फैले हुए लोगों की भी चिन्ता करने की ही सलाहें दिया करते थे।

बनारस की इस गली से बाहर निकलने के बाद गाँधी जी के भारत का, उस भारत के लिए गाँधी जी के सपनों का ख्याल मेरे साथ रह रहा था। स्कूल से निकलती किशोरियों के चेहरे पर जिस उल्लास और उत्साह को गली की शुरुआत में महसूस किया था, उसकी जगह अब उस अत्यन्त बूढ़े बुनकर का हताशा लिया हुआ, हारा हुआ चेहरा था। बनारस में अगस्त की शाम उतर रही थी। आकाश नीला था। परिन्दे लौट रहे थे और मैं भी लौटने के लिए वाराणसी स्टेशन की तरफ बढ़ रहा था। कल के स्वाधीनता दिवस के लिए सरकारी इमारतों पर रौशनियाँ टँगी हुई थीं। बाहर उजाला ही उजाला था, लेकिन मेरे भीतर मैं एक किस्म की बेचैनी लिए हुए था। एक ऐसी बेचैनी, जो बहुत कम समय के लिए ही सही, लेकिन तब हमें घेरती ही है जब हमारी निगाहों से हमारे देश के साधारण मेहनती और सीधे-साधे लोगों की अभावग्रस्त जटिल और अमानवीय ज़िन्दगियाँ गुजरती हैं। जब हमें महसूस होता है कि हमारे देश में उन लोगों का ही जीवन कठिन और असहनीय बना हुआ है जो दूसरे के जीवन को सहनीय बनाते हैं, सुन्दर बनाते हैं। वाराणसी स्टेशन के वेन्टिग रूम में सुन्दर शब्द के साथ-साथ, कबीर की एक कविता की पंक्तियाँ आती हैं और कुमार गन्धर्व की आवाज़ भी जिसमें कभी इन पंक्तियों को पहली बार सुना था।

वाराणसी स्टेशन के कोलाहल के बीच मुझे कबीर याद आते हैं, कुमार गन्धर्व याद आते हैं और धीरे-धीरे मेरे बनारस प्रवास के इन चार दिनों के टूटे-बिखरे, कच्चे-पक्के इम्प्रेशन्स, जिनके बीच मैं चार दिनों से रहता आया था जिनके बीच न जाने मैं कब-कब और कहाँ-कहाँ लौटूँगा ? इतना तय है कि जल्दी ही बनारस की इस ज़मीन पर एक और बार लौटूँगा और तब घाट पानी में डूबे नहीं होंगे, नावें, तटों पर बँधी नहीं होंगी और बनारस का जीवन घाटों पर भी उतना ही जीवन्त होगा, जितना घाटों से दूर।

मैं अपने उस बनारस प्रवास का इन्तज़ार करूँगा। मैं अपने उस बनारस प्रवास का स्वप्न देखता रहूँगा। बनारस जो मेरे लिए अगर एक अजीब किस्म का यथार्थ रहता आया है तो एक अजीब प्रकार का स्वप्न भी।

बनारस, मृत्यु मुक्ति, जीवन और प्रकाश का शहर। महाभारत और जातक कथाओं में आता नगर। एक शहर जिसने अपने पुरानेपर को, अपनी प्राचीनता को अपने चिरयौवन को अब तक बचाये रखा है।

काशी में एक ही भौतिक समय में कितने-कितने पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक समय को एक ही जगह खड़े हुए देखा जा सकता है। औघड़ है तो अत्यन्त आधुनिक स्त्री भी, सपेरे हैं तो मोबाइल पर बात करते हुए साधु। कहीं से पारम्परिक किस्म की आरती के स्वर सुनायी देते हैं तो कहीं से इक्कीसवीं सदी के एकदम नये फ़िल्मी गाने के स्वर। इस जगह पर भारतीय जीवन के विरोधाभास कुछ ज्यादा ही नज़र आते हैं। समय के स्वरूप की हमारी समझ गड़बड़ा जाती है। कभी-कभी लगता है कि हम बनारस में नहीं बोर्खेज की कहानी की किसी भूलभुलैया में चल रहे हैं।

बनारस में समय, बनारस के समय से मुझे मणि कौल की फ़िल्म ''सिद्धेश्वरी देवी'' का भी ध्यान आता है। उनकी

इस फ़िल्म में एक समय के बनारस का समय बहता रहता है। एक समय की गंगा बहती है और उस पर तैरती नाव में नायिका, देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास पढ़ती रहती है। फ़िल्म में बनारस की गंगा उसके घाट और गलियाँ, बनारस का गाना और बजाना, बनारस की छतें, सीढ़ियाँ और खिड़कियाँ, बनारस की बारिश और गर्मियाँ, अत्यन्त जीवन्तता और मार्मिकता के साथ व्यक्त होती रहती है।

मणि कौल की वह फ़िल्म बनारस की जटिल, पौराणिक और भारतीय कल्पनाशीलता को समझने में हमारी मददगार बनती है। बनारस के लिए हमारे अनुराग का विस्तार करती है। बनारस के लिए दुनिया भर का अनुराग बनारस के लिए यायावरों, कलाकारों और लेखकों का आकर्षण उतना ही पुराना जान पड़ता है जितना बनारस। बनारस की गंगा के किनारे जो भी वक्त बिताता है उसमें वहाँ के जीवन के अलग होने, वहाँ आ रहे लोगों को जीवन दृष्टि के भिन्न होने का अहसास मिलता रहता है। जीवन के लिए ही नहीं यहाँ के लोगों के मन में मृत्यु के प्रति भी कुछ अलग-सा रचा-बसा होता होगा। मुझे केदार घाट की एक दुपहर का ख्याल आता है जब एक साधु अपनी बातचीत में एक बुढ़िया को बता रहा था कि बनारस में यमराज की नहीं चलती है। बनारस उसके अपने अधिकार-क्षेत्र में नहीं आता है। वह जितने विश्वास से अपनी बात रख रहा था शायद उतने ही विश्वास से वह बुढ़िया उसकी बात सुन रही थी।

यमराज का अधिकार क्षेत्र, संकट मोचन और पिशाच मोचन मन्दिर, साँप की प्रतिमा पर जल छोड़ती भक्तन सती का पत्थर, चौमासी घाट का चौसठ योगिनी मन्दिर, अपने पुरखों को जल अर्पित करती युवा स्त्री, काल भैरव और कपिल धारा, विदेशी सैलानियों की उत्सुक निगाहें, बनारसी साड़ियों के विज्ञापन, विभिन्न भारतीय भाषाओं में यात्रियों का स्वागत करती आवाज़, आरती और शव यात्राएँ, बहती हुयी गंगा, कितना कुछ है जो बनारस को रहस्यमय बनाता है। पर सिर्फ रहस्यमय नहीं, जीवन्त, अद्‌भुत और अपनी तरह का शहर भी जिसको कुछ पंक्तियों में, कुछ पन्नों में और कुछ किताबों में समेटा जाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव भी है।

सदियों से बनारस पर न जाने कितनी निगाहें थमती-ठिठकती रही होंगी। कितने ही लोगों ने गंगा को बहते हुए, गंगा पर चन्द्रमा और सूरज की रौशनियों को उतरते हुए देखा होगा। कुछ ने अपने देखे हुए को अपनी नोटबुक में, अपने कैमरों में और अपने कैनवासों पर उतारा भी होगा पर मुझे नहीं लगता है कि कोई भी बनारस को उसके समूचेपन में, उसकी सम्पूर्णता में पकड़ पाया होगा। बनारस को उसकी सम्पूर्णता में पकड़ पाना तथा व्यक्त कर पाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव ही है।

यहाँ सिर्फ गंगा और वरणा और असी ही नहीं बहती है, यहाँ जीवन बहता रहता है, यहाँ मृत्यु बहती रहती है, यहाँ मुक्ति बहती रहती है। जहाँ इतना कुछ बहता चला जाता हो उस जगह को कोई कैसे पूरा पकड़ सकता है ?

यहाँ लोग आते रहते हैं, यहाँ से लोग लौटते रहते हैं, कोई-कोई यहाँ से लौटता ही नहीं, यहाँ पर आने, यहाँ से लौटने और न भी लौटने का यह सिलसिला भी सदियों से चलता आ रहा है।

यहाँ सदियों से गंगा बहती रही है और बनारस खड़ा हुआ है। बनारस शंकर का शहर। जीवन, प्रकाश, मुक्ति और मृत्यु का शहर। शहरों का शहर। इसीलिए लेविस ममफोर्ड ने अपनी किताब 'इतिहास में शहर' में बनारस के बारे में लिखा होगा कि बनारस एक समूची सभ्यता की ऊर्जा का संस्कृति में बदला जाना है। बनारस एक ऊर्जावान, पुरानी और बड़ी सभ्यता की अपनी तरह की अभिव्यक्ति है। एक ऐसी अभिव्यक्ति, जिससे सहमत हुआ जा सकता है, असहमत हुआ जा सकता है लेकिन जिससे उदासीन नहीं रहा जा सकता है।

अन्तर्यात्रा बहिर्यात्रा

राधावल्लभ त्रिपाठी

बलराम शुक्ल ने दो एक महीने पहले ही बताया था कि ईरान में अन्तरराष्ट्रीय कविता महोत्सव है। उसमें संस्कृत की अपनी कविता पढ़ने मुझे बुलाया जायेगा। कज्बे साहब सारा आयोजन कर रहे हैं, वही कज्बे साहब जिन्हें शुक्ल जी के सुझाव पर मैंने संस्थान में एक कार्यक्रम में बुलाया था। उन्होंने फारसी में बेहद महीन, नाजुक कविता सुनायी थी, जिसका मेरे कहने पर संस्कृत में फोरी अनुवाद बलराम शुक्ल ने किया था।

उस समय कज़्बे साहब ईरान के दिल्ली स्थित सांस्कृतिक केन्द्र में अधिकारी थे।

क़रीब पन्द्रह दिन पहले निमन्त्रण हौजे-ए-हुनरी (ईरान की राष्ट्रीय कला अकादमी) के संचालक की हैसियत से डॉ. अली रज़ा कज्बे की ओर से आ गया था।

ईरान जाने की बात थी, तो दारयूष जी की याद आयी। पिछले साल ही मैंने उन्हें राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान में एक अवेस्ता, पुरानी फ़ारसी तथा संस्कृत के सम्बन्धों पर कार्यशाला करने के लिये बुलाया था। कार्यशाला उसके बाद कई गतिविधियों के बीच हुई, दायूष बहुत उत्साहित थे, उन्होंने दो शोध योजनाएँ बनाकर बाद में मुझे भेजीं जिन पर हम लोग उनके साथ आगे काम कर सकते थे। संस्थान छूट गया, काम धरे रह गये। मैं शिमला आ गया।

दुनिया के कई देशों की यात्राएँ कीं, मन में खाँत फिर भी रह गयी कि अरे पाकिस्तान न जा पाये, बांग्लादेश न जा पाये और बाक़ी दुनिया घूम भी ली, तो क्या।

तीन जनों का शामिल टिकिट मिला था तेहरान का। मेरा, बलराम शुक्ल और कोई धर्मेन्द्रनाथ। धर्मेन्द्रनाथ कौन होंगे। कहीं वे तो नहीं मैं यह सोचता रहा। बाद में नाम के आगे उनकी जन्म तिथि देखी, तो पता चला कि जो धर्मेन्द्रनाथ साथ चल रहे हैं, वे तो अस्सी साल के हैं। इसलिये वे तो नहीं हो सकते जिनका मैं सोच रहा था।

टिकिट पर छपी कीमत देखी तो हैरानी हुई। ईरानी मुद्रा में चार करोड़ पैंतालीस लाख तेरासी हजार तीन सौ। शामिल टिकिट ने संकट पैदा कर दिया था। वापसी सबके साथ ३ अक्टूबर को ही करायी दी गई थी। मैंने तो बलराम शुक्ल को ख़बर की थी कि मेरा उन्तीस सितम्बर को लौट आना बहुत ज़रूरी है।

एयरपोर्ट रात साढ़े दस बजे पहुँचा। बलराम शुक्ल फोन कर के बता चुके थे कि वे पहुँच गये हैं। मेरा पासपोर्ट और वीजा उनके पास था। वे एयरपोर्ट पर मिल गये। पहले तो बलराम जी ने कहा कि बाहर ही धर्मेन्द्रनाथ जी की प्रतीक्षा

करते हैं, वे चल तो दिये ही हैं। मैं अब तक तक़रीबन स्थित चित्त हो गया था। मेरे भीतर एक त्रिपाठी जी रहते हैं, वे दिन भर की भागदौड़ से थक कर या तो ऊँघ रहे थे या सो ही गये थे। राधावल्लभ जी को कहने-सुनने को कुछ मिल नहीं रहा था, सो वे भी चुप थे। मैं बलराम शुक्ल पर अवलम्बित था, कल तेहरान पहुँचकर मेरे उन्तीस को वापसी के टिकिट के लिये भी वे बात करेंगे।

अपनी-अपनी ट्रॉलियाँ पकड़े कुछ देर हम बाहर खड़े रहे। अन्ततः बलराम शुक्ल ने कहा कि चलिये भीतर चलते हैं। धर्मेन्द्रनाथ जी आयेंगे तो मिल ही जायेंगे। भीतर कम से कम बैठ सकते थे। कुछ देर बाद धर्मेन्द्रनाथ जी आये तो बलराम जी उठकर उन्हें लेने गये। धर्मेन्द्रनाथ जी काफी कृशकाय, पूरी तरह गाँधीवादी वेशभूषा में। मैं उठकर खड़ा हुआ, अपना परिचय दिया।

वे रामपुर की लाइब्रेरी में रखी रामायण के फारसी अनुवाद की हस्तलिखित पोथी के बारे में बताने लगे, जो हाल ही में छप भी गयी है। उन्होंने इस रामायण से ये पंक्तियाँ सुनाईं -

तन अश्ू रा पैरहन उरियाँ न दीदा।

चूँ जाँ तन अन्दरो तन् जा न दीदा।।

सीता के सौंदर्य के वर्णन में कहा गया है। उनके वस्त्रों ने भी उनके तन को नहीं देखा था, जैसे काया अपने भीतर आत्मा को नहीं देख पाती।

फिर बलराम जी के साथ उर्दू या फारसी की कविता पर बातचीत होती रही, खासतौर से बेदिल देहलवी की कविता पर, जो मूलतः बिहार के थे, आज ईरान उन्हें अपना राष्ट्रीय कवि मानता है। धर्मेन्द्रनाथ यह मुल्ला मसीह पानीपती के शेर सुनाये।

तेहरान के इमाम खोमेनी अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचने का समय सवा तीन बजे था। बाहर आते-आते देर हो गई। तब तक भूख भी प्रबल हो गई थी ।

अजीज मेंहदी हमें लेने आये थे, वे भारत से ही हैं, अभी-अभी तेहरान विश्वविद्यालय में अध्यापक हो गये हैं। उनके पिताजी दिल्ली विश्वविद्यालय में नामी प्रोफेसर हैं, अजीज ने पढ़ाई वहीं की, पर नौकरी भारत में न मिली। उनकी मदद से विमानतल के रेस्तराँ में फल मिल गये - आम, केले और खरबूज।

२७ सितम्बर, २०१४

हम तेहरान के विमानतल से निकल कर आबादान जाने के लिये अन्तर्देशीय विमानतल की ओर निकले, जो दूर है। रास्ते में तेहरान विश्वविद्यालय का परिसर था। कभी यहाँ संस्कृत का विभाग था और एम.ए. तक संस्कृत पढ़ाई जाती थी।

अचानक नारायण शंकर शुक्ल की याद आई। कितने वर्ष हो गये, उनसे कोई सम्पर्क नहीं, उनसे सम्बन्ध के सारे तार ही टूट गये। वे सागर में जन्मे, सागर में पढ़े-लिखे और दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे। इसी तेहरान विश्वविद्यालय में अतिथि आचार्य रह चुके हैं, यहाँ रह कर उन्होंने महाभारत का फारसी में अनुवाद किया।

मुझे आठ साल दिल्ली में रहते हुए हो गये। कितनी अज़ीब बात है कि इस दिल्ली में रहते-रहते मैं नारायण शंकर

शुक्ल और रामगोपाल शुक्ल इन दो बन्धुजनों को देख न पाया, जबकि दोनों दिल्ली में रहते हैं। सम्मेलन तीन दिन आबादान में और बाकी दिन तेहरान में है। मैं तेहरान वाले भाग में तो रुक नहीं पाऊँगा।

२८-२९ सितम्बर, २०१४, आबादान

इस बीच बलराम शुक्ल और उनकी बातचीत में उर्दू और फारसी के कितने ही शेर सुनने को मिले। अरे इसे तो तुम्हें नोट कर लेना चाहिये था। सुनते हुए त्रिपाठी जी कहते। पर नोट करते-करते रह जाते। फिर मैं त्रिपाठी जी से कहता। नोट कर भी लिया तो क्या होगा, ऐन वक्त पर वह कागज़ नहीं मिलेगा, जिस पर नोट किया था। मिल भी गया तो आप उसका अर्थ भूल चुके होंगे, अर्थ याद भी आ गया तो उसको कहाँ कैसे फिट करना है आप न बूझ पायेंगे, अतः आप शान्ति से विश्राम करें, यही उचित होगा। आपका दिमाग बहुत छोटा-सा है, उसमें ज़्यादा कुछ समाता नहीं है, समाते-समाते फिसल कर बह अलग जाता है, वरना आपको ये उर्दू के काव्यांश याद हो जाने चाहिये थे।

धर्मेन्द्रनाथ जी को मधुमेह है और उसकी दवाइयाँ जो वे लेते हैं दिल्ली में ही भूल आये हैं। फिर भी वे प्रसन्न हैं। बीच-बीच में गुनगुनाते हैं।

सम्मेलन का आयोजन शाम को है। दिन में आबादान घूमने गये। यह बहुत छोटा शहर है। नदी के किनारे हम काफ़ी देर रुके रहे। नदी का नाम अरवन्द है। दूसरे किनारे पर इराक है। ऐन आँखों के आगे फैला हुआ, इतना नज़दीक, फिर भी कितना दूर।

सम्मेलन में साठ से ज़्यादा कवि और कलाकार शिरकत कर रहे हैं - योरोप के देशों से भी हैं और पश्चिमी एशिया से भी। पाकिस्तान और अफगानिस्तान से चार-पाँच शायर हैं। सम्मेलन की थीम आसमान-ए-बच्चहा सूचित की गई थी, जिसका अंग्रेज़ी उल्था स्काइ ऑफ द चिल्ड्रन छापा गया है। मैंने दुर्जय शीर्षक कविता सुनाई महाभारत युद्ध के बाद अनाथ की तरह भटकते दुर्योधन के बेटे के बारे में। बलराम शुक्ल ने उसका फारसी अनुवाद प्रस्तुत किया। कविता सुनाकर नीचे उतरा, पहली पंक्ति में बैठे सज्जन ने उठकर हाथ मिलाया और कहा महाबारत, महाबारत।

कविताएँ जितनी पढ़ीं गईं, उससे अधिक वक्तव्य दिये गये, बहुत आवेग के साथ - इजराइली आतंकवाद के खिलाफ रोष भरे वक्तव्य।

३० अक्टूबर, २०१४, मास्को

अपरान्ह साढ़े तीन बजे मास्को विश्वविद्यालय के इण्डो-ईरानियन व अफ्रीकन पीठ में कार्यक्रम था। पीठ की प्रभारी डॉ. एलिना ग्लेडकोवा बहुत उत्साही हैं। कई तरह के कार्यक्रम करती हैं। हिन्दी इस पीठ में उत्साह से सिखाई जाती है। लड़के-लड़कियाँ हिन्दी में अच्छा बोले भी और एक छात्र ने स्वरचित हिन्दी कविता सुनाई। शुरू में वे एक लाइन बनाकर मंगलाचरण जैसा करने के लिये खड़े हुए तो मुझे लगा कि वे हमको मन की शक्ति देना जैसा कुछ गायेंगे पर उन्होनें प्रेम के बारे में एक अत्याधुनिक हिन्दी फ़िल्मी गीत प्रेम से मिल कर गाया। सब कुछ प्रेम से ही हुआ। मुझे रूस में प्राच्यविद्या और संस्कृत के अध्ययन पर कुछ कहना था। मैंने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से बात शुरू की। तीन लोगों का नाम खासतौर से लिया। ओटो बोतलिंक, शेरबात्स्की और ओल्डेनबर्ग। कितनी विचित्र बात थी कि रूस आने के पहले मेरा ध्यान इस बात पर गया ही नहीं था कि ये तीनों तो पक्के रूसी हैं। मास्को यात्रा के पहले अपने ही सम्पादन में छपे 'सिक्टी इयर्स ऑफ संस्कृत स्टडीज' संकलन में सेरेब्रियानी जी का लेख फिर से देखा गया। उसी लेख से सामग्री चुरा चुरू कर मैं यहाँ कुछ कह सकता था। सम्पादन के समय जल्दी में पढ़ा होगा।

ओटो बोतलिंक १८१५ में जन्मे, १९०४ में चल बसे। १८३३ से १८३५ के दौरान बोतलिंक सैंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में अध्ययनरत थे। उनका बनाया संस्कृत-जर्मन का विशाल कोश 'पीटर्सबर्ग डिक्शनरी' के नाम से भी मशहूर है। मैं यह गौरव के साथ श्रोताओं को बता रहा था कि उनकी बनाई डिक्शनरी का उपयोग अभी भी हम लोग खूब करते हैं तथा जिस संस्कृत विश्वविद्यालय में मैं कुलपति रहा, उसका इस डिक्शनरी से अटूट रिश्ता है, क्योंकि उसके भारतीय संस्करण का पुनर्मुद्रण वहाँ से हुआ। ओल्डेनबर्ग और शेरबात्स्की दोनों लगभग समवयस्क थे, एक का जन्म १८६३ में, दूसरे का १८६६ में हुआ। ओल्डेनबर्ग का निधन १९३४ में हुआ और शेरबात्स्की का १९४२ में। १९१७ की क्रान्ति के बाद संस्कृत, बौद्ध धर्म-दर्शन या भारतीय विद्या पर अध्ययन-अनुसन्धान में लगे अनेक विद्वानों को विवश होकर रूस से पलायन न करना पड़ा। ओल्डेनबर्ग और शेरबात्स्की रूस छोड़ कर नहीं गये। शेरबात्स्की को अपार यन्त्रणा व वेदना झेलनी पड़ी। कल्यानोफ पर मैंने बात समाप्त की। कल्यानोफ ने स्वयं अपना नाम कल्याणमित्र रख लिया था या उनके संस्कृत प्रेम के कारण यहाँ के विद्वानों ने उन्हें यह नाम दिया। यह पता नहीं। पर कोई भारतीय उनसे मिलने आता, तो वे उसके सामने धाराप्रवाह संस्कृत के श्लोक बोलने लग जाते।

भाषण देते समय शिवमंगल सिंह 'सुमन' दिमाग में दो-चार बार घूम गये। वे ही तो कल्यानोफ के बारे में अक्सर बताया करते थे कि किस तरह वे रूस में उनसे मिलने गये, तो उनकी संस्कृतवक्तृता के आगे बगले झाँकते रहे।

३१ अक्टूबर, २०१४

आज मास्को विश्वविद्यालय के अफ्रीकन व एशियन अध्ययन संस्थान में जाना था। विश्वविद्यालय के विशाल भवन बहुत पुराने हैं। प्राध्यापक बहुत बूढ़े, जैसे चुक गये हों। मुझे भारत व रूस के सम्बन्धों के बारे में बोलना था। राहुल जी पर चर्चा की। राहुल जी १९३५ में रूस आये थे। लोला (इलेना) शेरबात्स्की की छात्रा थीं। राहुल जी से उनका परिचय हुआ फिर परिणय।

शाम को भारतीय दूतावास की ओर से स्वागत का कार्यक्रम था। काउंसिलर राहुल श्रीवास्तव प्रेम से मिले, वहाँ का पुस्तकालय देखा। जगह की कमी के कारण खिसकाई जा सकने वाली रेकों में पुस्तकें लगाई गईं थीं। औपचारिकताएँ हुईं, कुछ ऊब हुई, फिर भी आना सार्थक हुआ, डॉ. सेरेब्रियानी मिल गये, नतालिया लिडोवा भी। सेरेब्रियानी हिन्दी ठीक-ठीक बोलते हैं। उनसे उनके काम के बारे में देर तक बात होती रही।

१ नवम्बर, २०१४

रोरिक म्यूज़ियम में आकर लगा कि मास्को आना सार्थक हो गया। एक कक्ष में हेलेना रोरिक की बनाई शंकराचार्य की पेन्टिंग है। हिमालय के विविध रूप, तिब्बत की छवियाँ, भारत के अनेक दृश्य। गाइड का नाम आरेग है। संस्कृत व हिन्दी टूटी-फूटी बोलते हैं। बहुत सौम्य व्यवहार। हमारे आने से पुलकित है।

एक दूसरे कक्ष में निकोलस रोरिक की यात्रा के समय उपयोग की गई सामग्री। बुलेट प्रूफ जैकेट (क्यों कि उनकी हत्या के बराबर प्रयास किये जा रहे थे), तिब्बती कपड़े, पानी के ले बैग, कोट हूमी का चित्र मैत्रेय का भी।

मेरे दिमाग में जे. कृष्णमूर्ति की छवि उभरी।

२६ अगस्त, २०१५

एन रक्षाबन्धन के ही दिन मेरे भीतर की टूटी सीढ़ियों वाली वाबड़ी के किसी खड्ड में बैठा ब्रह्मराक्षस फिर प्रकट हो

गया और अचानक बोला-राधावल्लभ जी आप महाचोर हैं। एक तो सारी ज़िन्दगी आप अपने आप से मुँह चुराते रहे हैं, दूसरे अपनी ही पुरानी रचनाओं से वाक्य के वाक्य, पैराग्राफ के पैराग्राफ निकाल कर नये लेख में उनके सजा- सजा कर समझते रहे हैं कि भारी मौलिक कार्य कर डाला। फिर दूसरों के लिखे पर भी आप हमेशा घात ही लगाये रहते हैं कि इसमें से मैं क्या निकाल लूँ... और जहाँ कुछ दिखा कि उसे झपट्टा मार लिया।

मैंने कहा सभी यही तो करते रहे हैं, वही मैंने भी किया। कालिदास से लगाकर प्रसाद तक सारे महाकवि। गौतम, कपिल और कणाद से लगाकर उत्तर आधुनिक विचारक तुम्हारे ग्राम्शी....देरिदा और फूको भी...।

वह फिक्क से हँसने लगा और बोला - गौतम, कपिल और कणाद का ककहरा तक तो ठीक से आता नहीं है, ग्राम्शी-फाम्शी वगैरह का नाम तो तुम्हारी ज़बान से अच्छा भी नहीं लगता। एक काम करो, इन सबके नाम की माला बनवाओ और उसे नित्य जपते रहा करो, ऐसा न हो कोई नाम छूट जाये... फिर हाहा करता हुआ वापस अपनी खोह में जा घुसा।

वह चला गया तब याद आया कि अरे यह तो मैंने उसके आगे कहा ही नहीं कि सस्यूर की पी.एच.डी. की थीसिस दबा रखी है ससुरों ने, उसे छपने ही नहीं देते हैं, क्यों कि छपेगी तो भाँडाफोड़ न हो जायेगा कि ससुरे सस्यूर ने कहाँ-कहाँ कितनी नकल मारी है भर्तृहरि वगैरह की .... और मौलिकता की भली कही उसने.. अब की बार हुआ प्रकट तो यह श्लोक दे मारूँगा उसके मुँह पर ।

कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः

वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यता।

वह कहेगा क्या मतलब?, तो कहूँगा बेटा जी इसका मतलब है कि नवीं शताब्दी में हुए न्यायदर्शन के सबसे मौलिक विचारक जयन्त भट्ट कहते हैं कि कुछ नया उद्भावित कर लें इतनी दम हममें कहाँ है..हम तो वचोविन्यासवैचित्र्य यानी कि कहने के ढंग में कुछ अनोखापन -- भर कर पाते हैं उसी पर विचार कीजिये...

कुछ दिन वह ज़रूर चुप रहेगा इससे।

तब तक राधावल्लभ जी कहने लगे कि त्रिपाठी जी, वह जो कह गया है, उसे मान ही लो।

मैं जानता हूँ कि ब्रह्मराक्षस कोई नहीं है, मुक्तिबोध की कविता से उसे उधार ले लेने से उसका होना मेरे लिये होना नहीं हो जाता। तब फिर यह जो अन्तर्यात्रा बहिर्यात्रा शीर्षक से कुछ लिखना शुरू कर दिया है, यह मात्र छपास है... या यह अपने आपको छलना है या अपने आप को छीलना है या दोनों ही है या दोनों ही नहीं है और ऐसा कहना कि यह मात्र छपास है, अपने आपको छलना है या अपने आप को छीलना है या दोनों ही है या दोनों ही नहीं है - यह वेदान्ती दृष्टि है या शून्यवादी दृष्टि है या वचोविन्यासवैचित्र्यमात्र है अथवा विशुद्ध बकवास है... ।

३१ अगस्त, २०१५, प्रातः ६.१५

चाय का कप हाथ में लिये बालकनी में आ बैठा हूँ। नीम और अमलताल के पेड़ों की डालियाँ झकझोरती हुईं हवा मेरे पाँव सहलाती हुई निकल गई है। उसकी दिशा मेरे ऊर्ध्वकाय की ओर नहीं रही होगी, वरना मेरे पाँव छूने का उसका इरादा रहा हो ऐसा नहीं लगता। पर मैं चकित ज़रूर हुआ। कई दिनों से किसी बात पर चकित नहीं हुआ था,

अचानक अब हुआ। यह हवा कहाँ से आई होगी, कहाँ चली जा रही है, यह कब से ऐसे बह रही है... शुक्र है कि यह अभी भी है....

मैं इस सोच को आगे ले जाने को था - जैसे कि अनन्त ब्रह्माण्ड के अनन्त ग्रह नक्षत्रों में से किससे चल कर यह आई होगी- आदि, तभी मुझे ऐसा भान हुआ कि मैं वस्तुतः चकित नहीं हुआ हूँ, चकित होने का नाटक कर रहा हूँ और अपने आप को यह चकितनाट्य करते देख कर प्रसन्न भी हूँ। जो कुछ हुआ सो ठीक ही हुआ कि मैं क्षणार्ध प्रसन्न रह सका।

२२ सितम्बर, २०१५

विमान में हूँ। परसों चौबीस को ही लन्दन में गीता पर अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में जो लेख पढ़ना है, वह तैयार रखा है। मैं विमान में निश्चिन्त हो कर अक्टूबर के पहले हफ्ते में ढाका में रवीन्द्रनाथ और संस्कृत पर जो बोलना है उसके लिये रवीन्द्रनाथ की गीतपंचशती पढ़ रहा हूँ। विमान बहुत ऊँचाई पर होगा, मुझे लगा कि उससे भी कई गुना ऊँचाई पर मैं हूँ।

गीतपंचशती पढ़ते हुए मन हिल गया। मैंने थोड़ा-सा पाया, उसी को सहेजते-सहेजते थक गया, बस यहाँ गया वहाँ गया। हाहाकार मन्द न हुआ, बन्द न हुआ।

अल्प लइ थाकि ताइ मोर याहा याय ताहा याय

कणाटुकु यदि हाराय ता लये प्राण करे हाय हाय

विदेश यात्रा और फलाना.... विदेश यात्रा और फलाना ... फलाने जी ने तीन बार यह बात दोहराई थी २००५ में, एक बार मैंने उनको फ़ोन क्या लगा लिया। रात को फ़ोन पर शराब के नशे में लगभग गाली देते हुए मुझसे कहा था। पर मैं वह सब क्यों याद करूँ? उस सबसे अब छुट्टी पाऊँ... अपनी निवासस्थली बनाऊँ।

रातेर बासा हय नि बाँधा, दिनेर काजे त्रुटि

बिना काजेर सेवार माझे पाइ ने आमि छुटि

रात को रहने के लिये निवासस्थली बना न सका, दिन में जो करता रहा उसमें त्रुटियाँ छूटती गईं, मैं बेकार की सेवा करता आया, जिसमें कभी छुट्टी न पा सका...

जो मैं अपने से कहना चाह रहा हूँ वह रवीन्द्रनाथ अपने से कह रहे थे सौ साल पहले .. तो क्या वे मेरी तरह अपने भीतर कोई नाटक रचते रहते थे? राधावल्लभ जी ने कहा कि अब चुप होकर बैठ जाओ, रवीन्द्रनाथ से अपनी तुलना करने का विचार भी तुम्हारे जैसे तुच्छ आदमी को मन में नहीं लाना चाहिये। रवीन्द्रनाथ का सब कुछ विराट्, मेधा विराट्, सम्पत्ति विराट्, कदकाठ विराट्। तुम साले उनके सामने कुछ नहीं।

२६ सितम्बर, २०१५

लन्दन में ढाई दिन रहना हो पाया, आज आधा दिन गुड़गाँव के घर में रह लूँगा। लन्दन से कल शाम चला था, आज दोपहर होते-होते दिल्ली वापस लौटा। लेख भेजने के लिये जिन लोगों के फ़ोन प्रवास में मेरा पीछा करते रहे और जिनसे मैं बचता रहा, उनमें से एक 'प्रभात खबर' के रवि प्रकाश जी भी थे। आज परदेस से लौटा ही हूँ, थोड़ी ही देर

यहाँ रुकूँगा, उसमें भी फिर उनका फ़ोन। पर इस बार रिसीव कर लिया। कैसे स्वर में वे बोलते हैं बहुत कमज़ोर थका-थका स्वर, फिर भी बहुत चमकदार स्वर। भीतर तक छील जाता हुआ। आपका लेख लक्ष्मी और गणेश पर तो चाहिए ही... उसके बिना नहीं बनेगा... उसे शुरू में ही रखना है। लक्ष्मी और गणेश को किसानों से जोड़ना है, क्योंकि वे तो किसानों के ही हैं... मैं 'जी जी' कहता गया। पर जी के भीतर बेचैनी हुई।

२७ सितम्बर, २०१५

कल शाम की गाड़ी पकड़ कर आज सुबह वाराणसी आ गया हूँ। त्रिपाठी जी बराबर हिसाब लगाते रहे हैं - दो दिन यहाँ रह कर कलकत्ता जाना है, कलकत्ता में दो दिन रह कर ढाका, वहाँ सात दिन रह कर सितम्बर-अक्टूबर का एक यात्राचक्र इस तरह चुक जाएगा।

जीवनचक्र के कई चक्रों में एक यह था। इस चक्र में भी एक चक्र के भीतर कई चक्र घूम गये हैं। इनमें मैं था। इनमें मैं क्या सचमुच घूमा? काया तो घूमी ही। वेदान्त में जीवन्मुक्त की काया को कुम्हार के चाक से उपमा दी गई। कुम्हार चाक घुमा कर अपना बर्तन बनाकर उसे उठाकर जा चुका। चाक को जाते-जाते वह घुमा गया है, चाक में घूमने का संस्कार बचा रह गया है, उसके कारण अपने सूने में बिना घट और बिना कुम्हार के चाक है कि घूम रहा है।

इन दो दिनों में कई आश्चर्य किन्तु सत्य शीर्षक के अन्तर्गत लिखी जाने वाली बातें घट गईं। वाराणसी में आकर पहली बार ऐसा हुआ कि स्टेशन से विश्वविद्यालय करीब आधे घण्टे में आ गया, इसके पहले दो घण्टे से कम इसमें कभी लगा हो ऐसा ध्यान नहीं है। विमान से जितने समय में दिल्ली से वाराणसी आते, उससे ज़्यादा समय विमानतल से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पहुँचने में लगता। जब सागर से भोपाल की सड़क खस्ता हालत में नहीं होती थी, तब इतनी देर में तो हम सागर से भोपाल पहुँच जाते थे। तो क्या अब काशी शिव जी के त्रिशूल से हटकर मोदी जी के समय में चलने लग जायेगी?

इस संगोष्ठी के प्रति भी थोड़ा-सा लालच था, क्योंकि यह सौंदर्यशास्त्र पर है। मैंने अपने पर्चे का संक्षेप भेज दिया था। दोपहर बाद जो किट मिला उसमें रखी संक्षेपों की किताब में वह छपा भी है। पर कार्यक्रम का पता नहीं है। किस सत्र में किस को अपना पर्चा पढ़ना है, यह किसी को पता नहीं। यह ईश्वर को भी पता है या नहीं यह हम को पता नहीं। पर कॉन्फ्रेन्स तो अच्छी तरह चल रही है, कई जगह कई सत्र एक साथ चल रहे हैं और पर्चे पढ़े भी जा रहे हैं, यह ज़रूर हुआ कि चन्द्रकान्त शुक्ल को अध्यक्षता करने के लिये बुलाकर ले जाया गया, वे अध्यक्षता में बैठे थे, तभी सदाशिव द्विवेदी का फोन उनके पास आया कि आपको अपना पर्चा पढ़ना था इस कक्ष में आप कहाँ हैं। मेरा पर्चा शायद हो न सकेगा इसलिये आज जिस सत्र में अध्यक्ष बनाया गया, उसके अध्यक्षीय वक्तव्य में पढ़े गये पर्चों पर टीप करने के साथ अपने पर्चे की भी बात दो एक मिनिट कर के सोचा कि मुक्त हुआ।

२८ सितम्बर, २०१५

समापन सत्र में मैं सारस्वत अतिथि था। गोपबन्धु जी से कहता आ रहा था कि मुझे २८ को कलकत्ता की गाड़ी ६ बजे की पकड़नी है, तीन बजे के समापन सत्र में बैठे रहने पर गाड़ी छूट सकती है। इस तरह न-न करके चार बजे उठ जाऊँगा । इस धमकी के साथ समापन सत्र में भी बैठा ही। आखिर समापन सत्र में सारस्वत अतिथि जो रहना था। अपने भाषण में कहा कि कुछ साल पहले काशी आते थे, तो लगता नहीं था कि काशी में आ गये हैं, जब से इस विभाग में इस तरह की संगोष्ठियाँ और सम्मेलन होने लगेंगे, तो लगता है कि काशी में आ गये, तो तालियाँ बजीं। न

बजने वालीं होतीं, तब भी मैं यह बात कहता ही। कमाल तो किया ही गोपबन्धु मिश्र वगैरह ने कि पाँच-एक सौ पण्डितों अथवा विद्वानों अथवा शोधार्थियों का जमावड़ा रचा दिया, उसमें भी सब के सब सौंदर्यशास्त्र पर अपने लेख पढ़ने के लिये सन्नद्ध। इसके बावजूद कि विश्वविद्यालय पैसा-वैसा नहीं देता, इन लोगों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी कर डाली। कहते हैं कि काँची के या अन्य किसी पीठ के शंकराचार्य जी ने भोजन दे दिया, अन्नपूर्णा मन्दिर ने कुछ दे दिया।

२६ सितम्बर, २०१५

कलकत्ता के नरेन्द्रपुर में शायद चौथी बार आया हूँ। हर बार नारायण दास के कारण आना पड़ता रहा। पहली बार आया था, तब रामकृष्ण मिशन कॉलेज का यही परिसर कितना विलक्षण लगा था। अब मन नहीं हुआ कि उसे फिर उसी तरह देखूँ जैसे पहली बार देखा था। वह चाहे कि मैं उसे देखूँ, मैं चाहूँ कि फिर उसी तरह देख लूँ, तो क्या देख सकूँगा वैसे के वैसे? पर परिसर तो अपनी सारी सुन्दरता के साथ वैसा ही था। तो क्या कबीर ने जो कहा उसका विलोम मेरे साथ घटता है। संसार नहीं मरता वह जस का तस है, मैं मरता हूँ। शायद भागदौड़ अधिक हो जाने और सही ढंग से सुस्ताने का वक़्त न मिलने से ऐसा लग रहा हो। हावड़ा स्टेशन से नरेन्द्रपुर पहुँचने में इतना अधिक समय लगा कि तब तक संगोष्ठी का उद्घाटन सत्र हम लोगों की प्रतीक्षा करते-करते समाप्त कर दिया गया। भोजन के समय पहुँचे व भोजन में शामिल हो गये। मैंने कह दिया था कि मुझे बांग्लादेश का वीज़ा बनवाने के लिये जाना है तो मेरा व्याख्यान तत्काल भोजन के बाद नारायण ने रख दिया। फिर नरेन्द्रपुर से चलकर ढाई घण्टे में ग्लोबल टूर के हिमाद्रि के पास तक पहुँच सका। सड़क पर कार खड़ी रख सकने की गुंजाइश न थी, पार्क करने की गुन्जाइश न थी, बाहर निकल कर हिमाद्रि के आफिस पहुँच सकने की गुंजाइश न थी। इसलिये हिमाद्रि बाहर खड़े थे, कार की खिड़की का ग्लास थोड़-सा खोल कर पासपोर्ट व फोटो दे दिया।

व्हाट अबाउट दि ओल्ड पासपोर्ट्स? हिमाद्रि ने पूछा।

मैंने कहा कि मैं पिछले पासपोर्ट लेकर नहीं आया।

'ठीक है' - उन्होंने कहा। 'कल टालीगंज आकर पासपोर्ट वापस ले लीजिए।'

'और पैसा?'

'कल कल ...' उन्होंने कहा।

इससे अधिक बात करने के लिये जगह न थी, पीछे कारें थीं, बगल में कारें, गली सँकरी थी।

३० सितम्बर, २०१५

संगोष्ठी के सत्रों में बैठा रहा, बार-बार हिमाद्रि को फोन भी किया। इसी में संगोष्ठी समाप्त भी हो गई। समापन में भी बोला, प्रशन्सा पाई। पर मन उत्फुल्ल नहीं हुआ।

तो क्या करने से आप उत्फुल्ल हो सकते हैं। राधावल्लभ जी पूछते रहे। फिर बोले - कदाचित् मनमाफिक भोजन न होने से अवसाद आप को है। चिन्ता मत कीजिये, जीवन है, तो अच्छा भोजन भी कभी मिलेगा।

कमरे पर आ ही गया। दिन भर प्रतीक्षा में बीता। यह भी लगता रहा कि शायद ढाका जाने के लिये वीजा हो ही न

पाये। मैं पिछले पासपोर्ट लाना जो भूल गया था। न हो पायेगा, तो वापस दिल्ली लौट जाऊँगा, पर कैसे?

आठ बजे के बाद फिर फोन करने पर हिमाद्रि ने कहा कि वीजा मिल गया है, मैं टालीगंज मेट्रो स्टेशन तक आकर ले लूँ।

१ अक्टूबर, २०१५

कलकत्ता एयरपोर्ट कितना विशाल। गुलीवर की यात्राओं के लिलीपुट देश से अन्य देश में पहुँचे ये प्राणी की तरह मैं इसमें चल रहा हूँ।

उदरविकार का कष्ट झेलने पुनः बार-बार विविध शौचालयों में आवागमन करते थके-हारे बेचारे राधावल्लभ जी इस एयरपोर्ट के किसी कोने में विराजे त्रिपाठी जी को कोस रहे हैं। त्रिपाठी जी उन्हें समझाते हुए कहते हैं - ईशावास्योपनिषद् के पहले मन्त्र का पूर्वार्ध तो इस तरह समझ लो हमने इसी जीवन में उतार ही लिया। अब रहा उत्तरार्ध सो उसे भी साधेंगे...।

ढाका रात क़रीब साढ़े आठ बजे पहुँचा। एयरपोर्ट पर बहुत हो-हल्ला था। इमीग्रेशन काउण्टरों के आगे कतारें टूट टाट कर एक दूसरे में मिल जातीं, लोग एक कतार से दूसरी में जुड़ कर सोचते कि इसमें जल्दी आगे बढ़ सकेंगे। मैंने भी तीन बार कतारें बदल डालीं। विमान से उतरते-उतरते वोडाफोन के सन्देश में बताया गया कि बांग्लादेश में आपका स्वागत है, एक मिनिट की अवधि का यहाँ से बाहर फोन करने पर आपको एक सौ सत्तर रुपया प्रति मिनिट की दर से चार्ज देना होगा इत्यादि। लाइन में खड़ा था इस अवधि में भारत और ढाका से कई फोन आये। बाहर लुब्ना मरियम ने विमानतल के जिन कर्मचारियों को मेरी अगवानी के लिये कह रखा था, वे फोन कर रहे थे। कोहराम के भीतर वे जो कह रहे थे और मैं जो सुन रहा था वह भर्तृहरि के स्फोटसिद्धान्त का सरासर सर्वनाश था। पर मैं उन लोगों को समझाने की कोशिश कर रहा था कि इमीग्रेशन की बाधा पार करके और अपना सामान लेकर जैसे ही निकलूँगा आप महानुभावों से मिलूँगा। इस तरह पन्द्रह मिनिट लाइन में खड़े-खड़े कई घण्टे गुजर गये। पर सब कुछ ठीक हुआ और बाहर निकला, तो विमानतल के वे दो कर्मचारी तुरत मिल गये, जिन्हें मुझे रिसीव करने की ज़िम्मेदारी दी गई थी। घूमते वेल्ट के एक ओर खड़े अपना अदना-सा बेग आने की प्रतीक्षा में फिर लगता रहा कि सबका सामान आ रहा है मेरा ही नहीं ... तो क्या नहीं ही आयेगा मेरा सामान... यह सोचते-सोचते अनन्त समय बीतता गया, जिसका अन्त होने पर राधावल्लभ जी को बेग रूपी फल की प्राप्ति हुई।

दोनों कर्मचारी साथ न होते तो एयरपोर्ट से निकल कर ड्रायवर को ढूँढ़ न पाता। उनमें से जूनियर कर्मचारी मेरा ब्रीफकेस लेकर आया था। मैं उन दोनों से फिर ड्रायवर से निरर्थक मुस्कान के साथ बात करने की दयनीय कोशिश करता-करता कार में बैठा। ड्रायवर का नाम नजरुल इस्लाम है। पर विद्रोही कवि जैसा व्यक्तित्व नहीं, सौम्य सहज।

२ अक्टूबर, २०१५

नींद भी लगभग ठीक आ ही गई थी। बीच में दो बार टूटी कर छिटकी, तो लौट भी आई। तीसरी बार जो टूटी तो अलार्म पर ही टूटी ठीक पाँच बजे। ऐसा राधावल्लभ जी के साथ कम ही होता है, अलार्म लगा दिया है तो इस आशंका में बार-बार नींद खुलती रहती है कि पता नहीं अलार्म कब बज जाये और कहीं ऐसा न हो कि किसी गड़बड़ी से अलार्म बजे ही नहीं और नींद लगती रह जाये, तो कुछ अनर्थ हो जाये।

फुर्ती से पन्द्रह मिनिट में ही सारी दैनिक क्रियाएँ निपटा डालीं। उसके बाद लोक से अलोक में जाने का विष्फल प्रयास। अब मुक्त हूँ। लुब्ना ने कहा था कि ठीक छह बजे चल देना है जमुना टी.वी. पर साक्षात्कार के लिये। अब मैं स्वाधीन। वे आयें, न आयें, रिकार्डिंग हो, न हो। अब तो मेरा चैतन्य प्रत्यवमर्श की दशा में चला गया। तो क्या स्वाधीनता और मुक्ति इस तरह की खाम खयाली से मिल सकती है?

साढ़े छह बजे तक लुब्ना का कोई पता नहीं। अब तक मुझे ही समझ लेना चाहिये था कि बांग्लादेश में समय भारतीय समय की तरह मन्द गति से चलता है। पर मुझे क्या? मैं तो अभी भी शुद्ध बुद्ध मुक्त का मुक्त ही हूँ।

पौने सात के करीब होटल से रवाना हुए, सात पर टीवी स्टेशन पहुँचे।

लाइव टेलीकास्ट में जिन लोगों के साथ मेरी बातचीत होनी है, उन्हें मुझसे मिलाया गया। जुबेर इंजीनियर हैं, लड़की का नाम टीना। दोनों बहुत दक्ष लगे। प्रसारण कक्ष में दोनों को अलग-अलग स्क्रीन पर देख सकता हूँ, एक स्क्रीन जो सीधे टेलीकास्ट करने के लिये है, दूसरा स्टूडियो में प्रतीक्षारत व्यक्ति को दिखाता चलता है।

मैं जो कह रहा था, उससे वे दोनों प्रभावित दिख रहे थे, या रोज़ वे इसी तरह अपने तो प्रभावित दिखाते होंगे।

जुबेर और टीना लिफ्ट तक छोड़ने आये। कार्यक्रम के प्रोड्यूसर तो नीचे तक आये।

३ अक्टूबर, २०१५

ढाकेश्वरी मन्दिर के दर्शन करके थोड़ी देर होटल में आराम के लिये मुझे छोड़ दिया गया। पर आराम तो न करना था, ढाकेश्वरी देवी के फेसबुक पर प्राकट्य का प्रयास अवश्य कर डाला। तब तक रिसेप्शन वाले ने फोन किया कि आपकी कार आ गई। साधना ले जाने के लिये कोई लड़की नीचे प्रतीक्षा कर रही थी।

संस्कृत शब्द तो साधना ही है। पर साधना कहो, तो लुब्ना जी को अच्छा नहीं लगता। वे टोक कर कहती हैं। हम लोग शोधोना बोलते हैं।

लुब्ना ने बताया कि वे कार्पोरेट के प्रयोजन से अब बड़ा नाटक या शो करने का जोखिम उठाती हैं। उससे लड़के-लड़कियों को कुछ मिल जाता है। लड़के-लड़कियों को वेतन तो देते नहीं हैं। पर कलाकारों को काफी कुछ इस तरह एकमुश्त मिल जाता है। कार्पोरेट कहता है कि बालीवुड का नृत्य संगीत होगा, तब इस शर्त पर कि दर्शक कहेंगे तो वह भी कर देंगे, पर करते हैं अपने ही नृत्य। मुझे वाराणसी के अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन की याद आई। सौंदर्यशास्त्र पर सम्मेलन। उसमें कार्पोरेट ने तो प्रायोजन नहीं दिया था। फिर भी प्रायोजन था, धर्माचार्यों का या शायद मन्दिर का। क्या वहाँ से भी कुछ शर्त रखी गई होगी?

५ अक्टूबर, २०१५

लुब्ना ने तो कह ही दिया था कि ढाका के ट्रैफिक जाम का जायजा आज आपको मिल जायेगा। पर मुझे लगा नहीं कि कब कहाँ जाम में फँसे कर रुके रहे। कब कितने आगे बढ़ गये। बैंकाक के जाम में अटकने के मुकाबले तो कुछ नहीं। इससे कई गुना समय तो दिल्ली से गुड़गाँव के रस्ते में फँस कर गँवाया है।

ढाका के बाहर खेत थे, हरियाली थी। खेतों की स्वर्णिम पीत-सी आभा कुछ और झिलमिलाई। तब तक लुब्ना सुनाने लगी चकित कर देने वाली अपने पुरखों की कथा। अब्दुल लतीफ के पोते सैयद हुसैन थे, जो उनकी माँ के मामू थे। वे

नेहरू के सहपाठी रहे। नेहरू १९२० के आसपास कांग्रेस में महत्त्वपूर्ण पद पर थे तो उन्होंने सैयद को इलाहाबाद बुला लिया। सैयद का यहाँ विजयलक्ष्मी पण्डित से प्रेम हुआ, दोनों शादी करने के लिये अड़े, नेहरू का परिवार इसके लिये तैयार नहीं। गाँधी जी से अनुरोध किया गया कि वे इस मामले में अपने प्रभाव का उपयोग करें या दोनों को समझाएँ, गाँधी जी ने विजयलक्ष्मी को समझा-बुझा कर अपने आश्रम में आने के लिये तैयार किया। सैयद हुसैन को अमेरिका भेज दिया गया। विजयलक्ष्मी ने बेटी चन्द्रकला को जन्म दिया।

जहाँगीर नगर यूनिवर्सिटी का संक्षेप नाम जे.एन.यू बनता है, दिल्ली की जे.एन.यू. जैसा परिसर, हरियाली, बीच में सरोवरों और शस्यसम्पदा के कारण कुछ अधिक सुन्दर भी। पूछते-पाछते पुरातन कलाभवन पहुँचे जहाँ नाटक और नाट्यकला विभाग है, तो विभाग के अध्यापक और कुछ छात्र-छात्राएँ स्वागत की सामग्री लिये द्वार पर खड़े थे। दो छात्राओं ने आरती उतारी, तिलक लगाया। बांग्लादेश में ऐसा स्वागत! राधावल्लभ जी आसपास देखने लगे कि अरे भाई कोई फोटो उतार रहा है या नहीं, हम इसको फेस बुक में चपका कर दिखा सकें कि क्या आरती उतारी गई हमारी..वीडियो तो बनाया जा रहा था, पर फोटो अलग से मिल जाता...!

नाट्यशास्त्र सुनने, समझने और गुनने को उत्सुक कौतुक भरे पचासेक लड़के-लड़कियाँ। अपरान्ह के सत्र शुरू होने के पहले लुब्ना के कहने पर दो छात्रों ने गीत गाये, दूसरा बाउल गीत था, कैसा चीरता चला गया...!

१४ अक्टूबर, २०१५

रात हो चली थी। भोपाल के एम.पी. नगर में पर्दे की दुकानों पर पर्दे देखते रहे। रोशनी भी थी और धुँधलका भी था। बाहर निकले। सड़क जितनी प्रशस्त और चौड़ी थी उतनी ही रेलमपेल और वाहनों की आवाज़ाही से भरी। इसके पार्श्व में गलियाँ जितनी सँकरी और भीड़ से पटी हैं। इसी के बीच चलते हुए एक झलक में अचानक वे मुझे दिख गये। वे सफेद धोती-कुर्ता पहने थे, आँखों पर बहुत पुरानी फ्रेम का चश्मा था। वे दोनों हाथ जोड़-कर मोटर सायकिल के सहारे खड़े युवकों से कह रहे थे। भैया, भोजन करा दे!

उनका वाक्य पूरा होने तक मैं आगे बढ़ चुका था, पर यह वाक्य मेरे भीतर की पतली सँकरी गुफा में कहीं धीमे गूँजा, फिर भी उसकी गूँज सुन सका। मुझे यकायक बेचैनी-सी लगने लगी, मैंने सत्या और गुड़िया से कहा। तुम लोग रुको, उधर वह जो बूढ़ा खड़ा है मैं उसे दस रुपये का नोट देकर आऊँगा..

यह विचित्र बात हुई कि पत्नी होकर सत्या ने इस बार मेरी बात पर न टीका-टिप्पणी की, न कोई आपत्ति। उल्टे कहा हाँ दे आओ..फिर वह गुड़िया के साथ प्रतीक्षा में खड़ी रही।

मैं उनके पास पहुँचा। उन्होंने मुझे देखा नहीं, वे दुबारा उस युवक से कह रहे थे। भैया भोजन करा दे.. मैंने अन्जलि बाँधने के लिये जुड़ी उनकी हथेलियों के बीच दस रुपये का नोट खोंसा। फिर तेज़ी से पलट कर चल दिया। मुड़ कर देखना नहीं चाहता था, नहीं देखा। चलते हुए सोचने लगा कि वे किसी के पिता हो सकते हैं। होंगे, पर अब मुझे उनके बारे में नहीं सोचना चाहिये।

एम.पी. नगर के चौराहे से गुजरते हुए हाल में हुए विश्व हिन्दी सम्मेलन के एक होर्डिंग पर नज़र चली गई। सम्मेलन जब हो चुका, तो उसकी सूचना देने वाली ये इबारतें अब यहाँ क्या कर रही हैं? यकायक राधावल्लभ जी पूछने लगे कि एम.पी. नगर का पूरा नाम क्या है? मैंने कहा - मुझे नहीं मालूम। अपने को क्या करना? पूरा नाम कुछ भी हो, अपना तो काम आधे-अधूरे से चल जाता है। फिर पन्द्रह-बीस साल पहले लिखे अपने एक लेख की याद आई जिसमें हिन्दी नामों के अँग्रेज़ी अक्षरों के द्वारा संक्षेपीकरण का कड़ा विरोध मैंने किया था।

प्रदेश की सरकार हिन्दी का दम भरती है। विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन पर गर्व करती है। यह ऐसी व्यवस्था लागू नहीं करा सकती कि टी.टी.नगर का नाम सारे पोस्टरों व हर प्रकाशित मुद्रित दस्तावेज में तात्या टोपे नगर ही लिखा व छापा जायेगा। तात्या टोपे को टी.टी. बनाकर उनका अपमान करने का हक किसी को नहीं है। एम.पी. नगर का भी पूरा नाम यदि कुछ है तो उसे भी इसी तरह पूरा लिखा जाये। पर मुझे तात्या टोपे नगर जाना होगा, तो मैं ऑटोरिक्शा या टैक्सी वाले से यही कहूँगा कि टी.टी. नगर चलो।

होटल में भोजन के लिये बैठे तो एक वाक्य मेरे भीतर फिर गूँजा । भैया भोजन करा दे...।

त्रिपाठी जी जो अपनी गुफा में सोने चले गये थे, जागे, उन्होंने कहा कि उस प्रकरण का निराकरण कर दिया गया है अतः उसके बारे में सोचने की आवश्यकता नहीं है। मैंने कहा - वह पर क्यों न सोचूँ? वे वृद्ध पुरुष मेरे भीतर हैं। वे बार-बार कहीं से प्रकट हो जाते हैं। अरे यह मैंने फिर मूर्खता कर ही डाली! मैंने उन्हें दस रुपये का ही नोट क्यों दिया? जिस तरह से वे कह रहे थे भैया भोजन करा दे .. तो सौ रुपये का या पाँच सौ तक का भी देना क्या उचित न होता? पर क्या अब यह सोचकर मैं अपने आप को अब बड़ा बनाना चाह रहा हूँ...कि देखो मैं सौ या पाँच सौ रुपये तक रास्ते चलते आदमी को हाथ में यों ही पकड़ा देने का विचार तो कर ही रहा हूँ..... उस वक़्त दे देता पाँच सौ तो क्या होता...? त्रिपाठी जी पछताते, राधावल्लभ जी रुदन करने लगते - मैं इन दोनों को देखता और हँसता।

८ नवम्बर, २०१५

नींद गहरी लग गई थी। रात के डेढ़ बजे होंगे। मोबाइल की घण्टी बजी। इस वक़्त? फिर भी सत्या उठीं मेरी नींद में खलल न हो इसलिये मोबाइल उठा कर हाल में चली गईं। दो मिनिट बाद में फफक-फफक कर रोती आईं, मैं उठ कर बैठ गया, वे मेरे कन्धे पर माथा रख कर बिलखती बोलीं-बाबूजी चले गये...।

फिर तुरन्त ब्यावरा चलने का आग्रह किया। रात के दो बजे अभी कैसे जा सकते हैं, भोर होते-होते निकल चलेंगे मैंने कहा, पर उनका रोना देखकर मैं टैक्सी की व्यवस्था करने लगा, कई फोन लगाये, अन्ततः नरेन्द्र से बात होने पर काम बना...।

९ नवम्बर, २०१५

सुबह सात बजे ब्यावरा पहुँचे होंगे। उसी कमरे में चला गया। उन्हें चादर उड़ा कर नीचे लिटा दिया गया था। अचानक मुझे लगा कि कमरा बहुत छोटा हो गया है और इसकी दीवारें झुकती जा रही हैं। क्या वे इस कमरे में बैठकर दिन में पाँच बार प्रार्थना करते थे, चिन्तन-मनन करते रहते थे इसलिये यह बड़ा लगता था? फिर मेरी दृष्टि श्री माँ और अरविन्द की तस्वीरों पर गई। कमरे की दीवारों पर वे पहले की तरह विराजमान थे। सात-आठ तस्वीरें अलग-अलग भंगिमाओं में श्री माँ की...उनकी रहस्यमय प्रशान्त मुस्कान, योगी अरविन्द की तस्वीरें कुल तीन ही थीं... तीनों में वे बहुत गंभीर... दो तस्वीरें भगवान की जो उनके गुरु रहे। मुझे सहसा यह भी लगा कि श्री माँ की मुस्कान बहुत करुणामय हो गई है, वे नीचे चिरनिद्रा निमग्न बाबूजी को देख रही हैं। ऐसा लगा कि ऐसा लग भर रहा है ... ऐसा है तो नहीं ...।

त्रिपाठी जी ने कहा । लोग बैठ सकें इसलिये इस कमरे से फर्नीचर हटाया गया है, इसलिये ऐसा लग रहा है। रही बात दीवारों के झुकते जाने और तस्वीरों में करुणा उपजने की तो यह आपकी खामखयाली है।

१० नवम्बर, २०१५

राष्ट्रपति भवन में भारतीय विद्या पर अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी का पत्र अन्ततः आ ही गया। क्या जाना चाहिये। तय किया कि दिल्ली में जब हूँ ही २१ को तो चला जाऊँगा।

राधावल्लभ जी ने कहा और तुम्हारे सिद्धान्त? सत्ता से विरोध?

त्रिपाठी जी ने कहा - कार्यक्रम में उपस्थित भर रहने से हमने समझौता कर लिया यह नहीं कहा जा सकता। कार्यक्रम राष्ट्रपति भवन में है यह शासनाधीन नहीं है। निमन्त्रण वहीं से मिला है। फिर भारतीय विद्या विमर्श होना है, देश-विदेश के विद्वान् रहेंगे उनसे मिलना हो जायेगा।

भोपाल एयरपोर्ट, १५ नवम्बर, २०१५, सुबह ७.३०

कई सालों में पहली बार ऐसा हुआ कि मोबाइल का अलार्म बजा होगा और मैं नहीं उठा। सम्भव है कि अलार्म बजा ही न हो। नींद अक्सर अलार्म बजने के पहले बार-बार खुलती रहती है, वह बहुत पहले एक बार खुली, फिर आई तो तब खुली जब देर हो चुकी थी। समय कम था। उस कम समय को खींचकर बड़ा करना पड़ा। ऑटो रिक्शा वाला राधेश्याम समय पर आया, समय से पहले यहाँ आ गया।

अब सुरक्षा जाँच करवा कर विमान में चढ़ने की प्रतीक्षा में बैठा हूँ। मोबाइल की अलार्म घड़ी खोल कर देखता हूँ, अलार्म तो उसमें आज के दिन का सुबह पाँच बजे का है, नहीं बजा होगा। यह कैसे कहा जा सकता है। फिर भी सन्देह किया जा सकता है कि सम्भव है न बजा हो।

बगल में रखी मेरी अटैची को तीनेक साल की बच्ची आकर थपथपा रही है। उसकी माँ या जो भी अभिभाविका है, वे बच्ची को मना कर रही है। वे मेरे पीछे बैठी हैं, मैंने उन्हें नहीं देखा, तो अनुमान भर कर सकता हूँ कि वे बच्ची की कुछ हो सकती हैं। बच्ची को लग रहा है जैसे अटैची उसी की है, मैं भी उसे ऐसा लगने देता हूँ। फिर वह बच्ची चले जाती है। वह इस विशाल प्रांगण में ऐसे घूम रही है जैसे यह सारा उसी का है या मैं ही ऐसा सोचता हूँ कि...। बार-बार पलट कर मझे देखती-देखती मुस्काती जाती है। उसके मुस्काने के कारण मैं मुस्काता हूँ, उसकी माँ या अभिभाविका हँसती हैं। मैं सोचता हूँ कि वह जाते-जाते पलट कर मुझे बार-बार मुस्काकर इसलिये देख रही है कि मैं कुछ अलग तरह का हूँ या खास हूँ या अजीबोगरीब हूँ। इतने लोगों के बीच बड़ा लेपटाप लेकर मैं ही बैठा हूँ, इस तरह के लेपटाप पर काम करने का चलन तो कबका अतीत हो चुका। अब सब लोग मोबाइल खोलकर बैठते हैं और सारी दुनिया अपनी हथेली पर उतार लेते हैं।

पाँच मिनिट बाद वह बच्ची कहीं दूर घूम रही है और मुझे पूरी तरह भूल चुकी है। मेरा यह सोचना शायद ग़लत था कि जाते-जाते पलट कर मुझे बार-बार मुस्काकर इसलिये देख रही थी कि मैं कुछ अलग तरह का हूँ या खास हूँ या अजीबोगरीब हूँ।

यात्रा, यात्री और वृत्तान्त

गगन गिल

मैं सेण्ट थॉमस कॉलेज, प्रोफ़ेसर वनजा, प्रोफ़ेसर मोहनन, प्रोफ़ेसर शीना एप्पन की आभारी हूँ, जिन्होंने आप सब के बीच मुझे उपस्थित होने का मौका दिया। यात्रा-वृत्तान्तों पर बात करनी हो और God's Own Country में आने का मौका हो, तो कौन हाथ से जाने देगा!

मैंने जब पढ़ा, केरल में ४४ नदियाँ हैं, बेहोश होते-होते बची। हमारी दिल्ली में एक ही नदी है, यमुना जी, जिसे हम सब ने अपनी लापरवाही से गन्दे नाले जैसा कर रखा है, फिर भी कभी पुल से गुज़रती हूँ तो नीचे झाँकती हूँ। अच्छा लगता है। कभी भगवान कृष्ण उनके तट पर खेला करते थे।

आपके यहाँ तो बरकत ही बरकत है। द्वारका नगरी डूबने लगी तो श्रीकृष्ण ने वायु देव और गुरु बृहस्पति को बुला कर कहा, मुझे दक्षिण ले चलो। उस स्थान का नाम पड़ा - गुरुवायूर। जीसस की मृत्यु के बाद शिष्यों की मुश्किल होने लगी तो सेण्ट थॉमस की नौका आपके यहाँ आकर लगी।

अब देखिये, ईश्वर की इस नगरी में हम कैसे मगन बैठे हैं।

करीब २० बरस पहले मेरा कोच्चि आना हुआ था। एक लेखक मित्र ने अखिल भारतीय आयोजन किया था। उसके बाद मैं जब कन्याकुमारी जाने लगी, तो वह बहुत चिन्तित हुए। बोले, यहाँ हर मलयाली ने कम से कम तीन रेप कर रखे हैं, सम्भल कर रहना! बात झूठी थी पर वे आँकड़ों में बात करते थे। बाद में मैंने जाना, अकेली कोई महिला यात्रा कर रही हो तो जाने-अनजाने सब पुरुष ऐसी ही बातें करते हैं। अभिभावक बन कर।

कन्याकुमारी मैं ट्रेन से गयी। रास्ते में दो रेल पुलिस वाले मेरी चिन्ता करने लगे। किसी तरह झूठी कहानियाँ गढ़-गढ़ कर मैंने उनसे जान छुड़ायी। कहा, मेरे पति और बच्चे वहाँ मिलेंगे। वगैरह-वगैरह। रात को अरब सागर के किनारे जाकर बैठी, एक साइकिल सवार ने दूर से देखा, वह औरत मरने जा रही है। वह मुझे बचाने आ पहुँचा। सच कहती हूँ, उससे पहले तक मेरी ऐसी कोई मन्शा न थी। लेकिन उसके जाते ही ज़रूर मन हुआ, समुद्र में डूब कर देखूँ!

आप लोगों ने कॉन्फ्रेन्स का एक सत्र रखा है, क्या महिला यात्री अलग तरह से देखती हैं? मैं बहुत उत्सुक हूँ उसे सुनने । महिला यात्री अलग तरह से देखती है कि नहीं, यह आप लोग बतायेंगे पर उसे दूसरे सब अलग नज़र से देखते हैं, यह मैं कह सकती हूँ। देश हो या विदेश, ऐसा कभी नहीं हुआ कि मुझे कोई अभिभावक न मिला हो। अगर कोई महिला सचमुच अकेली होकर यात्रा कर सके, वह सार्वजनिक अभिनन्दन करने योग्य है!

यात्रा करने का सबसे बड़ा आनन्द यही है। आप अनजान लोगों की कहानियाँ सुनते हैं, वे आपकी। कितनी तसल्ली रहती है, उनसे फिर कभी मिलना नहीं होगा। उन्हें कभी आपके झूठ-सच का पता नहीं चलेगा। हर आदमी बड़ा नहीं तो छोटा एडवेंचर तो कर ही सकता है!

कभी-कभी हम सब के भीतर एक अन्धड़ उठता है। बेघर हो जाने का मन करता है। हम अपने से कहते हैं - चले जाना है, कहीं दूर चले जाना है।

कुछ मालूम नहीं होता, कहाँ जाना है? किसे छोड़ना है? किसी खतरे का होश नहीं रहता। न उसकी कोई परवाह।

ये गूँज इस तरह जब-तब हमारे भीतर क्यों उठती है?

हज़ारों बरस पहले, जिस दिन मनुष्य ने पहले-पहल आग जलायी होगी, फिर अपनी कुटिया, खेत और खूँटा बाँधा होगा, उसके घुमन्तू मन का एक हिस्सा बाहर छूट गया होगा। आसमान के नीचे, किसी नदी-पर्वत के पास।

वही हमारा पुरातन मन जब-तब लौटता है। कहता है, कहीं दूर चले जाना है।

यात्रा करना एक बात है, उसके बारे में वृत्तान्त लिखना दूसरी। मैं इस व्याख्यान में इन्हें अलग-अलग रखना चाहती हूँ। यात्रा, यात्री और वृत्तान्त ।

हमें इनका अन्तर समझ लेना चाहिए। महान यात्राएँ करना और उनका वृत्तान्त लिखना अलग-अलग चीज़े हैं।

यह संसार हर समय कुछ कहता है। 'शुरुआत में शब्द था और वह ईश्वर से एकात्म था।' यह आपको याद होगा?

मनुष्य ने भाषा बनायी ही इसलिए होगी कि वह दूसरे को अपना आश्चर्य बता पाये! इस पृथ्वी पर होने का।

हमारे आस-पास अब इतना शोर है कि सिर्फ़ यात्रा के दौरान हमें वह मद्धिम-सी आवाज़ सुनायी पड़ती है, आदिम सृष्टि की। कैसी भी यात्रा हो, किसी खण्डहर की, अनजान देश की, समुद्र-पर्वत या जंगल-झरने की - हर यात्रा में एक बिन्दु आता है, जब यात्री अपने भीतर एक स्पन्दन महसूस करता है, सृष्टि की बुदबुदाहट।

लेकिन हर कोई उसे नहीं कह पाता। जो कह पाता है, वही लेखक है। इसलिए ये तीनों चीज़े अलग हैं - यात्रा, यात्री और लेखक। अगर आप अपने जीवन में सिर्फ़ एक काम कर पायें, यात्रा, तो भी वह काफ़ी है।

दरअसल जितना यह धरती, इसकी धुरी हमें अपनी ओर खींचती है, उससे कहीं ज़्यादा ऊपर की चीज़े - आसमान, हवा, चिड़ियाँ, स्वर्ग की कल्पनाएँ। जिसने भी हवाई जहाज़ बनाया, चिड़िया की तरह उड़ने के लिए था। वह ज़मीन और जल पर सबसे तेज़ भागेगा, यह बाद में पता चला।

एक निजी अनुभव बताना चाहती हूँ। यहाँ मॉरीशस से आये हमारे मेहमान बैठे हैं। कई बरस पहले, उनके सुन्दर देश मेरा जाना हुआ था, किसी प्रतिनिधिमण्डल में। सारा सप्ताह समुद्र तट के साथ आते-जाते मैं हिन्द महासागर के ऊपर गुब्बारे में बन्धे आदमी देखती रही, उड़ते हुए।

कैसी बेचैनी थी। मैं सभाओं में बैठी थी और वहाँ आसमान में आदमी उड़ रहे थे!

सौभाग्य से आखिरी दिन पैरासेलिंग करने का मेरा संयोग हुआ। उन्होंने मुझे खुले गुब्बारे जैसी किसी पाल के साथ बाँध, रस्सी से समुद्र के ऊपर लहरा दिया। एक तेज़ रफ़्तार नौका से मैं बँधी थी। मैं ऊपर उठती गयी, पतंग की तरह। शायद सौ-डेढ़ सौ मीटर ऊपर।

वहाँ कुछ न था, न ऊपर, न नीचे - न स्वर्ग, न देवता। केवल पारदर्शी हवा का समुन्दर, उसके रंगहीन भँवर। वे मुझे वैसे ही खींच रहे थे, डुबोते हुए, जैसे जल के भँवर।

जो आदमी नीचे से हवा में मज़े करता दिखता था, ऊपर डर के मारे मरा जा रहा था।

अगर आपने आइज़ैक डाइनेसन की किताब 'आउट ऑफ अफ्रीका' पढ़ी हो उसमें ऐसा ही एक वाकया है। वह उड़ान से लौटती है तो उसका सेवक पूछता है, ऊपर क्या था? हवा। उसके ऊपर? बादल और ऊपर? वह बताती जाती है। क्या वहाँ ईश्वर दिखा था? वह कहती है, नहीं। फिर उड़ने का क्या फ़ायदा?

मैं यही सोचती हुई धरती पर लौटी।

विडम्बना देखिये, लौटते ही पता चला, वहीं, उसी तट पर, नीचे जाकर, समुद्र के धरातल पर चला जा सकता था,

बॉडी सूट और ऑक्सीजन मास्क पहन कर!

जिज्ञासा का कोई अन्त नहीं।

समुद्र के धरातल से और नीचे जायें, वहाँ भी कुछ होता होगा?

बीबीसी का एक प्रोजेक्ट है - जर्नी टू द सेन्टर ऑफ अर्थ। अभी कुछ दिन पहले मैं यों ही उसे देखते-देखते नीचे चली गयी, धरती के पेट में। लगभग केन्द्र तक। नक्शा कह रहा था, इस वक्त आप इतना नीचे आ गये, यह देख रहे हैं, वह देख रहे हैं। इस समय आपके सिर पर इतने हाथियों का भार है। दो हाथी, दो हज़ार, दस हज़ार हाथी।

मैं नीचे उतरती गयी। अब क़रीब पचास हज़ार हाथियों का भार मेरे सिर पर था। मैं क़रीब ५,००० किलोमीटर धरती के अन्दर थी। अचानक नक्शे ने मुझे बधाई दी। अब आप धरती के केन्द्र तक आ पहुँचे हैं, चारों दिशाएँ आपको अपनी तरफ़ खींच रही हैं, इस वक्त़ आप बिलकुल भारहीन हैं।

इससे पहले कि मैं खुश होती, नक्शा झिपझिपाया, बहुत खुश न हों, इस वक्त यहाँ का तापमान छह हज़ार डिग्री सेल्सियस है, आप कब के राख हो चुके हैं!

हँसी की बात नहीं। आप इण्टरनेट पर इसे देख सकते हैं।

जहाँ हम जा नहीं सकते, वहीं क्यों जाना चाहते हैं?

पहले चाँद, अब मंगल। सुना है, कई लोगों ने एक तरफ़ की टिकट बुक करायी है! उन्हें यहाँ लौटने की कोई इच्छा नहीं।

कोई हमें छिप-छिप कर देखता ज़रूर है। दूर ग्रह का प्राणी, कोई खण्डहर, कोई पुरखा। लगातार बुलाता रहता है। जब तक हम जूते न बाँध लें, आसमान के नीचे न आ जायें।

रॉबिन्सन क्रूसो तो आपको याद होगा? निर्जन द्वीप पर बह आया डूबा नाविक और गुलीवर की यात्राएँ, लिलिपुट, राक्षस?

हमारे बचपन की दुनिया को ये वृत्तान्त कैसे भरे रहते थे। यदि हमारी दुनिया में सचमुच वैसे लोग न होते, हमारे बड़े, यदि हम सचमुच बौनों जैसे उत्सुक बच्चे न होते, तो क्या ये कथाएँ हमारे मन में इसी तरह रहतीं?

यात्राएँ लिखने के लिए नहीं की जातीं, बल्कि कई बार इसलिए लिखी जाती हैं कि वे लेखक की आकांक्षा में जन्म लेती हैं। विभूतिभूषण ने जो उपन्यास लिखा था, चाँदेर पहाड़, अफ्रीका के जंगलों के बारे में कोरी कल्पना से लिखा था, बंगाल के जंगलों में बैठे हुए।

यात्राएँ इसलिए की जाती हैं कि कभी उनके बारे में लिखेंगे, हमेशा बेहतरीन नहीं बन पातीं, हालाँकि इधर के वर्षों में इसके अपवाद हैं - वी.एस.नायपॉल की भारत पर पुस्तकें, अमिताभ घोष का इजिप्ट पर संस्मरण, दुनिया के विविध कोनों से लिखे पीको आयर के रिपोर्ताज।

और हमारे अपने कृष्णनाथ, जिन्होंने हिमालय के बौद्ध जगत पर महत्वपूर्ण वृत्तान्त लिखे। नागार्जुन कोंडा लिखा। अभी दो सप्ताह पहले उनका ८० बरस की उम्र में बैंगलौर में निधन हो गया।

यात्रा-वृत्तान्त को समर्पित इस आयोजन में मैं आप सब के साथ कृष्णनाथ जी की पुण्य स्मृति को नमन करती हूँ।

इतिहास गवाह है, ह्वेन सांग का वृत्तान्त हो या अल बरूनी का, मार्को पोलो, साँ एक्ज़ुपरी या एलेक्ज़ेन्डरा डेविड नील का। इनमें से किसी ने लिखने के उद्देश्य से यात्राएँ नहीं कीं।

यात्राएँ केवल देखने के लिए की जाती हैं।

कोई चीज़, कोई स्थान, कोई प्राचीन स्मृति हममें कौंधती है और हम निकल पड़ते हैं - केदारनाथ-बद्रीनाथ देखने, बनारस की गंगा में डुबकी लगाने, गुरुवायूर, कन्याकुमारी, रामेश्वरम् पहुँचने।

कोई यात्री कभी पूरा वापस घर नहीं लौटता। थोड़ा-सा अपना अंश उस स्थान पर छोड़ आता है।

सदियों बाद हम उस स्थान पर जाते हैं, तो हमें पता होता है, यहाँ राम रुके थे, गिलहरी को छुआ तो उसमें लहरियाँ पड़ गयी थीं। नालन्दा के इस खण्डहर में कभी ह्वेन सांग चला करते थे। इस तट पर सेण्ट थॉमस की नाव आ लगी थी, गुरुवायूर में। ब्राह्मणों की तरह उन्होंने भी ईश्वर को जल भेजा, फिर ईश्वर ने उनका जल पकड़ लिया, बूँदें हवा में अटकी रह गयीं थीं।

यात्री के साथ, उस स्थान के साथ, पाठक का अनवरत सम्वाद चलता रहता है। सदियों पार से।

मार्को पोलो को चीन के राजा कुबलाइ काह्न के यहाँ बिताये २४ बरस वेनिस के कारावास में याद आए थे। एक साथी कैदी को वह अपनी आपबीती सुनाया करते थे, उसी ने उनकी यात्रा लिखी थी, बीच में अपना भी बहुत कुछ जोड़ दिया।

यही सांस्कृतिक यात्रा है, दूसरे की आपबीती में अपना भी थोड़ा-सा कुछ जोड़ देना।

साँ एक्ज़ुपरी बीसवीं सदी के शुरुआती उड़ाकू चालकों में थे। कहते हैं, विमान उड़ाते हुए वह लिखने लग जाते थे, भूल जाते थे, हवा में अकेले हैं। उनके लेखन में हमें आसमान के, सितारों के, रेगिस्तान के अद्‌भुत वर्णन मिलते हैं। उनकी एक पुस्तक का नाम ही है - Wind, Sand and Stars. एक बार क्रैश होकर वह सहारा रेगिस्तान में जा गिरे। बड़ी मुश्किल से बचे। दूसरी बार समुद्र में गिरे, लाश तक नहीं मिली।

बीसवीं सदी की शुरुआत में फ़्रांस की एलेक्ज़ेण्डरा डेविड नील। वह सिक्किम में और फिर वहाँ से तिब्बत पैदल सिर्फ़ इसलिए चलती गयीं क्योंकि वहाँ विदेशियों का जाना निषिद्ध था। उन्होंने भोटी सीखी, उड़ने वाले लामाओं के साथ रहीं, खुद भी तंत्र से उड़ना सीखा। अपने सब कारनामे चिट्ठियों में पति को लिखती रहीं, जो बाद में छपे। पति बेचारे फ़्रांस में बैठे उनकी राह तकते रहे। उन्नीस महीने की यात्रा का कह कर गयीं थीं, १४ साल बाद लौटीं!

जो व्यक्ति यात्रा के लिए निकलता है, वह वही नहीं, जो उस यात्रा से लौटता है।

ज़रूरी नहीं, वह अपना सम्पूर्ण अनुभव लिख ही पाये और मानवीय अनुभव - वह है भी तो बहुत जटिल। स्मृति कितनी धीरे-धीरे अपनी परतें खोलती है। कभी एक कोने पर रोशनी पड़ती है, कभी दूसरे पर। हमें पता नहीं होता, हमारे अन्दर क्या-कुछ भरा पड़ा है। यात्री स्वयं ऊपरी-बाहरी ब्योरे लिखता है और कोई दूसरा उसकी यात्रा की आन्तरिक प्रक्रिया। फिर सदियों बाद हम दोनों ब्योरों को पढ़ कर उस व्यक्ति की एक मुकम्मिल तस्वीर बनाते हैं।

मैं जानती हूँ, यहाँ आने वाले तीन दिनों में बड़े विचारोत्तेजक विमर्श होने वाले हैं। हम कई तरह के वृत्तान्तों की बात

करेंगे, कई दुनियाओं में आयेंगे-जायेंगे। यहाँ हिन्दी, अंग्रेज़ी, मलयालम के विद्वान-विदूषियाँ बैठे हैं। नयी-नयी बातें जानने को मिलेंगी। मैं आपके साथ एक-दो ऐतिहासिक वृत्तान्तों की चर्चा करके इस प्रक्रिया को समझना चाहती हूँ - ये जो हमारी दुनिया है, मूर्त-अमूर्त, पुस्तकों-इंटरनेट से भरी, इसमें ये वृत्तान्त क्या एक-दूसरे से जुड़ते हैं?

मेरा मानना है, ठीक उस समय जब हमारी एक दुनिया मिट रही होती है, कहीं दूर कोई दूसरा यात्री उसे बचाने निकल चुका होता है!

वृत्तान्त सिर्फ स्मृतियाँ नहीं हैं, एक मिटती जाती दुनिया का अभिलेखन हैं।

जैसा किसी कवि ने कहा है - हाथों में पता नहीं रबड़ है कि पेन्सिल है, जितना भी लिखता हूँ, उतना ही मिटता है।

सबसे पहले चीनी यात्री ह्वेन सांग।

सातवीं शताब्दी के उनके यात्रा-वृत्तान्त में अधिकतर राजनीतिक ब्योरे हैं। वृत्तान्त उनके चीनी राजा के ज्ञानवर्धन के लिए लिखा गया था, राजा की रुचि जिस तरह की कूटनीतिक जानकारियों में हो सकती थी, ज़्यादातर इसी सब का ब्योरा वहाँ है, जब तक कि ह्वेन सांग चीन देश पार नहीं कर लेते।

भारत आने पर ह्वेन सांग के विवरण तीर्थ-यात्री के हो जाते हैं। उनका राजा बौद्ध था। यहाँ का हर्ष राजा कुम्भ पर अपना सारा कोष दान कर देता था, फिर दोबारा उसे अर्जित करता था, हिन्दू-बौद्ध प्रजा को एक समान रखता था, इस सबका वर्णन वह बड़े कौतुक से करते हैं।

यात्री ह्वेन सांग के व्यक्तिगत कष्टों की कोई जानकारी हमें उनके वृत्तान्तों में नहीं मिलती। न उनके मन का हवाला। ज़ाहिर है, जिसके लिए लिख रहे थे, उसकी रुचि उनके कष्टों में न थी!

वह यात्रा कैसी उत्कटता में से निकली थी, इसका पता हमें उनके शिष्य द्वारा लिखी उनकी जीवनी से चलता है। बौद्धों के एक ग्रन्थ योगाचार में मिलावट थी।संस्कृत में उसे पढ़ते हुए ह्वेन सांग ने महसूस किया। कैसे किया?

इसका थोड़ा-सा अनुमान चार सौ साल बाद लिखी अलबरूनी की एक टिप्पणी से मिल सकता है। ज़रा देखिये, कैसे एक वृत्तान्त दूसरे का अनकहा समझने में हमारी मदद करता है!

अल बरूनी दर्ज करते हैं - हिन्दू अपनी पुस्तकें याद रखने के लिए उन्हें छन्द में लिखते हैं।

तब क्या ह्वेन सांग को छन्द की बुनावट में, उसके उच्चारण में कोई अन्तर मिला था? उसकी किरकिरी से उन्हें इतनी बेचैनी हुई थी?

शिआन के मठ में, जिसे हम आज टेराकोटा आर्मी वाले नगर की तरह जानते हैं, उन्होंने संस्कृत सीखी थी। चीनी मठ में भारतीय गुरु वहाँ पढ़ाते थे!

कल्पना कीजिये, सातवीं सदी में भारतीय संस्कृति के प्रसार का। ह्वेन सांग योगाचार का मूल ग्रन्थ देखना चाहते थे, उसमें कितने श्लोक हैं, आदि। जब चीन में अकाल की भुखमरी फैली, लोग शहर छोड़ कर जाने लगे, चौबीस बरस के ह्वेन सांग ने सोचा, शहर छोड़ कर जाना ही है तो भारत क्यों न चला जाऊँ।

रास्ता आसान न था। बीच में गोबी रेगिस्तान। अफ्रीका के सहारा जैसा दुरूह, कंकालों से पटा हुआ। दूर-दूर छितरी

रियासतें। कोई बौद्ध, कोई तुर्की। कहीं-कहीं चीनी राजाओं की भारतीय रानियाँ। जीता-जागता रेशम मार्ग। ऊँटों के काफ़िले।

बूढ़े ह्वेन सांग अपने शिष्य हुइली को अपनी गाथा सुनाते हैं। वह उसे दर्ज करता है। तब हमें पता चलता है, एक दिन ह्वेन सांग प्यास से मरने वाले थे रेगिस्तान में। उनका घोड़ा बेहोशी की हालत में उन्हें गोबी के एक नखलिस्तान तक पहुँचा कर स्वयं मर गया।

आगे पहुँचे तो एक राजा उनकी विद्वता पर ऐसा मुग्ध हुआ कि कैद कर दिया, भारत न आने दे। तब ह्वेन सांग ने भूख हड़ताल की। वहाँ से छूटे, राजा के उपहारों से लक-दक, तो रास्ते में डाकुओं का हमला। समरकन्द होते हुए बामियान । जो विशालकाय बुद्ध अभी कुछ बरस पहले अफगानिस्तान में बारूद से उड़ाये गये थे, इन्हें ह्वेन सांग ने देखा था। इनका जिक्र वह करते हैं।

फिर कन्धार में पर्वत की गुफ़ा का दर्शन, जहाँ महात्मा बुद्ध की छाया का पहले-पहल चित्रण हुआ था। कहते हैं, ऐसे तेजस्वी थे बुद्ध कि कोई चित्रकार उनके मुखमण्डल का सामना न कर पाता। एक सुबह वह गुफ़ा के द्वार पर आये तो उनकी अनुमति से शिष्यों ने दीवार पर गिरती उनकी छाया का चित्रण किया। ह्वेन सांग बुद्ध के निर्वाण के १२०० बरस बाद वहाँ पहुँचे, तब तक कन्धार की उस गुफ़ा में यह चित्र मिलता था।

मैं आपको ह्वेन सांग की यात्रा के काल के चक्के में घुमाना चाहती हूँ, जहाँ कुछ भी स्थिर नहीं। इससे हमें समझ में आयेगा कि हम जो देखते हैं, यात्राओं में, जिसके बारे में पढ़ते हैं, वह हर पल बदल रहा होता है।

कुछ माह ह्वेन सांग कश्मीर में रहे, पण्डितों के साथ संस्कृत ग्रन्थों की पढ़ाई। फिर मथुरा, इलाहाबाद का कुम्भ, नालन्दा। पहले शिष्य, फिर अध्यापक।

नालन्दा पहुँचे तो चार द्वार। चारों पर पहरा। अपने समय का महान गुरुकुल, दूर-दूर से आये दस हज़ार विद्यार्थी जहाँ पढ़ते थे। जहाँ द्वार पार करने की अनुमति से पहले आचार्य परीक्षा लेता था!

प्रहरी उन्हें भीतर न जाने दें। जैसा आज भी कॉलेज-यूनिवर्सिटी में होता है।

नालन्दा के कुलाधिपति, आज की शब्दावली में कहें तो चांसलर, आचार्य शीलभद्र तक समाचार पहुँचा तो उन्होंने बुलवाया। देखा, यह तो वही विदेशी है, जिस का पूर्वाभास उन्हें स्वप्न में मिला था! यह बौद्ध धर्म का सन्देश दूर-दूर तक पहुँचायेगा।

ज़रा देखिए, ह्वेन सांग की यात्रा कितने स्तरों पर चल रही है - भूगोल की दुरूहता में, तुर्क-मंगोलों की मार-काट में, उनकी देह के कष्टों में, एक ग्रन्थ की तलाश में, अपने समय के एक बड़े मनीषी के स्वप्न में!

हर यात्रा के इतने ही बहुल पक्ष होते हैं। बस पात्र बदल जाते हैं। जिज्ञासा बदल जाती है। कोई खण्डहर देखने निकलता है, कोई ग्रन्थ लेने, कोई किसी दिग्विजयी यात्रा के समूह में।

क्या कोई एक वृत्तान्त, एक यात्रा के इतने सारे पक्षों के साथ न्याय कर सकता है?

अब हमारे दूसरे यात्री - अल बरूनी। मध्यकालीन युग के सबसे बड़े इस्लामी इतिहासकार, खगोलशास्त्री, भाषाविद।

जैसा कि मध्ययुग का चलन था, शाही दरबारों में कलाकारों, विद्वानों की कद्र होती थी। दरबारी होने का मतलब था,

उस राज्य में अपनी प्रतिभा में सबसे श्रेष्ठ होना। अकबर के यहाँ नवरत्न थे, आप जानते ही हैं।

अल बरूनी अपने देश ख्वारेज़म, अब उज्बेकिस्तान, के दरबारी विद्वान थे। उनके राजा का तख्ता पलटा तो वह बन्दी बना लिए गये, लेकिन जल्द ही नये राजा ने उनकी प्रतिभा पहचानी और वह फिर से दरबारी बना दिये गये। अब वह राज ज्योतिषी थे और राजा के आधिकारिक इतिहासकार।

जानते हैं, नया राजा कौन था? महमूद गज़नवी! सोमनाथ का मन्दिर लूटकर, स्त्रियों-पुरुषों को घोड़ों के पीछे बाँध कर दास बना ले जाने वाला बर्बर राजा। उसने भारत पर कुल सत्रह हमले किये। सन् १०२४ में सोमनाथ पर उसका सोलहवाँ हमला था।

अल बरूनी गज़नवी के साथ उसके पहले हमले के समय भारत आये १०१७ में, उसकी 'यश-गाथा' का इतिहास लिखने। गज़नवी कन्नौज, मथुरा आदि में लूट-मार करता रहा और अल बरूनी भारत जैसी विचित्र भूमि का अध्ययन। गज़नवी लूट का माल गज़नी ले जाता और उलटे पैर वापस लौटता, भारत के किसी नये हिस्से पर हमला करने। भारत के रजवाड़ों में कोई तालमेल न था, सब मार खाते रहे।

इस बीच अल बरूनी भारत के रूढ़ समाज में पैठ करते हैं। इतिहासकार मानते हैं, कई बरस वह पंजाब क्षेत्र में रहे। ब्राह्मणों की शास्त्रार्थ करने की लत का यह हाल कि उन्होंने एक मलेच्छ को अपनी देव भाषा सिखायी। उनके यहाँ संसार को कैसे देखते हैं, बताने-जानने को।

धीरे-धीरे किस्सा बड़ा दिलचस्प होता जाता है। एक दरबारी अपनी मुलाज़मत भूल कर पराये देश के ज्ञान के आकर्षण में सब भूल जाता है। महमूद गज़नवी को भारत में सोमनाथ के हीरे-जवाहरात दिखते हैं, अल बरूनी को उपनिषदों की चर्चाएँ। जिसके भीतर जो है, वह उसे बाहर दिखता है।

ज़रा ध्यान दीजिये। दोनों यात्री हैं। एक साथ भारत आए हैं। ज्ञानी ज्ञान खोज़ता है, हत्यारा रक्त। दोनों इतिहास में बचते हैं लेकिन कितनी अलग-अलग तरह से याद किये जाते हैं!

आज कोई अल बरूनी को गज़नवी के दरबारी की तरह याद नहीं करता। उन्हें गज़नवी के हमलों का वृत्तान्त लिखना था, लेकिन वह भारत की ज्ञान-परंपरा का वृत्तान्त लिखने लगे। जिस वर्ष महमूद गज़नवी मरा, १०३० में, उसी बरस अल बरूनी की भारत पर पुस्तक छपी। कुल बारह किताबें उन्होंने भारत पर लिखीं, संस्कृत से अनुवाद भी किये। शायद उन्हें मालूम था, हमलावर बीत जायेगा, ज्ञान बचा रहेगा।

आज यूनाइटेड नेशन्स के आँगन में उनकी मूर्ति लगी है, स्विट्ज़रलैण्ड में।

इस सब से क्या सिद्ध होता है?

यही कि सिर्फ़ ज्ञान बचता है।

ज्ञान ही ज्ञान को खींचता है। पुस्तकें, इमारतें, ज्ञान को दिमाग़ में सम्भालने वाला शरीर - ये सब भले नष्ट हो जायें, ज्ञान बच जाता है, पुस्तक में नहीं, अन्तः ज्ञान में, intuitive wisdom में। हम सबकी असली यात्रा यही होनी चाहिए - intuitive wisdom तक।

यह भी मालूम होता है कि यात्रा करने जो जाता है, वह केवल शरीर नहीं। शरीर शायद एक आवरण है, उस मन, संस्कार और जिज्ञासा का, जो यात्रा करने जाते हैं।

एक बात और समझ में आती है। हर किसी की यात्रा सांस्कृतिक कर्म नहीं। हमारे यहाँ इतनी तीर्थ यात्राएँ होती हैं, हज़ारों लोग दुर्गम यात्राएँ करते हैं - अमरनाथ, वैष्णोदेवी, शबरीमाला, पंढरपुर, सेण्ट थॉमस की पहाड़ी। जब तक एक की यात्रा दूसरे की भावना में, अन्तः प्रज्ञा और अंतर्दृष्टि में कुछ नया नहीं जोड़ती, वह मूल्यवान नहीं।

यात्रा सांस्कृतिक कर्म तभी बनती है जब वह उस स्थान से, वहाँ आये अपने पूर्व यात्रियों से सम्वाद करती है।

ज़रा इस क्षण को ध्यान से देखिये। मैं बात कर रही हूँ, आप सुन रहे हैं। इसी एक क्षण में हमारी छाया समय पर और समय की छाया हम पर पड़ रही है।

आप इसे साफ़ देख सकते हैं।

स्मृति सिर्फ़ मनुष्यों में नहीं होती, स्थान भी याद रखते हैं, कौन कब वहाँ आया था। मूल्यवान वृत्तान्त वही है, जिसमें इन दोनों पक्षों की स्मृति एक बिन्दु पर आकर ठहर जाये ।

ह्वेन सांग ने कपिस में, उड्डयन में (आज का अफ़गानिस्तान) जो बौद्ध राज्य देखे थे, वह उस समय ही पतनग्रस्त थे। आज उनका नामोनिशान नहीं। अल बरूनी ने हिन्दुओं की जो रूढ़ जीवन पद्धति दर्ज की थी, वह ग्यारहवीं सदी में ही संक्रमण काल से गुज़र रही थी। उसमें लोच न होती तो अल बरूनी कभी संस्कृत न सीख पाते। मलेच्छ बने रहते।

अपने यहाँ हम अकसर सुनते हैं, हिन्दुओं ने कभी इतिहास नहीं लिखा। जैसे इतिहास न लिखकर हमने कोई बड़ा ज्ञान पा लिया हो!

आज जिस बोधगया मन्दिर में लाखों बौद्ध सिर झुकाते हैं, आप जानते हैं, दो सौ साल पहले तक किसी को उसका पता न था?

इतनी मार-काट से भारत गुज़र चुका था। नालन्दा-राजगीर कहाँ हैं, किसी को पता भी न होते यदि अलेक्ज़ेण्डर कनिंघम नाम के एक ब्रिटिश सेना अफ़सर ने ह्वेन सांग की पुस्तक न पढ़ी होती। देखिये, एक पाठक कैसे एक संस्कृति का उद्धार करता है!

डेढ़ हज़ार साल पहले एक पुस्तक ढूँढ़ते हुए कभी ह्वेन सांग यहाँ आये थे। अब उनका यात्रा-वृत्तान्त पढ़ कर यह अंग्रेज़ जंगल-जंगल घूम रहा था। ह्वेन सांग ने जो दूरियाँ लिखी थीं, दिशाएँ लिखीं थीं, उन स्थानों को कनिंघम अनुमान से खुदवा रहा था।

हमारे पुरातत्व की खोज़ किसी भारतीय ने नहीं की, अंग्रेज़ सरकार ने की। उन्होंने उसके लिए अलग से पुरातत्व विभाग बनाया। धीरे-धीरे भारतीयों को पता चला, ये उनकी धरोहर हैं। साँची, महाबलीपुरम, अजन्ता-एलोरा, खजुराहो, लद्दाख के हेमिस, आल्ची, कपिलवस्तु, लुम्बिनी। कोई मिट्टी में दबा पड़ा था, कोई समुद्र में, कोई घने जंगलों में।

ये हैं असल यात्राएँ, वृत्तान्त। यह नहीं कि इस गाड़ी में, जहाज़ में हम बैठे, वहाँ उतरे, एक भालू मिला, चीते से मैं मरते-मरते बचा!

उन्नीसवीं शताब्दी हमारे राष्ट्रीय जीवन का संक्रमण काल है। विरोधाभास देखिये। बाहर से आये विदेशी, केवल एक हज़ार-बारह सौ वर्ष की बाल सभ्यता वाले लोग, हमें ''आइडिया ऑफ इण्डिया'' बता रहे थे!

इससे पहले हमारी पूरी संस्कृति ने आत्म के बारे में सोचा था, हिन्दू-मुसलमान-मलेच्छ होने के बारे में सोचा था। ब्राह्मण-शूद्र होने के बारे में भी। लेकिन ''भारतीय होना''? यह क्या था?

पाँच-छह सौ से ज़्यादा रजवाड़ों में बसा यह देश। राजाओं के पराक्रम के अनुसार हर दस-बीस बरस में बदलता नक्शा। भारत के पुराने नक्शे देखिये। दो-ढाई हज़ार साल पुराने नक्शे आसानी से इंटरनेट पर हैं। कभी भारत पश्चिम में अफ़गानिस्तान तक फैला है, लेकिन दक्षिण में महाराष्ट्र से नीचे नहीं।

पाकिस्तान में तक्षशिला की तरफ जाइये, जहाँ सिकंदर-पोरस युद्ध हुआ था, सिन्धु नदी की बाढ़ से डर कर सिकंदर लौट गया था। वहाँ साधारणतः घुँघराले बालों वाले, गोरे, साढ़े छह फ़ीट ऊँचे सुदर्शन पुरुष आपको दिख जायेंगे। यवनों के रक्त-बीज। कम्बोडिया जाइये, दक्षिण के चोल राजा वहाँ अंगकोर वट बनवा रहे थे। श्रीलंका के पोलोन्नुनुरुवा में शिव मन्दिर हैं, राजा बौद्ध था, रानी हिन्दू।

क्या यात्राएँ हमें आत्म-बिम्ब दे सकती हैं? हमारी सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान दे सकती हैं?

जैसे ही राष्ट्रवाद की संकीर्णता जड़ पकड़ती है, पहले विश्व युद्ध के बाद अंग्रेज़ी राज के खिलाफ भारत-भारत का शोर मचता है, कट्टरता बढ़ती है, टैगोर हमें चेताते हैं, हम हमेशा से सार्वभौमिक रहे आये हैं, केवल भारतीय नहीं!

यह चेतना टैगोर में कहाँ से आयी होगी? उपनिषदों के ज्ञान से? अपनी अन्तहीन यात्राओं से?

उन्होंने देखा होगा, कैसे भारत की मनीषा बिना घोड़े-तलवार के, बिना किसी देश का पुस्तकालय जलाये, केवल अपने मनीषियों के जीवनचरित से आधी से ज़्यादा दुनिया को अपना बनाती आयी है।

क्या यात्राएँ हमें एक उदात्त, एक सम्पूर्ण, मनुष्य बना सकती हैं?

हम यहाँ यात्रा-वृत्तान्तों पर चर्चा करने इकट्ठा हुए हैं। मैं आपके साथ मिलकर उन्हें किसी बड़े परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रस्ताव रखती हूँ।

यदि शाश्वत समय कोई संरचना है और उसमें मनुष्य के बौद्धिक उद्यमों के तरह-तरह के खाँचे हैं, मनुष्य ने यदि इस सृष्टि को अपनी जिज्ञासा से कई तरह से उधेड़ा-बुना है, तो यात्रा-वृत्तान्तों के बिना इसकी तस्वीर पूरी नहीं बनती।

जो वैज्ञानिक नासा में टेलीस्कोप लगाये आसमान की गतिविधि देखता है, जो वैज्ञानिक ईश्वर का 'हिग्स बोसोन' तत्त्व ढूँढ़ निकालता है, वह भी यात्री है और जिसे अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक जाकर भी ब्रम्ह्माण्ड का कर्त्ता नहीं दिखता, वह भी।

लेकिन यात्री - स्वयं - वह कौन है?

वह नहीं जो आपसे अपना सच-झूठ कह कर अगले स्टेशन पर उतर जायेगा, बल्कि वह जो आपके भीतर सन्नाटा छोड़ जायेगा। जहाँ आप सृष्टि की बुदबुदाहट सुनेंगे।

हर यात्री कुछ बताना चाहता है, पर बता नहीं पाता।

सर्बिया में सायकल

सीरज सक्सेना

कागज़, केनवस और कपड़े से बनी अपनी कलाकृतियों की दो एकल प्रदर्शनियों के लिए सर्बिया जाना सुखद है। उत्साह इस बात का है कि अपनी कला को नये देश, नयी संस्कृति, नयी भाषा, नये संस्कार व नये दर्शकों के बीच दिखा पा रहा हूँ। ऐसे अवसर भाग्यशाली कलाकारों को ही मिलते हैं। प्रसिद्ध सिरेमिक कलाकार यास्मीना हवाई अड्डे पर मुझे लेने आयीं। उनका घर और स्टूडियो नोवी साद में हैं। नोवी साद सर्बिया का दूसरा बड़ा शहर है। मुझे उनके घर ही ठहरना है, लगभग एकसवा घण्टे में हम बेलग्रेड से नोवी साद पहुँचे। टैक्सी ड्राइवर ने हमें नेपाल में आये भूकम्प और उससे हुए विनाश की ख़बर दी। विमान से यात्रा कर रहा था तब ही यह प्राकृतिक घटना हुई। मैं भी इस ख़बर से अनभिज्ञ था। रास्ते भर दोनों ओर लम्बे-लम्बे खेत, उन पर पसरे तरह-तरह के हरे रंग, उनसे निर्मित ज्यामितीय आकार खुले और साफ़ नीले आकाश के तले एक रोमांचित कर देने वाला दृश्य रच रहे थे। मन में आया कि आकाश का घरेलू नाम मिला रख दूँ। दुनव नदी पर बने सेतु को पार कर नोवी साद पहुँचे। सड़क के दोनों ओर मकान हैं। कुछ चार-पाँच अमंजिला इमारतें भी हैं। एक इमारत के सामने हमारी टैक्सी रुकी। पाँचवीं मंज़िल पर यास्मिना के फ्लेट में हम दोनों दाखिल हुए। पूरा घर जैसे स्वागत कर रहा हो। एक शेल्फ पर सिर्फ़ छोटे सिरेमिक शिल्प रखे हैं। ड्राइंग रूम खुला और बड़ा है, इसका एक दरवाज़ा बड़ा और पारदर्शी है। यहाँ से छन कर दिन की रोशनी पूरे ड्राइंग रूम में फैल रही है। सोफ़े के सामने रखी मेज़ पर यास्मीना की बनाई मिट्टी की ऐश ट्रे रखी है। छोटी चार लोगों की डाइनिंग टेबल पर पास्ता, सर्बियन लेट्यूस सलाद और ताजा सफ़ेद चीज़ खाते हुए पूरे घर को निहार रहा था। सामने बैठी यास्मीना के चेहरे पर मुस्कान थी और उनकी आँखें मुझे निहार रहीं थीं। यात्रा की सारी थकान भुलाकर मैं घर की हर छोटी-बड़ी वस्तु को देख रहा था। यास्मीना सर्बिया के कला संसार और कला के आज के परिवेश के बारे में विस्तार से बताने लगीं। इन दिनों सर्बिया की आर्थिक स्थिति नाजुक है। यहाँ बहुत से कलाकार इन दिनों संशय में हैं । कला की ज़रूरत अब समाज में उतनी नहीं या शायद लोग पहले अपनी अनिवार्य ज़रूरतें पूरी करना चाहते हैं। कला अब यहाँ अनिवार्य नहीं। हूबहू भारत की तरह।

दिन की रोशनी यहाँ देर शाम तक रहती है।

आज यास्मीना अपने स्टूडियो में क्लास लेंगी। एक लड़की हफ़्ते में दो बार यास्मीना से सिरेमिक कला सीखने आती है। यास्मीना का स्टूडियो इसी इमारत के भूतल पर है। स्टूडियो दो भागों में बँटा है। दाखिल होते ही बैठक है। महाराष्ट्र की महिलाएँ, गाय, गाँव का एक घर और कुछ बच्चे बड़े-बड़े फोटोग्राफ्स में इस बड़ी दीवार पर लगे हैं। यह

दीवार यास्मीना ने भारत को समर्पित की है। अन्य दीवारों पर यास्मीना के चित्रकार मित्रों के चित्र हैं। यास्मीना के शिल्प भी यहाँ बिखरे हैं। उनके शिल्पों का आकार सरल ज्यामितीय और प्राकृतिक है। राकू पद्धति में पके यास्मीना के शिल्प सुर्ख और मटमैले हैं। यहीं टेबल के पास यास्मीना की बीस बरस पुरानी सायकल भी है। यह यास्मीना की सहेली भी है और वाहन भी। पूरे शहर में यास्मीना इसी पर सवार होकर सफ़र करती हैं। इसका नाम हॉलैण्ड है, यह एक लेडीज सायकल है। इसके हेण्डल बार पर बास्केट लगी है। सायकल इस स्टूडियो का अहम हिस्सा है और यास्मीना के जीवन का भी।

इस बैठक के बाद यास्मीना की कर्मस्थली है। कमरे के बीचोंबीच एक बड़ी और लम्बी टेबल है। जिस पर कुछ छोटे चाक, ब्रश, सिरेमिक के औज़ार और गीली मिट्टी रखी है। दीवार पर ग्लेज़ छोटेबड़े डिब्बों में बन्द है। एक कोने में फ्रण्ट लोडिंग बिजली से चलने वाली भट्टी रखी है। यास्मीना की छात्रा मिट्टी से कुछ अमूर्त आकार गढ़ रही है, सर्बियायी भाषा में दोनों बात कर रहीं हैं। एफ. एम. पर गीत बज रहे हैं। हम तीनों के अलावा रेडियो भी अपनी उपस्थिति दर्ज़ करवा रहा है।

सायकल देख खुद को रोक न सका, एक कागज़ पर उनकी ही भाषा में उनके घर का पता लिखवाया और उस पर्ची को जेब में रख सायकल पर सवार होकर सड़कों से होता हुआ दुनव नदी के किनारे पहुँचा। घर से अधिक दूर नहीं है यह किनारा, दुनव का यह घाट पाँच किलोमीटर लम्बा है। यहाँ दौड़ने, चलने और सायकल के लिए अलग पथ हैं। स्केट करती कुछ लड़कियाँ तेज़ी से आतीं और ओझल हो जातीं। स्केटिंग यहाँ युवाओं में लोकप्रिय खेल है। छोटे-छोटे पहियों पर तेज़ी से भागना रोमांचित करने वाला अनुभव है। स्केटिंग मैंने भी देर से ही सही पर दिल्ली सचिवालय की सड़क पर ही सीखी है। ट्रेक पर महिलाएँ, बुजुर्ग, युवक-युवतियाँ सायकल चला रहे हैं। कुछ युवा माताएँ भी अपने बच्चों को सायकल के पीछे सीट पर बैठा कर सैर करा रही हैं। यह शहर सायकल प्रेमी शहर है। दोपहर के साढ़े तीन बजे भी यहाँ काफ़ी रौनक है। नदी पर कुछ बड़े जहाज भी तैर रहे हैं। नदी के किनारे बँधी एक बड़ी कश्ती एक रेस्तराँ है तो उससे बड़ी एक और नौका कारों का एक शो रूम है। चमचमाती नयी कारें यहाँ बिकने के लिए तैयार हैं।

नदी के दूसरे किनारे पर पेत्रोवरादीन शहर है। नोवी साद दुनव पर बने तीन बड़े पुल से नदी पार करता है। पेत्रोवरादीन का महल यहाँ से बहुत सुन्दर लग रहा है। एक ट्रेन मेरे पास ही बने पुल से हौले-हौले शहर में प्रवेश कर रही है। दुनव जैसे शहर में प्रवेश करने वाले का अभिवादन कर रही हो। दुनव साफ़ बहती हुई नदी है। पूरा नोवी साद इसी का पानी पीता है। कुछ बुजुर्ग अपनी छोटी कुर्सियों पर नदी की ओर मुँह किये बैठे हैं। जैसे किसी गहरी सोच में डूबे हों। पर उन्हें सिर्फ़ अपने काँटे में मछली के फ़ँसने की प्रतीक्षा है। धीर-धीरे युवाओं की भीड़ जमा हो रही है। यास्मीना की सायकल से शहर के दो फेरे लगाये। कुछ देर दुनव के किनारे बैठने के बाद जिस रास्ते आया उसी रास्ते लौटने के लिए फिर सायकल पर सवार हुआ। अंदेशा था कि शायद मैं रास्ता भटक जाऊँगा पर मैं यास्मीना के स्टूडियो पहुँच गया। स्टूडियो में दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त थीं। हाथ में थोड़ी मिट्टी ले एक लघु गणेश बनाए। इस शहर में रहना आरम्भ किया। यास्मीना से कहा कि तुम्हारा शहर सुन्दर है।

छात्रा भी कुछ छोटे शिल्प बना चुकी थी। यास्मीना ने मुझसे साझा किया कि इस छात्रा का हाथ अच्छा है। अपनी एप्रेन उतार कर अब यह युवा छात्रा जाने को तैयार है। यास्मीना टूल्स समेट रहीं हैं, टेबल साफ़ कर रही हैं, मिट्टी ढ़ँक रही हैं। टेबल के एक कोने में बैठ अब यास्मीना अपनी सिगरेट सुलगाती हैं। हमारे बीच एक लम्बी टेबल, काम करने

की जगह रचने और गढ़ने की मिट्टी है। हमारे बीच यही एक सृजन सेतु है। यह स्टूडियो मुझे अपना-सा लगने लगा। यहाँ न आवाजाही है, न ही शोर है। स्टूडियो की रौनक में एक साधा हुआ गाम्भीर्य है। पुराने कैटलॉग देखता तो कभी सिरेमिक इवेण्ट्स के पोस्टर निहारता तो कभी किसी औज़ार को उठाता, पूरे स्टूडियो के हर कोने को अच्छे से देखा। यास्मीना बिना रुके अपने शहर, अपने युवा दिनों, वैवाहिक जीवन, बच्चों, अपने माता-पिता, मित्रों के बारे में बताती रहीं। यास्मीना के माता-पिता भी इसी शहर में रहते हैं। १७ वर्षीय बेटी दूनिया दुबई में रहती है। बेटा मिवोश यहीं यास्मीना के साथ रहता है। १७ साल के बाद यहाँ युवा पीढ़ी अपने माता-पिता से अलग रहना शुरू कर देती है। वे अपना निजी जीवन अपने साथ ही रखना चाहते हैं। माता-पिता से जब चाहें वे मिल सकते हैं। पर हर समय माँ के साथ रहने में उन्हें जैसे कोई असहजता लगती है। यास्मीना कहती हैं मुझे भी अपना समय चाहिए, मैं पत्नी हूँ, माँ हूँ पर एक कलाकार हूँ, गृहणी नहीं, उनके उत्साह और आत्मविश्वास की कद्र करते हुए मैं अपनी गर्दन हिलाता हूँ। वे मुस्कुराती हैं।

दोपहर का नीला आकाश साफ़ व स्वच्छ है, गंगा की तरह यह नीली पवित्र गगन गंगा है जो ऊपर बहती है। बिल्डिंग से नीचे उतर कर हम लोग शहर के मुख्य चौक की तरफ़ चल रहे हैं। सामने से आती हवा से यास्मीना के खुले बाल उड़ रहे हैं। फुटपाथ छोटा है कभी वे आगे चलतीं कभी मैं, उन्हें अपने आगे चलते हुए देखना ज्यादा सुखकर है। थोड़ी ही दूर पर एक फ़िल्म एण्ड टेलीविज़न संस्थान के प्रोफ़ेसर अपनी किसी मित्र के साथ बाहर खड़े थे। यास्मीना ने उन्हें देख अभिवादन किया, वे करीब आकर यास्मीना को चूमते हैं। गाल पर लिया गया चुम्बन अच्छी दोस्ती का प्रतीक है, यास्मीना की बेटी दूनिया इन्हीं की छात्रा रही है। दूनिया की बनायी छोटी फ़िल्म संस्थान द्वारा सराही गयी, दूनिया के हुनर से प्रभावित होकर लन्दन में उच्च शिक्षा के लिए उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली। दो वर्ष वहाँ पढ़ाई करने के बाद दूनिया अब दुबई में काम करती हैं।

मुख्य चौक के रास्ते पर कुछ कैफ़े हैं, दो रेड लाइट पार करने के बाद अब हम मुख्य चौक के गिरजाघर के पीछे पहुँचे। गिरजाघर की गगनचुम्बी तिकोनी मीनार नीली गंगा से मुखातिब है। मौसम साफ़ और हवा में गुनगुनी ठण्ड है।

मोमबत्ती लेकर यास्मीना गिरजाघर में प्रवेश करती हैं, उनके पीछे मैं भी। मेरे हाथ में भी उन्होंने दो मोमबत्ती थमा दी हैं। लम्बी और पतली मोमबत्ती। गिरिजाघर चित्रों और मध्यम रोशनी में शान्त है। ऊँची चाट पर चित्रित देवदूत अपनी-अपनी कहानी में लीन हैं। बैठने के लिए लम्बी लकड़ी की बेंच है। दो वृद्ध महिलाएँ प्रार्थना में लीन हैं। मोमबत्तियाँ जगमगा रहीं हैं। नीचे वाले शेल्फ में मृत करीबियों की आत्मा-शान्ति के लिए मोमबत्ती प्रज्जवलित की और ऊपर वाले हिस्से में अपने प्रियजनों के उत्तम भविष्य और स्वास्थ्य के लिए कामना-स्वरूप मोमबत्ती हमने जलायी। लोहे की एक बड़ी ट्रे पर रेत और पानी की पतली परत पर कई मोमबत्तीयाँ जगमगा रहीं हैं।

गिरजाघर के बाहर सड़क पर खुले रेस्तराँ में कॉफी और सिगरेट पीते हुए अपने बारे में बताते हुए यास्मीना भावुक हो गयीं। उनकी पीठ पर हाथ रख मैंने उन्हें ढाँढस देने की सफल कोशिश की। हमारे सामने साबुन के पानी के बड़े-बड़े गुब्बारे बनाकर उन्हें हवा में उड़ाता एक आदमी बच्चों को खुश करते हुए अपना करतब दिखा रहा था। यह आदमी कुछ बेचता नहीं बस बच्चों को महीन गुब्बारे रच कर खुश करता है। हर शाम यह आदमी यहीं गिरजाघर के सामने नियमित यही करता है। बच्चों के साथ उनके माँ-बाप भी पारदर्शी गुब्बारों को पकड़ने की कोशिश करते हैं। पृथ्वी के हर हिस्से के बालक इसी तरह खुश होते हैं, यहाँ किसी भाषा का अधिकार नहीं सिर्फ़ भाव ही प्रमुख हैं। अपने डेढ़ माह के प्रवास में इस आदमी को कई बार बच्चों से घिरा देखा है। बच्चों को खुश करना भी एक तरह की

प्रार्थना ही है। कुछ ही देर चलने के बाद हम नोवी साद के रवीन्द्र नाट्य गृह (रंगमंच के लिए सभागार) के सामने पहुँचे। यह बड़ा दो मंज़िला सभागार है। सभागार के प्रथम तल पर सुन्दर रेस्तराँ है। शहर में और भी सभागार हैं। यास्मीना के आग्रह पर उन्होंने मेरी कुछ तस्वीरें इस सभागार की पृष्ठभूमि में लीं। यास्मीना के साथ उनका शहर देखना, उनके साथ यहाँ की गलियों में घूमना जैसे उनके अपने निजी समय में गोता लगाना है। यूरोपीय स्थापत्य, ये घर, ये गलियाँ, नदी, सेतु, रेस्तराँ आदि देखना ऐसा है जैसे मैं उनके साथ उनके बीस बरस पहले के समय में चला आया हूँ। उनके साथ उनके समय में टहलना अविस्मरणीय अनुभव है। मेरी उपस्थिति जैसे उनके बीते कल को मेरे आज में ले आयी हो। शहर के इस भाग में काफी चहल-पहल है, सभी रेस्तराँ लोगों से भरे हैं। सायकल ही एक ऐसा वाहन है जो हर जगह बिना आवाज़ है। लोगों के साथ उनका यह वाहन भी यहाँ है। इसी वाहन पर फूल और चाबी के छल्ले बेचती महिला हमें अपने फूलों और छल्लों के बारे में कुछ कहती है।

लौटते हुए एक युवक मुझे देख ठिठक गया। दूर से हाथ हिलाते हुए उसने नमस्ते कहा। वह पास आया और पूछा आप भारत से हैं। मैंने कहा हाँ, मैं भारतीय हूँ। तिबोर-नाम बताते हुए कहा मैं टेनिस कोच हूँ और हैदराबाद में सानिया मिर्जा का कोच हूँ। उनसे मिलकर हम दोनों को खुशी हुई, मैंने उन्हें अपनी प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह में आने के लिए निमन्त्रित किया।

यास्मीना के घर के पास ही एक बड़े डिपार्टमेण्टल स्टोर में कुछ खरीदने के लिए हम पहुँचे। यहाँ के सभी महिला-पुरुष कर्मचारी यास्मीना को भलीभाँति जानते हैं। यहाँ का दही, दूध, चीज़ बहुत अच्छा है। यास्मीना की रसोई में कुछ भारतीय मसाले देख तुरन्त ही उनसे पूछा कि ये कहाँ से आए? उन्होंने कहा कि उन्हें ये मसाले पुणे से मिले। वे भारत तीन बार आ चुकी हैं। उनसे अनुमति लेकर मैंने उनकी रसोई में प्रवेश किया और दही, आलू और पुलाव बनाया । यास्मीना को ध्यान में रखकर मिर्च-मसालों का प्रयोग कम ही किया। उन्होंने बड़े चाव से भोजन किया। मेरा भी खूब पेट भरा।

कुछ देर बाद ईवना आयीं। उन्हें मेरे चित्र देखने हैं। नोवी साद में वे ही मेरे चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित कर रही हैं। वे स्वयं भी चित्रकार और ग्राफिक कलाकार हैं। इस शहर में एक कलाकारों के समूह की संचालिका हैं, उनकी अपनी भी एक निजी कला वीथिका है, पर इस वक्त वह तैयार नहीं है इसलिए मेरी यह प्रदर्शनी शहर की एक शासकीय कला वीथिका 'गैलरी पोदरम' में हो रही है। अपने कमरे में रखे बड़े सूटकेस में रखे अपने चित्रों को लेकर ड्राइंग रूम में बारी-बारी से लाकर रखने लगा, देखते ही देखते यास्मीना का पूरा ड्राइंग रूम मेरी एकल चित्र प्रदर्शनी में बदल गया। दोनों दर्शक मेरे चित्र देख हतप्रभ थे। उनके चेहरे पर उभरे भावों से मुझे यह भान हुआ। सोफ़े, कुर्सियों, ज़मीन पर, दीवारों के सहारे खाने की टेबल पर भी चित्र बिखरे थे। यास्मीना मेरे चित्रों को पहली बार हूबहू देख मुग्ध थीं। ईवना को सभी काम पसन्द आए। दो बड़े केनवस रोल लेकर हम पोदबरा इलाके की एक आर्ट मटेरियल शॉप पर गये। अपनी उम्र के साठ साल पारकर चुके दम्पत्ति इस दुकान के मालिक हैं। ट्यूब व जार में रंगों को बड़ी तरतीब से सजाकर रखा है। तरह-तरह के ब्रश, पेन, कई तरह के टूल्स भी यहाँ हैं। दुकान छोटी है, पर कला सम्बन्धित सारी सामग्री यहाँ उपलब्ध है। अपने केनवस चित्रों के स्ट्रेचर यहीं बनेंगे।

बाद में इस देश में मेरी पहली एकल प्रदर्शनी शाबात्श शहर में है।

शाबात्श नोवी साद से सवा घण्टे की दूरी पर है। अपने चित्रों को बड़े सूटकेस में रख कर मैं यास्मीना के साथ नोवी साद बस स्टेण्ड पहुँचा। रेलवे स्टेशन भी यहीं है। लगभग एक ही प्रांगण में। यहाँ भीड़ अधिक नहीं है। टिकट लेकर

हम अपने प्लेटफ़ॉर्म पर बस की प्रतीक्षा करने लगे, पास लगी कुर्सी पर यास्मीना बैठीं। बस आते ही हम अपनी सीट पर बैठ गये। समय मुताबिक बस चल पड़ी। न कोई शोर और न ही कोई धक्का-मुक्की। शहर पार करते ही यहाँ की पर्वत श्रृंखला फ्रुष्कागोरा के घुमावदार रास्ते पर हमारी बस चढ़ने-उतरने लगी। यहाँ एक राष्ट्रीय उद्यान भी है। तरह तरह के पक्षी यहाँ दिखते हैं। ईसाई मठ भी है जहाँ साधु अपनी प्रार्थना और साधना में लीन रहते हैं। रूमा शहर के कुछ और नये यात्रियों को लेकर हमारी बस अब शाबात्श की ओर बढ़ चली। अब सावा नदी पार कर हम अपने गन्तव्य शाबात्श शहर में दाखिल हुए। छोटे और साफ़-सुथरे बस स्टेण्ड पर बस से उतर कर शहर के सिटी थियेटर पहुँचे। इसी थियेटर की कला वीथिका में मेरी प्रदर्शनी है। यह इस शहर का प्रसिद्ध थियेटर है। यहाँ स्लोबोदान हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे भी कलाकार और यास्मीना के पुराने मित्र हैं। इस शहर के अधिकारी भी हैं। थियेटर के कॉफी हाउस में उन्होंने टर्किश कॉफ़ी से हमारा स्वागत किया। थोड़ी ही देर में उनके दो सहायकों की मदद से हम लोगों ने पूरी प्रदर्शनी तैयार कर दी। स्लोबोदान भी मेरे चित्रों की प्रशंसा करने लगे। अब मैं लगभग संकोच की मुद्रा में हूँ। दोपहर के भोजन के लिए स्लोबोदान हमें अपनी दो सहायिकाओं के साथ शहर से कुछ दूर एक प्रसिद्ध रेस्तराँ ले गये। यह एक पुराना लकड़ी का यूरोपियन घर है जिसे इसके मालिक ने खूबसूरत रेस्तराँ में तब्दील किया है। इस घर का सर्बियन नाम है चारदक। आसपास खुला उद्यान, पुराना कुआँ, हरे-भरे फूलों से लदे पौधे। बड़ी-बड़ी लकड़ियों से भीतर रेस्तराँ का विभाजन भारतीय ग्रामीण घर की याद दिलाता है। रेस्तराँ के बीच हम लोग बड़ी टेबल पर बैठे। यहाँ का प्रसिद्ध पेय राकिया पिया गया। शीशे के पतले और छोटे से पात्र में इसे पिया जाता है। राकिया पीने के पहले जिवेली (चियर्स) कहा जाता है। यहाँ स्लोबोदान के कुछ भारतीय मित्र भी हैं। दोपहर का यह भोजन शाबात्श शहर की एक सुन्दर याद है।

थियेटर की बाहरी दीवार पर नाटकों के बड़े-बड़े पोस्टर लहरा रहे हैं। इसी दीवार पर मेरी प्रदर्शनी के भी दो सुन्दर पोस्टर लगे हैं, स्लोबोदान ने ही इन पोस्टरों को तैयार किया है।

कपड़े से बनी दो बड़ी कृतियों को यहाँ उपयुक्त जगह मिली। कागज़ के चित्रों को भी सलीके से लगाया गया है। यह प्रदर्शनी यहाँ के दर्शकों का नया अनुभव होगी। थियेटर में आज नये नाटक की प्रस्तुति है। नाट्य प्रेमी सुबह से ही टिकट खरीद रहे हैं। हमारे यहाँ एक आध महानगरों को छोड़ नाट्य प्रेमी निमन्त्रण पास से ही नाटक देखने में अपनी शान समझते हैं। टिकट खरीद कर नाटक, नृत्य आदि देखने-सुनने का चलन अभी हमारे यहाँ नहीं है। ठीक सात बजे स्लोबोदान ने प्रदर्शनी का औपचारिक उद्घाटन किया। अपनी भाषा में उन्होंने मेरे और मेरे चित्रों के बारे में विस्तार से बताया। मुझे भी कुछ कहने को कहा गया। सबसे पहले मैंने शहर, यास्मीना, स्लोबोदान और यहाँ के कलाप्रेमियों का आभार माना फिर अपनी कला दृष्टि की बात कही। इस औपचारिकता के बाद दर्शकों में से सीता नाम की एक बुजुर्ग महिला मुझसे मिलने आयीं। उन्हें मेरे चित्रों का भूगोल बेहद पसन्द आया। वे सर्बियन भाषा में बोलती रहीं। उनके मुख से रामायण, महाभारत, सीता आदि सुनना मेरे लिए सुखद रहा। एक चित्र के करीब ले जाकर चित्रों में रचा अरण्य उन्हें दिखाया। वे देर तक प्रदर्शनी में रहीं, कुछ युवा चित्रकार और कला विद्यार्थी मुखातिब हुए। मेरी कार्यशैली, तकनीक पर जिज्ञासावश कुछ प्रश्न भी किये। कला शिक्षक, कलाकारों के कलाकार मित्र और कुछ कला समीक्षक भी मिले।

लिलिया कुछ देर से पहुँची। लिलिया यास्मीना की बचपन की मित्र हैं और दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख की सहेली हैं। यहीं पास एक छोटे शहर श्रमशकमित्रोवित्सा में रहती हैं। हम एक दूसरे से मिलने का बेसब्री से इन्तज़ार कर रहे

थे। कल एक मई है, यहाँ इस दिन को छुट्टी, मस्ती और पिकनिक दिवस के रूप में मनाते हैं। लोग अपने परिवार, मित्रों के साथ नदी के किनारे, खेत में, खुले मैदान में, इकट्ठा होते हैं। सब भोजन बनाते हैं और खाने-पीने का पूरा दिन आनन्द लेते हैं। सुबह से शाम तक यह पार्टी चलती रहती है। नये मित्र आते हैं और इस तरह लोग एक दूसरे से दिन भर मिलते हैं। हर कोई खाने या पीने के लिए घर की बनी रकिया लेकर आता है। आज रात हम लिलिया के श्रमशकमित्रोवित्सा गाँव के पुराने पुश्तैनी घर में ही रहेंगे। कल लिलिया ने यहाँ अपने मित्रों को बुलाया है, कल का दिन पार्टी का दिन है। गैलरी बन्द होते ही लिलिया के साथ हम दोनों उन्हीं की कार से उनके साथ चल पड़े, अपनी छोटी पुरानी कार से वे ड्राइव कर हमें ले जा रही हैं। दोनों सहेलियाँ आगे बैठीं और मैं अपने बैग के साथ पीछे। रास्ते में सन्नाटा है, रात हो चली है, इक्का-दुक्का गाड़ी ही कभी सामने से तो कभी ओवरटेक कर चली जाती। सड़क पतली और दोनों ओर अन्तहीन खेतों के बीच बनी है। पूरे रास्ते दोनों सखियाँ बातें करती रहीं, बीच-बीच में यास्मीना के ज़ोरदार ठहाके भी आते रहे। उन्हें खुश देख मैं भी प्रफुल्लित हूँ।

देश - विदेश

(कुछ अंश)

सैयद मुज्तबा अली

बांग्ला से अनुवाद - रामशंकर द्विवेदी

सैयद मुज्तबा अली बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज़ी पढ़ाने काबुल गये थे। वे वहाँ कई महीनों रहे। इस अवधि में उनकी कई देशों के लोगो से मित्रता हुई और उनके घर काम के लिये काबुल के पास के गाँव का अत्यन्त निष्ठावान पठान अब्दुर्रहमान लगा था। इन महीनों में अफ़गानिस्तान में कई राजनैतिक उतार-चढ़ाव हुए। मुज्तबा अली इनके साक्षी थे। जब वे लौटे अफ़गानिस्तान में तख़्ता पलट हुआ था और एक डकैत वहाँ पर राष्ट्र प्रमुख बन गया था। यहाँ प्रकाशित अंश मुज्तबा अली की देश-विदेश नामक बांग्ला पुस्तक के वे अंश हैं, जब उन्हें तख़्ता पलटने के कारण अफ़गानिस्तान से भागना पड़ा था।

एक दिन सवेरे-सवेरे जब नींद खुली तो क्या देखता हूँ कि सामने एक अपरूप मूर्ति खड़ी हुई है। कुछ पहचानी-सी ज़रूर लगी हालाँकि थी बिलकुल अपरिचित। उसके हाथ की ट्रे की तरफ नज़र जाते ही देखता हूँ कि वह पूरी तरह पहचाना व्यक्ति है। ट्रे पर रखे रोटी, मक्खन, मामलेट, बासी कबाब लेकर रोज़ का चेहरा उपस्थित था। अगर धुँआ देखने को मिले, वहाँ आग ज़रूर होगी, यह मानना होगा। सवेरे-सवेरे मेरे कमरे में इस तरह की ट्रे को हवा हिला भी नहीं पाती है, उसे लाने वाले अब्दुल रहमान की उपस्थिति माननी ही पड़ती है।

किन्तु उसकी कैसी तो वेशभूषा है। पाजामा तो पहना नहीं, पहने हुआ है पतलून। कैदियों के पतलून की तरह घुटनों से तीन इंच नीचे, पेट पर वह पतलून इतना टाइट है कि ऐसा लगता है सत्रहवीं शताब्दी का कोई फ्राँसीसी नाइट साटिन से बनी कोई कसी हुई ब्रिचेस पहने हुए हो, किन्तु उसकी शर्ट बेलबूटेदार नहीं है। खुले गले के ऊपर एक टाई बँधी हुई है। बन्द गले का कोट, किन्तु उसका साइज़ इतना छोटा है कि उसमें बटन लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। उसी के बीच से दिखाई दे रही है उसकी शर्ट और टाई। दोनों कानों को छूता हुआ उसका हेट, भौहों तक को उसने ढँक रखा है। दुकान पर जिस तरह से हेट-स्टैण्ड पर खड़ा रहता है।

पैरों में नागरे हैं, आँखों में हँसी और चेहरे पर खुशी है। अब्दुल रहमान के साथ मैंने एक वर्ष घर-गृहस्थी चलायी है। नाराज़ हो जाने पर अनेक इष्टियों से बीच-बीच में उसकी हाथी से तुलना की है, किन्तु वह पूरी तरह से स्वस्थ, उसके दिमाग में ज़रा भी छल नहीं था, इसका मुझे पूरा विश्वास था। इसीलिए मैंने आँखें मूँदकर कहा- 'सारी बात समझाकर कहो।'

मुझे चिन्ता होगी इस विषय में वह पूरी तरह सचेत था, इसलिए उसने कहा- 'देवेशी पूरीदम' अर्थात् मैंने सूट पहना हुआ है।'

मैंने उससे प्रश्न किया, 'सरकारी नौकरी मिलने पर लोग क्या 'देवेशी' पहनते हैं, क्या तुम मेरी नौकरी छोड़ने जा रहे हो ?'

अब्दुल रहमान बोला- 'तोबा, तोबा, साहब आप हमारे सरकार हैं, मुझे रोटी देने वाले।'

'तो फिर यह पोशाक क्यों पहने हुए हो ?'

''सवेरे रोटी खरीदने गया था, रास्ते में पुलिस ने पकड़ कर कहा- ''बादशाह के हुकुम से आज से काबुल में सड़कों पर कुर्ता-पाजामा और झब्बा पहनकर निकलने पर रोक लगा दी गयी है, सभी को 'देवेशी' पोशाक पहननी होगी।' उन्होंने मुझसे एक पाई जुर्माना भी ले लिया है। रोटी खरीदकर लौट रहा था तब दो-तीन पुलिसजनों ने फिर पकड़ लिया। आपकी दुहाई देकर किसी तरह घर लौट सका हूँ। घर के सामने ही अपने पड़ोसी कर्नल साहेब से भेंट हो गयी, वे मुझे अपने यहाँ बुला ले गये, उन्होंने ही मुझे यह 'देवेशी' पोशाक दी है, वे मुझसे बहुत स्नेह करते हैं, मैं भी उनकी छोटी-मोटी फ़रमाइशें पूरी करता रहता हूँ।

गम्भीर होकर मैंने उसकी ये सब बातें सुनीं, अन्तिम बात पर मैंने कहा- 'दर्जी की दुकान पर तो इस समय भीड़ होगी। दो-तीन दिन बाद जाकर अपनी पसन्द के अनुसार एक देवेशी बनवा लेना।'

अब्दुर रहमान एक हिसाबी व्यक्ति है, कहने लगा- 'यह तो बहुत अच्छी पोशाक है।'

मैंने कहा-चुप! दोपहर के समय एक जोड़ा बूट खरीद लेना।'

अब्दुर रहमान मीठी आवाज़ में बोला- 'नहीं हुजूर, उसकी ज़रूरत नहीं है। पुलिस के पास पोशाक की जो सूची है, उसमें बूट का नाम ही नहीं है'

मैं यह सुनकर पहली बार अवाक् रह गया। बाद में समझ गया ठीक ही तो है, लक्ष्मण चूँकि सीतादेवी के पैरों की ओर ही देख सकते थे, राजा-प्रजा में तो वह सम्बन्ध होता नहीं है।

मैंने कहा- 'चुप! दोपहर में जूता ज़रूर खरीदोगे और देखो, अब हेट उतारकर अलग कर दो।'

अब्दुर रहमान, 'चुप'।

कहा- 'उतार दो।'

अब्दुर रहमान धीरे-धीरे क्षीण आवाज़ में बोला- 'हुजूर के सामने', उसका मुँह फ़ीका पड़ गया था।

सहसा याद आ गया कि अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान में अगर शैतान का भय महसूस हो तो उससे बचने के लिए लोग अपनी पगड़ी उतारकर फेंक देते हैं। सिर्फ़ नंगा सिर देखते ही शैतान भाग जाता है। इसलिए अब्दुर रहमान मेरी बात सुनकर मुश्किल में पड़ गया था। इसलिए याद आया कि सामान्य व्यावहारिक ज्ञान उसे यह नहीं कहने दे रहा था कि वह बिना टोप पहने रह नहीं सकता है। इस पर मैंने कहा कि ठीक है, अपने सिर पर हेट पहने रहो, कोई बात नहीं है।

सड़क पर निकल कर देखा कि अन्य दिनों की अपेक्षा शहर एक दम सूना था। देवेशी पोशाक के अभाव में लोग घर से निकले ही नहीं थे। पर्दा उठ जाने के कारण पथघाट पर जिस तरह स्त्रियों की भीड़ बढ़ जाने की सम्भावना थी।

जो लोग निकल भी आये थे उनके देवेशी वेश की वर्णना मेरी सामर्थ्य से बाहर थी। जितनी तरह के फटे-गन्दे, शरीर की तुलना में न छोटे, न बड़े कोट-पतलून, जबरदस्ती पहनी गयी सेना की विचेस के जितने तरह की सम्भव-असम्भव खिचड़ी पकायी जा सकती थी, उन्हीं को पहनकर काबुल शहर सड़क पर निकल पड़ा था। पूरे दस पागलों को अगर हॉलीवुड के ग्रीन रूम में छोड़ दिया जाता तो भी इससे बढ़कर विपर्यय काण्ड शायद सम्भव नहीं हो

पाता।

यूरोप के लोग तमाशा देखने निकले थे। मेरा तो लज्जावश मानो सिर ही कट गया। अफ़गानिस्तान को मैंने कभी पराया नहीं समझा था। शहर की निचली बस्ती से होकर मुझे अपने काम पर जाना पड़ता था। वहाँ पर तो और कठोर दृश्य देखने को मिला। गाँव के लकड़ीवालों, सब्जीवालों और आलूवालों ने जैसे ही शहर की सीमा के भीतर पैर रखा, वैसे ही पुलिस उन्हें पकड़कर उन पर एक-एक पाई जुर्माना कर देती थी। उन बेचारों को कोई रसीद भी नहीं दी जाती है, परिणाम यह होता है कि दस क़दम आगे बढ़ते न बढ़ते पुलिस के अन्य सिपाही उनसे पुनः जुर्माना वसूल लेते हैं। ऐसा लगता है दुनिया की जितनी पुलिस है, वह मानो काबुल की निचली बस्ती में उस दिन, इकट्ठी हो गयी हो। समाचारों से पता चला कि जिनकी ड्यूटी ऑफ हो जाती है वे भी वर्दी पहनकर कमाई के धन्धे में लग जाते हैं। जुर्माने का पैसा किसी सरकारी खज़ाने में जमा करने का अब तक कोई इन्तजाम नहीं हुआ है।

दिन के दूसरे पहर में काबुल की पुलिस जो सड़क पर खड़े-खड़े नींद का रिकार्ड तोड़ सकती है, उसकी व्यस्तता देखकर ऐसा लगता है, जैसे उसके घर में आग लग गयी हो।

यह अन्याय कितने दिनों चलता रहा था, मैं कह नहीं सकता।

दो सप्ताह तक मुझे अपने देश के अखबार और खबरें तथा चिट्ठी-पत्री नहीं मिली। खबरों से पता चला कि जलालाबाद-काबुल के रास्ते बर्फ़ से ढँक जाने के कारण मेल-बस कोई भी नहीं आ सकी है, दो-एक लोगों ने अस्फुट स्वरों में कहा, रास्ते में लूट का राज्य हो रहा है। मीर असलम सभी को सावधान करते हुए कह गया है कि जहाँ-तहाँ चाहे जो प्रश्न न पूछ।

अन्य काम समाप्त हो जाने के बाद लड़कियों के स्कूल की हेड मिस्ट्रेस और सेकेण्ड मिस्ट्रेस को मैं अँग्रेज़ी पढ़ाया करता था, अफ़गान लड़कियाँ बहुत ही चालाक होती हैं, उन्हें पता है कि धनी लोगों से रुपया निकालना कितना मुश्किल है, किन्तु ग़रीबों के हाथ अत्यन्त उदार होते हैं। अगर ज्ञानार्जन करना है तो उस समय भी यही नीति लागू होती है, इसलिए उन महिलाओं ने सोच-विचार कर मुझे चुना था।

हेड मिस्ट्रेस की उमर पचास के ऊपर है, मातृभाषा को अगर छोड़ दिया जाए तो वे पहली बार किसी दूसरी भाषा को सीख रही हैं। इसलिए काबुल के पत्थर को भी फोड़ देने वाली ठण्ड में भी मैं उन्हें अँग्रेजी वर्तनी सिखाते हुए पसीने से तर-बतर हो जाता था। यद्यपि वे अँग्रेज़ी भाषा सीखने बैठी थीं किन्तु उस एक विषय को छोड़कर दुनिया के अन्य सब विषयों में उनके कौतूहल की कोई सीमा नहीं थी। विशेषकर मास्टर मशाई की उम्र कितनी है, उनका देश कौन-सा है, देश के लिए उनका मन बेचैन होता है या नहीं, किसी भी तरह का प्रश्न पूछने में उन्हें हिचक नहीं होती थी। फिर भी मेरे एपेण्डिस्क का साइज़ क्या है और इस दुनिया में मेरे जन्म लेने का उद्देश्य क्या था, इन दो प्रश्नों को उन्होंने मुझसे नहीं पूछा। मेरे उत्तर देने का कायदा भी बड़ा विचित्र था। मेरा देश? मेरा देश है बंगाल, आप इसकी वर्तनी सीख लीजिए- बी ई एन जी ए एल (Bengal)। इसे कैसे बोला जाए यह भी सीख लीजिए। इसे कोई कहता है बेंगोल, फिर कोई कहता है बेंगाल। ठीक जैसे (France) की एफ आर। वे कहा करती थीं, समझ गयी, समझ गयी, बंगाली स्त्रियाँ देखने में कैसी लगती हैं? सुना है, उनके केश बहुत लम्बे-लम्बे होते हैं, जुल्फे बंगाल नाम का तेल यहाँ मिलता है। आप क्या तेल लगाते हैं?' हम दोनों के इस सवाल-जवाब के बीच में पड़कर अँग्रेज़ी भाषा में की शिक्षा अधिक नहीं बढ़ पाती थी, विशेष रूप से तब तक वह मेरी माँ के बारे में पूछने लगती थी। माँ के बारे में बताने के बीच में धोखा देकर कह उठता था कि सिखाने की कला मेरे पेटे में है ही नहीं।

raja
sanjeev3067@gmail.com

सेकेण्ड मिस्ट्रेस की उम्र थोड़ी कम थी, तीस के आसपास होगी। वह दो बच्चों की माँ थी, उसकी थुलथुल देह थी, चपटी नाक चेहरे पर सदा हँसती खेलती रहती थी, पहनावे में बारहों मास स्लिपओवर, लम्बी बाँहों का ब्लाउज और गहरी नीली फ्रॉक। कर्नल की बहू है, उसमें थोड़ी बहुत अकल-बकल है और मैं जब हेड़ मिस्ट्रेस के सवालों के दबाव में बेहाल हो जाता था, वह आँखें मिचकाकर हँसने लगती थी और नितान्त बेढंगा प्रश्न कर भौंचक्का होकर मेरा बीच-बीच में उद्धार कर देती थी।

ज़ोरों की ठण्ड थी, उस समय भी बर्फ़ नहीं गिर रही थी, ऐसे समय एक दिन पढ़ाने गया और कमरे में घुसते ही देखता हूँ कि कर्नल की बहू किताब में मुँह गड़ाये टेबिल पर झुकी हुई पढ़ रही है और हेड मिस्ट्रेस उसकी पीठ पर हाथ फेर रही हैं। मेरे पैरों की आहट सुनकर कर्नल की बहू उठकर खड़ी हो गयी। अन्य दिनों की तरह उसके चेहरे पर सहास्य स्वागत सम्भाषण नहीं था। दोनों आँखें लाल थीं, नाक के आगे का हिस्सा चमड़ा जैसे छिल गया हो।

इन सब चीज़ों की ओर मुझे ध्यान नहीं देना चाहिए। इसलिए मैंने पुस्तक खोलकर पढ़ाना आरम्भ कर दिया। दो मिनट भी नहीं हुए होंगे कि सहसा मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बीच में कर्नल की बहू दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक कर ज़ोर से रोने लगी। इससे मैं चौंक पड़ा। हेड मिस्ट्रेस उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई उसे सान्त्वना देते हुई कहती रही, अधीर मत होओ, अधीर मत होओ। खुदाताला मेहरबान है। उस पर विश्वास मत खोओ। शान्त हो जाओ।'

मैंने आँखों के इशारे से हेड मिस्ट्रेस से पूछा-'तो फिर मैं चलूँ?'

उसने सिर हिलाकर मुझे जाने से रोका। दो मिनट जाते-न-जाते फिर रोना-धोना शुरू हो गया, फिर उसे ढाँढस बँधाया गया। मैं उस स्थिति में क्या करूँ, यह सोच ही नहीं पा रहा था। रोने के साथ-साथ वह जो कहती जा रही थी उससे मुझे जो पता चला वह यह था कि उसके पति का कहीं अमंगल न हो जाए उसी की चिन्ता में वह बेहाल हुई जा रही है। किन्तु जैसे ही वह साफ़-साफ़ बात बताने का उपक्रम करती, वैसे ही हेड मिस्ट्रेस उसे कहने से रोक देती थी। उससे मैं यह समझ गया कि अमंगल की बात एकदम निराधार नहीं है और उसके साथ ऐसी कुछ वज़हें जुड़ी हैं कि उन्हें खुलना उचित नहीं है।

किन्तु, वह तब तक इतना आत्मविश्वास खो चुकी थी कि उसे समझाना मुश्किल था। कभी कहती थी 'शिनवारी लोग' बर्बर जानवरों की तरह होते हैं, कभी कहती थी, 'सात दिन हो गये सरकार की तरफ से कोई खबर ही नहीं आयी हैं,' कभी कहती थी, शिनवारी लोग अगर शहर में घुस आएँ तो किसी भी अफसर के परिवार का बचना मुश्किल है।

जलालाबाद इलाके में लुटेरों का राज चल रहा है, इस तरह की अफवाह मैंने पहले ही सुनी थी, उसके साथ इन सब टूटी-फूटी खबरों को जोड़कर मैं यह समझ गया कि उस इलाके में शिनवारी लोगों ने विद्रोह कर दिया है, अब वे काबुल की ओर आ रहे हैं, अमानुल्ला ने उन्हें रोकने के लिए जो फौज़ भेजी थी, सात दिन से उन लोगों के बारे में कोई विश्वसनीय खबर नहीं मिली है और काबुल के अफ़सरों में यह अफवाह फैली गयी है कि उस वाहिनी के अफ़सर शिनवारियों के हत्थे चढ़ गये हैं।

इतनी बुरी खबर अँग्रेज़ी पढ़ाने की कोशिश से दबाना मुश्किल था, एकदम नामुमकिन और ये सब खबरें मुझे मिल जाएँ, यह वह हेड मिस्ट्रेस कतई पसन्द नहीं कर रही थी, किन्तु कर्नल की पत्नी को वह किसी तरह रोक भी नहीं पा रही थी। आखिर जबरदस्ती वहाँ से उठकर चले आने का प्रयास करते ही कर्नल की बहू ने आँसू पोंछकर कहा-नहीं, मुताल्लिम साहब आप अभी जाएँगे नहीं, मैं आपके पढ़ाने में मन लगा रही हूँ।'

इस तरह का पढ़ाना मुझे जीवन में और न पढ़ाना पड़े, मैं यही सोच रहा था। इस बार जब वह प्रबल वेग से फूट-फूटकर रोने लगी, उसने सिसकते-सिसकते बताया कि जो अफ़सर अमानुल्ला की तरह मूँछें रखे हुए हैं, उन्हें

पकड़-पकड़ कर उनके ऊपरी ओठ को वे बर्बर लोग काटकर फेंक देते हैं।' अमानुल्ला ठीक नाक के नीचे थोड़ी मूँछ रखते हैं-वही टूथब्रश जैसी मूँछ का फैशन फ़ौजी अफसरों में फैल गया था।

अब मुझे थोड़ी सान्त्वना देने का अवसर मिल गया था। 'लड़ाई के समय कितनी तरह की अफ़वाहें फैलती रहती हैं, क्या उन सब पर विश्वास करना चाहिए? आप घबड़ा जाने की वज़ह से ही उन बुरी खबरों पर विश्वास कर रही हैं।'

वह फिर आँखें पोंछकर उठ गयी। मैं पर पुरुष हूँ यह बात भूलकर वह मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहने लगी-मुअल्लिम साहेब, आप सच कहिए 'ईमान से कहिए, आपने कितने सप्ताह से हिन्दुस्तान की चिट्ठी नहीं पायी हैं?'

हिन्दुस्तान की डाक शिनवारियों के इलाके से ही होकर आती हैं तीन सप्ताहों से उसका आना बन्द था।

मैं उठकर खड़ा हो गया। उसकी आँखों में सीधे देखते हुए बोला मुझे इसी सप्ताह अपने देश की चिट्ठी मिली हैं।

वह कुछ आश्वस्त हुई यह देखकर मैंने आगे कहा, आप तो अन्य पाँच लोगों से मिलती-जुलती नहीं हैं, जो आपको सही खबर मिल सकतीं। स्त्रियाँ वैसे ही अधिक डरने वाली होती हैं और वे अनेक तरह की अफवाहें स्वयं भी फैलाती रहती हैं। इसीलिए बादशाह अमानुदौला पर्दा प्रथा पसन्द नहीं करते हैं।

हेड मिस्ट्रेस मेरे साथ दरवाज़े तक आयी और उसने कहा-'जो समाचार आपको पता चले हैं, उसकी चर्चा आप किसी से भी नहीं करेंगे।'

मैंने जवाब दिया, 'ये सब खबरें नहीं, अफ़वाहें हैं। अफ़वाहों से कहीं कोई खतरा थोड़े होता है। मैं तो विदेशी हूँ। मैं एक विदेशी हूँ, इसलिए मुझे बहुत सावधान रहना पड़ता है।

सड़क पर आकर जैसे ही मुझे एकान्त मिला, मेरी समझ में आ गया कि झूठी सान्त्वना देने से कैसी विडम्बना होती है। उससे उबरने के लिए एक पंजाबी ग्रामोफोन वाले की दुकान में घुस गया। मेरे पास ग्रामोफोन नहीं था, मैं रिकार्ड भी नहीं खरीदता था, फिर भी अपने देश का भाई शुकुर मुहम्मद नामक दुकानदार मेरी हरदम खातिरदारी करता रहता था। मैंने पूछा, 'मौलाना के बाड़्ला गानों के रिकार्ड कलकत्ता से आ गये हैं?'

दुकानदार ने इंकार किया और उसकी भावभंगिमा देखकर मैं समझ गया कि यदि खोद-खादकर उससे पूछा भी जाए तो उसे उसका कारण बताने में कोई ऐतराज़ नहीं होगा। मैं उससे अधिक जिरह न कर कुछ रिकार्ड सुनकर अपने घर लौट आया।

लेकिन, अधिक पूछ-ताछ और खोजबीन कुछ भी नहीं करनी पड़ी। धीरे-धीरे बर्फ़ पड़ने के साथ-साथ अनेक तरह की अफ़वाहें पर्त-दर-पर्त आकर काबुल के बाज़ार में इकट्ठी होने लगी। रुपयों के बदले में यह बाज़ार अन्न वितरण करता है, किन्तु सन्देश ऐसा देता है जैसे बिना मूल्य के देता है, बिना मूल्य के जो देता है वह मिलावटी और खराब होता है, इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। खबरों की अपेक्षा अफ़वाहें ही अधिक फैली हुई थीं।

पर इस बारे में किसी के मन में कोई सन्देह नहीं रह गया कि अमानुल्ला हथियारों के बल पर विद्रोहियों का दमन करने में सफल नहीं हुआ। हाँ, इस समय हो सकता है अर्थ बल के द्वारा कुछ कर सकें।

पहले ही कह चुका हूँ कि अफ़गानिस्तान की उपजातियों में खूनखराबी का संघर्ष प्रायः बारहों मास चलता रहता है। सन्धि के फलस्वरूप हथियारों को कभी-कभी बन्द कर देने के बाद भी वहाँ मैत्री और सहृदयता के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। कारण, अफ़गान कूटनीति का पहला सूत्र है कि यदि कोई उपजाति कभी राजा के विरुद्ध विद्रोह

की घोषणा करती है, तुरन्त उस शत्रुपक्ष को धन देकर उसके विरुद्ध हुलका देना। अगर धन से वश में न हो तो उन्हें राइफल दे देना। राइफल पाकर अफ़गान परम उत्साह से शत्रु पर आक्रमण करेंगे, जो नीरस दिल्लगी बाज होते हैं, उनका कहना है कि उसका मुख्य उद्देश्य है कि बन्दूक के निशाने की परीक्षा करना ।

किन्तु इस जगह पर यह देखा गया है कि विद्रोह के नीले निशान मुल्लाओं ने तैयार किया है और उन लोगों ने सभी उपजातियों को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी कि यदि कोई उपजाति 'काफ़िर' अमानुल्ला के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा करती है, तभी उसे दीन इस्लाम का रक्षक कहा जाएगा। राइफल अथवा रुपयों के लालच में अथवा ऐतिहयरात सनातन शत्रुता को याद कर अमानुल्ला की तरफ से उस समय विद्रोहियों के साथ लड़ाई लड़ेंगे, वे भी अमानुल्ला की तरह काफ़िर माने जाएँगे। केवल वही लोग उस समय दोज़ख में जाएँगे, ऐसा नहीं है, बल्कि उनके पहले और बाद की चौदह पीढ़ियों के पूर्व पुरूष भी स्वर्ग दर्शन की आशा न करें।

यह बड़ा भयंकर अभिशाप था। इस लोक में तो छाती से राइफल लगी रहेंगी और परलोक में आलिंगनबद्ध रहेंगी हूरें, इस पुरुष प्रकृति के ऊपर अफ़गान दर्शन स्थापित है। किसी पर भी आघात करना नहीं चल पाएगा। किन्तु, प्रश्न यह है कि अमानुल्ला क्या सचमुच में काफ़िर है?

इस बार मुल्ला लोगों ने जो अन्तिम तर्क पेश किया उसके विरुद्ध किसी शिनवारी अथवा किसी सुगियानी ने एक शब्द भी नहीं कहा।

मुल्लाओं ने कहा-'अपनी आँखों से देख नहीं रहे हो, अमानुल्ला ने पाँच काबुली लड़कियाँ मुस्तफ़ा कमाल को भेंट में भेजी हैं। वे लोग एक रात जलालाबाद में बिता गयी हैं, उस समय देखा नहीं है कि वे किस तरह बपर्दा, बेहया बाजार में खट-खट कर मोटर से उतरी और उसमें बैठ गयी?'

बात सच है कि उस दिन बड़ी संख्या में शिनवारी सुगियानी जलालाबाद हाट आए थे और वहाँ उन्होंने बेपर्दा काबुली लड़कियों को देखा था और सबसे बड़ा सत्य यह था कि गाज़ी मुस्तफ़ा कमाल पाशा ने अफ़गानी मुल्लाओं से कभी 'गुड कंडक्ट' का पुरस्कार नहीं पाया था।

फिर भी एक मूर्ख ने कहा था कि वे लड़कियाँ डॉक्टरी सीखने तुर्की जा रही हैं। यह सुनकर शिनवारी लोग ने अट्टाहास किया था। 'लड़कियाँ और डॉक्टर। कब किसने सुना है कि लड़कियाँ डॉक्टर बनती हैं? इससे तो अच्छा यह है कि लड़कियाँ तुर्की जा रही है।, मूँछे रखाने के लिए।

तब कौन आँखों में अँगुली डालकर शिनवारियों को यह दिखाएगा कि शिनवारी लड़कियाँ बिना पर्दे के खेत खलिहानों में काम करती हैं, कौन यह समझाएगा कि बूढ़ी दादी जब पीली पट्टी बाँधने में माथे पर नोंक लगाने में पुरुषों की अपेक्षा अधिक ही पक्की हैं, तब फिर काबुली महिलाएँ डॉक्टर क्यों नहीं बन सकेंगी? किन्तु ये सब व्यर्थ के तर्क हैं। निष्फल चर्चा है। दरअसल एक कारण का उल्लेख किसी-किसी ने किया था, किन्तु, वह भी कहाँ तक सत्य है, खोज़ करने पर भी उसे जान नहीं अमानुल्ला ने चूँकि राजकोष में धन बढ़ाने के लिए हर अफ़गानी नागरिक पर पाँच मुद्रा टैक्स लगा दिया था।

अमानुल्ला इन सब बातों को धीरे-धीरे जान सका था, किन्तु और पाँच जनों की तरह वह भी फारसी की उस कहावत में विश्वास करता था कि अगर रत्तीभर सोना हो तो मनुष्य मरे कुत्ते का भी आदर करता है। अमानुल्ला ने सभी उजिरदारियों को बुलाकर उनसे पूछा, 'उपजातियों को घूस देने के बारे में कौन क्या-क्या जानता है?' मेरे बन्धु आधे पागल दोस्त मुहम्मद ने कुछ गलत नहीं कहा था, पता चला कि अनेक लोग बहुत कुछ जानते हैं, सिर्फ़ जानते ही नहीं है, किस उपजाति के साथ उपजाति की शत्रुता है, किस उपजाति के बड़े-बड़े सरदार उस समय उपस्थित रहते हैं

और किनकी मध्यस्थता से गुप्त रूप में घूस भेजी जाती है, किस मुल्ले का कौन चाचा काबुल में रहता है, उनके ऊपर आघात करने से किसका भतीजा शाइस्ता हो जाएगा-अर्थात् जानने जैसा वह कुछ जानता ही नहीं है।

इस स्थिति में अनाहत, उपेक्षित, पुरातन पन्थि वृद्धों को बुलाया जाता है, उनका कहना होगा कि गत दस वर्षों से किसी भी तरह के काम-काज से उनका कोई सरोकार नहीं रहा है इसलिए अफ़गान उपजातियों से उनका योगसूत्र छिन्न हो गया है। राजानुकम्पा से द्रवित होकर जो अर्थसलिल उन लोगों की जल प्रणाली से होकर उपजातियों के पास पहुँचता रहता था, वे सारी पयःप्रणालियाँ दस वर्ष की उपेक्षा के कारण आज कूड़ा करकट से भर गयी हैं। अब तो उस कूड़ा-करकट को दूर करने का उपाय बाढ़ के अलावा दूसरा नहीं हैं।

काफ़ी सोच-विचार के बाद अमानुल्ला ने अपने बहनोई अली अहमद खान को जलालाबाद भेजा। शिनवारियों को रुपयों की बाढ़ में बहा देने के लिए, कोई कहता था, दस लाख, कोई कहता है बीस लाख दिया गया था।

शास्त्रीय तर्क के अनुसार दार्शनिक संघर्ष में लक्ष्यहीन होकर उमर खैय्याम मिट्टी के प्याले में सुरापान करता था। मिट्टी के उसी पात्र ने उस समय उसे गम्भीरतम सत्य का पता दिया था।

मेरा मिट्टी का प्याला था अब्दुरर्हमान उससे सारी बातें खोल कर कहने के बाद मैंने उसका मतामत जानना चाहा। शुरू में उसने मुझे राजनैतिक चर्चा करने से रोका, किन्तु उसे शिनवारी विद्रोह की पक्की खबर शहर में आने के साथ ही साथ कहानी किस्सों के राजा की तरह गप्प ही लगी थी। अब्दुर रहमान बर्फ़ का जौहरी है और वह बर्फ़ ही उसका मापदण्ड है। उसने कहा, कई लोग अनेक तरह की बातें कर रहे हैं, मैं उनका हिसाब-किताब कैसे लगाऊँ? किन्तु एक बात मत भूलिये हुजूर, इस बर्फ़ को पारकर शिनवारी लोग किसी भी तरह काबुल में नहीं घुस पाएँगे। उनके पास ठण्ड में पहनने वाले कपड़े ही नहीं हैं बर्फ़ पिघलने के बाद ही देखा जाएगा कि क्या होता हैं। मैंने उससे कहा कि इसीलिए यह कहावत प्रचलित है कि काबुल चाहे स्वर्णरहित हो जाए किन्तु बर्फ़ रहित न हो। सोचकर देखा कि अब्दुर रहमान ने कुछ ग़लत नहीं कहा था। इतिहास में देखा गया है पानी बरसने के साथ ही बाड़्ला देश में विद्रोह विप्लव भी फटे कम्बल को ओढ़कर सोने चला जाता हैं।

२

इस समय जो कुछ भी घटित हुआ, उसके लिए कोई तैयार नहीं था। पुराने और नये किसी-किसी भी व्यक्ति की कैसी भी आलोचना का इंगित या आभास मैंने इस मामले में नहीं पाया।

उस समय दिन के चार बजे होंगे। अपने दोस्त मुहम्मद के घर से निकलते हुए देखता हूँ सड़क पर एक तुमुल काण्ड हो रहा है। दुकानदारों ने धड़ाम-धड़ाम अपने दरवाज़े, खिड़कियाँ बन्द कर लिये हैं, लोग चाहे जिस तरफ बिना सोचे-समझे भागे जा रहे हैं, चारों ओर चीख-पुकार सुनायी दे रही है 'अरे भैया कहाँ चले गये', 'ओ मामा जल्दी आओ।' लोगों की भीड़ के ऊपर से ताँगावालें, खाली गाड़ी और बोझ से लदी गाड़ी ज्ञानसून्य होकर चलाये जा रहें हैं कि मेरी आँखों के सामने एक गाड़ी लटकती-लुढ़कती काबुल नदी की बर्फ़ पर जा पड़ी, उसकी तरफ किसी ने पलट कर भी नहीं देखा।

सारे शोर-गुल को दबाती हुई कानों में एक आवाज़ आ रही 'बाच्चाये सोकाओ आ रहे हैं, बाच्चाये सोकाओ आ धमके हैं।' इसी समय धड़ाम से राइफल छूटने की आवाज़ आयी। लक्षित किया कि यह आवाज़ शहर की उत्तरी दिशा से आयी हैं। इसके साथ ही साथ चारों तरफ की जनता जैसे ज्ञानशून्य होकर उन्मादग्रस्त हों गयी। जिनके हाथों अथवा कन्धों पर पोटली-गठरी थी उन्हें इधर-उधर फेंककर वे लोग भागने लगे, एक झुण्ड रास्ते के किनारे स्थित

*यहाँ इसका आशय बंगाल प्रान्त से है।

नयानजुली में उतर गया और एक दूसरा झुण्ड काबुल की नदी के जम जाने वाले पानी के ऊपर भागने से बार-बार फिसल कर गिरने लगा। सड़क के किनारे जो अन्धा भिखारी बैठा रहता था, मैंने देखा कि वह उठकर खड़ा हो गया है। भीड़ के धक्के से वह इधर-उधर गिरता-पड़ता शून्य में हाथ उठाकर मानों रास्ता खोज रहा है।

मैं किसी तरह सड़क से नीचे उतरकर नयानजुली पारकर एक दुकान के बरामदे में जाकर खड़ा हो गया। निश्चय किया, विद्रोह-विप्लन के समय पगले घोड़े का धक्का अथवा भीड़ में दबकर दम घुटने से नहीं मरूँगा, अगर मरना ही पड़े तो अपने हिस्से की गोली खाकर मरूँगा।

एक मिनट बीतते-बीतते एक और व्यक्ति वहाँ आकर खड़ा हो गया। यह इटालियन 'कलोनेल्लो' अर्थात् कर्नल था। इसकी उम्र साठ के आसपास होगी; लम्बी लहरदार दाढ़ी।

मुझे यह पहला व्यक्ति मिला जिससे धीरज और सहजता से कुछ पूछा जा सकता है। मैंने उससे कहा कि मैंने सुना था कि डकैतों का सरदार बाच्चाये सकाओ अमानुल्ला की तरफ से शिनवारियों के साथ युद्ध करने के लिए आ रहा है। पर यह कैसा काण्ड हो रहा है?'

कलोनेल्ला ने कहा 'मुझे तो यह ग़लत खबर लग रही है। यह तो इस शहर पर कब्जा करने के लिए आ रहा है।' अगर ऐसा होने वाला है तो अमानुल्ला के सैनिक इस समय भी शहर की उत्तरी दिशा में क्यों नहीं जा रहे हैं, इस तरह से अचानक बाच्चाये सकाओ के आ जाने से वे लोग क्या करेंगे, उसके दल में कितने लोग हैं, उनके साथ बन्दूक अथवा तोप आदि हैं कि नहीं इन सब अथवा अन्य प्रश्नों का उत्तर, कलोनेल्ला नहीं दे सका। बीच-बीच में वह सिर्फ यह कहता रहा, 'कैसा अद्‌भुत अनुभव है।'

मैंने कहा, काबुल के सामान्य जन डर रहे हैं, यह तो स्पष्ट समझ में आ रहा है, किन्तु यूरोपियन लोग इनके साथ जमा क्यों हो गये? ये लोग आखिर जा कहाँ रहे हैं?'

इस पर कलोनेल्ला ने कहा-'अपने-अपने दूतावास में जा रहे हैं आश्रय की खोज में।'

तब तक बन्दूकों की आवाज़ें बहुत तेज हो गयी थीं-भीड़ को भी लहराते हुए जाते देखा, लगातार बहते प्रवाह की तरफ नहीं। भीड़ की दो लहराती कतारों के बीच में मैंने कलोनेल्ला से कहा-'चलिए, अपने घर चलें।' इस पर वह बोला कि आखिर में क्या होता है, यह सब देखे बिना वह घर नहीं जाएगा। मिलिटरी में कहा जाता है कि तर्क करना व्यर्थ है।

घर के दरवाज़े पर ही देखा कि अब्दुर रहमान उपस्थित है। मुझे देखते ही उसकी चिन्ता मिट गयी। घर में घुसते ही उसने सदर दरवाज़ा बन्द कर दिया और उससे सटाकर कई भारी-भारी पत्थर रख दिये। विचक्षण व्यक्ति है। इसी बीच दुर्गरक्षा के जितने इन्तजाम हो सकते थे, उसने वह सब कर दिये। मैंने उससे पूछा-'बेनवा साहेब कहाँ हैं?' उसने उत्तर दिया-'वे सिर्फ़ एक सूटकेस लेकर ताँगे पर बैठ फ्रेंच लिगेशन चले गये हैं।'

उसी समय बन्दूक की आवाज़ के साथ मशीनगन से लगातार गोली चलने की खट-खट आवाज ने योग देना शुरू कर दिया। अब्दुर रहमान चाय लेकर आ गया था। कान लगाकर सुनने के बाद कहने लगा, 'बादशाह के सैनिकों ने गोली चलानी आरम्भ कर दी है। बच्चा को मशीनगन कहाँ से मिलेगी?'

मैंने उससे प्रश्न किया, 'बादशाह के सैनिकों का क्या अब तक आमना-सामना हो गया होगा? तब क्या वह बिना बाधा के काबुल आ गया?'

अब्दुर रहमान ने बताया, 'दरवाज़े पर खड़े होकर मैंने कई लोगों से पूछा था, किन्तु कोई कुछ बता नहीं सका। हो

सकता है बाच्चा बिना किसी बाधा के ही आ गया हो। उसका देश काबुल की उत्तरी दिशा में है, मेरा देश पानशी में है, उससे भी और उत्तर में। उस तरफ अगर किसी बादशाही फौज़ का आना-जाना हुआ तो मैं अपने देश के लोगों, से बाज़ार में जाकर पता लगा लेता था। बादशाही फौज के सभी सिपाही इस पूरब की ओर शिनवारी लोगों के विरुद्ध लड़ने के लिए चल गये हैं अली अहमद खाँ के नेतृत्व में।

गोली-बारी होती रही। शाम हो गयी। अब्दुर रहमान जल्दी-जल्दी मुझे खा-पिलाकर आग की देखरेख करने बैठ गया। उसकी आँखों और चेहरे से मैंने अन्दाज़ लगा लिया कि वह काबुल के लोगों की तरह डरा हुआ नहीं है। उसकी बातचीत से मैं समझ गया कि अगर बाच्चा जीत जाता है तब लूटपाट का राज़ ज़रूर हो जाएगा और उसी को लेकर मेरे मंगल अमंगल के बारे में वह थोड़ा-सा चिन्ताग्रस्त है, किन्तु इन सब चीज़ों को एक ओर ठेलकर उसका कुतूहल और उत्तेजना ऊपर आ रही है- शहर में सरकस आने पर जैसी चंचलता बच्चों में फैल जाती है।

किन्तु, यह बच्चाये सकाओं आखिर है कौन? अब्दुर रहमान से यह मुझे पूछना नहीं पड़ा, उसने स्वयं ही अपनी तरफ से काफ़ी कुछ बताया और उससे मैं समझ गया कि अब्दुर-रहमान बर्फ़ का जौहरी है, निमोनिया का ओझा, रसोई बनाने (पाक विद्या) में भीमसेन, ईंधन में नलराज, वह सब कुछ हो सकता है, किन्तु उसके वोसवेल (डॉ. जॉनसन के जीवनीकार-अनुवादक) होने में अभी भी काफ़ी देरी है। बच्चाये सकाओं के बारे में उसने जो कुछ कहा, उसको आधार बनाकर रोविन हुड जैसे एक बढ़िया चरित्र को खड़ा किया जा सकता है, किन्तु उसे एक जीवित मनुष्य की जीवनी के रूप में नहीं चलाया जा सकता है। यह असम्भव होगा।

अब्दुर रहमान ने जो कुछ बताया उसमें से अगर चौदह आना छोड़ दिया जाए, तो जो शेष अंश रह जाएगा, उससे बाच्चा के जीवन का इतना परिचय मिल सकता है कि वह लगभग तीन सौ डकैतों का सरदार है, उसका निवास स्थान काबुल की उत्तरी दिशा में कुहिस्तान में है, धनी लोगों को लूटकर ग़रीबों में पैसा बाँट देता है, अमानुल्ला जिस समय यूरोप में था, उस समय उसका प्रताप इतना बढ़ गया था कि काबुल-कुहिस्तान के वाणिज्य वाहनों से वह बकायदा टैक्स वसूल किया करता था। अमानुल्ला ने वापस आकर कुहिस्तान के हाट-बाज़ारों में यह नोटिस लगवा दिया कि 'डकैत बाच्चाये सकाओं का सिर चाहिए' इनाम पाँच सौ रुपया।' बाच्चा ने उन इश्तहारों को हटाकर उनके स्थान पर यह नोटिस लगा दिया कि 'काफिर अमानुल्ला का सिर चाहिए, इनाम एक हजार रुपया।''

अब्दुर रहमान ने मुझसे पूछा, 'कर्नल के लड़के ने मुझसे यह पूछा था कि मैं अगर अमानुल्ला का सिर काट दूँ और मेरा भाई अगर बाच्चाये सकाओ का सिर काट दे, तो हम दोनों को मिलाकर कितना रुपया मिलेगा। मैंने जवाब दिया, डेढ़ हजार रुपया। यह सुनकर वह हँसी के मारे लोटपोट हो गया, फिर बोला एक पैसा भी नहीं मिलेगा। समझाकर बताइए तो हुजूर, क्यों नहीं मिलेगा?'

मैंने उसे ढाँढस बँधाते हुए कहा-'कोई जीवित तो रहेगा नहीं, इसलिए तुम्हारा रुपया तो मारा जाएगा, किन्तु कर्नल के लड़के से तुम इतना ज़रूर कहना कि तब अफ़गानिस्तान का सिंहासन तुम्हारे परिवार का हो जाएगा।'

और भी सुनने को मिला कि बाच्चाये सकाओं ने चूँकि दस दिन पहले एकाएक जबलूस-सीरीज के बड़े सरकारी अफ़सर के सामने उपस्थित होकर कुरान छूकर कसम खायी थी कि वह अमानुल्ला की ओर से शिनवारियों के साथ लड़ाई लड़ेगा और इसी कसम के बल पर एक सौ के लगभग राइफलें उस अफ़सर से चालाकी से प्राप्त कर चम्पत हो गया था।

तो फिर क्या उन्हीं बन्दूकों से बाच्चा का दल अमानुल्ला पर आक्रमण कर रहा है? इसमें अचरज़ की क्या बात है? अमानुल्ला जब उपजातियों से उगाहे गये टैक्स से फ़ौज का पोषण कर रहा है और सैनिकों को अपने वश में रखता है तब बाच्चा ही अमानुल्ला से चालाकी से बन्दूकें प्राप्त कर उसी पर आक्रमण क्यों नहीं करेगा?

उस वक़्त रात के बारह बजे थे। अब्दुर रहमान बोला-'आज मैं आपके कमरे में ही सोऊँगा।'

मैं बोला-'तुम तो जब तक कमरा ठण्डा न हो सो ही नहीं पाते हो। मेरी प्राण रक्षा के लिए तुम्हें इतनी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।'

अब्दुर रहमान इस पर कहने लगा 'किन्तु अगर मैं दूसरे कमरे में सोया तो मेरी आफत-विपद की खबर आपको कैसे मिलेगी? मेरी जान को बाबा आपके हाथों नहीं सौंप गये हैं?'

यह बात तो सच है। अब्दुर रहमान मेरी नौकरी करने आ गया है, यह खबर पाकर उसका बूढ़ा बाप गाँव से आकर मुझे उसकी जान का मालिक, उसके स्वभाव और चरित्र की देखरेख करने पाला तथा नाराज़ हो जाने पर उसका खून तक कर देने का अधिकार दे गया था। मैंने बूढ़े से खुश होकर उसे 'सिंह और चूहे' की कहानी सुनायी थी।

किन्तु, अब्दुर रहमान की चालाकी देखकर मैं अवाक् रह गया। इस मामले में वह साक्षात न्यूटन है। एक तरफ एक बक्से में दो छेद कर दो बिल्लियों को घुसाता था, दूसरी तरफ गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का वह आविष्कार कर सकता था, एक तरफ तो अब्दुर रहमान कर्नल के लड़की की पहेली से मूर्ख बन गया था, दूसरी तरफ तर्क-कौशल के द्वारा एक बंगाली को भी वश में कर सकता है। अब्दुर रहमान ने लेटे-लेटे 'कत्ले-आम' अर्थात् सामूहिक रूप से खून-खराबे और लूटपाट का जो वृत्तान्त सुनाया उससे मैं यह समझ गया कि अगर बाच्चाये सकाओ शहर पर कब्जा कर सका, तो फिर उससे कोई बच न सकेगा। चंगेज खाँ, नादिर शाह बादशाह होकर जब यह सब कर सकते हैं, तब बाच्चा डकैत होकर यह सब नहीं करेगा ऐसी आशा नानी माँ की नाटकीय कथा में भी नहीं की जा सकती है।

ईरान, अफ़गानिस्तान, चीन आदि सभ्य देशों में अनेक तरह के विधान प्रचलित हैं। तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ा देना, कमर तक धरती में गाड़ कर चारों तरफ से पत्थर मार-मार कर क्षत-विक्षत कर मार डालना, पेट काटकर आँखों के सामने आँते आदि निकाल कर मारना, जीवित अवस्था में चमड़ा उधेड़ कर मार डालना आदि अनेक तरह की प्रत्यक्ष पद्धतियों के मैंने वृत्तान्त सुने हैं। उनमें से एक है दीवाल के सहारे खड़ा कर दोनों कानों को लम्बी कीलों से दीवाल में ही गाड़ देना। अब्दुर रहमान से मैंने सुना है कि उस हालत में भी मनुष्य सो जाता है और उसका सिर बार-बार इधर-उधर झूलता रहता हैं। उसकी तुलना में राइफल-मशीनगन की आवाज़ और चंगेज खाँ-नादिरशाह की कहानी की याद तो धूल बराबर है। उस दशा में नींद आना न तो एक वीर का लक्षण है और न एक कायर का।

सवेरे-सवेरे डेवढ़ी खोलकर देखता हूँ शहर में मेला जैसी भीड़ है। काबुल शहर के आसपास के गाँवों से अनेक तरह के लोग आकर इकट्ठे हो गये हैं, उन्हें अगर अवसर और सुविधा मिली तो वे लूट-पाट में सहयोग करेंगे। बहुतों के कन्धों पर बन्दूक है, ठण्ड से बचाव के लिए भारी-भारी कुर्तों के अन्दर छुरे और पिस्तौलें हैं, यह भी अनायास समझ में आ जाता है। अब्दुर रहमान के रोकने के बाद भी मैं बाहर निकल पड़ा, इसकी जानकारी करने कि आखिर मामला क्या है

आर्क काबुल शहर का भीतरी बड़ा दुर्ग है, हुमायुँ का जन्म इसी आर्क के भीतर हुआ था। आर्क से बड़ी सड़क निकलकर काबुल नदी के किनारे रुक जाती है, इसी को काबुल का चौरंगी कहा जा सकता है। वहाँ आकर देखता हूँ कि एक बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गयी है। पास जाकर पता चला कि कोई बड़ा राजकर्मचारी-वह अफ़सर भी हो सकता है-काबुल शहर की जनता को बाच्चा के विरुद्ध लड़ने की सलाह और मशविरा दे रहा है।

'ओजार्म सितो आइयाँ'-'उठाओ हथियार, फ्राँस के लोगों, संगठित होओ, दल बनाओ' इस तरह की ओजस्वी फ्राँस जैसी वक्तृता नहीं-उस भद्रपुरुष का मुँह सूखा हुआ था, ओंठ फीके थे और काँप रहे थे, अस्फुट स्वर में वह कुछ कहे जा रहा था, जिसे दस हाथ दूर से सुना भी नहीं जा सकता था।

टीम का कप्तान जैसे प्रेक्टिस के पहले मज़बूत हॉकी स्टिक बाँटता है, ठीक वैसे ही थोक में दाम-दाम, चमकती हुई राइफलें बाँटी जा रही थीं। न कुछ कहना न बताना, जिसकी इच्छा हो वही एक-एक राइफल अपने कन्धे पर झुलाता हुआ इधर-उधर चला जा रहा था। मैंने सिर्फ़ यह लक्षित किया कि उत्तरी दिशा में कोई नहीं गया, हालाँकि लड़ाई हो रही थी उसी दिशा में।

राइफल बाँटना खत्म होते ही वह भद्रपुरुष तत्काल वहाँ से विद्युत गति से चला गया। जिस तरह से विपत्तिजनक अवश्य करणीय कर्त्तव्य को आधे मन से निपटाकर बुरे स्थान से मनुष्य तुरंत खिसक जाता है, वह भद्रपुरुष भी वैसे ही वहाँ से चला गया। तब नज़र में आया कि उसका पहनावा कुर्ता-पाजामा-झब्बा-पगड़ी देरेशी नहीं था। उसके बाद चारों तरफ ताक कर देखा किसी का भी पहनावा देरेशी नहीं और सभी के माथे पर पगड़ी है। मेरा पहनावा था सूट-बूट और सिर पर हेट-मुझे थोड़ी बेचैनी होने लगी।

इसी समय मैंने देखा कि भीड़ को ठेलता हुआ हत-हत करता हुआ मीर असलम बढ़ता आ रहा है। बिना कुछ कहे मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे घर की तरफ खींचता हुआ ले चला-मेरे किसी भी प्रश्न पर मुँह खोले बिना, किसी भी बात पर कान न देते हुए। घर पहुँचते ही हम दो लोगों को देखकर अब्दुर रहमान कुछ कहता हुआ तीन छलाँग में घर से बाहर सड़क पर निकल गया।

मीर असलम ने मुझसे कहना आरम्भ कर दिया। यह तमाशा देखने का वक़्त है और न दिल्लगी करते हुए घूमने-फिरने का मौका और वह भी देरेशी पोशाक पहनकर। इस पर मैंने सिर्फ़ यह कहा कि, 'मुझे यह कैसे पता चलेगा कि देरेशी पहनने का काबुल रद्द हो गया?'

इस पर मीर असलम ने जवाब दिया 'रद्द होने-न-होने का प्रश्न इस समय भाई कौन पूछ रहा है। किसी भी क्षण बाच्चाये सकाओ शहर में घुस सकता है। काबुल के लोग फिर से देरेशी पोशाक फेंककर 'मुसलमान' हो गये हैं। देख नहीं रहे हैं। इस्तोक सरदार खान झब्बा पहनकर राइफल बाँट रहा था।'

मैंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा-'यह कैसी बात है, राज परिवार तक ने भयभीत होकर देरेशी पोशाक छोड़ दी है?' इस पर असलम कहने लगा, 'इसके अलावा और कोई उपाय है, ज़रा बताओ तो? बादशाही फ़ौज तक से सभी सिपाही भाग गये हैं। अब तो अमान उल्ला का एक मात्र भरोसा काबुल शहर के लोग हैं, अगर वे राइफल, बन्दूक लेकर बाच्चा को रोक सकें। उन्हें खुश करने के लिए देरेशी पोशाक पहनने की आज्ञा वापस ले ली गयी है।'

मैंने पूछा- 'किन्तु, आप ही तो कह रहे थे कि राजधानी के सैनिक कभी विद्रोह नहीं करते हैं।'

'विद्रोह तो उन्होंने किया ही नहीं है। वे तो सिर्फ़ भाग गये हैं जिनका घर बहुत दूर है, बर्फ़ पारकर अब जिन सब जगहों तक पहुँचा नहीं जा सकता है, वे सब इसी शहर में गुप्त रूप से रह रहे हैं। जो एक दम छिप नहीं सके, वही लड़ने गये हैं, अन्ततः अमानुल्ला का भरोसा ऐसा ही है। असल में वे लोग देह-अफ़गानान पहाड़ पर बैठकर चन्द्रसूर्य को निशाना बनाकर गोली चला रहे हैं। बाच्चा को अभी भी रोके हुए हैं अमानुल्ला की खास देह रक्षक सेना।'

मैंने थोड़ा घबड़ाकर कहा-'किन्तु मौलाना का निवास स्थान तो देह-अफ़गानान पहाड़ पर ही है। चलो, उसकी कुछ खबर ले आएँ।'

मीर असलम इसके जवाब में कहने लगा-'शान्त हो जाओ, घबड़ाओ नहीं, मैं सवेरे उसी तरफ गया था, किन्तु मौलाना के घर तक नहीं पहुँच सका। वहाँ पर लड़ाई चल रही थी। मैं तो मुल्ला हूँ, पूरा काबुल शहर मुझे पहचानता है। मैं जब वहाँ तक नहीं पहुँच सका, तुम वहाँ तक कैसे जाओगे?'

उसका यह सम्वाद सुनकर मेरे मन से अन्य सब प्रश्न मिट गये। चुपचाप बैठे-बैठे सोचने लगा कि कुछ करने का कोई उपाय है अथवा नहीं। मीर असलम मुझे घर से न निकलने की चेतावनी देकर चला गया। इसी बीच अब्दुर रहमान एक ठौ राइफल लेकर हाज़िर हो गया। उसके चेहरे और आँखों से खुशी उफ़नी पड़ रही थी। कहने लगा -'हुजूर जल्दी से एक कागज़ पर लिख दीजिए कि आपके पास राइफल नहीं है, मैं जाकर एक और ले आऊँ।' मैं उस समय मौलाना के बारे में सोच रहा था, मेरी ओर से कोई प्रत्युत्तर न पाकर अब्दुर रहमान चला गया।

यह सच है कि लूटपाट शुरू नहीं हुई, किन्तु अगर होने लगे तो उसमें कितनी देर होगी? सवेरे का समय जब बाहर निकला, मुझे कहीं कोई पुलिस दिखायी नहीं दी। राजा के देहरक्षक तक बाच्चा को रोकने गये हुए थे, अब शहर की रक्षा कौन करेगा? और यह परिस्थिति अफ़गान इतिहास में कोई नयी चीज़ नहीं थी। बादशाह बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, काबुल शहर में अगर किसी भी समय ज़रा-सी भी अशान्ति फैले आसपास के चोर-उचक्के और डकैत कोने-आँतरे शिकार की खोज में घूमने लगते थे।' मीर असलम ने एक और अच्छी खबर लाकर दी कि बाबर के शासन में काबुल आज की अपेक्षा बहुत अधिक सभ्य था। यह बात असम्भव तो नहीं है क्योंकि बाबर ने लिखा है कि उसे जैसे ही अशान्ति का पूर्वाभास मिलता था वह गली-गली, हर सड़क पर सिपाही लगा दिया करता था। ऐसा अमानुल्ला नहीं कर सका यह तो साफ़ ही नज़र आ रहा था।

हाँ, सान्त्वना की एक बात अवश्य हो रही थी कि काबुल के घरों में लूटपाट करना कोई आसान काम नहीं था। हर घर दुर्ग की तरह बनाया गया था। चारों ओर ऊँची-ऊँची चार दिवारी, वह भी थोड़ी भीतर की ओर आकर तिरछी हो गयी है-इससे सुविधा यह है कि कोई भी उस पर सीढ़ी लगाकर भीतर कूद नहीं सकता है। फिर दीवाल में ऊपर की तरफ छेद हैं, घर की छत पर खड़े होकर दीवाल की आड़ से इन छेदों में राइफल घुसाकर बिना किसी बाधा के बाहर गोली चलायी जा सकती है। घर में घुसने के लिए सिर्फ़ एक बड़ा दरवाज़ा है वह दरवाज़ा भी मज़बूत पकी हुई लकड़ी का बनाया हुआ है, फिर उस दरवाज़े में जगह-जगह लोहे की पत्तियाँ कीलों से जड़ दी गयी हैं।

पूरा बन्दोबस्त सुरक्षित है। दो राइफ़लों के द्वारा पचास डकैतों को आराम से रोके रखा जा सकता है। कारण जो सड़क पर से हमला करेंगे उनके पास कोई छत अथवा अपने को छिपाने का आवरण वगैरह तो होता नहीं है, जिसके नीचे वे अपने को बचाते हुए दीवाल को पार करें या दरवाज़े को जलाने का कोई उपक्रम करें। इसलिए वे लोग ऐसी कोई चेष्टा कर ही नहीं सकते हैं।

किन्तु, प्रश्न यह है कि इस दिसम्बर की ठण्ड में पूरी रात छत के ऊपर टहलते हुए उन पर नज़र कौन रखेगा? अगर बड़ा परिवार हो तो कोई बात नहीं, बारी-बारी से पहरा दिया जा सकता है, किन्तु यहाँ पर भी वही पुरानी समस्या है, 'काका और मैं अकेला, चोर और लाठी के साथ दो लोग'। बर्फ़ तो उससे भी अधिक खराब है। चोर नहीं, ये होंगे डकैत, इनके हाथ में लाठी नहीं, बन्दूक होगी और संख्या में इनके पास अगर नारायणी सेना भी हो तो कोई आपत्ति नहीं है।

इस स्थिति में मौलाना और उनकी युवा पत्नी को किस अक्ल से बुला लाऊँ? किन्तु उस तरफ वे शायद फँसे हुए हैं 'अंडर दी फायर' दो फौजों के बीच में। फिर तय किया कि अधिक सोचने से कोई फायदा नहीं है। मौलाना के मुहल्ले में जाने का जैसे ही सुअवसर मिलेगा, उन्हें सारी बातें समझाकर निर्वाचन का पूरा भार उन्हीं के हाथों सौंप दूँगा।

अब्दुर रहमान ने खबर दी कि बच्चा के डाकुओं ने एरोड्रम पर कब्जा कर लिया है इसलिए अमानुल्ला का हवाई जहाज उड़ नहीं पा रहा है।

इस पर मैंने पूछा किन्तु, अमानुल्ला विदेश से टैंक सजी हुई गाड़ियाँ लाया था उनका क्या हुआ?

इस पर अब्दुर रहमान चुप रह गया।

काबुलवासियों को जो राइफ़लें दी गयी थीं क्या वे लड़ने नहीं जा रहे हैं?

अब्दुर रहमान ने जो कुछ कहा उसका हूबहू अनुवाद बाड्ला कहावत में है। सिर्फ़ इस जगह पर यह कहा जा सकता है कि मामूली आदमी के दो पैर होते हैं फिर भी वह दो राजाओं के झगड़े में जाने को राजी नहीं होता है (कहावत है दो राजाओं के युद्ध में सामान्य मनुष्य मरता है)। इस पर मैंने कहा-' ताज्जुब की बात कह रहे हो अब्दुर रहमान बाच्चाये सकाओ तो एक डकैत है, वह राजा कैसे हो गया?, अब्दुर रहमान ने जो कुछ कहा उसका अर्थ है, बाच्चा को शुक्रवार के दिन मल्लाओं की तरफ से ताज़ मिल गया है, बकायदा (धार्मिक पद्धति से) उसका नाम बादशाह के रूप में घोषित हो गया है, अमानुल्ला काफ़िर है यह फ़तवा जारी हो गया है और बाच्चाये सकाओ ने बादशाह हबीब उल्ला खाँ का नाम धारण कर काबुल शहर से काफ़िर अमानुल्ला को भगाने के लिए जेहाद की घोषणा कर दी है।

यह भाग्य का परिहास हैं। अमानुल्ला के पिता का नाम हबीब उल्ला है। आतंकियों के हाथों मारे गये हबीब उल्ला की अतृप्त प्रेतात्मा क्या अपने नाम के द्वारा प्रतिहिंसा का रक्त ढूँढ़ रही है।

सन्ध्या के समय अब्दुर रहमान अपना शेष बुलेटिन भी मुझे दे गया, अमानुल्ला का हवाई जहाज किसी तरह उड़ गया और उसने बमबारी की है। इसका परिणाम यह हुआ कि बाच्चा की फ़ौज भाग गयी और उसने मील भर दूर अपना तम्बू गाड़ लिया है।

वीरान सड़क। शान्ति के समय ही सड़क भीड़ के कारण गमगमाती रहती थी। मेरी देह सिंहर उठी।

दोनों किनारों की दुकानों के सब पट बन्द। बस्ती के सारे घरों की डेवढ़िया बन्द। वाशिन्दे या तो भाग गये हैं या घुक्की मार कर छिपने की आशा में दीवाल से ही मिल गये हैं, यह समझने का कोई उपाय नहीं है। जिन कुत्ते-बिल्लयों के बिना काबुल के रास्तों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वे सब आखिर कहाँ चले गये? जिस मोड़ पर गली आकर चौड़ी सड़क से मिलती है, वहीं पर दाहिने-बायें थोड़ा झाँककर देखता हूँ, वही एकरस निर्जनता। ये सब गलियाँ कड़ाके की ठण्ड में भी कच्चों- बच्चों की चिल्ल-पों से गुलज़ार रहती थीं, मनुष्य के कानों की तो कोई बात ही नहीं थी, बर्फ़ का ढेर तक आवाज़ से दरक जाता था। इस वक़्त सब कुछ सुनसान, स्तब्ध और नीरव। गलियों की शक्ल तो वैसे ही भद्दी और गन्दी रहती है, इस समय मानवीय आवरण के हट जाने से मानों पूरी तरह दिगम्बर हो जाने से सर्वांग के घाव और फफोले दिखायी देने लगे थे।

शहर का उत्तरी छोर। पर्वतों का शिखर प्रदेश। मौलाना का घर अब भी बहुत दूर हैं। बाच्चा के डकैतों के एक दल ने इधर आक्रमण किया था। वे सब भाग गये हैं या आड़ में बैठे-बैठे शिकार की प्रतीक्षा कर रहे है। इसे कौन बता सकता है?

सहसा दिखायी दिया कि दूर एक राइफलधारी खड़ा है और मेरी ओर बढ़ता आ रहा है। मेरे दायें-बायें ऐसी कोई गली नहीं है जिसमें मैं घुस जाऊँ। खड़ा रहूँ या पीछे लौट पड़ूँ, कोई फायदा नहीं है- मैं उस समय मामूली पक्षी का शिकार करने वाली बन्दूक के निशाने पर था। मैं आगे बढ़ने लगा। लगा जैसे राइफलधारी ने भी मुझे देख लिया, किन्तु मुझे निरस्त्र देखकर कन्धे पर लटकती राइफल को हाथ में लेने की उसने ज़रूरत नहीं समझी। दोनों आमने-सामने आ गये, उसने एक बार भी मेरी ओर ताका नहीं। उसका चेहरा देखकर मुझे लगा, वह गहरी चिन्तामग्न है। तो क्या मेरी ही तरह वह किसी को ढूँढ़ने गया था और निराश होकर लौट रहा है? कौन जाने, क्या बात है?

मौलाना का घर गली के भीतर है। वहाँ पहुँचने तक रास्ते में कोई दूसरा प्राणी नहीं मिला' किन्तु अब एक नयी आफ़त

आ गयी, दरवाज़े की साँकल बजाते-बजाते हाथ में ठेकें पड़ गयीं, कोई उत्तर नहीं मिला। क्या मौलाना के परिवार का कोई नहीं है? अथवा उस जाड़े में दरवाज़ा-जंगल सब कुछ बन्द होने के कारण साँकल का शब्द, मेरी तेज़ आवाज़ कुछ भी उनके कानों तक नहीं पहुँच रही हैं। कितनी देर तक मैं चीख-पुकार करता रहा। कह नहीं सकता। सहसा मेरे मन में और एक चिन्ता हो आयी। मौलाना कहीं गुम हो गये हों और उनकी पत्नी सिटकनी लगाये घर में बैठी हो, जब तक स्वामी की आवाज़ न सुन ले दरवाज़ा नहीं खोलेगी अथवा अकेली बैठे-बैठे बेहोश हो गयीं हो? मेरे गले से भर्रायी हुई चीत्कार निकलने लगी। अपना नाम लेकर अपना परिचय देते हुए चिल्लाने लगा। ऐसा लगने लगा, जैसे यह मेरी आवाज़ नहीं है, यह मेरा नाम भी नहीं है।

सहसा मुझे 'म्याउँ' शब्द सुनने को मिला। जियाउद्दीन की बिल्ली थी और उसके साथ-ही-साथ दरवाजा खुल गया। सामने मौलाना खड़े थे। आँखें फूली हुई भर्रायी हुईं थीं। आवाज़ और भी बैठ गयी थी। ऐसा लगा जैसे दो दिन में दस वर्ष बूढ़े हो गये हों।

बताने लगे-परसों जब पहली बार दंगा-फ़साद शुरू हुआ तो नौकर को ताँगा लाने के लिए भेजा था, वह अब तक लौटा नहीं है। मुहल्ले के और सब लोग भाग गये हैं। इसी बीच बाच्चा के सिपाही इस रास्ते से उतरकर फिर यहाँ से हट गये हैं, पति-पत्नी अल्ला के हाथों अपनी जान सौंपकर डकैतों के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

किन्तु यह सब तो हो गया। अब चलो। इस निर्जन, भूतहे मुहल्ले में अब एक भी पल रहना ठीक नहीं है। इस पर मौलाना यह समझ गया कि यह ख़तरा मामूली नहीं है। उनकी स्त्री के बच्चा होने वाला हैं, अगर मेरे घर तक पैदल चलने की हालत होती तो वे बहुत पहले ही चले आते।

तब फिर मैंने कहा, 'अब और कुछ नहीं कहूँगा। ताँगे की तलाश में जा रहा हूँ।'

शहर में लौटकर पूरे दो घण्टे तक इस अस्तबल, वह बग्घीखाना खोज़ता रहा था। कहीं पर एक घोड़ा भी देखने को नहीं मिला। पता चला डकैतों एवं रिक्यूज़िशन के भय से सभी ताँगे वाले ताँगा, इक्का छोड़कर घोड़ा लेकर भाग गये हैं।

अब क्या उपाय है? एकमात्र उपाय अब्दुर रहमान का शारीरिक बल है। वह मौलाना की बहू को अपनी कौरी और कन्धे पर घर तक जरूर लिये आएगा, किन्तु-ना। इसमें कोई किन्तु, परन्तु नहीं है। उसे राज़ी कराना ही पड़ेगा।

घर लौटकर जो नयनाभिराम दृश्य देखा, वैसा जीवन में कभी नहीं देखा था। मेरा आँगन मानो शान्ति निकेतन की लाइब्रेरी के सामने का गौर प्रांगण हो। बेनवा साहेब और मौलाना रोज़ की तरह खड़े-खड़े गपशप कर रहे थे। अब्दुर रहमान ने बड़े आदर से गला खखारते हुए मुझे समझा दिया कि पूरा सामान बाँध-बूँध के लाया हूँ, भीतर मौलनी साहब की बहू है।'

ज़ियाउद्दीन ने यह बताया कि मेरे चले आने के घण्टे भर बाद ही चूँकि उनका नौकर ताँगा लेकर आ गया। मुझे इतनी अधिक खुशी हुई कि मैं उससे कुछ पूछना ही भूल गया कि इन आफत के दिनों में तुम्हें ताँगा कहाँ से मिल गया?

इसके बाद मैंने बेनवा साहब की तरफ ताक-कर देखा, उनके चेहरे पर दो दिन की बिना बनी दाढ़ी थी, कोट-पतलून दोनों में सिलवटें पड़ी हुई थीं, ऐसा लगता था जैसे उन्होंने मुँह भी न धोया हो। यह भद्रपुरुष फ्राँसीसी है, हमेशा फिट फाट रहता था, शान्तिनिकेतन के सभी लोगों को इसका पता था कि विदेशी लोगों में यही अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो एक बंगाली बाबू की तरह फिटफाट तरीके से चुन्नटदार धोती पहनना जानते थे और सिर्फ़ यही नहीं, बायें हाथ से कुचमाई हुई धोती के छोर को खींच थोड़ा जरूरत भर ऊँचा उठाकर हन-हन कर चल भी सकते थे।

कहने लगे परसों ताँगा फ्राँसीसी लीगेशन में नहीं आ सका। लीगेशन शहर की उत्तरी दिशा में होने की वज़ह से पागल जनता की विपरीत दिशा में थोड़ी गाड़ी चलाने के बाद गाड़ी और गाड़ीवान दोनों ही दिशा भूल गये, अन्त में गाड़ीवान साहब की बात पर ध्यान न देकर सीधे गाँव के रास्ते पर पूरब की ओर तीन मील दूर अपने गाँव ले जाकर उपस्थित हो गया। साहब दो रातें और एक दिन उस गरीब किसान के पशु बाँधने के कमरे के अलावा और कहाँ छिपकर अपना समय बिताते। हर दो-चार घण्टे के बाद गाड़ीवान और उसके भाई-बन्द अपने गले पर हाथ फेरकर इशारे से उन्हें यह समझाते रहे कि काबुल शहर के सभी फिरंगियों की हत्या कर दी गयी हैं। बेनवा साहब एक अच्छे साहित्यकार हैं, इसीलिए वे यह वृत्तान्त बड़ी रसदार भंगिमा में सुना रहे थे, अपने आवेग, चिन्ता सभी को ढ़ँक कर किन्तु उनका चेहरा देखकर मैं यह समझ गया कि १९१४-१८ ईस्वी के विश्वयुद्ध में उन्हें जो अनुभव हुआ था, उसकी तुलना में इस अनुभव का मूल्य वे कुछ कम नहीं समझ रहे थे।

मौलाना कहने लगे, साहब, बहुत बच गये। गाँव के लोग आपका गला काटकर गाज़ी होने का लोभ संवरण कर सके, यही हम लोगों का परम सौभाग्य है।'

इस पर बेनवा कहने लगे, 'इसका प्रयास नहीं किया गया था, यह मैं नहीं कह सकता। जब देखता था कि दो-तीन लोग मिलकर फुसफुसाकर कुछ बातें कर रहे हैं, तभी मुझे सन्देह होता था, शायद मुझको लेकर यह बातचीत हो रही है। पर मेरा विश्वास है मुझे अपने घर में आश्रय देने वाला एक अतिथि के रूप में अपने घर ले गया था, इसलिए मुझे बचाना उसने अपना कर्तव्य समझा और वह पाँच लोगों को मुझे मारने से रोके रहा ।'

इस पर मैं बोला-'मैंने काबुल के गाँव में एक बरस बिताया है, मेरा विश्वास है, काबुल घाटी के सामान्य किसान मज़दूर अत्यन्त निरीह और भोले-भाले हैं, जहाँ तक सम्भव हो वे खूनखराबा करना नहीं चाहते हैं।'

बेनवा साहब कपड़े बदलकर अपने लीगेशन में चले गये।

फिर मैंने मौलाना से कहा-'देखा' फ्राँसीसी, जर्मन, रूस, तुर्क, ईरानी, इतालवी सभी अपने-अपने लीगेशन में जाकर आश्रय ले रहे हैं। सिर्फ़ तुम्हारे और मेरे जाने के लिए कहीं कोई जगह नहीं है।'

मौलाना कहने लगे, 'ब्रिटिश लीगेशन ब्रिटिशों के लिए है, यह बाड्ला कहावत है। यद्यपि यह लीगेशन बनी भारत के पैसे से है और इसका खर्चा भी भारतीय पैसे से चलता है, 'इस्तोक हिज़ ब्रिटानिक मेजेस्टिस, मिनिस्टर, कर्नल, सर फ्राँसिस होमफ़ीज भारत सरकार का नमक खाते हैं।'

मैं बोला, ' कितना नमक, महीने में तीन-चार हज़ार रुपये का। दोनों लोगों ने एक वाक्य में स्वीकार किया कि गुलाम देश का अपमान, लाँछना, बिना विदेश गये अच्छी तरह से समझ में नहीं आती है। जर्मन कवि गेटे ने कहा है, जो कभी विदेश नहीं गया वह अपने स्वदेश के स्वरूप को कभी नहीं पहचान पाता। चार दिन अराजकता में बीते। कनफ्यूशियस ने कहा है, 'बाघ से भी भयंकर एक देश होता है। 'मैंने मन ही मन कहा' उससे भी भयंकर जब होता है जब एक डाकू राजा का वेश धारण कर लेता है।'

अमानुल्ला आर्क किले के भीतर छिपा बैठा है। उसके चेला-चपाटे शहर के लोगों को बाच्चा के साथ लड़ाई करने के लिए मना रहे हैं। पर उनकी बात पर कोई कान नहीं दे रहा हैं शहर चोर-डकैतों से भरा हुआ है। जो सब घर पक्की तरह तैयार नहीं हुए हैं, मज़बूत उपादानों से जिन्हें नहीं बनाया गया है, उनको लूटा जा रहा है। सुनसान, निर्जन सड़क पर जाने की हिम्मत नहीं पड़ रही है, एक ओवरकोट मिल जाने के लालच में ठण्ड से व्याकुल, धूर्त डकैत सब कुछ करने को आमादा हैं। रूपयों की अपेक्षा डकैतों का लालच उसी पर सबसे अधिक हैं। कारण इस समय रुपयों से भी कोई चीज़ खरीदी नहीं जा सकती है। हाट लग नहीं रही है, इसलिए दूध, मांस, आलू, प्याज कुछ भी खरीदा नहीं

जा पा रहा है। गेहूँ-दाल के मोदी भी चुप करके होकर बैठे हैं, दाम बढ़ने की आशा में- काबुल शहर बाक़ी दुनिया से पूरी तरह कटा हुआ है।

गोरे लोग सड़क पर नहीं निकल रहे हैं, केवल रूसी पायलट निर्भय होकर शहर में इकट्ठी भीड़भाड़ को ठेलते हुए हवाई पट्टी पर आ-जा रहे हैं। उनके हाथ में राइफल तक नहीं है, कमर में सिर्फ़ एक पिस्तौल लटक रही हैं।

सबसे बढ़कर अचरज हुआ खास काबुलवासियों का व्यवहार देखकर। कन्धे पर राइफल लटक रही है, कमर में बुलेट की बेल्ट बँधी हुई है और किसी ने उसे आड़े-तिरछे रूप में जनेऊ की तरह अपनी छाती पर पहन रखा है और किसी ने उसे बाजूबन्द की तरह लपेट रखा है और किसी ने अपनी कमर में करधनी की तरह पहन रखा है, किसी ने उसे पैरों में लपेट रखा है।

जिन अस्त्रों को विद्रोही, हत्यारे, डाकुओं के विरुद्ध प्रयोग करने के लिए दीन-हीन, अफ़गानिस्तान ने भूखे रहकर खरीदा था, वह आज एक आभूषण की तरह प्रयुक्त हो रहे हैं।

किन्तु, बड़ा अचरज है नगर की रक्षा करने में इन्हें कोई उत्साह नहीं है? दस्यु जीत जाएँ, इन्हें लूटे जाने में कोई डर नहीं है, प्रियजनों की अपमृत्यु की आशंका के बारे में ये लोग एकदम उदासीन हैं, सब जगह व्याप्त अस्थिरता से थे रंगमात्र भी विचलित नहीं है।

मीर असलम ने मेरे कान में धीरे-धीरे कहा - ''उन्हें खबर मिली है कि काबुल के मुहल्लों के बड़े-बड़े सरदारों और बाच्चा में भीतर-ही-भीतर गुप्त समझौता हो चुका है कि काबुल के लोग यदि अमानुल्ला की तरफ से नहीं लड़ते हैं तो बाच्चा इस शहर में लूट-पाट नहीं करेगा।

इन बातों ने ईसामसीह की अँगुलियों के स्पर्श से जैसे अन्धे लोगों को दृष्टि मिल गयी थी, वैसे ही मेरा असाम रूपी अन्धेरा दूर हो गया। मीर असलम की खबर को सत्य मान लेने पर काबुलवासियों की निर्विकल्प समाधि का चूड़ान्त समाधान हो जाता है। किन्तु हायरे! अस्त्रबल से रहित, अर्थ शक्ति से दीन, जिसे राजा ने शुद्ध साहस के बल पर विश्व सम्राट अंग्रेज़ों को पराजित कर देश की स्वाधीनता प्राप्त की थी, अनुर्वर, अनुन्नता देश को जिस रूप में प्रगति पर ले जाने के लिए अपनी सुख शान्ति छोड़ दी थी, विश्व के सामने जिस राजा ने अपने देश का मुख उज्ज्वल किया था, उसे छोड़कर काबुल के लोगों ने वरण कर लिया एक घृणित, नीच दस्युओं? इसी को क्या कृतज्ञता कहते हैं, नमक हलाली कहते हैं?

तो क्या अमानुल्ला काफिर है?

मीर असलम ने गरजते हुए कहा, 'आलवत् ना, (अर्थात् बिल्कुल नहीं) जिस राजा ने प्रजा के धर्मकर्म में हस्तक्षेप न किया हो, नमाज़ और रोज़े को जिसने निषिद्ध न किया हो, हज़ जाने वालों को ज़कात देने में जिसने बाधा न डाली हो, उसके खिलाफ विद्रोह करना महापाप है, उसके दुश्मन का साथ देना तो और भी महापाप है, दूसरी तरफ बाच्चाये सकाओ खूनी डकैत, वाजिर-उल-कत्ल, हत्या के योग्य है। वह किसी भी काल में आमिर-उल्ला-मूमिनीनर (बादशाह) नहीं हो सकता है।''

मीर असलम का अनेक शास्त्रों में पाण्डित्य है। मेरी विवेक-बुद्धि ने भी उसकी बात का समर्थन किया। फिर भी मैंने कहा-किन्तु, जनाब, आप कब से अमानुल्ला के खैरख्वाह हो गये?'

मीर असलम ने और भी ज़ोर की हुंकार के साथ कहा-मैंने जो कुछ कहा पूरी तरह नीति वाचक हैं। मैं कह रहा हूँ अमानुल्ला काफ़िर है ही नहीं। उसके खिलाफ़ विद्रोह नाजायज़ अर्थात् शास्त्रविरुद्ध है।

नास्तिक रूस के दूतावास जाकर सुनने को मिला कि उन लोगों का भी यही मत था। देमिदोफ से मैंने कहा- 'रिवोल्यूशन की शुरुआत हो गयी है'। उन्होंने कहा, 'नहीं रिवेलियन अर्थात् यह तो विद्रोह है।' तब मैंने पूछा दोनों में अन्तर कितना है?' उसने कहा- 'रिवोल्यूशन प्रगति चाहता है और रिवेलियन ये तो प्रगति विरोधी होते हैं।'

मन में सोचा कि मीर असलम को यह खबर देने पर वह खुश होगा। उस वृद्ध ने इसके विपरीत गम्भीर होकर कहा-'समरकन्द- बुखारा के मुसलमानों को चाहिए कि वे रूस के खिलाफ़ विद्रोह कर दें। रूस की सरकार उन लोगों को मक्का हज करने नहीं जाने देती है।'

बिना वजह जैसे छोटे लाट का शीघ्र आगमन होने वाला है, यह खबर सुनकर जैसे गाँव के पण्डित हक्के-बक्के रह जाते हैं, वैसे ही मौलाना और मैं एक-दूसरे की तरफ़ अचरज भरी निगाहें से ताकने लगे। मौलाना की बहू तो बड़े लाट को आमन्त्रित कर बैठी हुई थी, वे किस गाड़ी से, किस दिन, किस कायदे के अनुसार आ रहे हैं, उनकी कौन अभ्यर्थना करने जा रहा है, उनके आने पर उन्हें कहाँ ठहराया जाएगा, उन्हें क्या खिलाया-पहनाया जाएगा, इस सम्बन्ध में किसी तरह के अनुभव अर्जित करने का सुयोग हम लोगों में से किसी का कभी हुआ ही नहीं था- मौलाना की बहू भी इस बारे में कुछ नहीं जानती थी, उसके तो यह पहली बार बच्चा हो रहा था।

सुना है अफगान महिलाएँ खेत का काम कुछ क्षण के लिए छोड़कर किसी वृक्ष की आड़ में जाकर सन्तान को जन्म दे आती हैं- आसन्न प्रसवा यदि कोई स्त्री हो तो उसके लिए अफगान वण्यवाहिनी भी प्रतीक्षा नहीं करती है, वह बच्चे को गोद में लेकर एक पग चलकर पण्यवाहिनी में फिर योग देने लगती है। मौलाना की बहू मध्यवित्त परिवार की लड़की है, उससे इस तरह की कसरत की उम्मीद करना अन्याय है। उसके लक्षण देखकर हम लोग घबड़ा गये। वह न तो कुछ खा पाती है, न रात में उसे नींद आती है, सारे दिन निंदियायी आँखें, मौलाना को एक मिनट के लिए भी उन आँखों की आड़ में नहीं होने देना चाहती है।

दूसरे के प्राण लेना एक व्यवसाय होने पर भी अपने प्राण देने के समय सभी मनुष्यों का एक समान आचरण होता हैं। डॉक्टर किसी भी तरह अपना घर छोड़कर रास्ते में निकलने को राजी नहीं हुआ। उस दिन उसे मनाने की जितनी साधना की थी, यदि उससे आधी भी खुशामद कर ली, लँगड़ी लड़की के लिए की जाती तो बिना दहेज के अच्छा नटवर दूल्हा मिल जाता। घर वापस आते-आते उस दिन मन-ही-मन प्रतिज्ञा की थी कि मौलाना के यदि बेटा हुआ तो उसे डॉक्टरी पढ़ाऊँ-श्मशान वैराग्य की तरह यह हुई मेरी श्मशान प्रतिज्ञा।

सिविल सर्जन जिस तरह से ग़रीबी से ग़रीब रोगी की आर्थिक शक्ति कितनी है, इस तरह भूनिक्षेप बिना किये अढ़ाई गज लम्बे प्रेस्किप्शन को झाड़ता चला जाता है, ठीक उसी तरह काबुली डॉक्टर पथ्य की फेहरिस्त को दुहराता चला गया। सुनते ही डर कर मौलाना और मैंने खाट के नीचे आश्रय ले लिया। चार दिन से खा रहा हूँ, रोटी, दाल और बिना दूध की चाय- इस आफत के समय स्वयं अमानुल्ला भी वह सब शौकिया पथ्य का इन्तज़ाम नहीं कर पाएगा। दूध! अंगूर!! अण्डा!!! । कह रहे हैं? आप पागल हैं या आपका दिमाग़ खराब हो गया है?

अब्दुर रहमान ने विनयपूर्वक निवेदन किया, शाम के समय अगर उसे एक राइफल और दो घण्टे की छुट्टी दी जाए तो वह कुछ प्रयास करने को राजी है। डकैतों की घटना पर भी मेरा कोई आब्जेक्शन नहीं है- यस्मिन देशाचार, जिस देश में जैसी प्रथा हो, फिर इसके ऊपर प्रवास में तो कोई नियम होता ही नहीं है। किन्तु-सभी डकैत सदैव अपने घर तो वापस आते नहीं हैं। अगर अब्दुर रहमान घर न लौटा? तब यह घर तो गतिहीन हलचल रहित हो जाएगा।

अब भी बीच-बीच में सपना देखने लगता हूँ बाच्चाये सकाओ जैसे डॉक्टर का वेश धारण कर स्टेथोस्कोप गले में लटकाये हुए, नंगी तलवार हाथ में लिये मुझसे कह रहा है, या तो अंगूर दीजिए, नहीं तो अपना सिर दीजिए।'

एक दिन चार दिन का दैनिक बुलेटिन का एक विशेष संस्करण अब्दुर रहमान ने खुलासा कर जब खबर दी कि बाच्चा दसेक मील हट गया है, दसेक दिन के भीतर शहर के स्कूल-कॉलेज, आफिस-अदालत सब कुछ खुल गये।

अमानुल्ला को साँस लेने की फुरसत मिल गयी, किन्तु बाच्चा को भगा लेने के बाद भी उसने भीतर ही भीतर हार मान ली हैं। देशी कानून हटा दिया गया है, लड़कियों का स्कूल बन्द कर दिया गया है और रास्तों से फ्रोक-ब्लाऊज पूरी तरह से अदृश्य हो गये हैं। जो सब स्त्रियाँ सड़क पर निकलीं, वे पहने हुए हैं वही तम्बू जैसा बुरका। हेट पहनने का साहस स्त्री-पुरुष किसी में भी नहीं है-या तो पगड़ी या पयामी की टोपी। स्कूल-कॉलेज के जो सब छात्र इस डाँवाडोल स्थिति के बाज़ार में भाग गये थे, उन्हें पकड़ कर लाने का कोई प्रयास नहीं किया गया-करने का उपाय भी नहीं था, कारण पुलिस दल उस समय भी फरार था, आसामी को कौन पकड़ेगा।

मौलाना कहने लगे, 'कुल मिलाकर अगर देखा जाए तो कहना पड़ेगा कि अच्छा ही हुआ। अमानुल्ला अगर इस अभियान में बच जाता है, तब वह यह समझ जाएगा कि देरेशी लादना, पर्दा उठा देना और वृहस्पतिवार को छुट्टी का दिन घोषित कर देना ये सब चीजें एक अविकसित देश के लिए आवश्यक संस्कार नहीं हैं। बाकी बची दो चीजें एक शिक्षा का विस्तार और उद्योग व्यापार को बढ़ाना तो इन दो के विरुद्ध कभी किसी ने कोई आवाज़ नहीं उठायी। विपत्ति गुज़र जाने के बाद यदि अमानुल्ला इन्हीं दो वस्तुओं को लेकर उनके प्रसार में लग जाता है तो सब कुछ अपने आप ही ठीक हो जाएगा।'

मीर असलम ने आकर बताया, 'हालत देखकर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता है। शिनवारी लोग आज भी मरने-मारने पर उतारू हैं। अमानुल्ला के साथ सन्धि की अब भी बातचीत चल रही है। उसमें दो शर्तें है, तुर्की से काबुल की लड़कियों को वापस लाना और रानी सुरैया को तलाक देना। चूँकि रानी विदेशों में पर पुरुषों से अबाध रूप से घुलती-मिलती रही है, इसलिए उसने मान-सम्मान और अपनी इज्ज़त खोकर आ गयी हैं।'

हम लोगों ने कहा, 'यह कैसी बात है? पूरी दुनिया में कहीं भी तो रानी सुरैया के बारे में इस तरह का प्रवाद फैला नहीं है। भारतवर्ष के लोग पर्दा मानते हैं, उन लोगों तक ने रानी सुरैया की प्रशंसा ही की है। शिनवारियों को यह झूठी खबर कहाँ से मिली और वे किस बेशर्मी से इसे फैला रहे हैं।'

मीर असलम ने कहा- 'शिनवारी स्त्रियाँ बिना पर्दे के खेतों में काम करती हैं किन्तु पर पुरुष की ओर कनखियों से यदि देख भी लें तो उनकी क्या दशा होती है, यह बात तो सभी जानते हैं। अमानुल्ला भी जानता है। फिर भी ज़रा यह कहकर तो हम देखें कि वह किस अक्ल से सुरैया को वॉल नाच में ले गया? जलालाबाद जैसे जंगली शहर में भी दो-एक विदेशी अखबार आते हैं-उनमें एक तस्वीर निकली थी कि रानी परपुरुष का गला पकड़े खड़ी हुई हैं, पूरा मामला कितना प्राणघातक था। इसे अमानुल्ला आज तक ठीक-ठीक नहीं समझ सका है। पर उसकी माँ समझ गयी थी, उसने अमानुल्ला पर दबाव डाला कि सुरैया को तलाक दे दो।'

रानी माँ के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा थी। उल्लसित होकर इसलिए मैंने कहा- ''क्या रानी माँ पुनः महफिल में आने लगी हैं? फिर अब चिन्ता की कोई बात नहीं है, शिनवारी, खुगियानी, बाच्चा कच्चा इन सबकी वे तीन दिन में चटनी बना देंगी।'

इस पर मीर असलम कहने लगा-'किन्तु अमानुल्ला उनकी सिखावन पर कान ही नहीं दे रहा है।'

यह सुनकर मैं बहुत निराश हो गया। जाते समय मीर असलम कहने लाग, 'तुम्हें एक पुरानी फ़ारसी कहावत सिखाये जा रहा हूँ। राज्य चलाना, शेर की पीठ पर सवार होकर जीवन बिताने की तरह होता हैं। सोच-समझकर मैंने कहा-''जीवन बिताना'- अर्थात् उस सिंह की पीठ से एक क्षण के लिए भी नीचे उतरने का कोई उपाय नहीं होता हैं

जब तक तुम सिंह की पीठ के ऊपर हो, तब तक वह तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता है, किन्तु तुम्हें भी रात दिन सजग रहना पड़ेगा। अमानुल्ला सन्धि की चर्चा कर रहा है, अर्थात् सिंह की पीठ से उतरकर दो पल जीना चाहता है- यह होने की कोई गुंजाइश नहीं है। शिनवारी सिंह इस बार अमानुल्ला को निगल जाएगा।'

मैंने चुप रहकर कुछ क्षण विचार किया फिर बोला, 'किन्तु मुझे लगता है इस कहावत की जन्मभूमि यह देश नहीं है। भारतवर्ष में ही तख्त को 'सिंहासन'-सिंह का आसन-कहा जाता है, अफ़गानिस्तान में क्या सिंह पाया जाता है?'

इसी समय अब्दुर रहमान ने आकर खबर दी कि बगल के घर के कर्नल मिलने आए हुए हैं। हालाँकि वे पड़ोसी हैं, फिर भी उनके साथ मेरा परिचय नहीं हुआ है। खातिर जतन करने के बाद जैसे ही उन्हें आदर से बैठाया, वे कहने लगे। युद्ध पर जाने से पहले वे मेरा आशीर्वाद और मंगल कामनाएँ लेने आये हैं। मीर असलम ने तुरन्त हाथ उठाकर दुआ (आशीर्वाद) पढ़ना प्रारम्भ कर दिया, हमने भी दो हाथ उठाकर आमेन-आमेन (तथास्तु, तथास्तु) कहा। अब्दुर रहमान तमाखू लेकर आ गया था, उसने भी धरती पर बैठकर दुआ माँगने में सहयोग किया।

इसके बाद कर्नल चला गया। मीर असलम कहने लगा-'पाड़ा-पड़ोसियों से आशीर्वाद और क्षमा आदि माँग कर युद्ध पर जाना यह अफ़गानिस्तान का एक रिवाज़ है।'

आक्रमण के पहले धक्का में बाच्चा काबुल शहर के उत्तरी छोर में स्थित शहर-आरा में घुसने में सफल हो गया था। वहाँ पर हबीबिया स्कूल था। डकैतों का अग्रिम हिस्सा-बाङ्ला लोकगीतों में जिसे 'अगड़म-बगड़म' कहते हैं, उन्हीं को 'अग्रडोम' या वेनगार्ड कहा जाता है। उन्होंने स्कूल हॉस्टल में पहली रात बितायी थी। अधिकांश लड़के भय के कारण भाग गये थे, सिर्फ़ बाच्चा की जन्मभूमि कुहिस्तान के छात्र 'देश का भाई शकुर मुहम्मद' कहावत के अनुसार अपने देश भाई की प्रतीक्षा में आग जलाकर तैयार बैठे हुए थे। डकैतों ने होस्टल में चावल-घी लेकर पुलाव पकाया, स्कूल के बेंच, टेबिल, स्टाइन्गस वोलेस्टन के बनाये मोटे-मोटे कोशों, बच्चों की स्कूली पाठ्य पुस्तकें, कॉपी आदि जलाकर चूल्हा गरम किया। फिर भी जो चीजें उन्हें सबसे ज़्यादा पसन्द आयीं वे थीं केम्बिस और लकड़ी से बने रोल किये हुए मानचित्र। उन्हीं को उन्होंने सबसे ज्यादा जला डाला।

अमानुल्ला 'काफ़िर' है, कॉपी-किताबें काफ़िर की हैं, कुर्सी-टेबिल भी काफ़िर से सम्बन्धित हैं, ये सब उन्हीं का सामान है, इन सबको जलाकर उन्हें जन्नत में पुण्यलाभ होगा।

डकैतों में भी धर्मज्ञान होता है। होस्टल के लड़कों ने यद्यपि 'काफ़िर' अमानुल्ला की तालीम पायी थी, इसलिए वे भी काफ़िर हो गये थे, फिर भी उन लोगों ने डकैतों को भूखा नहीं रखा था। सिर्फ़ खाते समय थोड़े अतिरिक्त उत्साह की चोट से उनकी पीठ पर दो-चार लातें, चाँटे मारे थे। बाच्चा का दूरसम्बन्धी एक लड़का उसका भाँजा होस्टल में रहता था, उसने मामा की तरफ से थोड़ा बीच-बचाव किया था, फिर भी बाच्चा के पलायन के समय स्थिति की विवेचना कर 'काफ़िर तालीम' त्याग कर उसने भागकर 'गाजित्व' प्राप्त किया था।

पर वापस आते समय देखा छोटे-छोटे बच्चे रास्ते से बुलेट के खोसा बटोर रहे हैं।

खबर मिली, ब्रिटिश राजदूत सर फ्राँसिस हम्फ्रीज के मत से काबुल अब विदेशियों के लिए सुरक्षित नहीं रहा है। इसीलिए उन्होंने अमान उल्ला से भेंटकर उन्हें इस देश से सुरक्षित भेजने की व्यवस्था करने के लिए कहा है। अमानुल्ला ने बड़ी सहजता से इसमें सहमति व्यक्त की, वे नहीं चाहते कि विदेशी लोग अफ़गानिस्तान की इस घरेलू समस्या में उलझकर अपने प्राण दें। काबुल चूँकि उस समय पूरी दुनिया से कटा हुआ था, इसलिए हवाई जहाज का इन्तजाम किया गया था।

जहाज आ गया। पहले स्त्रियों की बारी थी। फ्राँसीसी चली गयीं, जर्मन चली गयी। पोलैण्ड़ को चली गयी, एक वाक्य

में दुनिया की अनेक जातियों की अनेक स्त्रियाँ चली गयीं, सिर्फ़ भारतीय स्त्रियों के बारे में किसी ने कुछ भी नहीं पूछा। सारे जहाज भारतीय पैसे से खरीदे गये थे, पाइलटों को भारत की ओर से तनख्वाह मिलती थी। हालाँकि सबसे ज़्यादा विपदाग्रस्त भारतीय स्त्रियाँ ही थीं- अन्य सब स्त्रियों के लिए अपने-अपने लीगेशन का आश्रय था, किन्तु भारतीयों का 'देश' कौन-सा था? प्रोफ़ेसर, दुकानदार, ड्राइवर की स्त्रियों को ब्रिटिश लीगेशन में स्थान देकर सर फ्राँसिस विदेशी समाज में अपना मुँह कैसे दिखाएँगें? ब्राह्मण की जाति चली जाए तो उसका एक प्रायश्चित है और मुसलमानों की जाति कभी जाती ही नहीं है। किन्तु अंग्रेज़ों में नस्ल भेद बड़ी भयंकर वस्तु है। उनके देश में जिस तरह से कागज पर कलमबद्ध, कानून से नियन्त्रित संविधान नहीं है, ठीक वैसे ही उनकी जाति भेद प्रथा भी किसी बाइबिल की प्रेयर बुक में आप्त वाक्य के रूप में लिपिबद्ध नहीं की गयी है। हालाँकि वह जातिभेद रवीन्द्रनाथ के मृत्यु के कानमलाई की तरह है, यह कान मलना न तो छोड़ा जा सकता है और न उससे भागा ही जा सकता है, उसके विरुद्ध कोई नालिश भी नहीं की जा सकती है, उसके बारे में न्यायालय में कोई विचार भी नहीं है। दर्शन और गणित के सुपण्डित ही चाहे हों, मार्क्सवाद के दिग्विजयी कौटिल्य ही चाहे हों अथवा कोयलों की खान के मजदूर ही हों, इस कानमलाई को स्वीकार करते-करते हाउस ऑफ लॉर्डस में न पहुँच जाने तक दर्शन मिथ्या है, मार्क्सवाद एक भूल है, श्रमिक संघ की ओर से दिया गया सम्मान व्यर्थ है जो इस कान मलने को स्वीकार नहीं करता है, वह अंग्रेज़ों के सामने आधा पागल हैं। उसका नाम है बर्नाड शॉ।

क्या मैं अतिशयोक्ति कर रहा हूँ? ज़रा भी नहीं। धान कूटते हुए शिव के गीत? वह भी नहीं। विप्लव, विद्रोह, रक्तपात, राहजनी का अर्थ मात्र ही है रूद्र का ताण्डव नृत्य। इतने समय तक वही बात हो रही थी, अब तो उस प्रसंग का नंदी-भृंगी संवाद का दौर है।

अँग्रेज़ के इस अभिजात्य में, इस 'स्नाबरी' (दम्भ) को छोड़कर ब्रिटिश राजदूत की मनोवृत्ति का युक्तियुक्त अर्थ किया ही नहीं जा सकता है। ब्रिटिश लीगेशन का जो आकार है, उसमें काबुल के शेष रह गये सभी दूतावास बिना प्रयास के समा सकते हैं। अगर उसे एक छोटा-मोटा शहर कहा जाए तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। पानी का अपना ट्यूबवेल, अपना बिजली घर, यहाँ तक कि फायर ब्रिगेड तक मौजूद है। शीतकाल में साहब सूबेदारों के खेल-कूद के लिए, चाय-बागान के पत्ते सुखाने के लिए जो विशाल कमरा चाहिए, उसी के भीतर आश्रय चाहने वाली समस्त भारतीय स्त्रियों के लिए जगह हो सकती थी। आहारादि? ब्रिटिश लीगेशन काबुल से भागकर आते समय टीनों में सुरक्षित जिस खाद्यान्न को फेंक आया था, उसके द्वारा स्त्रियों का खाना-पीना पक्के छह मास तक चल सकता था।

फ्रेंच लीगेशन के जिन मिनिस्टर को बेनवा साहब विनोद में सिनिस्टर ऑफ दी फ्रेंच निगेशन कहा करते थे, उन तक ने आश्रय खोज़ने वाले फ्रांसीसियों का मन खुश करने के लिए पूरा भण्डार उजाड़ कर शैम्पेन तक उन्हें पिला डाली थी।

डॉक्टर आ नहीं रहा है, अन्न जुट नहीं रहा है, पथ्य का अभाव है, दाई है नहीं, आसन्न प्रसवा को सही आश्रय भी नहीं मिल रहा है, उसे छोड़कर भारतीय पैसे से खरीदा गया हवाई जहाज भारतवर्ष जा रहा है, अँग्रेज़, फ्राँसीसी, जर्मन सभी जाति के मेम-साहबों को लेकर। हे द्रोपदीशरण, चक्रधारी, यह द्रोपदी अन्तः सखा है, इसकी रक्षा कीजिए।

अगर उत्तरी दिशा से काबुल शहर पर आक्रमण करना हो तो ब्रिटिश दूतावास पार कर एक और मील खुली जगह पार करनी पड़ती हैं। बाच्चा उसी को पार कर शहर-आरा होस्टल में पहुँचा था। अफगानिस्तान भर जानता है कि उस समय पक्के चार दिन ब्रिटिश दूतावास तथा महामान्य सर फ्रॉन्सिस का जीवन बाच्चा के हाथों में मछली की तरह एक चुल्लू पानी में ऊम-चूम कर रहा था। बाच्चा चाहता तो किसी भी क्षण पूरी लीगेशन को कच्चा ही पोल कर रख सकता था- अगर वह थोड़ी ही उदासीनता दिखाता तो उसके उद्ग्रीव साथी लोग सबका क़त्ल कर बादशाही खज़ाना

लूट लेते, किन्तु कमण्डलु धारी के तस्कर पुत्र ने अभिजात वंश के तनय को प्राण दान दे दिया, किन्तु दस्यु प्रदत्त करुणालब्ध वह प्राण विपन्न नारी के दुःख से द्रवित नहीं हुआ।

एक कहानी सुनी है, जार्ज वाशिंगटन अपने नाती को लेकर घोड़े पर बैठकर घूमने निकले थे। रास्ते में एक नीग्रो ने हेट उतारकर दोनों लोगों को नमस्कार किया। वाशिंगटन ने अपना हेट उतारकर उसे उत्तर में नमस्कार किया, नाती ने उपेक्षा प्रदर्शित करते हुए उसके नमस्कार को स्वीकार ही नहीं किया। इस पर जार्ज वाशिंगटन ने नाती से कहा, 'एक मामूली नीग्रो ने शिष्टाचार में तुम्हें हरा दिया है।

दया, दक्षिणा, करुणा, धर्म में महामान्य सम्राट के अतिमान्य प्रतिभू हिज एक्सीलेन्टी लेफ्टीनेंट कर्नल सर फ्रान्सिस को डाकू बाच्चा ने हरा दिया।

कागज़ की एक चिट मिली, जिस पर देमीदोफ ने रूसी दूतावास में आने को लिखा है। इस तरह की चिट्ठी मुझे इसके पहले कभी नहीं मिली। कारण, अगर कभी कोई ज़रूरत हुई तो वे खुद ही मेरे घर आकर उपस्थित हो जाते थे।

उनका चेहरा देखते ही समझ गया कि कुछ हो गया है। दरवाज़े पर पहुँचते ही मैंने पूछा, आखिर क्या हो गया है बताइए। 'देमीदोफ ने कोई जवाब दिये बिना मुझे अपने कमरे में लाकर बैठा लिया। आमने-सामने बैठते ही दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रख सीधे मेरे मुँह की ओर देखते हुए कहने लगे कि 'बोलशोफ मारा गया है।'

मैंने कहा 'क्या।'

देमीदोफ ने कहा, 'आपको पता है कि विद्रोह आरम्भ होते ही बोलशोफ ने स्वयं ही अमानुल्ला के पास जाकर बाच्चाये सकाओ के दल के ऊपर हवाई जहाज से बम वर्षा करने का प्रस्ताव रखा था। कल शाम को---'

मैं सोच रहा था कि बोलशोफ किसी तरह मर नहीं सकता है, यह खबर अविश्वसनीय है।

कल शाम को अन्य दिनों की तरह बमबारी से लौटकर दूतावास के क्लब वाले कमरे में चौपड़ खेलने बैठा हुआ था। ब्रिचेस की पाकेट में एक छोटा-सा पिस्तौल डाले हुए था। बायें हाथ से गोटें चल रहा था, दाहिना हाथ पॉकेट में डालकर पिस्तौल के घोड़े से खेल रहा था, आप जानते तो हैं बोलशोफ का स्वभाव, बिना कुछ सटर-पटर किये वह शान्ति से तो बैठा नहीं रह सकता था। सहसा ट्रिगर पर अधिक दबाव पड़ने से गोली पेट के भीतर से होती हुई दिल के पास तक चली गयी। छह घण्टे के लगभग जीवित बना रहा था, डॉक्टर कुछ कर नहीं सके।'

मुझे उस समय भी किसी तरह का विश्वास नहीं हो पा रहा था, कि बोलशोफ जैसा वटवृक्ष कैसे बिना आँधी के ऐसे ही गिर सकता है। इतने युद्ध लड़कर, इतने घाव खाने के बाद अन्त में स्वयं ही उठ खड़ा होता था और आखिर में अपने हाथों ही ----

देमीदोफ कहने लगा- ''आपको बहुत दुःख होगा मैं जानता था इसलिए मैंने संक्षेप में सब कुछ बताया,- और भी कुछ आप जानना चाहते हैं---' मैंने कहा-'ना'।'

'चलो, देखने चलिए।'

मैंने कहा-'ना'। मैं यह कहकर घर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। मादाम जल्दी-जल्दी मेरे सामने आकर मेरा रास्ता रोकती हुई कहने लगी, 'यहाँ से खाना खाकर जाइए।'

मैंने कहा नहीं।

टेनिस कोर्ट की बगल से निकलते समय सहसा मुझे बोलशोफ की आवाज सुनने को मिली 'जद्रासभुइयेत, मई प्रिया तेल अरे मित्र कैसे हो?' यह सुनकर मैं चौंक उठा। मेरा मन अब भी विश्वास नहीं कर पा रहा था कि बोलशोफ़ इस दुनिया में नहीं है। इसी टेनिस कोर्ट में उसके साथ पहली बार परिचय हुआ था और जिस डिवढ़ी के भीतर से होकर गुज़र रहा हूँ, इसके भीतर से होकर कितनी बार उसके साथ गुज़रा हूँ, ।

घर आकर बिना खाये सो गया। सवेरे नींद खुलते ही देखता हूँ कि बिना जाने पूरी रात मेरा मन बोलशेफ के बारे में ही सोचता रहा है, नींद खुलते ही मानों मैं सचेत हो गया हूँ, याद आने लगी उसके साथ हुई अन्तिम बातचीत। उससे मज़ाक करते हुए कहा था,- 'बोलशेफ तुम अमानुल्ला की तरफ से क्यों लड़ रहे हो? अमानुल्ला तो राजा है और बाच्चा का दल तो सर्वहारा है। तुम्हें तो बाच्चा का सहयोग कर उसी के लिए लड़ना चाहिए था।'

इस पर बोलशेफ ने कहा था, 'बाच्चा सर्वहारा कैसे हो गया? वह भी तो राजा का मुकुट धारण कर आया हुआ हैं, राजा और राजा में लड़ाई हैं। एक राजा प्रगतिशील है और दूसरा राजा प्रगति का शत्रु है। यह तो प्रगति के लिए सदा चलने वाला युद्ध है, मैं सदा प्रगति के लिए लड़ता रहा हूँ, अब भी लड़ रहा हूँ, वह त्रातस्की के नेतृत्व में हो या अमानुल्ला के आदेश से।

अमानुल्ला की उस घोर विपत्ति में सभी विदेशियों में एकमात्र बोलशेफ के अधीन रूसी पायलटों ने ही उसकी सहायता की थी। अगर बाच्चा जीत गया तो उनकी क्या हालत होगी। इसकी परवाह एक दम किये बिना वे इस काम में लगे रहे।

पन्द्रह दिन बाद खबर मिली, हवाई जहाज काबुल से विदेशी सब स्त्रियों, कच्चे-बच्चों को झारकर ले गया है। विदेशी कहने पर सिर्फ भारतीय स्त्रियाँ। तीन छलाँग में ब्रिटिश लीगेशन में उपस्थित होकर मौलाना की बहू की हालत बड़े कातर और विनय भरे स्वर में निवेदित की। ब्रिटिशों में दया भावना असीम है। उसे भारतवासिनी स्त्रियों की खेप लेकर उड़ने वाले पहले जहाज में ही स्थान मिल गया। फिर तीन ही दौड़ में घर पहुँचकर आँगन से ही ऊँची आवाज़ लगाते हुए कहा- ''मौलाना किला फ़तह हो गया, सीट मिल गयी है। बहू को तैयार हो जाने के लिए कहो। अब वज़न कराने के लिए ले जाना होगा। अफ़सर वज़न जानना चाहते हैं।'

मौलाना निरुत्तर थे। मैं अवाक् रह गया। अन्त में कहने लगे, 'उनकी बहू चूँकि अकेली जाने को राज़ी नहीं है, अगर मरना होगा तो इसी देश में स्वामी के साथ ही मरूँगी। 'मैंने पूछा, 'इस पर आपने क्या कहा?' मौलाना निरुत्तर थे। मैंने आगे कहा- ''देखो, मौलाना, तुम पंजाबी हो, किन्तु शान्ति निकेतन में रहते-रहते और गुरुदेव के कोमल गानों को गाते-गाते तुम एक बंगाली की तरह कोमल हदय हो गये हो। बाँधिन जे राखि-टाखि एरोन वाद दाओ' (अर्थात् राखी के जिस बँधन में बाँधा था अब उसे खोल दो)। मौलाना इस पर भी निरुत्तर रहे। इस पर मैंने नाराज़ होकर कहा- 'तुम हिन्दू हो गये हो, फिर भी १८१० ईस्वी के सतीदाह में विश्वास करते हो। किन्तु तुम्हें पता है, जिन गुरुदेव का नाम सुनकर तुम अज्ञानी बने हुए हो, उन्हीं के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर ने अपने खर्चे से सतीदाह के विरुद्ध विलायत में मुकदमा लड़ा था।' फिर भी मौलाना निरुत्तर रहे। अब मैंने कहा- 'सुनो ब्रदर, इस समय हँसी-मसखरी का समय नहीं है, किन्तु विचार कर देखो, तुम्हारी बहू के कब बच्चा होने वाला है, उसका कोई हिसाब-किताब आपने नहीं रखा है- न तो मुझे वैद्य मिला, न कोई धाय मिली, किन्तु, बच्चा होने के बाद तुम्हारी बहू को' - तीन बार गला साफ कर फिर बोला-'दूध की जुगाड़ कहाँ से करूँगा? बाज़ार में दूध फिर कब आएगा, इसका कोई ठौर-ठिकाना है ही नहीं।'

मेरी बातें सुनकर मौलाना अपनी बहू के पास भीतर चले गये। मैं बाहर खड़े-खड़े धीरे-धीरे रोने की आवाज़ सुनता रहा। मौलाना ने बाहर आकर कहा- 'वह राज़ी नहीं हो रही है।'

तब मैं मौलाना को वहीं बाहर खेड़कर भीतर चला गया और बोला-'आप जो मौलाना को छोड़ कर नहीं जाना चाहती हैं, उसका कारण मैं नहीं समझ पा रहा हूँ, ऐसा नहीं है, किन्तु, सोचकर तो आप देखिए, आपके न जाने से कहीं उन्हें कोई असुविधा तो नहीं हो रही है? आप अगर यहाँ से चली जाती हैं, तो वे जहाँ इच्छा हो ऐसी किसी अच्छी, सुरक्षित जगह में आश्रय ले सकते हैं, सिर्फ़ यहीं नहीं, अगर हालत और भी बिगड़ती है तो हो सकता है, उन्हें भी यह देश छोड़ना पड़ेगा। अगर आप यहाँ नहीं रहती हैं, तो यह सब करना उनके लिए अत्यन्त सरल हो जाएगा। ये सब बातें उन्होंने आप से ज़रा भी नहीं कही हैं, कारण इस समय वे अपने बारे में बिल्कुल नहीं सोच रहे हैं, सोच रहे हैं सिर्फ़ आपके मंगल के बारे में। आप उनकी स्त्री हैं, आपको क्या इस दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिए।'

उनकी वकालत कर रहा था और मन-ही-मन सोच रहा था कि यदि मौलाना के बच्चा हुआ तो उसे बैरिस्टरी सिखाऊँगा। और अगर लड़की हुई तो अमानुल्ला की माँ को सौंप दूँगा।

खैर मेरे कथन का असर हुआ। दवा ने काम करना शुरू कर दिया। भारतीय नारी की तत्कालीन चिकित्सा स्वामी के हित की दुहाई देना हैं।

दूसरे दिन मौलाना अपनी बहू को लेकर हवाई अड्डे चले गये। कोई मुसीबत होने पर अब्दुर रहमान के कन्धे काम आएँगे इसलिए वह भी साथ में चला गया। मैं घर में पहरेदारी करने के लिए रह गया। दिन खूब साफ़ था इसलिए छत पर खड़े होकर देखा, पूर्वी दिशा में चला गया। ज़मीन पर आधे घण्टे से अधिक नहीं रुका। काबुल कोई सुरक्षित जगह नहीं है।

ज़ियाउद्दीन लौटने के बाद पीला मुहँ किये ऊपर चले गये। अब्दुर रहमान ने बताया, 'मौलाना साहब की बीवी के वस्त्र देखकर पायलट ने यह कहा कि हवाई जहाज जब आकाश में बहुत ऊपर चला जाएगा, वे ठण्ड के मारे उसके पैर जम जाएँगे। इसीलिए शायद वे अपने साथ घास लाये थे। मौलाना साहब ने उसी घास से अपनी बीवी के दोनों पैर कसकर बाँध दिये- उसे देखकर ऐसा लगा मानो घास में लिपटी हुई विलायती सिर के की कोई बोतल हो। सभी स्त्रियों के पैरों को इसी विधि से सफर के लायक बनाया गया था।'

हम लोग दरवाज़े की देहरी पर खड़े होकर बातचीत कर रहे थे। इसी समय हमारे सामने से एक अर्थी लिये कई लोग चले जा रहे हैं, यह देखकर अब्दुर रहमान ने सहसा बातचीत बन्द कर उन्हीं के साथ चलते हुए उन्हीं में शामिल हो गया। उस अर्थी को ढोने वाले मेरे पड़ोसी कर्नल के दरवाजे जाकर खड़े हो गये। अब्दुर रहमान साँकल बजाने लगा। दरवाज़ा खुलने के साथ-ही-साथ नारी कण्ठ की तीव्र और आर्त क्रन्दन ध्वनि मानो पूरे वातावरण को तीर की तरह वेधती हुई मेरे कानों तक आने लगी। अर्थी दरवाज़े से भीतर घुसने में जितना समय लगा, उतने समय तक कई कण्ठों की आर्त ध्वनि उसमें योग देने लगी। चीत्कार-पर-चीत्कार कर मनुष्य की वेदना मानो सप्तम् स्वर्ग में बैठे भगवान के चरणों में पहुँचना चाहती है।

जैसे किसी ने एकाएक क्रन्दन को गला दबाकर बन्द कर दिया हो। अर्थी घर में ले जायी गयी, उसके बाद दरवाज़ा भी बन्द कर दिया गया। उस स्तब्धता और सन्नाटे ने तब मुझे मानों क्रन्दन से भी अधिक अभिभूत कर डाला। मैं दौड़कर मौलाना के कमरे में जा घुसा। अब्दुर रहमान ने आकर खबर दी, 'कर्नल लड़ाई में मारे गये हैं।'

मौलाना ने दोनों हाथ उठाकर 'दुआ' पढ़ना आरम्भ कर दिया। अब्दुर रहमान और मैंने उसमें योग दिया। दुआ के अन्त में मौलाना कहने लगे- ''लड़ाई पर जाने के पहले कर्नल हम लोगों से दुआ माँगने आये थे, हम लोगों के ऊपर अब उनका हक है।'' उसके बाद मौलाना ने 'बुजू' करने के बाद कुरान शरीफ पढ़नी प्रारम्भ कर दी।

दोपहर के समय मौलाना के कमरे में जाकर देखता हूँ, कुरान पढ़ने के बाद उनका चेहरा बहुत कुछ शान्त हो गया है। आसन्न प्रसवा स्त्री का विरह और उसके बारे में उनकी दुश्चिन्ता मानो उनके मन से अब दूर हो गयी है। कर्नल के प्रति मेरे मन में श्रद्धा जाग गयी। कोई-कोई व्यक्ति चले तो जाते हैं, किन्तु दूसरे के मन में शान्ति जगाने के उपलक्ष्य हो जाते हैं।

किन्तु मेरे मन में दुःख भी जागा रहा। जिस मनुष्य से मेरी जान-पहचान सिर्फ़ पाँच मिनट के लिए हुई थी, उसकी मृत्यु से ऐसा लगा मानो एक शिशु सन्तान की मृत्यु हो गयी हो। हमारा परिचय अपनी परिपूर्णता नहीं पा सका।

सवेरे-सवेरे नींद से उठते ही अब्दुल रहमान की याद आयी। इसके साथ ही वह कमरे में आया। रूढ़ी, मामलेट, पनीर, चाय लेकर। अन्य दिनों में वह जलपान देकर चला जाता था, आज सामने खड़े रहकर कार्पेट की ओर ताकता रहा। कैसी मुश्किल है।

मौलाना आकर कहने लगे, 'पर्ची पर लिखा हुआ है। हर व्यक्ति के साथ दस पौण्ड सामान जाने देंगे। क्या छोड़ूँ और क्या लेकर जाऊँ ?'

इस पर मैंने कहा- ''जो छोड़ जाओगे, वह फिर कभी मिलेगा नहीं। मैंने अब्दुर रहमान से पानशीर चले जाने को कहा है। घर में पहरा देने वाला कोई रह नहीं जाएगा, इसलिए सब कुछ लूट लिया जाएगा।'

'किसी को घर के बारे में सब कुछ समझाकर जाने से काम नहीं चलेगा' मैं बोला- यह परिस्थिति एक दिन हो सकती है, यह जानकार मैं भीतर ही भीतर खबर लेता रहा था। अब सुना है, जब चारों ओर लूटपाट का भय हो, तब किसी से माल की ज़िम्मेदारी लेने का अनुरोध करना इस देश का रिवाज़ नहीं है। कारण, अगर कोई जिम्मेदारी लेने को राज़ी भी हो जाए, तब उसके घर में दोहरा माल होने की आशा में लूट की दोहरी सम्भावना है। माल असबाब जब सदर दरवाज़े से निकलेगा, तब डकैत लोग भलीभाँति पहचान लेंगे कि यह माल किस घर में ले जा रहा है।

मौलाना को बता तो दिया बड़ी प्रांजल भाषा में किन्तु घर के बीच में खड़े होकर चारों ओर देखा, तब मन में जो प्रश्न जागा, उसका कोई उत्तर नहीं था। क्या ले जाऊँ और क्या छोड़े जाऊँ?

यह तो मेरे दो ज़िल्द रूसी अभिधान रहे। ये दोनों ज़िल्द आए हैं मास्को से ट्रेन द्वारा ताशकन्द, वहाँ से मोटर द्वारा अमूदरिया, उसके बाद खेया पारकर, खच्चर की पीठ पर लाद कर, पूरे उत्तरी अफ़गानिस्तान को पीछे छोड़ते हुए, हिन्दूकुश की चढ़ाई-उतरायी पार कर काबुल इनका वजन छह पौण्ड के लगभग होगा।

मैं साहित्य रचना नहीं करता इसलिए मेरे पास पाण्डुलिपियों का जखीरा होगा, इसकी कोई बला ही नहीं है। मौलाना से उस दृष्टि से मेरा भाग्य अच्छा है, किन्तु शान्ति निकेतन में गुरुदेव की क्लास में बलाका, गोरा, शेली, कीट्स के सम्बन्ध में गद्य, पद्य में जो नोट्स लिये थे और एक मूर्ख की तरह उन्हें यहाँ लिये आया था, बर्फ़ बरसने के लम्बे अवसरों पर वे यदि किसी काम आ जाएँ इसी भरोसे पर, अब उनका क्या होगा ? वज़न तो कोई कम है नहीं और सब अभिधान, व्याकरण, मिनूदी की दी हुई 'पुरवी', विनोद की दी हुई तस्वीरें, बन्धु-बान्धवों के फोटोग्राफ्स और एक मित्र के लिए काबुल में खरीदे गये बुखारा के दो कालीन, वज़न तीन लाश के बराबर है।

और कपड़े-अपड़े ? देरेशी पागल काबुल की व्यावहारिकता की रक्षा के लिए स्मोकिंग टेल, मोर्निंग सूट काबुल की सरकारी भाषा में रंग-जूर देरेशी' इन सब चीज़ों के लिए मेरे मन में रत्तीभर भी दर्द नहीं है किन्तु यदि जर्मनी जाने का अवसर मिलता है तब फिर नये सिरे से इन्हें बनवाने का पैसा कहाँ से पाऊँगा ?

भूल ही गया था। एक जोड़ा चीनी 'भाज'। निकृष्ट नींबू की तरह जिसका रंग आँखें बन्द कर अगर उस पर हाथ फेरा जाए तो ऐसा लगेगा जैसे नींबू पर ही हाथ फेर रहे हों और ज़रा ज़ोर से दबाने से ऐसा लगेगा कि नाखून उसमें धँस ही जाएगा।

कितनी छोटी-मोटी वस्तुएँ हैं। दुनिया के किसी भी व्यक्ति के लिए इनका कोई मूल्य नहीं है, किन्तु मेरे लिए इनमें से हर वस्तु अलादीन का चिराग़ है।

सुकरात को उसके शिष्टों का दल एक दिन शहर की सबसे श्रेष्ठ दुकान दिखाने ले गया था। उस दुकान पर दुनिया की जितनी भी मूल्यवान ज़रूरी और गैर ज़रूरी वस्तुएँ, विचित्र और अद्‌भुत विलासिता के सामान, मिस्त्र और बेवीलोन की कलात्मक चीज़ें, पेपीरस के बण्डल, रसायन शास्त्र के सारे सामान, सभी कुछ था। उन चीज़ों को देखते-देखते सुकरात की पलकें नहीं गिर रही थीं। वह इस चीज़ को देखता था, उस चीज़ को टटोलता था और उसकी आँखों ने दो छोटे शावक के आकार को पार कर खरगोश का आकार धारण कर लिया था। शिष्य लोग तो बड़े खुश थे। गुरु जो इतनी कृच्छ साधना और त्याग का उपदेश देते थे, उसका एकमात्र कारण यह था कि उन्होंने सचमुच में अब तक कोई अच्छी वस्तु नहीं देखी थी। अब देखना चाहिए कि इतनी सारी चीज़ें देखकर गुरु क्या कहते हैं। स्वयं प्लेटो भी गुरु का इतना विह्‌वल भाव देखकर चैन का अनुभव कर रहा था।

चीज़ों का देखना खत्म होने के बाद सुकरात करुण स्वर में कहने लगे- 'हाय, हाय! दुनिया कितनी चित्र-विचित्र चीज़ों से भरी हुई है, जिनमें से एक चीज़ मेरे काम की नहीं है।' अपने कमरे के बीच में खड़े होकर मैंने हृदयंगम किया कि सुकारात और मुझमें केवल एक अन्तर है- इस घर की सभी चीज़ें मेरे लिए ज़रूरी हैं। बस मात्र यही हम दोनों में भेद है। उर्वी ने जीता ५३७८६ नम्बर का टिकट। मैंने खरीदा था ५३७८५ नम्बर का टिकट। इस तरह से अन्तर ही आखिर कितना हुआ?

मुसलमान का लड़का हूँ इसलिए नीमतला तो जाऊँगा नहीं जाऊँगा, एक दिन गोबरा- हाँ, ज़रूर अगर इस काबुली गर्दिश को पारकर निकल सका। उस दिन कुछ साथ लेकर तो जाऊँगा नहीं, यह बात भी अच्छी तरह जानता हूँ। किन्तु क्या उसी वजह से आज सब कुछ काबुल में छोड़कर देश जाना होगा। हाँ, हाँ, कुष्टिया के लालन फकीर का कहना है

मरार आगे मले शमन-ज्वाला घूचे याया

जानगे से मरा केमोन मुरशीद घरे जानते होय।

अर्थात् मरने के पहले ही जो मरना सीख लेता है, उसके दुःख की ज्वाला शान्त हो जाती है। वह मरना कैसा है, इसे गुरु के द्वारा ही सीखा जा सकता है।

फिर और भी एक व्यक्ति, सम्भवतः दादू ने कहा -

दादू, मेरा बैरी मैं, मुआ मुझे न मारे कोई।

(हे, दादू मेरा बैरी मेरा मैं था, वह तो मर गया है, अब मुझे कोई नहीं मार सकता है।)

कैसी मुश्किल है। सभी गुणियों की एक राय है। सियार को क्यों व्यर्थ में दोष दिया जाए ? कबीर ने भी तो कहा है:

तजो अभिमाना सीखो ज्ञाना

सतगुरु संगत करता है

कहे कबीर कोई बिरला हंस

जीवत ही जो मरता है।

(अभिमान त्यागकर ज्ञान प्राप्त करो, सत्गुरु का संग करने से ही रक्षा होगी। कबीर कहता है जीवन में ही जिसने मृत्यु को प्राप्त कर लिया है, ऐसा हंस साधक कोई विरला ही होता है। किन्तु कबीर की वाणी में बचाने वाला तो रह ही गया है। गोबर के गोरस्थान में जाने के पहले मृतक व्यक्ति की तरह सारी माया काट सके ऐसा परमहंस जब विरल है, तब वह कष्ट उठाने का दायित्व मेरा तो नहीं है।

डोम ने अन्त में कौन-सा वाँश चुन लिया था, हमारी कहावतों में उसका पता तो कुछ मिलता नहीं है। विवेचना करता हूँ, तब पता चलता है कि वह निराट कच्चा और गाँठों से भरा हुआ हैं, नहीं तो उस कहावत का कोई अर्थ ही नहीं निकलता है। इसीलिए इस डोम ने आखिर में किसके द्वारा दस पौण्ड की यह पोटली बाँधी थी, इस बात का भण्डाफोड़ कर अपनी मूर्खता का अन्तिम प्रमाण आपके हाथों में सौंप नहीं दूँगा।

किन्तु वह तो पुरानी धोती से बाँधी हुई घास की पोटली थी-'लगेज' अथवा सूटकेस के भीतर भरा गया माल अन्य वस्तु थी-कारण दस पौण्ड माल के लिए पाँच पौण्डी सूटकेस का अगर प्रयोग किया जाए, माल का पाँच पौण्ड जाकर हाथ में रह जाएगा मात्र सूटकेस। सुकुमार राय का कौआ जिस तरह से हिसाब लगाता था सात दूने चौदह, चौदह की चार, हाथ में बची एक पेंसिल।

हाँ, यह ज़रूर एक अपवाद नहीं, ढेर सारे कपड़े पहन लिये। अफ़सर लोगों ने भी यह सन्देश भेजा था कि प्रचुर मात्रा में अगर गरम कपड़े न पहने तो जहाज के आसमान में बहुत ऊँचाई पर जाने पर ठण्ड के मारे खूब तकलीफ होगी और मौलाना की बहू के पैर घास लपेट कर ऐसे बाँधे गये थे, जैसे विलायती सिरके की बोतल को अब्दुर रहमान का यह ब्यौरा भी खूब याद था।

मौलाना अपने एक पंजाबी मित्र के साथ पहले ही निकल गये थे।

अब्दुर रहमान बैठक में खूब इच्छाभर आग जलाये हुए था। मैं एक कुर्सी पर बैठा हुआ था। अब्दुर रहमान मेरे पैरों के पास था।

मैंने उससे कहा-'अब्दुर रहमान, तुम्हारे ऊपर कई बार बेकार में नाराज़ हुआ था, माफ़ कर देना।'

अब्दुर रहमान ने मेरे दोनों हाथ उठाकर अपनी दोनों आँखों के ऊपर रख लिये।

मेरी दोनों हथेलियाँ भीग गयीं।

मैंने उससे कहा-'छिः छिः, अब्दुर रहमान यह क्या कर रहे हो? अरे सुनो, इस कमरे में जो कुछ रह गया है, वह सब

तुम्हारा है।'

मैं जानता हूँ, मेरे पाठक अविश्वास भरी हँसी हँसेंगे, फिर भी मैं ज़ोर देकर कहूँगा, अब्दुर रहमान ने मेरी ओर इस भाव से देखा कि उसकी आँखों में मैंने स्पष्ट देखा, वहाँ लिखा हुआ था-

'येनाहं नाद्रमृता स्याम किमहम् तेन कुर्याम्।' (जिससे मैं अमृत न हो पाऊँ, ऐसी वस्तु को लेकर मैं क्या करूँगा)।

मैं रास्ते से चला जा रहा हूँ। पीछे मेरी पोटली लिये अब्दुर रहमान। दो-एक बार उससे बातचीत करने का प्रयास किया। पर देखा उसे चुप बने रहना ही पसन्द है।

शुरू में ही दाहिनी ओर रूसी दूतावास पड़ा। देमीदोफ़ परिवार को कभी भूल न पाऊँगा । बोलशेफ की आत्मा नमस्कार किया।

उसके बाद काबुल नदी पार कर लब-ई-दरिया होकर आर्क किले की तरफ चलने लगा। अधिकतर दुकानें बन्द थीं- फिर भी दूर से देखा कि पंजाबी की दुकान खुली हुई है। दुकानदार बरामदे में खड़ा हुआ है, पूछा- 'क्या देश नहीं जाओगे?' सिर हिलाकर चुपचाप उसने 'न' में उत्तर दिया। उसके बाद विदाई का सलाम करके सिर नीचा कर दुकान के भीतर चला गया। मैं जानता था, कारोबार तुरन्त छोड़कर इनके पास काबुल से जाने का कोई उपाय नहीं है, सब कुछ तुरन्त लूट लिया जाएगा। हालाँकि मुझे देश जाते देखकर इनका चित्त इतना व्याकुल हो गया था कि अन्तिम क्षणों में मुझसे दो बातें करने की भी इनमें शक्ति नहीं रही।

बीस क़दम के बाद बायीं ओर दोस्त मुहम्मद का डेरा था। उसकी हालत देखकर यह समझने में देर नहीं लगी कि उसका सब कुछ लूट लिया गया है। किन्तु उससे उसको रंचमात्र भी दुःख नहीं है। इस मामले में वह सुकरात जैसा है। सुकरात जिस तरह से तत्वचिन्तन में लीन होकर अन्य किसी वस्तु की ज़रूरत ही महसूस नहीं करता था, दोस्त मुहम्मद भी ठीक वैसे ही रस की खोज़ में, अद्भुत के संधान में, ग्रोटेस्क (उद्भट, विचित्र) के पीछे इस तरह लगा रहता था कि अन्य किसी वस्तु का अभाव उसके मन को चंचल, अस्थिर, उद्विग्न नहीं कर पाता था। पतन्जलि ने भी ठीक यही बात कही है- चित्त निरोध का मार्ग बताते हुए उन्होंने ईश्वर और वीतराग महापुरूषों का ध्यान करने के लिए कहा है, किन्तु सबसे अन्त में कहा है: 'यथाभिमत् ध्यानाद्वा?' जिसके द्वारा हो सकता हो उसी से तुम अपने चित्त की चंचलता को रोको।' अर्थात् ध्यान ही मुख्य है, ध्यान की वस्तु गौण है। दोस्त मुहम्मद की साधना रस की साधना है।

थोड़ा और आगे बढ़ने पर लड़कियों का स्कूल है। बाच्चा के आक्रमण के कई दिनों पहले यहाँ पर कर्नल की बहू स्वामी की चिन्ता में डिडकार देकर रोयी थी। वह जीवित है या नहीं, कौन जाने। मेरे पड़ोस के घर में कर्नल की माँ का क्रन्दन, स्कूल के कर्नल की बहू का क्रन्दन और भी कई क्रन्दन मिलकर खुदाताला के तख्त की ओर जा रहे हैं। किन्तु क्यों? कवि ने कहा है:

For men must work and women must weep

अर्थात् पुरुष को हरदम कर्म करना चाहिए और स्त्रियों को हरदम रोते रहना चाहिए।

अर्थात् कोई तर्क नहीं, युक्ति नहीं, न्याय-अन्याय नहीं, स्त्रियों का कर्तव्य है पुरुषों की अकाट्य मूर्खता के कारण आँसू बहाते हुए उसकी क्षतिपूर्ति करते रहना। किन्तु अचरज इस बात का है कि उनकी इस वेदना को व्यक्त भी पुरुष ही करता आ रहा है, वह भी एक कवि के रूप में सुना है, पाँच हजार वर्ष पुरानी बेबिलोन के शिलालेख में एक

कविता मिली है- कवि ने माँ, जननी के आँसुओं का उल्लेख करते हुए युद्ध के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की है।

स्कूल के बाद ही उससे लगी हुई एक बाड़ी है। अमानुल्ला की बहन के विवाह के समय लखनऊ से ये सब नाचने-गाने वाली यहाँ लायी गयी थीं, ये सब इसी घर में ठहरायी गयी थीं। उनका हालचाल जानने के लिए हम कई भारतीय लोग उनके पास गये थे। हम लोगों से बातचीत कर पाने से, उस अनात्मीय निर्वासन में उन्हें कितनी खुशी नहीं हुई थी। वे जानती थीं कि काबुल में पान तो मिलता नहीं है और पान के बिना महफिल कैसे जमेगी, ठुमरी हो जाएगी भजन, इसलिए वे अपने साथ बस में लादकर पान ले आयी थीं। हम लोगों को उन्होंने अपने उदार हाथों से वही पान खिलाया था। लखनऊ का पान, काशी का जर्दा, पका और छना हुआ कत्था, तीनों से मिलकर मेरे मुँह की जड़ता इस तरह दूर हो गयी थी कि मैंने उस समय उर्दू, में बोलना शुरू कर दिया था एकदम लखनवी कायदे से - 'मेहरबानी, गरीबपरबरी बन्दानेवाजी' इन लफ़्ज़ों का बघार देकर।

काबुल का अपना निजी शास्त्रीय संगीत नहीं है। ईरान की विरासत को भी काबुल ने नहीं स्वीकारा है। काबुल में जो डेढ़ लोग कलावन्त हैं, उन्होंने संयुक्त प्रदेश में गाना सीखा है। इसीलिए बाईजी की महफिल में सम देने वाले का अभाव हो सकता है। इस भय से गाने की महफिल में उपस्थित रहने के लिए भारतीयों को ज़ोरदारी से निमन्त्रण और हार्दिक अनुरोध किया गया था। हम लोग सामने बैठकर अपना खूब सिर हिलाया करते थे और जल्दी-जल्दी 'शाबाश-शाबाश' ज़ोर से कहते हुए महफिल गरम रखते थे।

महफ़िल से घर लौटकर आहारादि के बाद जब अन्तिम पान पॉकेट से निकाल, उसे खाकर खिड़की से उसकी पीक थूकता था, तब अब्दुर रहमान भय से चक्कर खा जाता था और क्या! काबुल में पान की पीक अनजानी है, किन्तु यक्ष्मा अनजाना नहीं है।

उसके बाद ही शिक्षा मंत्री का दफ्तर था। एक्सीलेंसी फैयाज मुहम्मद खान को दोस्त मुहम्मद फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहते थे। किन्तु मुझे बुरे नहीं लगते थे। अत्यन्त आडम्बर हीन, और अत्यन्त निरीह प्रकृति के व्यक्ति थे और पाँच लोगों की तुलना में लिखना-पढ़ना कुछ कम नहीं जानते थे किन्तु, शिक्षामन्त्री होने के लिए जितना आवश्यक है, उतनी ठीक शिक्षा उनकी नहीं थी। बाच्चा राजा होने के बाद उसके सभी मन्त्रियों पर अत्याचार करता रहा और उनके पास जो भी गुप्त धन हो उसे निकालने का प्रयास भी करता रहा, किन्तु शिक्षामन्त्री को, 'चूँकि तूने कभी रिश्वत नहीं खाई है, इसलिए 'तू जा, तू जा' कहकर उन्हें मुक्ति देता रहा था। हालाँकि शिक्षा विभाग में दो पैसा कमाने के अवसर नहीं थे, ऐसा नहीं है। काबुल में चूँकि लहरें गिनने का भी काम मिले, हाँ, होना वह सरकारी काम चाहिए, तो उससे भी दो पैसे कमाए जा सकते हैं।

वह मुझे नितान्त व्यक्तिगत कारणों से अच्छा लगता था। इस समय यह कह दूँ कि हवाई जहाज किसी के लिए भी रुका नहीं रहता, उड़ पाना ही उसका जीवन है।

नौकरी में मनुष्य बुद्धि के ज़ोर से नहीं, भगवान की कृपा से उन्नति करता है। केवल बुद्धिमान की ही भगवान सहायता करते तो मूर्ख इस दुनिया में जीवित ही नहीं रह पाते। मेरे प्रति भगवान दयावान थे, इसलिए सम्भवतः शिक्षा मन्त्री पहले दिन से ही मेरे प्रति नेक नज़र से देखते रह थे। उसके बाद एक वर्ष बीतते अकारण ही एक धक्के में मेरा वेतन एक सौ रुपये बढ़ाकर मुझे सभी शिक्षकों से वरिष्ठ कर दिया था। पंजाबी शिक्षकों ने असन्तुष्ट होकर एक डेपुटेशन ले जाकर उनसे कहा था, 'सैयद मुजतबा अली की डिग्री विश्व भारती की है और विश्व भारती मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नहीं है।'

सही बात है। सदाशय भारतीय सरकार की नेक नज़र से मेरी डिग्री आज भी व्रात्य है। आप में से कोई भी अगर मुझे नौकरी देगा, विपत्ति में पड़ जाएगा।

शिक्षा मन्त्री ने चूँकि कहा था- अन्य लोगों से मैंने उनके कथन को सुना था- कि यह सब मुझे मालूम हैं।

पंजाबियों के पाल से हवा निकालते हुए शिक्षा मन्त्री ने कहा था आपकी सनद और सर्टिफिकेट पर पंजाब गवर्नर के दस्तखत हैं। हमारे छोटे-से अफ़गानिस्तान में भी गवर्नर की कमी नहीं है, किन्तु आगा मुजतबा अली के कागज़ों पर दस्तखत हैं मशहूर शायर रवीन्द्रनाथ के। उन्होंने दुनिया के सामने पूरे, प्राच्य देश का मुख उज्ज्वल किया है (चश्म रोशन कर दे अन्द।)

उस भद्रपुरुष की बड़ी चाह थी गुरुदेव को काबुल निमन्त्रित करने की, किन्तु उनको सबसे बड़ा सिर्फ़ यह भय था, दो सौ मील की मोटर यात्रा में उन्हें जो दचके लगेंगे, उससे कवि यदि अस्वस्थ हो गये और उनकी काव्य-प्रक्रिया इससे बाधित हुई, तो उससे पूरी दुनिया को ही क्षति पहुँचेगी। काबुल कवि को देखना चाहता है, किन्तु इस तरह की दुर्घटना का भागीदार क्यों बनना चाहेगा? मैंने उन्हें साहस बँधाते हुए कहा था, 'कवि छह फीट तीन इंच लम्बे हैं, उनका शरीर सुगठित और हड्डियाँ मज़बूत हैं।'

अन्त में वे अल्ला कहकर झुक गये थे, किन्तु अमानुल्ला के विलायत जाने की वज़ह से उस गर्मी में कवि को फिर आमन्त्रित नहीं किया जा सका। सर्दी में डकैत बाच्चा आ धमका ।

खैर, जाने दो ये सब बातें।

बायीं ओर मुइन-उस-सुल्तान का घर था, थोड़ा आगे बढ़ने पर उनका टेनिस कोर्ट। आज मुइन-उस-सुल्तान के हाथों में टेनिस की गेंद थी। कान्धार, काबुल उन्हें लेकर उछल-कूद मचा रहा था।

और यह रहा मकतब-ई-हबीबिया। बाच्चा ने पहले आक्रमण के धक्के में मकतब पर दखल कर लिया था और उसने टेबिल, कुर्सी, पुस्तकें, नक्शे सब जला डाले थे। यह शिक्षा निकेतन अब कब खुलेगा? कौन जाने? इसी में पढ़ाता था। सदियों में सरोवर का जल जम जाने पर बच्चों के साथ मैं स्केटिंग किया करता था। वृक्ष तले बैठकर फेरीवालों से अँगूर खरीदकर खाया करता था। मीर असलम से कितनी दर्शन की बातें सुना करता था। राहुग्रस्त काबुल आज म्लानमुख खड़ा हुआ है। सड़क पर लोगों का आना-जाना कम हो गया है। मकतब-ई-हबीबिया के बन्द दरवाज़े मानो पूरे अफ़गानिस्तान के प्रतीक हैं। शिक्षा-दीक्षा, शान्ति-व्यवस्था, सभ्यता-संस्कृति का निषेध कर अफ़गानिस्तान ने मानों अपने दरवाज़े बन्द कर लिये हैं।

शहर छोड़कर मैं मैदान से होकर चलने लगा। हवाई अड्डा अब अधिक दूर नहीं है। पीछे मुड़कर एक बार फिर काबुल की ओर देखा। इस नीरस, निरानन्द, विपद सन्कुल पुरी को त्यागते समय किसी स्वस्थ मनुष्य के मन में कोई कष्ट होने की तो बात है ही नहीं, किन्तु शायद इन सब कारणों से ही जो कई लोगों के साथ मेरी हार्दिकता पैदा हो गयी थी, उनमें से हरेक असाधारण रूप से मुझे अपना आत्मीय लगने लगा था। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति मेरे हृदय पर इतना अधिकार किये हुए बैठा है कि इन सबको एक साथ त्यागते हुए ऐसा लग रहा है जैसे मेरी सत्ता के कोई दो भाग किये दे रहा हो। फ्राँसीसी में एक कहावत है, 'पार्तीर से तुजूर ताँप्य मुरीर'- अर्थात् हर विद्या के ग्रहण में खण्ड मृत्यु निहित रहती है।

हवाई जहाज आ गया। मेरी गठरियों का बड़े आडम्बर के साथ वज़न किया गया। किसी की पोटली का वज़न कहीं

दस पौण्ड से अधिक हो गया तो उसके दिमाग पर वज्र-सा गिर पड़ता है। बहुत सोच-विचार कर जिन कई मामूली वस्तुओं को लेकर मनुष्य देश त्याग कर रहा है, उनमें से चीज़ों को कम करना कितना कठिन है, उन वस्तुओं के सामने खड़े हुए बिना, इस कष्ट का अनुमान लगाना असम्भव है। एक व्यक्ति तो हा-हा करते हुए रो ही पड़ा था।

ड्रोम जो काना होता है, इसका अन्तिम प्रमाण भी हवाई अड्डे पर मिला। इसी वज़न के भीतर फिर एक गुणी व्यक्ति एक आईना लाया है। उस व्यक्ति के चेहरे की तरफ अच्छी तरह देखा, कहीं वैसा ही सुन्दर कोई अपोलो तो नहीं है। घर में आग लग जाए तो मनुष्य दौड़कर बाहर निकल जाने के समय झाड़ू लेकर निकलता है, तो फिर यह कहावत ग़लत नहीं है।

अरे अब्दुर रहमान, तू इसे लाया ही क्यों था? दस पौण्ड की गठरी ले आया ठीक है, किन्तु बायें हाथ में मेरा टेनिस रेकेट क्यों ले आया? अब्दुर रहमान इस पर कुछ तो फुस फुसाया। समझ गया, उस रेकेट को ही उसने मेरी सबसे मूल्यवान वस्तु समझ ली थी, कारण उस वस्तु को मैं उसे कभी छूने नहीं देता था। अब्दुर रहमान देश के ड्राइवरों जैसा है। उसका विश्वास है कि हर स्क्रू को इतना टाइट करना चाहिए कि फिर उसे कभी खोला न जा सके। 'ओप्टिमम' शब्द मैं अब्दुर रहमान को नहीं समझा सका, अन्त में मैंने उसे कड़ा हुक्म दिया था, रेकेट दबाव के साथ बँधा हुआ है, उससे दूर रह, वह उसकी छाया भी न छुये।

अब्दुर रहमान ने इसीलिए सोचा था, साहब निश्चय ही इसे लेकर हिन्दुस्तान जाएँगे।

देखता हूँ सर फ्रान्सिस। एकदम सामने, उम्र में बड़े हैं, इसीलिए एक छोटे-से छोटा सलाम किया। साहब ने आगे आकर हाथ बढ़ाते हुए कहा-गुडमार्निंग, आई विश यू ए गुड जर्नी-अर्थात् सुप्रभात, अच्छी यात्रा के लिए मेरी शुभ कामनाएँ।

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया।

इस पर साहब कहने लगे- 'भारतीयों की सहायता करने के लिए मैं यथासम्भव प्रयास कर रहा हूँ। अगर ज़रूरत पड़े तो आशा करता हूँ, यह बात आप भारतवर्ष के लोगों को बता देंगे।'

मैंने उत्तर दिया, 'अवश्य मैं यह बात सभी को बता दूँगा।'

साहब भौंदू हैं अथवा मगरमच्छ कूटनीतिज्ञ, यह मैं ठीक-ठीक नहीं समझ पाया।

विदा लेते समय जो अफ़गानिस्तान से जा रहा है, वह कहता है, 'व आमाने खुदा'- अर्थात्, तुम्हें खुदा के हवाले किये दे रहा हूँ।' और जो नहीं जा रहा है वह कहता है, 'व् खुदा सुपुर्दमत' अर्थात्, तुम्हें खुदा के हाथों सुपुर्द कर दिया।'

अब्दुर रहमान ने मेरे हाथ को चूम लिया। मैंने उससे कहा- व् आमाने खुदा अब्दुर रहमान।' अब्दुर रहमान मन्त्रोच्चार की तरह लगातार कहने लगा- 'व् खुदा सुपुर्दमत्' साहब, व् खुदा सुपुर्दमत् साहब।'

सहसा सुनायी पड़ा सर फ्रांसिस कह रहे हैं, 'इस दुर्दिन में जो टेनिस का रेकेट साथ में ले जाना चाहता है, वह सचमुच में एक स्पोर्ट्समेन है।'

लीगेशन के एक कर्मचारी ने कहा- 'वह दस पौण्ड के वज़न से अधिक होने के कारण फेंक दिया गया है।'

इस पर साहब ने कहा- उसे उठाकर प्लेन में रख दो।'

अगर यह गुण अंग्रेज़ों में न होता तो उन्हें कौओं-चीलों के आगे फेंक दिया जाता।

अब्दुर रहमान इस बार चिल्लाकर कहने लगा-'व खुदा सुपुर्दमत् साहब, व खुदा सुपुर्दमत्।' हवाई जहाज भीषण शब्द करने लगा।

अब्दुर रहमान का अनवरत ऊँचा स्वर मैं जहाज से सुन पा रहा हूँ।

हवाई जहाज से अब्दुर रहमान को बड़ा डर लगता है। इसीलिए खुदाताला से वह बार-बार निवेदन कर रहा है कि मुझे उसने उन्हीं के हाथों सौंप दिया है।

जहाज ने उड़ना प्रारम्भ कर दिया है। अन्तिम शब्द मुझे सुनायी पड़ा, 'सुपुर्दमत्'। अफ़गानिस्तान में मेरा पहला परिचय अफ़गान अब्दुर रहमान से हुआ था। अन्तिम दिन उसी अब्दुर रहमान ने मुझे विदा किया।

उत्सव में, विपत्ति में, दुर्भिक्ष में, राष्ट्रविप्लव में और अगर इस अन्तिम विदा को श्मशान कहूँ, तो अब्दुर रहमान ने श्मशान पर भी मुझे कन्धा दे दिया। स्वयं चाणक्य ने जिन कई परीक्षाओं का उल्लेख करते हुए अपनी सूची समाप्त की थी, अब्दुर रहमान उन सब कोटि की परीक्षाओं में पास हो गया। उसे अपना बन्धु नहीं कहूँगा, तो किसे कहूँगा?

बन्धु अब्दुर रहमान जगद्बन्धु भगवान तुम्हारा कल्याण करें। मौलाना बोले-'खिड़की से बाहर देखो', यह कहकर अपनी सीट उन्होंने मेरे लिए छोड़ दी।

ताककर ऐसा आक्षितिजान्त, दिग्दिगन्त तक विस्तृत बर्फ़-ही-बर्फ़ और एअरफील्ड के बीच में अब्दुर रहमान ही होगा, अपनी पगड़ी का छोर हवा में हिला-हिला कर मुझे विदा दे रहा हैं।

बहुत दिनों से साबुन न होने के कारण अब्दुर रहमान की पगड़ी मैली हो गयी है। किन्तु मुझे लगा चारों ओर फैली बर्फ़ की अपेक्षा शुभ्रतर है अब्दुर रहमान की पगड़ी। और उससे भी शुभ्रतर है अब्दुर रहमान का हृदय।

परिशिष्ट

अमानुल्ला खोये सिंहासन का उद्धार न कर पाकर अफ़गानिस्तान छोड़ जाने के लिए बाध्य हो गया। इतालवी के राजा ने उसे अपने राज्य में शरण दे दी। मुईन-उस-सुल्तान ने ईरान में शरण ग्रहण कर ली।

अमानुल्ला की तरफ से जिस सेनापति नें अँग्रेज़ों के साथ अफ़गान स्वाधीनता के लिए लड़ाई की थी उसका नाम है नादिर शाह। वह क्रान्ति के दिनों में फ्रांस में था। बाद में पेशावर आकर वहाँ के भारतीय व्यापारियों की आर्थिक सहायता और अपने शौर्यवीर्य द्वारा काबुल पर अधिकार कर इसका बादशाह बना। बाच्चा को संगीतों द्वारा मार दिया गया। बाद में उसे फाँसी पर लटका दिया गया।

यह सब बातें मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ी थीं।

देश आकार मुझे पता चला कि मेरे आत्मीय केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद के सदस्य मरहूम मौलवी अब्दुल मोतिन चौधरी की नाराज़गी देखकर भारत सरकार ने सर फ्रांसिस को आदेश (या अनुरोध) दिया था कि मुझे देश भेजने की व्यवस्था करें।

मैं काबुल छोड़ने के बहुत दिन बाद ही ब्रिटिश लीगेशन में बहुत से असहाय भारतीयों को काबुल में छोड़कर भारतवर्ष पहुँच पाया।

इस बहादुरी के लिए फ्रान्सिस थोड़े दिन बाद ही खिताब और प्रमोशन पाकर इक बदली पर चला गया था।

मौलाना ज़ियाउद्दीन ने भारतवर्ष लौटकर शान्ति निकेतन में अध्यापक का कार्य स्वीकार कर लिया। उन्होंने कई गवेषणात्मक निबन्ध लिखे हैं (फारसी में लिखे ब्रजभाषा के एक प्राचीन व्याकरण का प्रकाशन उनका अन्यतम कार्य है) और गुरुदेव की कई कविताओं का फ़ारसी में बहुत उत्तम अनुवाद भी उन्होंने किया है।

अत्यन्त दुःख का विषय है, वे अल्पायु में ही मर गये। उनके अकाल प्रयाण के उपलक्ष्य में शान्ति निकेतन में आयोजित शोक सभा में गुरुदेव ने आचार्य के रूप में जो कुछ कहा था, उसकी अनुलिपि 'प्रवासी' में प्रकाशित हुई थी। रवीन्द्र रचनावली के चौदहवें खण्ड में वह आलेख पुनर्मुद्रित हुआ है। गुरुदेव द्वारा रचित 'मौलाना ज़ियाउद्दीन' कविता यहाँ विश्व भारती की अनुमति से छापना मुझे अच्छा लग रहा है:

मौलाना ज़ियाउद्दीन

कभी-कभी किसी अवसर पर

निकट आकर तुम खड़े हो जाते थे,

'अरे मौलाना' कहकर तुम्हारें मुँह की ओर ताकने लगता था,

फिर हँसकर कहता था, 'आओ बैठो ना'

दो-चार मामूली बातें,

कुछ घर गृहस्थी के प्रश्न

तुम्हारा गम्भीर हृदय नीरव ही रहता था,

बाद में तुम्हारे साथ हास-परिहास होता।

तुम्हारा गम्भीर प्रेम कितना गहरा था,

कितने शब्द तो अनकहे ही रह गये

आज जब तुम चिरकाल के लिए चले गये हो,

मैं यह बात अच्छी तरह जान पा रहा हूँ।

रोज़ के तुच्छ ख्यालों में

तुम्हारा आना-जाना सामान्य रहता था,

उन्हें खो देने से कितना कुछ चला गया है,

आज उन्हें कहने की भाषा खोजे नहीं मिल रही है।

तुम्हारे जीवन की बहुत-सी साधनाओं का

जो पण्य द्रव्य है, उसे लादकर

मध्य आयु के वातास में मैंने
तुम्हारी नयी तटी को बहा दिया है,
जैसा भी हो, मैं अपने हृदय में जानता हूँ,
उसका इतना मूल्य नहीं है,
जिसके बदले में तुम्हारी स्मृति को
अपना नित्य ठिकाना मिल जाए-
यही बात बार-बार याद कर
आज मेरे प्राणों में धिक्कार वाणी उठ रही है-
एक अनजान व्यक्ति का परम मूल्य
अरे कहीं पर भी नहीं है।
इस अवहेलना की जो वेदना है, उसे समझाने के लिए
कहाँ से खोज लाऊँ
छुरी जैसा सहज आघात, वैसी
ही सहज वाणी।
किसी को कवित्व का वरदान मिलता है, किसी को वीरत्व,
किसी को अर्थ की ख्याति,
कोई प्रजा का सुहृद और सहायक होता है,
अथवा कोई राजा का जाति भाई
पर, तुम अपने बन्धु जनों को
माधुर्य से भरकर उन्हें प्रत्युत्तर दिया करते थे
निःशेष होते-होते फिर भी उस ख्याति
का बढ़ते जाना रह ही जाएगा।
मेरे आषाढ़ में जिस मालती के फूल
आनन्द महिमा में
अपना दान निःशेष कर

धूल में मिल जाते हैं-
आकाशे आकाशे, वातासे-वातासे
वे हमारे आसपास
अपनी सौरभ-विश्वास में भरकर
तुम्हारा विरह बिखेरते हुए
चले जा रहे हैं।

दीन मुहम्मद का भ्रमण वृत्तान्त

अंग्रेजी से बांग्ला रूपान्तर और सम्पादन अरुण नाग

बांग्ला से अनुवाद - रामशंकर द्विवेदी

दीन मुहम्मद का यह भारत वृत्तान्त उन्होंने इंग्लैण्ड में रहकर सम्भवतः वहाँ के ही पाठकों के लिए लिखा था। यह अँग्रेजी में किसी भारतीय द्वारा लिखी पहली प्रकाशित पुस्तक थी। इसका अनुवाद अँग्रेजी से बांग्ला में अरुण नाग ने और बांग्ला से हिन्दी में श्री रामशंकर द्विवेदी ने किया है। अरुण नाग ने वृत्तान्त के प्रकाशित अंशों के आरम्भिक दो भागों में दीन मुहम्मद के वृत्तान्त का सन्दर्भ और उनका जीवन परिचय दे दिया है। ने वृत्तान्त के बीच-बीच में भी अपनी ओर से कुछ जोड़ देते हैं। पाठक उसे पहचान लेंगे।

एक भारतीय व्यक्ति नाम दीन मुहम्मद, १७८४ ईस्वी में अपनी मातृभूमि से इंग्लैण्ड जाता है। अर्थात् राजा राममोहन राय की विख्यात विलायत यात्रा से सैंतालीस साल पहले। इंग्लैण्ड यात्रा ही दीन मुहम्मद का सबसे बड़ा कृतित्व नहीं है। उनके पहले भी बहुत-से भारतीय वहाँ गये थे।

१६१६ ईस्वी में चर्च ऑफ इंग्लैण्ड ने जिस पहले भारतीय को लन्दन में ईसाई धर्म में दीक्षित किया था, वह शुरू में पश्चिमी भारत का रहने वाला था। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में और अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक विज्ञापन से, यद्यपि यह बिरला उदाहरण है, लन्दन में भारतीय नौकर और क्रीतदास बालकों की खबर मिलती है। यूसुफ अमीन नामक एक आर्मेनियायी के साक्ष्य से यह पता चलता है कि १७४० ई. तक वंगदेशीय युवक लन्दन में चिमनी साफ़ करने वाले मजदूर हो जाएँगे, इस आशा में जहाज पर चढ़ जाते थे। अठारहवीं शताब्दी में लश्कर अथवा भारतीय खलासी का होना जिनमें से अधिकतर बंगाली मुसलमान होते थे, लन्दन में एक सुपरिचित दृश्य होता था। अंग्रेज़ साहब लोगों में जब कोई-कोई देश वापस जाते थे, अपने साथ अपने विश्वस्त भारतीय नौकरों को भी ले जाते थे, कोई-कोई पत्नी भी ले जाते थे। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में लन्दन में, बिना किसी आपत्ति के यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीयों की संख्या पाँच हजार थी, इनमें से अधिकतर भृत्य और खलासी थे।[1]

इनमें से किसी ने भी अपने अनुभवों का वृत्तान्त नहीं लिखा। ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती थी क्योंकि ये लोग कितने साक्षर होंगे, इसमें सन्देह है। जिन्होंने लिखा भी, वे समाज में थोड़े ऊँचे तबके के थे। जैसे मिर्ज़ा इतिसाम-उद-दीन। उनका भ्रमण काल १७६६ की जनवरी से १७६९ अक्टूबर अथवा नवम्बर तक का है। उसके काफ़ी दिनों बाद १७८५ ईस्वी में उन्होंने अपनी भ्रमण कथा लिखकर समाप्त की। उनकी पुस्तक का नाम था सिगर्फ-नामा-ई-विलायत। [2]मिर्ज़ा इतिसाम-उद-दीन मुगल बादशाह द्वितीय शाह आलम के दूत बनकर इंग्लैण्ड गये थे, ईस्ट इंडिया कम्पनी बादशाह के विरुद्ध जो षड्यन्त्र कर रही थी, उस सम्बन्ध में सम्राट तृतीय जार्ज का बादशाह को समर्थन मिल जाए, इसका कोई उपाय निकालने। प्रसंगतः उन्होंने भी १७६६-६७ ईस्वी में लश्करों का वही परिचित दृश्य देखा था, वे लोग जहाँगीर नगर और चटगाँव के रहने वाले थे और दूसरे एक व्यक्ति मुंशी इस्माईल,

इतिमास-उद-दीन की तुलना में एकदम मामूली स्तर के, इंग्लैण्ड में १७७२ के मध्य से लेकर १७७३ के मार्च तक रहे थे। उनकी भ्रमण कथा का नाम है तारीख-ए-जदीद, १७७३ ईस्वी के नवम्बर मास में लिखी हुई।[३] वे बंगाल में ईस्ट कम्पनी के एक कर्मचारी क्लोद रसेल साहब के फारसी भाषा के मुंशी के रूप में इंग्लैण्ड गये थे । साहब लोगों के सेवक होकर कितने भारतीय उस समय इंग्लैण्ड गये थे क्लोद रसेल के साथ जाने वाले लोग, उसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है। मुंशी के अलावा उसके साथ गये थे खानसामा और सरकारी अमला। खुद मुंशी के साथ उनके दो नौकर गये थे। सफर करने वालों में सबसे परिचित नाम था मिर्जा अबू तालिब खान इस्पहानी का एवं उनका विख्यात भ्रमण वृत्तान्त था मसीर-ए-तालिबी फी विलाद-ए-आफरन्जी।[४] अवध के नवाब-बजीर के पुराने उच्च पदस्थ एक कर्मचारी इंग्लैण्ड गये थे, ख्यातनाम फारसी कोषकार कैप्टन रिजर्डसन के आमन्त्रण पर उनके साथी होकर। उन्होंने अपना देश छोड़ा था १७९९ के फरवरी मास में, फ्रांस होते हुए वे समुद्री रास्ते से इंग्लैण्ड पहुँचे थे और कलकत्ता वापस आये १८०३ ईस्वी के अगस्त माह में। उनकी भ्रमण कहानी के समाप्त होने का समय है १८०४-०५। यद्यपि दीन मुहम्मद के बाद जाने पर भी इस निबन्ध में उनकी प्रासंगिकता का कारण यह है कि वे आयरलैण्ड भी गये थे और उस समय दीन से उनकी भेंट भी हुई थी, इसका उल्लेख उन्होंने अपने भ्रमण-वृत्तान्त में किया है। प्रायः इसी समय के एक अप्रकाशित भ्रमण वृत्तान्त का पता चला है[५] और दूसरा कोई अभी भी खोजा नहीं जा सका है।

इन सभी भ्रमण वृत्तान्तों की सामान्य रूप से दो विशेषताएँ हैं, विषयवस्तु के रूप में इंग्लैण्ड का परिचय और अपने भ्रमण-पथ की कहानी दी गयी है। दूसरी विशेषता है लिखने का माध्यम अपनी भाषा है। वैयक्तिक जीवन का एक और वैशिष्ट्य लक्ष्य और वह यह कि सभी अपने देश लौट आये थे। दरअसल ये तीनों विशेषताएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। स्वदेश के लोग अचीन्हे विदेश की कहानी सुनने को उत्सुक थे, अगर अपना भ्रमण वृत्तान्त देशी भाषा में न लिखा जाता और वे लोग अपने देश न लौटते, तो वे लोग ग्रहण करने वालों के पास अपने अनुभव कैसे पहुँचाते ?

इनके साथ दीन मुहम्मद की समानता सिर्फ इस बात में है कि वह एक भारतीय है, बाकी बातों में वह इन सबसे अलग है। कारण, उसके भ्रमण-वृत्तान्त की विषयवस्तु भारत और भारतीयता है। उनकी भाषा अंग्रेज़ी है और उन्होंने दुबारा कभी भारत की धरती पर पैर नहीं रखा।

पच्चीस वर्ष की उम्र में दीन मुहम्मद इंग्लैण्ड गये और जाने के पहले वे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फौज में सूबेदार के पद पर नियुक्त थे। पलासी के युद्ध के बाद उन दिनों ब्रिटिश अपने पंजे फैला रहा था, उसी कार्य के उपलक्ष्य में उन्हें बहुत से स्थानों पर जाना पड़ रहा था। विलायत पहुँचने के दस वर्ष बाद जब वे अंग्रेजी भाषा में पूरी तरह पारंगत हो गये, उन्होंने दो खण्डों में अपना भारत-भ्रमण-वृत्तान्त लिखा जो "The Travels of Din Mahomet" १७९४ ईस्वी, इस नाम से आयरलैण्ड के कोर्क शहर से मुद्रित और प्रकाशित हुआ।

आज के दौर में हम बिना किसी प्रयास के दीन मुहम्मद की पुस्तक 'अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम पर्व में एक भारतीय सैनिक के अनुभव' को एक दूसरा नाम भी दे सकते हैं। किन्तु यह नाम देने पर उस पुस्तक के साथ अन्याय होगा। वास्तव में दीन मुहम्मद की पुस्तक इससे कुछ अधिक है। साधारण रूप से लोग भ्रमण कहानी लिखते हैं, विदेश को अपने देशवासियों से परिचित कराने के लिए किन्तु विदेश में बैठकर विदेशी भाषा में अपने देश का वृत्तान्त लिखने का एक ही उद्देश्य हो सकता है, स्वदेश का परिचय विदेशियों को देना।

इसलिए, दीन मुहम्मद की पूरी पुस्तक में भारत-भ्रमण-वृत्तान्त के साथ मिला हुआ है भारतीय समाज, धर्म, आचार-विचार, मनुष्य, वन-सम्पदा, पेड़-पौधे और जीव-जन्तुओं से जुड़ी हुई अनेक खबरें। जातीय चरित्र की दृष्टि

से इस तरह की रचना विरल है।

दीन मुहम्मद की पुस्तक का एक और सौन्दर्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, यही किसी भारतीय की लिखी हुई अंग्रेजी की पहली पुस्तक है। भारतीयों का अंग्रेज़ी सीखना और उसमें लिखना, इन सबको लेकर आजकल काफी अनुसंधान हो रहे हैं। मेरी निगाह में इस तरह के सभी तो आये नहीं हैं, फिर समाज के एक बहुत बड़े भाग के लिए दीन मुहम्मद अज्ञात हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

नज़र में न आने की ही बात है, एक तो यह पुस्तक अत्यन्त दुर्लभ है, पूरी दुनिया में इसकी कुछ ही प्रतियाँ मिलती है। इसका आकार अत्यन्त छोटा है, डूयो डेसिमो साइज, मोटे रूप में ६×३¾ इंच। पहले खण्ड की पृष्ठ संख्या १६०+३२ और दूसरे खण्ड की पृष्ठ संख्या १६२+२० है। पुस्तक का पूरा नाम है, The Travels of Deen Mahomet, A Native of Patana in Bengal, through several parts of India, while in the service of The Honourable the East India Company लेखक के नाम के स्थान पर लिखा हुआ है, Written by Himself in a series of letters to a friend. बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत पटना निवासी एक देसी व्यक्ति दीन मुहम्मद की भारत के विभिन्न भागों की यात्राएँ। यह यात्राएँ तब की गयीं जब वह प्रतिष्ठित ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में था। यह पुस्तक एक मित्र को लिखे गये पत्रों के रूप में लिखी गयी है। लेखक के नाम के स्थान पर लिखा हुआ है, लेखक द्वारा स्वयं लिखी गयी। अन्तिम वाक्य का अर्थ है, यह पुस्तक कुल अड़तीस पत्रों के आकार में लिखी गयी है। एक पत्र का अर्थ है एक परिच्छेद। दीन ने स्मोलेट का 'हम्फ्री में क्लिंकर का अभियान' पुस्तक पढ़ी थी या नहीं (१७७१), इसका हमें पता नहीं है, फिर भी "Epistorary" नाम की उनकी पुस्तक अठारहवीं शताब्दी की एक अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक थी। दीन की पुस्तक कोर्क शहर में छपी थी। दीन उस समय वहीं रह रहे थे, उत्सर्ग पत्र की तारीख और स्थान १५ जनवरी, १७६४, कोर्क, साउथ माल था।

दीन विदेशियों के लिए भारत की कौन-सी छवि आँकना चाहते थे ? इस प्रश्न का उत्तर निश्चय ही उनकी रचना से ही मिल सकता है। फिर भी एक प्रकार से यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि उनके विशेष दृष्टिकोण के चुनाव को नियन्त्रित करने वाला उनका आनुमानिक पाठक वर्ग है। कुल मिलाकर कितनी प्रतियाँ छापी गयी थीं, यह कहना कठिन है, तीन सौ से अधिक अग्रिम ग्राहकों की सूची पुस्तक में ही छपी हुई है, उनमें से एक व्यक्ति ने एक सौ पुस्तकों का सेट खरीदा है, एक ने बीस पुस्तकों का और एक दूसरे व्यक्ति ने तीन पुस्तकों का। किन्तु दामों का कोई उल्लेख न होने के कारण यह अनुमान लगाया जाता है कि इस तालिका से बाहर के ग्राहकों के लिए अधिक प्रतियाँ उपलब्ध नहीं थीं।

ग्राहकों की तालिका से ग्राहक लोग किस श्रेणी के हैं, उसका एक अन्दाज़ा उनकी सम्मानजनक उपाधि से लगाया जा सकता है। ये उपाधियाँ हैं, नाइट, लॉर्ड-लेडी, बाईकाउण्ट, मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट, हाई-शरीफ, काउन्सिलर, बिशप, डॉक्टर, मेज़र, कर्नेल, रेवरेण्ड इत्यादि अन्ततः चालीस जन ग्राहक। अर्थात् अभिजात और शिक्षित समाज उनकी पुस्तक पढ़ना चाहता था। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी, भारत के सम्बन्ध में ब्रिटिशवासियों की उत्सुकता उस समय धीरे-धीरे बढ़ रही थी। पलासी युद्ध के तुरन्त बाद, उसका परिणाम भविष्य में कितनी दूर तक जाएगा, इसे अपने देश में बैठे अंग्रेज़ों में कितने लोग समझ सके थे, इसमें सन्देह है किन्तु बक्सर युद्ध के बाद भारत के सीधे-सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन होने की आवश्यकता और परिस्थिति दिखायी देने लगी थी, इसे अराजनैतिक वर्ग के अंग्रेज़ों के अन्ततः एक भाग ने अनुभव कर लिया था, इसे एडमंड वार्क और वारेन हेस्टिंग्स पर चलने वाले मुकदमे के जवाब और उस पर जनसाधारण की प्रतिक्रिया से जाना जा सकता है।

जो भू-खण्ड धीरे-धीरे ब्रिटिश के अधिकार में आता जा रहा था, उसमें अपना भाग्य आजमाने वालों ने यहाँ धीरे-धीरे आना शुरू कर दिया था, उस देश के सम्बन्ध में उत्सुकता तो स्वाभाविक थी, विशेष रूप से कहीं वह देश Exotic Orient अर्थात् जादू डालने वाला हुआ तो, हालाँकि उससे बचने या उससे निजात पाने के साधनों का नितान्त अभाव था। अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में कितने अंग्रेज यहाँ आये थे अथवा भारत के बारे में पुस्तकें ही कितनी निकली थीं ? यद्यपि जो कुछ जाना जा सका, या जाना जा रहा था, वह अत्यन्त रोमांचक और लुब्ध करने वाला था। उस देश में साँप, बाघ, हाथी, फकीर, सपेरे, बाजीगर भीड़ लगाये हुए हैं, सोने-चाँदी की प्रचुरता है, कबूतर के अण्डे जैसे आकार के हीरे-मोती के हार गले में पहने हुए नवाब लोग अर्द्धसहस्त्र महिलाओं वाले हरमों का पोषण करते हैं, भयंकर देव-देवियों और गाय, साँप, बन्दरों की लोग पूजा करते हैं स्त्रियाँ सती होकर जल मरती हैं और शिशुओं को जल में फेंक देती हैं। विशाल वटवृक्ष और ताड़-नारियल वृक्षों के नीचे खड़े लोग कानून का राज्य स्थापित हो, इसकी प्रतीक्षा में हैं।

इस तरह से इस अजब और अजीब देश की धारणा को दीन मुहम्मद ने जड़ से उखाड़ फेंका हो, ऐसा नहीं है। वरन् उसने इन्हीं सब विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कर अपने भ्रमण वृत्तान्त के मूल सुर को बरकरार रखा है। इसलिए विलायत में दीन की पुस्तक के समादृत होने के पर्याप्त कारण थे। यह कोई श्वेतांग अंग्रेज़ की पुस्तक नहीं थी जो उस देश के हालचाल, रीति-नीति समझने में भूल करेगा। ठेठ भारतीय की विशुद्ध रचना है। । native of Patana पद Bengal, बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत पटना निवासी एक व्यक्ति की रचना, जिसे उसने स्वयं लिखा है, Written by Himself ये शब्द इसीलिए शीर्षक के पन्ने पर बड़े अक्षरों में छापे गये हैं। दीन का उद्देश्य क्या था, भारत के बारे में ब्रिटिशों के अज्ञान को दूर करना अथवा इस अज्ञान का सदुपयोग करना, इस प्रश्न को अभी रहने दीजिए, अन्ततः यह जान लीजिए कि प्रवासी दीन की 'भारत और भारतीय' नाम की पूँजी थी। विदेश में उसकी जीविका का एकमात्र सहारा।

किन्तु फिर भी यूरोपियनों की 'पूर्व' के प्रति धारणा के साथ दीन का संघर्ष था। उसकी मुख्य युक्तियाँ तीन थीं, भारतीय सभ्यता और संस्कृति एक तो बहुत प्राचीन है। पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार जिन यूनानियों को सभ्यता का जनक कहा जाता है, वे लोग भी भारतीयों के पास शिक्षित होने आते थे। आज यूरोपियों की दृष्टि में भारत के जो सब आचार-विचार एकदम निरर्थक, व्यंग्य-विद्रूप और उपेक्षणीय लग रहे हैं, उनके पीछे भी गम्भीर दर्शन विद्यमान है। दूसरे, भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के मनुष्य और उनका सामाजिक व्यवहार यूरोप की अपेक्षा उच्च स्तर का है। उनकी अहंकाररहित सरलता, आनन्द-उत्सव में धनी-गरीब का बिना विचार किये सभी की भागीदारी आदि का उल्लेख तो दीन ने किया ही है, उसने यहाँ तक कहा है कि भारतीय वेश्याएँ तक यूरोपियन वेश्याओं जितनी निर्लज्ज और बेहया नहीं हैं। यूरोपीय सभ्यता कृत्रिम, भारतीय सभ्यता सहज, सरल, शुद्ध और प्रकृति के अनुरूप है, उनकी पुस्तक में इस तरह के लहज़े को लक्षित किया जा सकता है। तीसरे, भारतीय लोग भिखारी नहीं हैं, वे समृद्धिशाली और धनवान हैं। व्यष्टि और समष्टि दृष्टि से दोनों जगह ही यह प्रतिफलित हो रहा है। असमय अपने पिता के वियोग के फलस्वरूप अर्थाभाव के कारण दीन सेना में शामिल नहीं हुए थे अथवा वे लोग नवाब-वंश के साथ वैसे जुड़े हुए थे जैसे नवाब लोगों के सोने-चाँदी और हीरों से मण्डित तड़क-भड़क के साथ सम्भ्रान्त लोग अपने साथ भृत्यों के जुलूस को लेकर मार्ग में चलते थे। जो सामान्य किसानी लोग होते हैं, उनके भी छत्रवाहक होते हैं अथवा एक मामूली किसानी की फसल दो हज़ार बैल ढोकर लाते हैं। भारतीयों के जिस वस्त्रसम्भार के लिए यूरोप का धनी समाज भी लालायित रहता है घर के पर्दों से लेकर साज-पोशाक को पण्य द्रव्य के रूप में उसका इतना विस्तृत विवरण दिया

है दीन मुहम्मद ने कि उससे ऐसा लगता है कि उनका उद्देश्य यूरोप की महिलाओं में ईर्ष्या करना था। इसके साथ ईर्ष्या का एक कारण भारत की प्रकृतिक सम्पदा तो थी ही। १८५७ ईस्वी में ब्रिटिश-भारतीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी एक विभाजक रेखा थी। दोनों पक्षों में एक-दूसरे के प्रति विचार-भावना में काफी परिवर्तन घटित हो गया था। जो भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय राष्ट्र में जो जागृति उत्पन्न हो गयी थी, उसके प्रवक्ताओं ने दीन मुहम्मद के पहले दो तर्कों का उपयोग किया था। दोनों में विभाजन क्यों था इसके कारणों में दूसरे तर्क का कारण पहले तर्क को बताया गया है। तृतीय तर्क को भी थोड़े परिवर्तित रूप में प्रयुक्त किया गया है, उन प्रवक्ताओं का कहना है, जब इतनी समृद्धि है तो भारतीय इतने भिखारी क्यों हैं ?

हालाँकि दीन के साथ उनका अलगाव था। देशवासियों के मन में ब्रिटिश शासन का जो शोषण करने वाला रूप था अथवा आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोध का जो सबसे बड़ा सवाल पैदा हुआ, उस सम्बन्ध में दीन मुहम्मद एकदम मौन है। यह ठीक भी था, क्योंकि दीन के सम्पन्न उस विरोध में बहुत कम उग्रता थी, किन्तु उसके स्वदेश पर विदेशी लोग धीरे-धीरे कब्जा जमा रहे हैं और इस काम में वह भी सहायक है उस युद्ध में सदा न्याय ही हो रहा हो, ऐसा नहीं है, तब भी इस सम्बन्ध में उसके मन में कोई प्रश्न नहीं उठता था। विद्वान लोग कहेंगे, पूरे भारत को एक देश के रूप में मानना अथवा राष्ट्रीयता की चेतना बाद का अवदान है। पर, दीन की पुस्तक में वह धारणा धुँधली होने पर भी एकदम अनुपस्थित नहीं है। मुगल बादशाहों की अयोग्यता के कारण जो कुछ घटा है, उसके बारे में उनकी जितनी शिकायत है, प्राकृतिक वर्णन अथवा सामान्य देशवासियों का वृत्तान्त लिखते समय उन्हें उतना ही गर्व है, इसके अलावा यह बातें और भी लक्षित करने योग्य हैं कि 'भारतीय' अथवा 'देशीय' अथवा 'देश' शब्द का प्रयोग उन्होंने जहाँ तक सम्भव हुआ 'देश' के किसी खण्डित अंश के लिए नहीं किया है, किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि जिस सेना में दीन के जीवन का सबसे अधिक समय बीता है, उसका उल्लेख एकपक्षीय या एकांगी है। यहाँ तक कि उन्होंने असंख्य गोरे अफसरों का बखान करने के बाद भी देशी सेना या अफसरों में से किसी एक के भी नाम का उल्लेख नहीं किया है। उस समय और बाद में भी जो बहुत बढ़ गया था, सेना में काले-गोरे में भेदभाव बहुत स्पष्ट था। देशी सैनिकों की सहायता से ही मुट्ठी भर यूरोपीय सेना विजय प्राप्त कर पाती थी, दीन ने इसका उल्लेख किया है, फिर भी उस विशाल संख्यक सैनिकों को वंचित किया जाता था, दीन ने इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं की है। इसका कारण अगर सिर्फ़ यह माना जाए कि इंग्लैण्ड में रहकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध कुछ कहना असुविधाजनक होगा, तो यह भूल होगी। कारण दीन ने यूरोपीय विद्वानों के दम्भ अथवा अंग्रेज़ों की देशी धर्म के प्रति अवज्ञा के विरुद्ध मंतव्य प्रकट करना छोड़ा नहीं था। इस चुप्पी की जड़ें और भी गहरी हैं। दीन शुरू से ही एक सामान्य भारतीय सिपाही नहीं था, वह विशेष सुविधाभोगी लोगों में था, इसलिए वह सुविधा देने वालों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भूल नहीं पाया था।

मात्र दस-ग्यारह वर्ष की उम्र में वह अभी हाल में हुई अपनी विधवा माँ को छोड़कर कम्पनी फौज के एक कर्मचारी मि. बेकर का आश्रित बनकर सेना में आया था। यह थी देशी पैदल सेना की तृतीय ब्रिगेड, इसकी छावनी बाँकीपुर में थी। बेकर साहब उस समय क्वार्टर मास्टर थे। कैप्टन के पद पर पदोन्नत होने के बाद उनकी बदली दूसरी ब्रिगेड में हो गयी थी। पदोन्नति के बाद उन्होंने दीन को मार्केट-मास्टर के पद पर नियुक्त कर दिया। दीन की उम्र उस समय बाईस वर्ष थी। कैप्टन बेकर की सिफारिश पर दीन को एक ही वर्ष में जमादार का पद मिल गया। दूसरे वर्ष वह सूबेदार हो गया।

देशी लोगों के लिए सेना में सबसे निचला पद सिपाही का था, उसके बाद क्रमशः नायक, हवलदार, जमादार और सूबेदार का होता था। अन्तिम दो पद कमीशण्ड अफसर के होते थे, अर्थात् दीन को सीधे अफसर का पद मिल गया था। इनके वेतन का जो अन्तर लक्षित करने योग्य है। १७७७ ईस्वी में तैयार की गयी वेतन की दर, मूल वेतन और भत्ता (महँगाई भत्ता) मिलाकर कुल वेतन इस प्रकार था-

सिपाही - ६ रुपये

हवलदार - २० रुपया

जमादार - ३१ रुपया

सूबेदार - ६० रुपया

एक अफ़सर के पद पर सीधे नियुक्ति का उदाहरण विरल था। सामान्य रूप से पदोन्नति सेवा अवधि की लम्बाई और (वरिष्ठता) योग्यता के आधार पर की जाती थी। कितनी असामान्य गति से दीन की पदोन्नति हुई थी, उस पर थोड़ा विचार करने पर इसकी हकीकत समझ में आ जाएगी। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दौर में एक सिपाही की बीस वर्ष नौकरी करने के पहले ही नायक के पद पर पदोन्नति हो गयी, ऐसी घटना दुर्लभ थी। उस शताब्दी के मध्यभाग में यह देखने को मिलता है, एक व्यक्ति सोलह वर्ष की उम्र में सिपाही बनता है, सामान्य रूप से ५४ वर्ष की उम्र के पहले वह जमादार नहीं हो सकेगा। सूबेदार का पद पाने में उसकी उम्र ६० वर्ष की हो जाएगी। जनरल जॉन जेकब ने १८५४ ईस्वी में देशी अफसरों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा था- "The native, officers of the Bengal army (had) been purposely made powerless for evil or for good (and it was wrong too) blame these poor old gentlemen. Make them really efficient by promoting, not the oldest but the most able and deserving men."[6]

अर्थात् बंगाल सेना के देशी अफसरों को जानबूझकर अनुचित या उचित कारणों से शक्तिहीन बना दिया गया था (जो कि वास्तव में ग़लत था)। इन वरिष्ठ अच्छे अफसरों को पदोन्नति से वंचित करने के पीछे वही उद्देश्य उत्तरदायी था। अब इन्हें अधिक सक्रिय और कुशल बनाने के लिए वरिष्ठता का विचार किये बिना जो योग्य और पात्र व्यक्ति होंगे उन्हें पदोन्नति दी जाएगी। इसलिए दीन को उच्च पद पर पहुँचने के लिए वृद्ध नहीं होना पड़ा, फिर उसके मालिक की ताक़त भी तो थी।

पाठकों में कौतुहल हो सकता है, इसके अलावा दीन के भ्रमण वृत्तान्त का उद्देश्य समझने के लिए उनके प्रवास जीवन की कथा समझना बहुत ज़रूरी है। यह पुस्तक प्रकाशित हुई उसके प्रायः छह वर्ष बाद (१७९९ दिसम्बर में) मिर्जा अबू तालिब खाँ कोर्क शहर में कैप्टन बेकर के (दीन के पालनकर्ता कैप्टन बेकर के छोटे भाई) घर गये थे। मिर्जा ने लिखा है दीन मुहम्मद बेकर परिवार के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। वे बंगाल के मुर्शिदाबाद शहर के रहने वाले थे, केप्टन बेकर के एक बड़े भाई ने उनका बचपन से ही पालन-पोषण किया था और यूरोप लौटते समय उन्हें अपने साथ ले आये थे। उन्होंने दीन को अंग्रेजी सिखाने-पढ़ाने के लिए कोर्क के एक स्कूल में भर्ती करा दिया। वहाँ पर दीन का परिचय एक सुन्दर लड़की से हुआ, वह एक सम्भ्रान्त माता-पिता की बेटी थी। दीन ने उसे गुप्त रूप से भागने के लिए राजी कर लिया, दोनों लोग एक दूसरे शहर में गये और वहाँ दोनों ने शादी कर ली और बाद में कोर्क लौट आये। उनके कई सुन्दर सन्तानें भी हुईं। दीन की एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने अपना वृत्तान्त और भारत के आचार-विचार के बारे में लिखा था।

दीन के जीवन के अगले अंश की खबर १८०७ ई. से मिलती है। अड़तालीस वर्ष की उम्र में वे सपरिवार लन्दन चले आये।[७] १८११ ईस्वी में उन्होंने लन्दन के पोर्टमेन स्क्वायर में 'हिन्दुस्तानी कॉफी हाउस' खोला। उसमें भारतीय परिवेश में 'भारतीय' खाना परोसा जाता था और फर्शी-हुक्का में सुगन्धित भारतीय तमाखू पीने के लिए एक अलग कमरे की व्यवस्था थी। उत्साही ग्राहकों की कोई कमी नहीं थी, फिर भी व्यवसाय के एक वर्ष पूरा होने के पहले ही उसे एक साझीदार बनाना पड़ा और १८१२ ईस्वी में दीन ने अपने को दीवालिया घोषित करने का आवेदन कर दिया।

इस बार दीन अपने परिवार को लेकर समुद्र तट पर स्थित विख्यात पर्यटन केन्द्र ब्राइटन में चले आये। वहाँ पर उन्होंने १८१४ में स्नानागार खोला और अपने को भारतीय चिकित्सा पद्धति के अनुसार वाष्प स्नान और एक अच्छे मालिश करने वाले के रूप में प्रचारित किया। शुरुआत में ठीक से न चलने के बाद भी (क्योंकि इसी समय दीन को भारतीय दन्त मंजन और केशकाला करने वाले एक भारतीय शेम्पू और कलफ को बेचते हुए देखा जाता है) अन्त में उसका यही पेशा जीवन में सबसे अधिक सफल हो गया था। १८१५ ईस्वी में दीन ने एक विज्ञापन निकाला कि उसके हमाम में जो उपचार किया जाता है, उससे सभी तरह के वात और पक्षाघात ठीक हो जाते हैं। ज़रूरत पड़ने पर रोगियों के उसके यहाँ ठहरने और भोजन की भी व्यवस्था है। महिलाओं का उपचार श्रीमती मुहम्मद करती हैं। अभिजात वंश के अनेक स्त्री-पुरुष उसकी चिकित्सा से अत्यन्त सन्तुष्ट हें, सारी दवाएँ और चीज़ें विशुद्ध भारतीय हें और चिकित्सा पद्धति भी भारतीय हैं। इसी तरह का उसने एक विज्ञापन निकाला। असल में वाष्प स्नान और मालिश यही उसका मुख्य व्यवसाय था। उसके हमाम में यही सब चीज़ें की जाती थीं।

१८२१ ईस्वी में यह देखने को मिलता है कि उसका व्यवसाय खूब जम गया। एक धनवान साझीदार की सहायता से ब्राइटन की एक विशिष्ट जगह पर मुहम्मद का स्नानघर Mahomed's Bath नाम से उसका एक विशाल घर बन गया। उस घर में उपचार का बड़ा भव्य प्रबन्ध था। दीन ने अब यह प्रचारित करना शुरू कर दिया कि उसकी चिकित्सा पद्धति चिकित्सकों द्वारा अनुमोदित है। यहाँ तक कि उसने यह कहना शुरू कर दिया कि उसने कलकत्ते में दस वर्ष रहकर चिकित्सा पद्धति का अध्ययन किया है। लाभदायक देखकर उसके व्यवसाय के कुछ प्रतिद्वन्द्वी भी खड़े होने शुरू हो गये। तब दीन ने 'Original Indian' विशुद्ध भारतीय चिकित्सा पद्धति, इस शब्दबन्ध पर ज़ोर देना शुरू कर दिया। १८२० ईस्वी में जिन सब रोगों को उसने ठीक किया था, उसी पर दीन ने एक पुस्तक लिख डाली। उसके जो भूतपूर्व रोगी थे उन्होंने यह पुस्तक लिखी है। (Written by the patients themselves) यह उसने मुख्य पृष्ठ पर लिख रखा था। दो वर्ष बाद उसका नाम बदल गया, फिर दीन ने उसे अपने नाम से प्रकाशित कराया Shampooing, or, Benefits resulting from the use of Indian medicated vapour bath. As introduced into this country by S.D. Mahomed (A native of India) आदि। अर्थात् मालिश अथवा भारतीय औषधियों से युक्त वाष्प स्नान से मिलने वाले फायदे जिन्हें एक भारतीय एस. मुहम्मद ने इस देश में प्रवर्तित किया है। इसमें लक्षित करने योग्य है 'शेख' जिसे उसने अपने नाम के साथ जोड़ दिया और श्छंजपअम वि प्दकपंश भारत का खाँटी व्यक्ति- इसी से उसका काम चल गया था। १८२६ और १८३८ ईस्वी में इस पुस्तक के और भी दो संस्करण प्रकाशित हुए थे। तब इंग्लैण्ड के राजपरिवार के सदस्य भी उसके पास उपचार के लिए आने लगे थे।

१८३० ईस्वी में दीन ने अपने पुत्र दीन के लिए लन्दन में एक स्नानघर खोल दिया। सम्भवतः १८३६ ईस्वी में उसके मर जाने के बाद वर्ष भर में उसका स्वामित्व बदल गया था। उसके साथ प्रतिद्वन्द्विता करते ही शायद दीन ने अब लन्दन में आकर अपना व्यवसाय शुरू किया। वह १८३८ ईस्वी का वर्ष था, उस समय दीन की उम्र ७६ वर्ष थी, उस

*यहाँ इसका आशय बंगाल प्रान्त से है।

समय उसमें काम करने की अधिक ताकत नहीं रह गयी थी। १८४३ ईस्वी में यह देखने को मिलता है कि वह अपने पुत्र होरेशियो को सारा भार देकर स्वयं व्यवसाय के काम से पूरी तरह हट गया।

इसी बीच अनेक कारणों से उसके परिवार पर आर्थिक संकट घिर आये। १८४४-४५ ईस्वी में व्यवसाय के सम्भवतः अन्तिम विज्ञापन जारी होते हैं, पुराने दिनों की तरह उसके तथा उसकी स्त्री के नाम से, किन्तु उन दिनों उसका व्यवसाय अन्तिम स्थिति में पहुँच गया था। जो कुछ बच रहा था, उसकी देखभाल उसकी एक और सन्तान आर्थर ही करता था।

दीन की मृत्यु १८५२ ईस्वी में ६२ वर्ष की उम्र में हुई। एकाध अखबारों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था। दीन का नाम और उसके हमाम की स्मृति आज भी ब्राइटन की उसी जगह पर बने एक होटल में बनी हुई है। उस होटल की एक पानशाला का नाम Sake Dene cocktail launge १९८० ईस्वी के दशक में उसकी यादगार में एक तुर्की हमाम भी उसके साथ जोड़ दिया गया।

२

दीन का भ्रमण वृत्तान्त बचपन से शुरू होता है और उसका अन्त होता है, जब उसकी आयु पच्चीस वर्ष की थी। उसके दस वर्ष बाद उसकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। जिस तरह के सूक्ष्म तथ्य उसने दिये हैं, जैसे सेना छावनी के पदाधिकारियों के नाम, एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी, शोभा यात्राओं का विशुद्ध वर्णन, यहाँ तक कि ढाका की तोपों की नाप और वजन, इनसे सन्देह होता है, क्या इन सब को उसने अपनी स्मृति से लिखा है ? यह तो प्रायः असम्भव है। हो सकता है उसने या कैप्टन बेकर इन दोनों में से किसी ने इसका ब्यौरा रखा हुआ हो और इस पुस्तक को लिखते समय उसकी सहायता ली गयी हो। कहने में कोई हर्ज नहीं हैं कि उसके द्वारा दिये गये तथ्य पूरी तरह सटीक नहीं है, इसके कारण अनेक हो सकते हैं।

अपने अनुभव और दूसरे के पास से संग्रहीत तथ्यों में दीन ने कोई फ़र्क नहीं किया है, उस तरह का छोत-छात वाला मार्ग उसका नहीं था। ऐसा लगता हैं। दिल्ली, बम्बई और सूरत शहर उसने नहीं देखा था, हालाँकि उसके वृत्तान्त से यह अन्दाज लगाना कठिन है। ग्वालियर के युद्ध में वह नहीं था किन्तु उसका सूक्ष्म विवरण उसने दिया है।

वर्तमान निबन्ध दीन की मूल पुस्तक का संक्षिप्त बाड्ला अनुवाद है (उसी से यह हिन्दी अनुवाद दिया गया है) उसकी भाषा उस समय की रीति के अनुसार अलंकृत और विशेषण बहुल है। इसलिए अनुवाद में थोड़ी छूट ली गयी है। हालाँकि उससे भाषा की जड़ता पूरी तरह दूर नहीं हुई है। बहुत-सा विवरण अनावश्यक होने के कारण छोड़ दिया गया है। दीन ने प्रायः यूरोप और देशी में भेद करने के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे अगर देशी हो तो सिपाही (Seapoy) और अगर यूरोपीय हुआ तो सैनिक (Soldier) अथवा अगर गोरी आर्टिलरी हो तो आर्टिलरी और अगर देशी हो तो गोलंदाज (Gullendas)- इन शब्दों को अपरिवर्तित रखा गया है। 'मोसलिन' अर्थात् मलमल का हम जो अर्थ जानते हैं, दीन ने इस शब्द का प्रयोग सर्वत्र उसी अर्थ में नहीं किया है, उसके विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उसने सामान्य पतले कपड़े के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया है। तत्कालीन अंग्रेज़ी के अनुकरण पर भारतीय शब्दों की अंग्रेज़ी वर्तनी के लिखने में दीन बहुत लापरवाह और स्वेच्छाचारी था, उसने एक ही नाम की दो वर्तनी दी हैं। (जैसे यमुना नदी को उसने एक जगह Jemina और दूसरी जगह Jemma लिखा है।) स्थान नाम और व्यक्ति नाम कहीं-कहीं इनका वास्तविक नाम के समझने में बड़ी मुश्किल हो जाती है (जैसे सुकृत, Seekroot, रामजीवन, Ramjaun, मुबारक-उद-दौला Mamarah Dowlah। जिन सब स्थानों की भौगोलिक स्थिति और जिन

सब शब्दों के भारतीय रूप नहीं पहचाने जा सके उन सब नामों और शब्दों को अंग्रेज़ी अक्षरों में ही दिया गया है।

३

इस देश में आने के बाद से ही मैं लक्षित कर रहा हूँ कि आप लोग मेरे पूर्व जीवन का इतिहास और मेरे भ्रमण-वृत्तान्त को जानने के लिए बहुत उत्सुक हैं। मैं आप लोगों को संतुष्ट कर सकूँगा, इससे मैं खुश हूँ। बिना किसी कपट के मैं यह स्वीकार करूँगा कि जब मैं पहली बार आयरलैण्ड आया तब भारत के आकर्षक दृश्यों के परिप्रेक्ष्य में यहाँ का सब कुछ मुझे उल्टा और फीका लग रहा था, अब उन्हीं दृश्यों को मैं बड़े आनन्द के साथ पुनः देखूँगा। पूरी तरह अयोग्य होते हुए भी स्वदेशवासियों के आचार-विचारों का मैं वर्णन करूँगा, मुझे इस बात पर गर्व है कि मेरी धारणा अपने पूर्वपुरुषों की सरलता का बहुत-सा अंश आज भी वहन करती आ रही है, अन्ततः यूरोप के कुछ अहंकारी दार्शनिकों की तुलना में।

मैं यह स्वीकार कर रहा हूँ कि जिन पुरुषों के आचार-विचार एक सभ्य जाति के लिए अनुकरणीय हैं, उनके गुणावगुणों पर विचार करने की योग्यता मुझमें नहीं है, फिर भी आप लोग यह विश्वास करेंगे कि आपकी इच्छा पूरी करना ही मेरे इस कार्य का मुख्य उद्देश्य है। मेरे कई मित्रों का हठपूर्वक अनुरोध और अन्य कई लोगों से मिला उत्साह इसके दूसरे गौण कारण हैं।

ईश्वर की कृपा से साधारणतः भारतवासी आँखों और चित्त से खुशहाल तथा अन्य सब वस्तुओं के द्वारा ऐश्वर्यशाली हैं। ईडेन अर्थात स्वर्ग कैसा था यह केवल कवियों की कल्पना में मिलता है और यहाँ एक भ्रमणकारी प्रशंसा भरी आँखों से उन सब स्थानों को देखता है जिनकी तुलना सिर्फ मिल्टन की लेखनी से किये गये वर्णना में ही मिल सकती है। यहाँ पर आपको शस्यश्यामला उर्वर प्रान्तर देखने को मिलेंगे, पुष्पों की सुगन्ध से महकते बाग और सोने तथा हीरों की खानों से भरे समृद्ध विशाल भूखण्ड भी आप देख सकेंगे।

ईर्ष्या की जा सके ऐसा सब कुछ हमारे पास है, एक-दूसरे के प्रति दया और शुभेच्छा होने के कारण हम आज भी खूब सुखी हैं। हमारे यहाँ कोई जालसाजी या नीच हरकत करने वाला नहीं है। सारे पड़ोसियों को साथ लेकर ही हमारे सभी सामाजिक आनन्द उत्सव मनाये जाते हैं। एक व्यक्ति जब कोई समारोह करता है तब उसी के व्यवसाय में लगे हुए सभी व्यक्तियों को आमन्त्रित किया जाता है। दुनिया के अन्य देशों में जो लोक दिखाऊ सड़ागला व्यवहार खुले रूप में किया जाता है, उसे हमारे यहाँ के लोग अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हमारे यहाँ की स्त्रियाँ यूरोप की स्त्रियों की तरह चिकनी-चुपड़ी नहीं हैं, फिर भी कई गुणों में वे नारी जाति के आभूषण स्वरूप हैं।

अपने देश के आचार-व्यवहार का एक रेखाचित्र मात्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है, अब अपने बारे में कुछ बताता हूँ। १७५६ ईस्वी में गंगा के उत्तरी तट पर स्थित पटना नामक एक प्रसिद्ध शहर में मेरा जन्म हुआ था। वह देश में अंग्रेज़ी सरकार के अधिष्ठान और बंगाल की राजधानी कलकत्ता से आठ सौ मील दूर स्थित था। अपने वंश का विशेष इतिहास मैं नहीं जान पाया, उस समय मेरी आयु कम थी तभी मेरे बाबा (पिता) की मृत्यु हो गयी थी। जो कुछ पता चला वह यह है कि वे मुर्शिदाबाद के नवाबों के एक ही वंश में पैदा हुए थे। कैप्टन एडम्स के अधीन एक सिपाही-बटालियन में वे सूबेदार थे। पटना के पास एक छोटी जगह है, उसका नाम है Tarchpoor वहाँ पर एक छोटे से किले पर अपने अधीन एक कम्पनी सिपाहियों के साथ उस दुर्ग की रक्षा में वे नियुक्त थे। किला एक छोटी-सी नदी के किनारे था,जिसका स्त्रोत वहाँ से कई मील दूर एक ऊँची पहाड़ी भूमि में था।

१७६९ ईस्वी में उस क्षेत्र में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर वहाँ के राजाओं बुधमल (Boudmal) और उसके भाई खड्गसिंह (Corexin) ने इस अवसर पर छल-बल से यह निश्चय किया कि वे लोग राजा शिताब राय (Shitaproy) को उनकी निश्चित मालगुजारी देने में असमर्थ हैं। अपना कर न पाकर शिताब राय ने निर्धारित राजस्व देने के लिए विवश करने के लिए अपने कई लोगों को उनके पास भेजा। किन्तु बुधमल और अन्य लोग उनका विरोध करने के लिए कमर कसकर तैयार हो गये और उन्होंने अपने किले का आश्रय ले लिया। मेरे बाबा सेना के साथ घटनास्थल पर जो उनके किले से प्रायः बारह मील दूर था, पहुँचने का आदेश पाकर रवाना हो गये। Taharah[८] पहुँचने के तुरन्त बाद राजा बुधमल को बन्दी बनाकर कड़े पहरे में पटना भेज दिया, वहाँ पर उन्हें अपने इस व्यवहार के लिए कैफ़ियत देनी पड़ी, (मेरे पिता) बाबा युद्ध के मैदान में ही रह गये, शत्रुपक्ष को कुछ प्रमाण भी दिया अपने प्रतिपक्षी होने के शौर्य का। इसका परिणाम यह हुआ कि शत्रुपक्ष ने अपने मोर्चे को और भी मज़बूत बना लिया और उन्होंने दुगुनी ताक़त और उत्साह के साथ आक्रमण किया जिससे हमारे पक्ष के बहुत से सैनिक मारे गये, मेरे बाबा भी उनमें थे। फिर भी राजा की सेना की शक्ति समाप्त करने के पहले नहीं, जिनमें से कई लोगों ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। सैनिकों ने उनका उदाहरण देकर उत्साहित होकर खड्गसिंह को बन्दी बना लिया और किले पर अधिकार कर लिया।

मेरे दादा, बड़े भाई की उम्र उस समय सोलह वर्ष थी, अंग्रेज़ कम्पनी ने बाबा के रिक्त पद पर उन्हीं को नियुक्त कर लिया। कई माह बाद मैं और माँ पटना चले आये। दादा के परिवार की तरह धन-सम्पत्ति की ओर हमारा कोई बहुत खिंचाव नहीं था। बाबा से मिली माँ के पास कुछ सम्पत्ति थी, उसकी आमदनी से हमारा काम चल जाता था। विशेष रूप से नवाब परिवार, जिनके साथ बाबा की आत्मीयता थी, वे भी हमारी सहायता करते थे। पटना के स्कूल में मेरी कुछ पढ़ाई-लिखाई भी हुई थी।

पटना में हमारे घर के ही पास राजा शिताब राय का प्रासाद था। अकसर वे यूरोपियन भद्र पुरुषों के लिए बाल डांस और रात्रि भोज का आयोजन किया करते थे। मेरी इच्छा सेना में शामिल होने की थी। तीव्र आग्रह के साथ मैं इस बात की प्रतीक्षा करता रहता था कि कब कोई गोरी सेना का अफ़सर मेरे घर के सामने से निकलेगा। एक शाम को जब वे लोग जा रहे थे, मैं उनके पीछे-पीछे चला गया। प्रासाद के प्रहरी लोग मुझे बाबा के कारण पहचानते थे, उन्होंने मुझे रोका नहीं। चाय अथवा कॉफी पीने के बाद राजप्रासाद के बागान में नृत्य की महफिल जमती थी, उसके बाद शामियाने के नीचे सभी घेरा बनाकर बैठते थे, राजा सबके बीच में बैठते थे। कई बार वाद्य यंत्रों के साथ बाईजी का नाच होता था, किसी दिन राजा जादू का खेल दिखाते थे, जैसा यूरोप में मैंने कभी नहीं देखा था। रात्रि भोज का आयोजन विशाल स्तर पर होता था, उत्तम प्रकार के फल, अनेक प्रकार के पक्षियों का माँस और आइसक्रीम आइसक्रीम। कई लोगों का छुआ हुआ भोजन करना राजा के धर्म में वर्जित था। फिर भी वे फल खा लेते थे। समारोह की महफिल ख़त्म होने में रात के बाहर बज जाते थे।

यहीं पर मैंने सबसे पहले मि. बेकर को देखा था और पहली दृष्टि में ही मैं उनकी ओर आकर्षित हो गया था। मैं उनके पीछे लगा रहता था और वे भी मुझे नज़रंदाज़ नहीं करते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं यूरोपीयन लोगों के साथ रहना चाहता हूँ ? मैं तो राजी हो गया, पर मेरी माँ नहीं हुईं। मैं तो दुट्टाबन्दा था, इसलिए मैं साहब के साथ बाँकीपुर चला गया।

बाँकीपुर छावनी में चार रेजीमेंट सिपाही थे। एक रेजीमेंट गोरे सिपाहियों की थी, दो कम्पनी घुड़सवार सेना और एक कम्पनी आर्टिलरी (गोलंदाज) थी। सेनाध्यक्ष कर्नल लेसली, दूसरे पदाधिकारी थे मेजर मोरिसन। केप्टन लांडिक थे

अश्वारोहियों के अधिकारी और केप्टन डफ़ थे आर्टिलरी अफ़सर।

मैंने देखा इसके बाद दीन ने बाँकीपुर सैन्य छावनी का विस्तार से वर्णन किया है, शिविरों का सन्निवेश, अफ़सरों के बंगले, सैनिकों के निवास स्थान, बाँकीपुर में असैनिक गोरे अधिकारियों आदि का ब्यौरा। प्रसंगवशात उसने बताया है, भारत के सारे देशी लोग, उनके बीच में रहनेवाली महिलाओं का इतना सम्मान करते थे, इतना खयाल रखते थे, जो दुनिया में और किसी के लिए करना सम्भव नहीं था।

मुझे याद है उस वर्ष दुर्भिक्ष में बहुत से लोग मरे थे। भीषण गर्मी और अनावृष्टि से ज़मीन सूख गयी थी, बहुत से लोग रास्ते में मरे हुए पड़े थे। जिनके खेतों में कुँओं का पानी लगा दिया जाता था, उनमें खेती हो जाती थी, इसके अलावा और कोई कुछ नहीं कर पाता था। उन सब खेतों के मालिक थे नवाब और यूरोपीयन अफसर। उनके घर और आँगन में लोगों की भीड़ लग जाती। वे लोग चावल और अन्यान्य खाने की वस्तुएँ जितनी बचा पाते खाने को देते। किन्तु वे लोग इतने दुर्बल हो गये थे कि उसे भी सहन नहीं कर पाते और उनके सामने ही पड़े-पड़े मर जाते। अपने देश की धन-सम्पदा उनके कितने काम आयी थी। एक मुट्ठी चावल अगर उन्हें जरूरत के समय कहीं दिया जा सकता तो उसकी कीमत उनके सोने-हीरे की खानों से भी बढ़कर होती। माँ लौट जाने के लिए मुझ पर दबाव डाल रही थी, मेरा मन भी यह सब देखकर खराब हो जाता था, किन्तु वापस लौट आने की मेरी इच्छा नहीं होती थी। अन्त में माँ ने चार सौ रुपया दादा को देकर मि. बेकर के पास भेजा, उद्देश्य यह था कि वे रुपया ले लें और मुझे वापस चला जाने दें। मि. बेकर ने अपनी पालकी से मुझे माँ के पास भेज दिया और साथ में वह रुपया भी लौटा दिया। माँ रुपया वापस लेने को राजी नहीं हो रहीं थी, तब मैंने कहा, मैं कभी वापस नहीं आऊँगा, यह कहने पर माँ ने वह पैसा वापस ले लिया। मैंने उसे बहुत समझाया और कहा कि जैसे ही मुझे सुयोग-सुविधा मिलेगी मैं आपको देख जाया करुँगा, यह कहकर वापस आने के लिए उससे विदा ले ली।

बाँकीपुर में छह माह रहने के बाद कर्नल लेसली के पास दानापुर जाने का आदेश आया। उस आदेश के अनुसार सेना वहाँ से कूच कर दानापुर पहुँची वह १७६० ईस्वी की बात है। दानापुर में आठ रेजीमेंट थीं, दो यूरोपीयन सैनिकों की, बाकी छह देशी सिपाहियों की। एक छोटा-सा मिट्टी का किला था, सेना का निवास भी उसी के भीतर था।

दीन ने इस छावनी की काफी प्रशंसा की है, उसने कहा है यह भारत में सभी छावनियों से अच्छी थी। इसका विस्तार से वर्णन भी किया है, बाँकीपुर छावनी की तरह यहाँ भी गोरी पलटन और देशी सिपाहियों के रहने की जगह अलग-अलग थी, एक स्पर्धापूर्वक उसने कहा है, छावनी में जाने के रास्ते के एक ओर यूरोपीयनों के लिए निश्चित बाज़ार था और सिपाहियों के लिए दूसरा बाजार उनकी छावनी (Chaumnees) के पास था।

दानापुर में आठ महीने रहने के बाद समाचार आया कि कुछ मराठों (Marattoes) नें लूटपाट शुरू कर दी है। कर्नल मोर्गन ने सेना को तुरन्त कर्मनाशा (Chrimnasa) के लिए कूच करने का आदेश दिया। क्वार्टर-मास्टर लोगों ने (सैनिकों के आवास और खाने-पीने की व्यवस्था करने का दायित्व जिनके ऊपर था) यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी। रसद कुछ तो जल मार्ग से भेजी गयी, बाकी बैलगाड़ियों से। साथ चले मि. बेकर, जो स्वयं एक क्वार्टर मास्टर थे और अन्य अफ़सरगण। उनमें से हरेक के अधीन एक कम्पनी सिपाही मार्ग रक्षक के रूप में और सात सौ चाकर-नौकर जिन्हें सैन्य शिविर अन्यत्र हटाने के समय काम में लगाया जाता था। ये लोग देश की सबसे नीची जाति के लोग होते थे, जिन्हें उनके काम के अनुसार विभिन्न नाम दिये जाते थे, जैसे लश्कर (Lascars) कुली, भिश्ती

(Besties), झाड़ूवाला (Charwalleys)। मूल वाहिनी रवाना होने से एक दिन पहले ही ये लोग निकल पड़ते थे, साथ में रहते थे अनेक कारीगर, जैसे मोची, बढ़ई, लुहार, तम्बू लगाने वाले (दीन ने इन्हें Sail-makers कहा है, असल में ये लोग थे फटे तम्बुओं, शामियाना आदि की मरम्मत करने वाले) और अन्य मजदूर वर्ग के लोग। लश्कर वालों की पोशाक नीली होती थी, कुर्त्ता, पगड़ी, कमरबन्द और पतलून। इनका काम था तम्बू गाड़ना, उसे तानना, ऊँचा उठाना, हाथी, ऊँट, बैलगाड़ी में माल चढ़ाना और उतारना इत्यादि। जो लोग सबसे नीची जाति के होते थे उनका काम था सफ़ाई एवं छोटी-मोटी फरमाइशों को पूरा करना।

कई घण्टे चलने के बाद १७७१ ईस्वी के फरवरी महीने में हम लोग दानापुर से लगभग बारह मील दूर फलबाड़ी (Fulwherea) पहुँच गये। विराट छावनी, कुछ मिलाकर उसकी लम्बाई दो मील होगी। नौ भागों में बँटी हुई, दो बटालियन यूरोपीयन सेना थी, एक कम्पनी आर्टिलरी और छह रेजीमेंट सिपाही (कई कम्पनी मिलकर एक बटालियन बनती है और कई बटालियन मिलकर एक रेजीमेंट) पद के महत्व के आधार पर छावनी की व्यवस्था होती है। कर्नल ही सर्वोच्च अधिकारी होता है, उसे तीन खेड़ तम्बू मिलते हैं, दो सामने रखने के लिए, दो पहरेदारों के लिए और एक अस्त्र-शस्त्र रखने के लिए।

दीन ने इस सैन्य शिविर का विस्तृत ब्यौरा दिया है।

फुलवाड़ी में एक रात बिताते-न-बिताते, बगल के इलाके के कुछ छिछोरे लोग अफसर और अन्य लोगों के तम्बू में घुस गये और जो कुछ मूल्यवान सामान मिला उसे चुराकर भाग गये। मि. बेकर के बड़े तम्बू के पास सामान रखने के छोटे तम्बू में रखी एक पालकी में मैं सो रहा था। पालकी चार कहारों द्वारा ढोने वाली, खूब सुसज्जित, जिस पर चाँदी का काम किया हुआ था, उसकी कीमत अन्ततः चार सौ रुपया होगी। चोरों ने मुझे समेत उस पालकी को उठा लिया और आधे मील दूर तक उसे ले गये। उन लोगों ने पालकी का सारा साज-सामान खोल लिया, मेरे पास जो भी रुपया-पैसा था वह भी ले लिया, यहाँ तक कि एक पतलून छोड़कर मेरे जितने कपड़े थे वे भी ले लिये। ये सब निर्दयी बर्बर लोग इतने निष्ठुर थे कि वे पकड़ लिये जाएँगे, इस भय से वे मुझे भी मार डालना चाहते थे। उनके साथी इतने अमानवीय नहीं थे, इतनी कम उम्र का लड़का हमें कोई हानि न पहुँचा पाएगा, अन्य साथियों को यह समझाकर उन्होंने मुझे छुड़ा दिया। मैं एक दौड़ में शिविर में आकर सीधे मि. बेकर के पास गया। वे मेरे कारण बड़े चिंन्तित थे, वे मुझे वापस आया देखकर बड़े अचरज में पड़ गये। जब मैंने उन्हें पूरी घटना बतायी, बर्बरों में भी इतनी मनुष्यता है, यह जानकर उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

पहरेदारों ने उन चोरों का पीछा कर उनमें से कई चोरों को पकड़ लिया, उन्हीं से अन्य चोरों की भी खबर मिली। उनमें से अधिकतरों को पकड़कर उन्हें उचित दण्ड दिया गया। पहले तो अच्छी तरह उन्हें हण्टर मारे गये, बाद में उनके नाक-कान काट लिये गये।

आठवें दिन सवेरे फुलवाड़ी छोड़कर हम लोग कर्मनाशा के मार्ग पर चल पड़े। कर्मनाशा वहाँ से अभी भी ६० मील दूर थी। पहले दिन का अन्त होते-होते हम लोग तरवरिया (Turwheren) पहुँच गये, वहाँ पर इतनी बड़ी सेना को नदी (सोन) पार करने में तीन दिन लग गये। बड़ी गर्म हवा थी, रास्ता चलने में बहुत अच्छा लग रहा था, सड़क के दोनों तरफ फलों से लदे नाना प्रकार के वृक्ष छाया किये हुए थे, वृक्षों में केला, आम और इमली के पेड़ थे। रास्ते में अनेक कुएँ और झरने भी थे। इन सब अंचलों के भूतपूर्व निवासियों ने, जिनकी सभ्यता-सज्जनता के चिह्न आज भी यहाँ उपस्थित है, अपने उत्तराधिकारियों के लिए यह सब व्यवस्था की है। कुँओं आदि को यहाँ पवित्र मानने की प्रथा है

जिससे कोई अपरिणामदर्शी इन्हें प्रदूषित न कर पाये। इसी कारण से ये वर्ष-दर-वर्ष शुद्ध और पवित्र बने रहते हैं, धर्म के भय से कोई उन्हें अशुद्ध नहीं करता।

हम लोग फुलवाड़ी छोड़ने के पन्द्रह दिन बाद कर्मनाशा पहुँचे । मराठों को जब यह समाचार मिला तो वे भागे। कर्मनाशा खुला और समतल प्रान्तर था, उसके पास एक छोटी नदी (कर्मनाशा) गंगा में मिलने के लिए वहीं जा रही थी। यह अत्यन्त शान्त, सुन्दर जगह थी। यहाँ पर कई माह रहने के बाद, वहाँ से मुँगेर (Monghere) जाने का हुकुम आया। लगभग एक माह चलने के बाद जब हम मुंगेर से तीस मील के बीच में पहुँच गये, गंगा में ऊँचे शिलाखण्डों पर एक प्राचीन इमारत पर हमारी नज़र पड़ी। दूसरे दिन मि. बेकर, मि. वेसनार्ड और अन्य लोग शिकार करने गये, मैं भी इनके साथ लग गया। दोपहर के समय लौटने के रास्ते में घोड़ों को सईसों के हवाले कर नाव से हम लोग वहाँ गये। कई वर्षों से वहाँ एक फ़कीर रह रहा था। इलाके के कई लोग उसके पास आया करते थे। हमें आया देखकर वह फ़कीर निकल आया। वह लम्बी बाँहों का एक ढीला-ढाला टखनों तक जाफरानी रंग का अलखल्ला पहने हुए था, सिर पर सफ़ेद मलमल की छोटी टोपी थी। उसके चेहरे पर बड़ा शान्त भाव था, हाथ में जपमाला, छाती तक लम्बी दाढ़ी और सफ़ेद बाल, उसने हम लोगों से कहा, मेरे गरीबखाने में जो कुछ सूखा-सूखा है उसी से मैं आप लोगों का अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ। उसका निवास स्थान अत्यन्त परिष्कृत और साफ़-सुथरा था, उसने हम लोगों को कुछ आम आदि फल खाने को दिये। हम लोग भी बदले में कुछ दक्षिणा देकर लौट आये।

दूसरे दिन सवेरे हम लोग मुँगेर के किले पर पहुँच गये। यूरोपीयन ब्रिगेड सुन्दर, प्रशस्त बैरकों में चली गयी और सिपाही लोग छावनी में। दुर्ग की परिधि लगभग दो मील थी, उसकी आकृति चतुष्कोणी थी, एकदम गंगा के तट पर ही स्थित था। भीतर अफ़सरों और सेना के रहने की जगह थी, कासिम अली खान (Cossim Alli Cawn) के पुराने महल में रहते थे कर्नल ग्राण्ट। दुर्ग में घुसने के चार विशाल फ़ाटक थे, और उनकी पच्चीकारी दर्शनीय थी। भारत के अनेक स्थानों पर जिस तरह से सामान्य देशी लोग रहते हैं, दुर्ग से लगभग एक मील दूर वैसे ही नीची छतवाले, अँधेरे कुटीरों की पाँते थीं, उनके बाशिन्दों ने उन्हें तैयार किया था। थोड़ी दूर पर कारीगरों का एक समूह रहता था, जो घर-गृहस्थी की छोटी-मोटी चीजें बनाया करता था, इनकी बनायी हुई चीज़ें कलकत्ता तक बिकने जाती थीं।

मुँगेर के आसपास कई सुन्दर बंगले (Villa) कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा यूरोपीयनों के लिए तैयार, ग्रीष्मकाल में उनके रहने के लिए बने हुए थे। मील भर दूर मि. बेटमान का रमणीय आवास था, वहाँ पर भद्रजनों के सान्निध्य में कई दिन बिताए गये।

प्राचीन कीर्ति चिन्ह देखने के आग्रहवश हम लोग एक दिन पिपरिया (Peepaharea) गये, मुँगेर से बारह मील दूर। चतुष्कोणीय स्थापत्य था, संगमरमर के छोटे-छोटे पत्थरों से तैयार गोल खम्भों के ऊपर उन पत्थरों से निर्मित एक खण्ड था, उनके ऊपर पत्थर काटकर एक मेहराब बनायी गयी थी। इस पर कोई लिपि उत्कीर्ण नहीं थी। विशेष लक्षित करने योग्य घटना यह थी कि विशाल बाघ, अपनी सहज हिंस्र प्रकृति को त्याग कर हर सोमवार और बुधवार को पर्वत की तलहटी में बने अपने स्थान से निकलकर यहाँ आता था। रास्ते में यदि कोई मनुष्य मिल जाए तो उसे कोई क्षति नहीं पहुँचाता था, यहाँ तक कि बच्चे लोग भी उसके पास जाने में डरते नहीं थे। समाधि के नीचे वह अपनी पूँछ से झाड़ू लगा देता था। ऐसा लगता है जैसे प्राचीन काल के किसी धार्मिक व्यक्ति के भस्मावशेष इस समाधि में संरक्षित हैं। इस समाधि स्थल की लोग खूब भक्ति करते थे और वह तब और बढ़ जाती है जब आर्टिलरी के एक लेफ्टीनेंट अफ़सर की सहसा अकाल मृत्यु हो जाती है। असल में वह आया था अपने कौतूहल को दूर करने और जो लोग इन भस्मावशेषों के प्रति विशेष श्रद्धा निवेदित करते हैं, उनकी हँसी उड़ाने। उनकी आस्था को कुसंस्कारों का

फल एवं भ्रान्त धारणा बताकर उसने इतनी अवज्ञा की कि समाधि को वे लोग इतना पवित्र मानते हैं, इसलिए उसने समाधि पर पेशाब तक कर दिया। कुछ क्षणों में ही जैसे ही वह समाधि से कुछ पग आगे गया होगा कि जैसे किसी अदृश्य हाथ ने उसे घोड़े से जमीन पर पटक दिया। वाक्शक्ति हीन होकर वह वहाँ कुछ क्षण तो पड़ा रहा, मुँगेर ले जाने के कुछ देर बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। उपासना पद्धति अलग है सिर्फ इसलिए जो लोग अपने जैसे लोगों के धर्म को विचारों की संकीर्णता और जड़ीभूत अनुमान के आधार पर अपवित्र कर देते हैं, उनके लिए यह भयंकर सीख थी।

कर्नल ग्रान्ट ने कलकत्ता जाने का आदेश दिया, उसके अनुसार हम लोगों ने आवश्यक व्यवस्था निपटाकर १७७२ ईस्वी की शुरुआत में मुँगेर छोड़ दिया। पहले दिन हम लोग सीताकुण्ड पहुँच गये। मुँगेर से बारह मील दूर छोटे-से गाँव में कुल सात कुण्ड थे। दो की देखरेख ब्राह्मण लोग करते हैं एवं अन्य किसी अब्राह्मण को उनका जल छूने नहीं देते हैं। बाकी पाँच कुण्ड सभी के लिए थे। मुँगेर छोड़ने के पन्द्रह दिन बाद हम लोग भागलपुर (Bohogolpur) पहुँच गये। शहर के बाहर तम्बू आदि लगाकर शिविर लगाया गया। शहर में अनेक प्रकार के कारीगरों का वास था, मूलतः उन्हीं की रक्षा के लिए एक मिट्टी की गढ़ी है और वहाँ पर एक रेजीमेंट आधी सामरिक वाहिनी रहती थी। नेप्कीन, टेबुल क्लॉथ, पगड़ी के कपड़े, रेशम और सूत मिलाकर एक प्रकार का कपड़ा तैयार होता था, भागलपुर इसी के लिए विख्यात था। गवर्नर पेंलहेम यहाँ के शासनकर्त्ता हैं, हमारे अफ़सरों का उन्होंने खूब अतिथि-सत्कार किया। यहाँ पर हम लोगों को चार-पाँच दिन रुकना पड़ा। इसी बीच में मज़दूर लोग भागलपुर से सँकरी गली तक जो संकरा और ऊबड़-खाबड़ रास्ता था उसे साफ़-सुथरा बनाने के लिए वहाँ से रवाना होने के पहले हमें यह पता चला कि पाँच कम्पनी सिपाहियों को लेकर गठित एक वाहिनी सेना का दायित्व कैप्टन ब्रुक नामक एक अत्यन्त कर्मठ अफ़सर पर है। उन्होंने जगह-जगह पर मोर्चा बनाकर पहाड़िया (Pahareas) नामक एक बर्बर उपजाति, जो लोग भागलपुर और राजमहल (Rajamoul) के बीच वाले भाग की पर्वत श्रेणी पर रहते थे, उनके उपद्रवों को दूर करने का प्रयास किया था। पहाड़िया लोग शान्तिप्रिय निवासियों और असावधान राहगीरों के ऊपर अत्याचार करते थे। खुशी की बात यह थी कि ब्रूक के अथक परिश्रम से उनमें से कई लोग पकड़े गये और उन्हें उचित सज़ा भी मिली। उनमें से कुछ लोगों को तो खुलेआम बुरी तरह से कोड़े लगाये गये, अन्य लोग जो दुस्साहसी और अत्याचारी थे, उन्हें पर्वत पर फाँसी पर इसलिए लटका दिया गया, जिससे उनके साथी डर जाएँ।

हम लोगों ने रास्ते में हर आधे मील के अन्तर से एक अभागे की फाँसी पर लटकती देह देखकर फिर अपनी यात्रा शुरू कर दी। सँकरी गली और तेली गढ़ी (Tellie gurre) के विशाल तोरणद्वार को पार कर हम लोग राजमहल में पहुँच गये। हमारी वाहिनी का आकार बहुत विशाल था, पीछे की ओर बाजार वाले (Market people बाज़ार से रसद जुगाड़ करने और बेचने का जिनके ऊपर दायित्व था) पहाड़ी लोगों के एक दल ने उन्हें लूट लिया, तीर मारकर कई लोगों को मार भी दिया। पहरेदार सिपाहियों ने पीछा कर कई लोगों को मार दिया और तीस-चालीस लोगों को पकड़ कर भी लाये। दूसरे दिन सवेरे जब वाहिनी के हाथी वाले (Hotteewallies, हाथी के रक्षक), घास लेने वाले और बाज़ार करने वाले रोज़ की तरह पहाड़ पर हाथियों के खाना, घोड़ों के लिए घास और शिविर के लिए जलाऊ लकड़ी की जुगाड़ करने गये, तब इन उपद्रवी और बर्बर लोगों के एक दल ने उन लोगों पर आक्रमण कर सात-आठ लोगों की हत्या कर दी और तीन हाथी, उतने ही ऊँट, कई घोड़े और साँड लेकर चम्पत हो गये। किसी तरह से प्राण बचाकर हाथी रक्षकों आदि कुछ लोगों ने शिविर में आकर सेनाध्यक्ष को अपनी दुर्दशा की कहानी बतायी उन्होंने तत्काल तीन जन क्वार्टर-मास्टर के अधीन दो कम्पनी सिपाहियों को भेज दिया। सौभाग्य से उनमें से कुछ लोग खेतों में काम करते हुए मिल गये। जिन लोगों पर आक्रमण किया गया था उन लोगों ने उन्हें पहचान लिया। लक्षित किया

गया कि उनकी सहायता करने के लिए पहाड़ से दल-के-दल लोग उतरते आ रहे हैं। हमारे लोगों ने युद्ध की दृष्टि से अपने को व्यूह बन्द कर उन पर गोली चलाना शुरू कर दिया। उन बर्बर लोगों में कुछ मर गये और कुछ घायल हो गये। अधिकांश लोग हाथ में धनुष-बाण, तलवार के साथ थोड़े कमजोर प्रतिरोध के बाद हमारे उन्नततर साहस और व्यवस्था के सामने हार मानकर पहाड़ पर आश्रय के लिए भाग गये। आग जलाकर उन्होंने इतना धुँआ कर दिया जिससे उन्हें किसी भी तरह देखा न जा सके। किन्तु, हमारे वीर सिपाहियों ने विद्युत वेग से जाकर उनमें से लगभग दो सौ लोगों को पकड़ लिया और उन्हें शिविर में ले आए। कर्नल ग्राण्ट ने उन्हें भीषण दंड दिया। कई लोगों के तो नाक-कान काट लिये गये और बाकी को फाँसी दे दी गयी इस छोटी विजय की याद में उनके धनुष-बाण और बड़ी तथा चौड़ी तलवारें ले ली गयी। जिनका वजन कम-से-कम पन्द्रह पौंड (६.८१ किग्रा) था। दो हाथी वालों को पकड़ लिया गया था, और वे बच नहीं सके, उनका उद्धार खून से लथपथ बड़ी करुण स्थिति में किया गया, वे चलने-फिरने में असमर्थ हो गये। जिन जानवरों को वे लोग ले गये थे, वे भी घायल और खून से लथपथ हालत में मिले। घोड़ों और साँडों के खुरों में लोहे की कीलें ठोंक दी गयी थीं। सभी तरह का जतन करने के बाद भी वे पीड़ा से छटपटाते हुए अन्त में मर गये।

कलकत्ता के रास्ते पर रवाना होने के बाद हम लोग आ पहुँचे गोगाछि (Gouagochi)[90] में इसका नामकरण गंगा के तट पर स्थित एक विशाल काले गढ़ के ऊपर हुआ था। उससे तीन मील दूर हमारा पड़ाव था। यहाँ पर हम लोग लगभग दो महीने रहे। आम और इमली के वृक्षों की शीतल छाँह, पीछे गंगा बहती जा रही थी, बड़ी सुन्दर जगह थी। यहाँ से हम लोग दमदम (Dumdamma) गये, जहाँ पर सेना के निरीक्षण की व्यवस्था की गयी। उस उपलक्ष्य में गवर्नर काटियेर अपने बंगले आये से, उनके साथ मैं बहुत से अनुचर थे। दूसरे दिन सवेरे चार बजे हम लोग सेना की पूरी वर्दी में मैदान में हाज़िर हो गये, साथ में बीस तोपें और दो कम्पनी आर्टिलरी थी। बारह बजे के लगभग निरीक्षण समाप्त हुआ। गवर्नर जनरल को यह कहकर अभिनन्दित किया गया कि ऐसी वीरवाहिनी ने अब तक एशिया की समतल भूमि को अलंकृत नहीं किया है। सैनिकों ने भी खूब ठर्रा पीकर मौज-मस्ती की। यह बहुत उत्तेजक पेय था, इसे आरक नामक वृक्ष के फल से तैयार किया जाता है। वाहिनी के पदस्थ अधिकारियों और देशी सम्भ्रान्त जनों की ओर से आतिथ्य ग्रहण कर गवर्नर यहाँ कई दिन तक रूके रहे। जगह थी भूतपूर्व नवाब का प्रासाद, पुराने ढाँचे में बना हुआ, उसमें कई बड़े-बड़े कमरे थे। अभी हाल में हुई रद्दोबदल ने इसे एक बेढब, ऊँची इमारत से यूरोपीयन प्रासाद का चेहरा दे दिया था।

१७७२ ईस्वी में हम लोग कलकत्ता पहुँच गये । पहली ब्रिगेड उस समय फोर्ट विलियम में थी, तीसरी ब्रिगेड (जिसमें हम सब लोग थे) के आ जाने से वे लोग दानापुर चले गये। एक बटालियन यूरोपीय सेना फोर्ट विलियम में चली गयी, तीन रेजीमेंट सिपाही चित्पुर (Cheitpur) की छावनी में। यूरोपीयनों की अन्य बटालियन में जिनमें से एक में मि. बेकर थे और तीन रेजीमेंट सिपाहियों को थोड़े दिनों रहने के बाद बरहमपुर (Barahampore) भेज दिया गया।

कलकत्ता, गंगा किनारे स्थित सुन्दर समृद्धिशाली शहर है। उसकी अवस्थिति ८७° पूर्व देशांश और २२°४५ उत्तरी अक्षांश पर है (वास्तव में ८८°२३ और २२°३५)। जनसंख्या छह लाख से ऊपर है (यह आँकड़ा १७७२ ईस्वी का है)। चौक (Chouk) में सभी तरह की चीज़ें बिकती हैं। चीनी बाज़ार में चीनी मिट्टी से बनी सभी तरह की चीज़ें मिल जाती हैं। सभी वर्णों के यूरोपीयन लोग सामान्यतः लाल बाजार, धर्मतला (Thurumthulla), चौरंगी (Chouringee), बैठकखाना (Bigheaconna), मछुआ बाज़ार (Mochoabazar) और चाँदपाल घाट (Chaunpolgot) आदि इलाकों में रहते थे। अँग्रेज़, फ्रांसीसी, ओलंदाज, जर्मन, हब्शी, यहूदी आदि सभी वहीं पर

इकट्ठे हो गये थे। भारत के दूरतम छोरों से भी व्यापारी लोग वहाँ आते थे।

चाँदपाल घाट के पास पुराना किला था, आजकल उसका प्रयोग कम्पनी के गोदाम के रूप में हो रहा था। सेना के विकलांग और आधी सामरिक वाहिनी के सैनिक वहाँ पर पहरे पर रहते थे कलेक्टर, कमिश्नर और बाबू लोग और भी रहते थे। मैंने जब इस किले को देखा था तब वहाँ मि. पेक्शन नाम के एक व्यक्ति थे, वे टकसाल के एक ज़िम्मेदार कर्मचारी थे। वहाँ पर सोने की मोहरें (Goulmores), रुपया और पैसों (Paissays) की ढलाई होती थी। फोर्ट विलियम शहर से यह एक मील दूर अवस्थित थी।

दीन मुहम्मद ने इसके बाद फोर्ट विलियम की बनावट, उसकी प्रतिरक्षा शक्ति आदि के ब्यौरे देने के बाद कहा है कि उस समय उसमें दस हजार लोग रह रहे थे। तीन अदालतें, एक लाल दीधी (Loldigee) के सामने, एक गवर्नर के प्रासाद के पास और दूसरी चाँदपाल घाट पर। दो जेलें थीं, एक लाल बाज़ार में दूसरी चौरंगी में। कई तो वहाँ गिरजाघर थे, अंग्रेज़ों, आर्मेनियनों और पुर्तगालियों के। शहर के बाहर एक अस्पताल था। मि. टोली ने अपने धन से बहुत सुन्दर नहर बनवाई थी, खिदिरपुर से कलमान (culman) तक, पाँच अथवा छह मील लम्बी होगी। वह गंगा को सुन्दरवन नदी के साथ जोड़ती थी। मि. टोली को काफ़ी फायदा हुआ था। कारण जल मार्ग से माल ले जाना अधिक सुविधाजनक था और यही बंगाल के विभिन्न सामानों को ढोने का मुख्य मार्ग हो गया था।

१७७३ ईस्वी में हम लोग बहरमपुर पहुँच गये। यहाँ पर सेना का आवास भागीरथी (Bohogritees) नदी के किनारे था। इसमें कुल मिलाकर बाईस बैरकें थीं। घनी आबादी वाला शहर बिखरे हुए घरों के द्वारा मुर्शिदाबाद (Muxadabad) के साथ जुड़ा हुआ था। इसके बीच में कालिकापुर (Calcapore) और काशिम बाजार (Casambuzar) पड़ते थे, सिल्क और सूती कपड़े बनाने के ये स्थान थे। मुर्शिदाबाद सभी प्रकार के देशी, मुगल, फ्रांसीसी, मुसलमानों और हिन्दुओं का व्यापार केन्द्र था। व्यापारियों के भवन इस देश की सुन्दर ईंटों और अच्छी नक्काशी से बनाये गये थे। शहर के पास कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने जो घर तैयार करवाये थे, वे अत्यन्त दर्शनीय थे। निचले हिस्से को लेकर शहर बहरमपुर तक लगभग नौ मील लम्बा था। उससे लगे हुए अंचल में गवर्नर और उच्च पदस्थ कर्मचारियों के आवास थे। उल्लेखनीय है नवाब मुबारक उछौला (Nabob mamarah Dowleh) का महल, संगमरमर पत्थरों की मेहराबें और अनेक रंगों के पर्दों से सुसज्जित। वहाँ पहुँचने के थोड़े दिनों में ही नवाब और उनके अनुचरों की, जिनकी संख्या लगभग तीन हजार होगी, प्रासाद से मस्जिद (दीन ने इसे Temple कहा है) जाने की एक शोभायात्रा देखकर मेरी आँखें चौंधिया गयीं। उनकी तड़क-भड़क और पोशाकों का ऐश्वर्य मेरे देखे हुए सभी जुलूसों से अधिक समारोहपूर्ण और देखी हुई शोभायात्राओं में अनोखा था। लालवर्दी पहने हुए सोलह व्यक्ति, जिन्हें देशी लोग वाहक (Baharas) कहते हैं नवाब की सुन्दर शिविका (Pavillion or meanahji) को लिये आ रहे थे। चाँदी की चार भारी खूँटियों पर उसका उज्ज्वल चँदोबा टँगा हुआ था, टिसू के द्वारा ढँका और जिसके किनारों पर सुई से लाल मखमल का काम किया हुआ था, जिसकी पाड़ चाँदी की थी। शिविका देखने में एक ओर झुकी हुई आराम कुर्सी की तरह थी, उसकी गठन अंडाकार थी, उस पर सुन्दर तकिये से टिके हुए एक-दूसरे पर पैर रखे हुए नवाब बैठे हुए थे, उनकी कुहनियों के पास और भी दो लाल मखमल के तकिये लगे हुए थे, वे सोने के फूलों से अलंकृत थे। ऐसे सुन्दर वाहन के दोनों तरफ दो लोग चामर डलाते हुए मक्खियों को भगा रहे थे, दोनों चामरें किसी अद्‌भुत जीव की पूँछ से तैयार की गयी थीं। उनके हत्थे चाँदी के थे। नवाब के सिर पर सफ़ेद मलमल की खूब छोटी पगड़ी थी, जिसकी लम्बाई ४४ यार्ड (४०.०८ मीटर), वह इतनी पतली थी कि उसका वजन डेढ़ पौंड से अधिक नहीं होगा। पगड़ी के चारों तरफ एक ही कपड़े का एक घेरा था, उसीसे नवाब की दाहिनी आँख के ऊपर

चाँदी का एक फुँदना (Tassel) लटक रहा था। सामने एक प्रथम श्रेणी के हीरे से तैयार एक हीरा था। पतली मलमल से बनी पोशाक के ऊपर जीम रंग की साँटन से बना बाहरी वस्त्र था, एक ही कपड़े का पतलून, जिस पर चाँदी की पाड़ और बटनें टकी हुई थीं। ऊँट की ऊन से बना हुआ एक मूल्यवान शाल बड़ी अवहेलना के साथ कँधे पर पड़ा हुआ था और एक दूसरा कमर से लिपटा हुआ था। उसी में उनकी कटार खुसी हुई थी, उसकी मूँठ शुद्ध सोने-हीरे से जड़ी हुई थी और छोटी-छोटी सोने की जंजीरों से अलंकृत थी, वह कारीगरी का अद्वितीय नमूना था। नवाब के जूते उज्ज्वल, लाल मखमल से तैयार किये गये थे, उन पर चाँदी का काम किया गया था और उनके चारों ओर मोती जड़े हुए थे।

उनके अनुचरगणों की पोशाक की भी कोई कम चमक-दमक नहीं थी। नवाब की बगल में एक हुक्का बरदार हुक्का लिये पैदल चला जा रहा था। उसकी नली की लम्बाई नौ हाथ थी। हुक्का काँच का था, सोने की छोटी-छोटी जंजीरों से सजा हुआ, मुख में दी जाने वाली नली सोने की थी, मुख वाले भाग को अगर छोड़ दिया जाए तो शेष भाग में हीरे जड़े हुए थे। आगे-आगे बाजे बजाने वाले चले जा रहे थे, उनके भी आगे एक हरकारा (Halearah) नवाब के पधारने की घोषणा करता जा रहा था।

शोभायात्रा के अन्त में मेरी एक अपने आत्मीय से भेंट हो गयी, वह एक मुसलमान था, उसने अपने पुत्र के खतना अनुष्ठान में मुझे आमन्त्रित किया था। इसके पहले यह बतला देना ज़रूरी है कि इस्लाम धर्म के अनुसार एक लड़के के तीन धार्मिक अनुष्ठान (दीन की भाषा में Baptism) किये जाते हैं। पहला अनुष्ठान उसके जन्म के अवसर पर एक ब्राह्मण के द्वारा होता है, यद्यपि वह भिन्न धर्मी होता है, फिर भी उसके ज्योतिष ज्ञान के कारण मुलसमान लोग उस पर श्रद्धा करते हैं। वह उसके भविष्य की गणना कर बताता है और उसका शुभ नाम क्या होगा यह निश्चित कर देता है। दूसरा अनुष्ठान तब होता है, जब उसकी उम्र चार दिन की होती है, इसे काडगी अथवा मौलाना (Codgi or mulna) कराते हैं। इस अनुष्ठान में पहले पाक कुरान से कुछ आयतें पढ़ी जाती है, उसके बाद बच्चे के ऊपर पवित्र जल छिड़का जाता है और उसकी नाभि तथा कानों में तेल लगाया जाता है। इसके बाद नाइन शिशु की माँ के नाखून काट देती है, इसके बाद भले घरों की स्त्रियाँ जच्चा के स्वास्थ्य लाभ के लिए खुशी जाहिर करती हुई फलफूल उपहार में देती हैं। उसके बाद खुशी मनायी जाती है। तीसरा अनुष्ठान जन्म के बीस दिन बाद होता है (इसका कोई ब्यौरा दीन ने नहीं दिया है, बहुत सम्भव है 'बीसवाँ' अथवा बीस दिन बाद जो स्नान कराया जाता है, उसके बारे में ही दीन बताना चाहता हो)।

मुसलमान लोग खतना अथवा चौथा धार्मिक अनुष्ठान तब तक नहीं करते जब तक लड़के की उम्र सात वर्ष की नहीं हो जाती। इसी उपलक्ष्य में यह उत्सव किया जाता है। ग़रीब लोग इस उत्सव के लिए पहले से ही रुपया जमा करना प्रारम्भ कर देते हैं। दिन निश्चित हो जाने पर नाऊ लोग सारे मुसलमानों को जायफल देकर निमन्त्रित कर आते हैं। जायफल को पाश्चात्य लोगों के आमन्त्रण पत्र के समान मानना चाहिए। अतिथि जब पहले ही आ जाते हैं, उसके बाद मौलाना आते हैं। बच्चे को लाल मलमल की पोशाक और गहना-गुरियों से सजाकर आराम कुर्सी पर बैठा दिया जाता है, सजे-धजे शामियाना के नीचे। मौलाना नाऊ को अपने साथ लेकर आते हैं और लड़के को एक घोड़े पर बैठाया जाता है, नज़दीक के चार रिश्तेदार खुली तलवार लेकर उस घोड़े के आस-पास चलते हैं। विभिन्न मस्जिदों में घूम कर प्रार्थना करने के बाद वे लोग वापस आ जाते हैं। लड़के को पुनः आराम कुर्सी पर बिठाने के बाद मौलाना आनुष्ठानिक पोशाक (Secredotac dress पवित्र पोशाक) पहनकर चाँदी के पात्र में पवित्र जल लेकर उस लड़के पर छिड़क देते हैं। नाऊ एक पल में अपना काम समाप्त कर देता है। उस विशेष क्षण में सभी अभ्यागत उस लड़के के

माँ-बाप के साथ एक पैर से खड़े होकर सब कुछ ठीक हो और कोई अनिष्ट न हो इसके लिए प्रार्थना करते हैं। इसके बाद लड़के को ले जाकर बिस्तर पर लिटा दिया जाता है। नाइयों का काम समाप्त हो जाने के बाद उन्हें गलीचे पर बिठाकर पुलाव (Pelou) खिलाया जाता है, जो उन्हें विशेष प्रिय होता हैं।

अब मैं मुसलमानों के विवाह का ब्यौरा दूँगा। माँ-बाप के सम्बन्ध करने को राज़ी होने पर, उस लड़का-लड़की का, जिन्होंने एक-दूसरे को कभी देखा नहीं है, उस विवाह के लिए जिनकी कोई सहमति भी नहीं ली गयी हो, विवाह कर दिया जाता है। अत्यन्त छोटी उम्र में ही। साधारणतः लड़की की उम्र बारह वर्ष से अधिक न हो और लड़के की इससे थोड़ी अधिक, उन्हें एक ही जाति (Caste) और एक ही पेशे का अवश्य होना चाहिए। सब कुछ निश्चित हो जाने पर नाऊ लोग जायफल द्वारा सभी को न्यौता दे आते हैं। दोनों पक्षों के घर हरे-हरे पल्लवों और पुष्पों से सजाये जाते हैं। दरवाज़े के बाहर ऊँचे चबूतरे पर शहनाई वाले बैठते हैं, जिसके नीचे, जो सबसे निम्न श्रेणी के लोग होते हैं, जिनका भीतर प्रवेश निषिद्ध होता है, उनके बैठने की जगह होती है। वर कन्या के यहाँ पालकी पर बैठकर आता है, बहुत से लोगों के साथ जो जलती मशाल हाथ में लिये होते हैं। घर में उतनी जगह न होने के कारण उन्हें बिठाने के लिए बाहर शामियाना लगाया जाता है। भीतर सफेद मलमल की चाँदनी के नीचे लज्जाशील कन्या कोमल गद्दी पर टिककर बैठती है, उसकी उल्टी तरफ उसी तरह से वर बैठता है। शहनाई बजाकर मौलाना के आने की घोषणा कर देती है। वह सब थम जाने पर मौलाना कुरान खोलते हैं, जिसे नियम के अनुसार चार लोग चार कोनों से पकड़े रहते हैं। वह गम्भीर स्वर में पाठ करते हैं। वर कन्या अँगूठी की अदला-बदली करते हैं और कन्या पक्ष की कोई महिला, सामान्य रूप से आत्मीय जन, मुँह ढंके वर कन्या के वस्त्रों में गाँठ लगा देती है। उसके बाद मौलाना पहले किसी रूहानी फरिश्ते को एक ग्लास शर्बत अर्पित कर उन्हें देते हैं। उनके पीने के बाद फिर वह कई विशिष्ट व्यक्तियों को दिया जाता है। वे उसे अपने ओठों से लगाकर नव दम्पति के सुख की कामना करते हैं। उसके बाद सभी लोग रात्रि भोजन के लिए बैठते हैं, नर्तकियाँ अपने नृत्य से महफ़िल गुल्जार कर प्रशंसा बटोरने आती हैं और वर-वधू में कामना जगाने। आमोद-प्रमोद के बाद चाँदी का थाल सभी अभ्यागतों के बीच घूमाया जाता है, नाई लोगों को पारिश्रमिक देने के लिए सभी लोग कुछ-न-कुछ दान देते हैं। उसके बाद बाजे-बजाने वाले आतिशबाजी चलाने वालों के साथ वर और कन्या अलग-अलग पालकी में वर के घर जाते हैं। पहुँचने के बाद मौलाना आशीर्वाद देते हैं और जाफ़रानी से सुगन्धित जल से सभी को अभिषिक्त करते हैं। यहाँ पर दूसरी बार आनन्द महोत्सव मनाया गया।

क्षेत्र के सम्भ्रान्त जन, सम्पन्न स्थिति के वणिक, धनी आदि की पत्नियाँ विवाह के बाद कभी भी पूरी तरह से ढँकी पालकी के अलावा दरवाज़े के बाहर नहीं निकलती हैं। भारत में ऐसी प्रथा है कि व्यक्ति अपने विवाह के बाद एक सप्ताह घर से निकलते तक नहीं हैं और अपनी स्त्री को लोगों के सामने लाने में अपमान का अनुभव करते हैं। ग़रीब लोग ज़रूर इस नियम का पालन नहीं कर पाते हैं। पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पत्नी के अधिकार में आ जाती है। लक्षित करने योग्य विषय यह है कि हिन्दू हो या मुसलमान अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियाँ, लोगों के सामने जाएँ, यह विचार भी उनके मन में नहीं आता है। महिलाओं को भारत में अत्यन्त पवित्र माना जाता है कि हत्याकाण्ड में उन्मत्त सैनिक भी, उन्हें सिर्फ़ छोड़ ही देते हों यही नहीं बल्कि उनकी रक्षा तक करते हैं। हरम ऐसा स्थान होता है जहाँ कोई भी दुःशील, स्वामी के रक्त से लथपथ होने पर भी मृत व्यक्ति की स्त्री के कमरे में जाने में संकोच कर वापस लौट आता है।

साधारणतः मुसलमान स्वस्थ, उन्मत्त करने वाली शराब न पीने वाले हल्का भोजन करने के कारण कम ही बीमार पड़ते हैं। अगर पड़ भी जाएँ तो अपने सहज अनुभव से फलप्रद औषधि का प्रयोग करते हैं। कहीं अगर अधिक

अस्वस्थ हो गये और उस दवा से भी ठीक नहीं हुए तभी मौलाना को बुलाते हैं। वे आकर दर्द वाले अंग पर हाथ रखकर प्रार्थना करते हैं, ऐसा माना जाता है कि दर्द उसी से दूर हो जाता है। मुसलमान लोग मृत्यु का वरण कर असाधारण त्याग और सहिष्णुता से ऐसा मानते हैं कि ऐहिक बन्धनों से मुक्त होकर जन्नत में जाने का यही महिमापूर्ण रास्ता है।

जब किसी की मृत्यु होती है तो उसके परिवार को पड़ोसी लोग घर जाकर सान्त्वना देते हैं। मृतदेह सफेद मलमल से ढँक दी जाती है और उस पर फूल चढ़ाए जाते हैं। कमरे के चारों ओर सफ़ेद कपड़ा टाँगकर मोमबत्तियाँ जला दी जाती हैं। कब्रिस्तान में जाकर मृतदेह को दफ़न करने के पहले साथ में आये लोग घुटनों पर बैठकर अल्ला ताला के पास मृतदेह के चिरविश्राम की कामना करते हैं। फिर चुपचाप कब्र में लिटाने के बाद आत्मीयजन एक-एक मुट्ठी मिट्टी उसमें डालते हैं, उसके बाद कब्र बन्द कर दी जाती है। मौलाना कुछ पतली रोटियों के टुकड़े सभी को बाँटते हैं। (दीन ने इन्हें Jhin cakes लिखा है)। मृतक का ज्येष्ठ पुत्र कब्र पर पवित्र जल छिड़कता है और उसे सफ़ेद कपड़े से ढँक देता है। उसके बाद सभी लोग प्रार्थना करते हैं। इस संस्कार के चार दिन बाद मृत व्यक्ति के परिजन पड़ोसियों और दीन-दुखियों को खाना खिलाते हैं।

धनी लोग विशाल समाधि का निर्माण करते हैं और उस पर पूरे वर्ष चिराग जलाने की व्यवस्था करते हैं। विशेष दिनों में मृत व्यक्ति की याद में घर में भी रोशनी कर उसे सजाते हैं। ग़रीब लोग वर्ष में एक बार कब्र पर अथवा अपने घर में इस तरह का अनुष्ठान करते हैं और वे लोग इसे अधिक दिन नहीं कर पाते। स्वामी की मृत्यु के बाद स्त्री सभी तरह के साज-श्रृंगार और गहने वगैरह त्याग कर सादा जीवन व्यतीत करती है और सफ़ेद कपड़े पहनती है तथा मध्यवय में पहुँचकर अपने लिए कुछ सम्पत्ति रख पति की बाकी सम्पत्ति सन्तानों में समान रूप से बाँट देती है।

अब मैं भारतीय नर्तकियों के बारे में कुछ बताऊँगा। छोटी उम्र से ही ये लोग एक अनुभवी वृद्धा के द्वारा प्रशिक्षित होती रहती हैं, बाद में उन्हें अपने पावना का एक अंश मिलता रहता है। नवाबों में प्रधान और यूरोपीयन सम्भ्रान्त वर्गों में से कोई-कोई मनोरंजन के आकर्षण में इनके पीछे अपरिमित धन खर्च करते रहता है। करताल, बाँसुरी और ढोलक बजाने के साथ-साथ नाचते भी हैं। एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से प्रेम कर रहा है, एक कुट्टिनी एक प्रेमी के प्रति आशक्त प्रेमिका को एक दूसरे प्रेमी के प्रति आकर्षित करना चाहती है, एक भीरू प्रेमिका कहीं उसका गुप्त प्रेम खुल न जाये, इससे डर रही है, इस तरह के दृश्यों को वे अपने मूक अभिनय के द्वारा दिखाती हैं। सामान्य खुली महफिलों की अपेक्षा अन्तरंग घरेलू महफिलों में इनके हाव-भाव और भी आपत्तिजनक होते हैं। मोहिनी शक्ति के बल पर ये प्रभूत अर्थ उपार्जन करती रहती हैं। भारत के अनेक स्थानों पर इनके रुपयों से तैयार कई सुन्दर मस्जिदें विद्यमान हैं, वैसे ही विभिन्न द्रव्यादि उत्पादन की इनकी अनेक कोठियाँ भी बनी हुई हैं।

इनकी पोशाक बहुत ही सुन्दर होती हैं। ये सिर से पैर तक जवाहरातों से ये विभूषित रहती हैं। वे लोग पैर की ऊँगली में भी अँगूठी पहनती हैं। वे गले में, हाथों में अनेक तरह के सोने-चाँदी के जड़ाऊ गहने पहनती हैं, उनकी नाक में कील या नथ (Nose-Jewels) रहती है। पतली मलमल और जवाहरातों से ढँके इनके उत्तुंग वक्षस्थल किसी ठण्डे हृदय में भी उत्तेजना जगा देते है। गले में ये और भी चीज़ें पहनती हैं, जैसे देखने में सुन्दर और गन्ध से भरपूर मोंगरे (Mograss) की माला। पूरी बाँहों का कुर्त्ता और मतलब का घाघरा, जिसकी नाप बीस गज (१८.२ मीटर) होती है जिसकी किनार चाँदी से मढ़ी होती है। सिल्क की सलवार और एक शाल, जिससे उसका सिर और कन्धे ढँके होते हैं। उनमें से बहुत-सी नर्तकियाँ, जिनका कारोबार मुगल और मूरों (उत्तर पश्चिम अफ्रीका के मुसलमान अधिवासी) के साथ रहा है, वे लोग आँखों में काली रेख आँजते हैं, जिसे सुरमा कहा जाता है। व्यवहार में उन्हें उस सुरमा का

कोई भान नहीं रहता है, इसीलिए वे यूरोपीयन गणिकाओं की तरह निर्लज्ज और बेहया नहीं होती हैं।

सभी तरह के दोष और नैतिकता की दृष्टि से कलुषित होते हुए भी कोई-कोई पर्याप्त उदारता का परिचय देती हैं। जैसे, कई वर्ष पहले कासिम बाज़ार से कुछ दूर एक स्थान पर एक वैश्या रहती थी, उसके प्रेमियों में एक कोठीवाला (Factor) भी था, वह इसके आकर्षण में अपने अच्छे कारोबार की उपेक्षा करने के कारण दीवालिया हो गया। उसे दुःखी देखकर वह उससे बार-बार पूछती थी यद्यपि वह, कहीं उसे दरिद्र जानकर त्याग न दें, इस भय से वह कुछ बताता नहीं था। अन्त में जब उसने अपने दुःख का कारण बताया तब उसने पुनः व्यवसाय करने के लिए उसे काफ़ी धन दिया, आजकल उसका व्यवसाय पहले से भी अच्छी तरह चल रहा है। इस उदाहरण से यह देखने को मिलता है कि मनुष्य का हृदय अनैतिकता और अपराध में डूबे रहने के बाद भी कभी मनुष्यता के आह्वान पर अपनी जड़ता त्याग कर जाग उठता है।

सेना का जो भाग कलकत्ता में था, वह यात्रा के पहले बहरमपुर में आ गया, उसके बाद पूरी ब्रिगेड दानापुर के लिए निकल पड़ी। १७७५ ईस्वी में हम लोग दानापुर पहुँच गये। बंगाल में जो ब्रिगेड थी, प्रथा के अनुसार सभी की वर्दी लाल थी, फिर भी सबसे आगे की ब्रिगेड की वर्दी का रंग नीला, दूसरी ब्रिगेड का काला और तीसरी ब्रिगेड की वर्दी का रंग पीला था।

सिपाही लोग मुसलमान और हिन्दू दोनों सम्प्रदायों के होते थे। इनके चेहरे में ज़्यादा फ़र्क नहीं होता था, सिर्फ हिन्दू लोग माथे तथा कनपटी के दोनों तरफ लाल चन्दन लगाते थे। दोनों की ही पोशाक पतली मलमल की शर्ट, वर्दी का लाल कोट, पगड़ी, कमरबन्द और छोटी पतलून। छोटी पगड़ी, जिसके सामने कपड़े और चाँदी की जरी का काम किया हुआ, एक आभूषण (Cockade) गले में काठ के दानों की दो या तीन मालाएँ और बायें कन्धे पर ढाल। एक देशी अफ़सर चाँदी अथवा काँच की माला पहनता था, लम्बी पतलून और हाफ़ बूट, बाकी सारी चीज़ें वैसी ही होती थीं। सिपाही लोग सामान्य रूप में अस्त्रों के प्रयोग में बहुत ही व्यवस्थित और अनुशासन की श्रृंखला में बँधे होते हैं। वे थोड़ी संख्या वाले यूरोपीयनों के सहायक बनकर उनकी प्रबल रूप में शक्ति बढ़ाते रहते हैं और कई क्षेत्रों में बड़ी दृढ़ता और स्थिर संकल्प शक्ति का परिचय देते हैं।

दानापुर से बिलग्राम (Belgram) आने के रास्ते में हम लोग कुछ दिनों बनारस में ठहरे। गंगा के उत्तरी तट पर यह शहर समृद्धिशाली है। अतीत में उसकी ख्याति विद्या अनुशीलन के केन्द्र के रूप में थी। यहाँ पर बहुत उत्तम मान मन्दिर है जिसमें तारामण्डल आदि की खोज़ की जाती है। कई वर्ष पहले विज्ञान और पुरातत्त्व के प्रति जिज्ञासा रखने वाले कई यूरोपीयन भद्र पुरुषों ने ज्योर्तिविद्या सम्बन्धी वृहद् आकार के कई यन्त्रों की खोज की थी। यद्यपि उन यन्त्रों की स्थिति काल के प्रभाव से जीर्ण-शीर्ण हो गयी है, फिर भी उनका आविष्कार निश्चय ही प्रशंसनीय है। यह अनुमान लगाया जाता है कि कई वर्ष पहले अकबर महान के निर्देश पर इन्हें तैयार किया गया था। अकबर विज्ञान और विद्वान ब्राह्मणों का बहुत बड़ा भक्त था, जो एकाग्र मन से ज्योतिर्विज्ञान का अनुशीलन करते थे, अकबर उनका पोषक था।

बनारस राज्य को भारत में स्वर्ग माना जाता है। इसकी स्वास्थ्यप्रद हवा, सुन्दर दृश्य और इसके सरल प्राण निवासियों के कारण, जिनका सहज व्यवहार हर पड़ोसी को प्रभावित करता है। एक तो बनारस समुद्र से बहुत दूर है, दूसरे युग-युगों तक ब्राह्मणों के धर्म और विद्या चर्चा का केन्द्र होने के कारण इसे पवित्र माना जाता है, इन सब कारणों से भारत के अन्य सब स्थान जब युद्ध के कारण विध्वस्त हो गये हैं, बनारस पर उसकी कोई छाया भी नहीं पड़ी है।

अब मैं पहले के प्रसंग पर ही लौट आता हूँ। बनारस नगरी गंगा के तट पर, राजघाट से राजा चेत सिंह के प्रासाद तक चार मील लम्बी फैली हुई है। शहर के लगभग केन्द्र में एक प्राचीन विराट ऊँची इमारत, जिसका नाम Mawdodasthrohur[12], है। जो सबसे पहले हमारी दृष्टि खींचती है और हमें अवाक् कर देती है। देखकर ऐसा लगता है जैसे कई ऊर्ध्वमुखी मीनारें राजा की तरह नीचे शहर और उससे जुड़े अंचल को देख रही हों। यह है हिन्दू तीर्थयात्रियों का सामयिक आवास। इसके कुछ दूर पर ही है विख्यात हीरा-व्यापारी वेणी (Bene) की सुन्दर अट्टालिका। यह भवन एक घाट पर बनाया गया है, जिसका नाम इसके स्वामी के साथ जुड़ा हुआ है अर्थात् वेणी घाट। इस तरह के घाट यहाँ और भी हैं, जैसे रामघाट, राणाघाट, पिली घाट (Pilleagat), चौक घाट और मराठा घाट इत्यादि।

सभी तरह के यात्रियों के ठहरने के लिए शहर के पूर्वी छोर पर दीवाल से घिरा सराय खाना है। अगर सामर्थ्य हो तो यात्री उसमें ठहरने के बदले कुछ देते हैं, ग़रीबों के लिये कुछ नहीं लगता है। बनारस के व्यवसायियों के दान और खर्चे से उनका निर्वाह होता है। इन व्यापारियों के अनेक सुन्दर घर हैं, वैसे ही हिन्दुओं के अनेक मन्दिर भी हैं। बनारस की गलियाँ पतलीं और सँकरी हैं, आसपास के घर भी सटे हुए हैं। ऊँची छत पर चढ़ने के बाद ही उसमें रहने वाले ठण्डी हवा का आनन्द ले सकते हैं। कई जलसत्र, अन्नसत्र यहाँ चलते रहते हैं। सम्भ्रान्त जन अनुचर वर्ग के साथ बड़े आडम्बरपूर्वक घोड़े अथवा पालकी पर बैठकर यहाँ घूमने निकलते हैं।

यह शहर रेशमी वस्त्र तैयार करने में अद्वितीय है। शॉटन, किंखाप (Keemcauf), गुलबदन (Gooldbudthen) और किनारों पर सोने-चाँदी की जरी का काम की हुई मलमल की चादरों पर जो वैचित्र्य यहाँ मिलता है, भारत के बहुत कम शहरों में पाया जाता है और सुन्दर गलीचों, शोरा, चीनी और कस्तूरी एवं इत्र के लिए यह शहर विख्यात है। मूलतः इनका व्यापार मराठा एवं अन्य भारतीय व्यापारियों के साथ इन चीज़ों का लेन-देन हीरे और अन्य मूल्यवान वस्तुओं के विनिमय में चलता है।

शहर से लगभग तीन मील दूर उत्तर में सुन्दर उद्यान से घिरा हुआ राजा का महल है, जहाँ पर वे सामान्यतः ग्रीष्मकाल बिताते हैं। अब हिन्दू जाति, जो इस देश के निवासी हैं (Native), उनकी कुछ चर्चा करूँगा। वे चार वर्णों ;ज्तपइमेद्ध में बँटे हुए हैं- ब्राह्मण (Biramins), क्षत्रिय (Sittre), वैश्य (Bice) एवं शूद्र (Sudder)। पहले वर्ग के अर्थात् ब्राह्मण लोग पुरोहित, शिक्षक और दार्शनिक सभी वर्गों में सबसे ज़्यादा प्राचीन और सम्मान्य हैं। क्षत्रिय सैनिक वर्ग के होते हैं, उनका काम है सबकी रक्षा करना और सरकार चलाना है। युद्ध के समय वे योद्धा होते हैं और शान्ति के समय वे शासनकर्ता समझे जाते हैं। वैश्य जीवित रहने और जीवन-यात्रा की जितनी आवश्यक चीज़ें होती हैं, उसे व्यापार और कृषि के माध्यम से समाज के लिए जुटाते हैं और देश की सम्पदा अनेक धाराओं में प्रवाहित करते हैं, शूद्र कारीगर, मज़दूर और दास-दासी होते हैं और एक श्रेणी के लोग और होते हैं जो सबसे नीचे होते हैं, जैसे जो सोना खोजते (Cherwallees) हैं, चमार (Chemars) अथवा जूता बनाने वाले और डोम (Domerah) जो टोकरी वगैरह बनाते हैं।

ब्राह्मण लोग भी पाँच भागों में विभक्त हैं। पहले जो निरामिष भोजी होते हैं, दूसरे आमिष भोजी, तीसरे जो विवाह कर लेते हैं, चौथे जो ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लेते हैं और पाँचवें कहीं कोई जीव न मर जाए इसलिए पैदल चलना बन्द कर देते हैं। वे लोग साँस के साथ मुँह में कोई कीड़ा न चला जाए इसलिए वे अपने मुँह पर पतला कपड़ा लगाये रहते हैं। इसीलिए वे कभी लकड़ी नहीं जलाते हैं और इसीलिए वे अपने हाथ में सदा झाड़ू रखते हैं, जिससे किसी जगह बैठने के पहले वे उसे साफ़ कर सकें। आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करने के कारण उनके इस आचरण की उत्पत्ति हुई है

एवं उनके अनुसरणकर्ताओं का यह दृढ़ विश्वास है कि शरीर रहित आत्माएँ किसी-न-किसी जीव-जन्तु के शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। ऐसे प्राणियों में से किसी जीव को अगर वे अपने घर में देखकर यह निर्णय कर सकते हैं कि यह उनका ही कोई मृत बन्धु है, वह इस नये रूप में उन्हें देखने आया है। किसी प्राणी की हत्या की बात ये सोच ही नहीं सकते हैं। उनकी दृष्टि में नन्हें कीड़े से लेकर विशाल हाथी तक एक समान हैं।

इनका विश्वास है, ईश्वर एक है, सभी गुणों का आधार है, वह अनन्त काल से विराजमान है, किन्तु उसके दूसरे स्तर पर तीन देवता विद्यमान हैं- ब्रह्मा (Brama), - सृष्टिकर्त्ता, विष्णु (Whistnow) - पालनकर्त्ता और रूद्र ;त्वनजमदमद्ध संहारकर्त्ता। लोग ठीक-ठीक नैतिक कर्त्तव्य का पालन करते रहें, इसलिए परमेश्वर को अनेक आँखों और हाथों वाला दिखाया जाता है। ब्राह्मणजन लोगों से तीर्थयात्रा पर, विशेषकर गंगा के मुहाने पर बने मन्दिरों में (सागर संगम) जाने के लिए कहते हैं। गंगा में नहाने से स्वतः ही बहुत से पाप चले जाते हैं। महिलाएँ गंगा स्नान करने जाती हैं और उसमें दीप जलाकर प्रवाहित कर देती हैं। यूरोपीयनों की दृष्टि में इनका धर्म चाहे जितना आश्चर्यजनक क्यों न लगे, उनका संयमित आचरण, न्यायबुद्धि और मनुष्यता उपेक्षा करने योग्य नहीं है। उनकी व्ययसापेक्ष प्रथाओं और आचार-व्यवहार, विचित्र उत्सव आदि और संस्कारों के पीछे उच्च स्तर की नैतिकता, गम्भीर दर्शन एवं परिष्कृत नीति के चिह्नों को खोजा जा सकता है। किन्तु जब हम उनके धार्मिक और नागर संस्थानों के मूल स्त्रोत को खोजने निकलते हैं, तब देखते हैं कि वह सुदूर अतीत के किसी वैचित्रय धन्धे में खो गया है। देशी या भारतीय हिन्दू जन्मजात प्रतिभा से उद्दीप्त और उज्ज्वल होते हैं, साहित्य और विज्ञान उनके लिए अज्ञात नहीं हैं। आइने-अकबरी (Ayeen Akberry) का अंग्रेज़ी अनुवाद ही उसका साक्ष्य देता है। उनकी प्राचीन पोथियों में हम लोग विज्ञान की अधिकतर शाखाओं की मूल बातों को खोज़ सकते हैं। पाइथागोरस तथा अन्य यूनानी लोग पूर्वकाल में शिक्षा ग्रहण करने भारत आये थे। प्राचीन देशों के साथ वस्त्रों के बदले में वे लोग जो व्यापार करते थे, वह उनके उन्नत उद्योग का ही प्रमाण है।

कोई भी हिन्दू अपनी स्त्री के अलावा और किसी के भी हाथ का बना भोजन नहीं करता है, इसलिए उच्च वित्तशाली व्यक्तियों के अलावा सभी हिन्दू महिलाएँ अपने पति और परिवार के लिए भोजन बनाती हैं। साधारणतः भात, मछली और सब्जी, तीखे मसाले द्वारा बनायी जाती है। इसके साथ अनेक तरह का अचार भी रहता है। महिलाओं के अलावा सभी लोग एक साथ बैठकर खाते हैं। पगड़ी, जूता उतारकर और खाने के पहले और बाद में हाथ-मुँह धोते हैं। भोजन के बाद दूसरे कमरे में जाकर विश्राम करते हैं और पान-तमाखू खाते हैं। वे किसी तरह का मद्यपान नहीं करते हैं, किन्तु विभिन्न जायकेदार और सुगन्धित जल को पसन्द करते हैं, इसका चुनाव एक प्रकार की विलासिता माना जाता है।

हिन्दुओं का एक भाग ऐसा है जो बैठी हुई स्थिति में मृतदेह को समाधि देते हैं किन्तु उसके पास जल और चावल रख देते हैं। साधारणतः नदी के किनारे शव दाह की रीति है। बाद में चिता की भस्म नदी में विसर्जित की जाती है। अभिजात व्यक्तियों के भस्मावशेष पात्र में रखकर कोई ब्राह्मण ले जाकर पास की कोई अति पवित्र नदी, तीर्थ या गंगा में विसर्जित कर देता है।

कुछ दिन बनारस में रहने के बाद बिलग्राम के मार्ग पर चलते हुए हम लोग पहुँचे इलाहाबाद (Alhabad) के विपरीत दिशा में बसी झूँसी ;क्नबपद्ध में। इलाहाबाद का किला विशाल गंगा और यमुना (Jemina) के मध्य में अवस्थित है दुर्ग के भीतर के राजप्रासाद में मुगलों का निवास स्थान है, एक दरबार भवन है और एक अन्तःपुर (Zenanah) और राज कर्मचारियों के परिवारों के लिए और भी कई घर हैं। हर घर दो बरामदों से मिलकर बना स्थान है,

महिलाओं को लोगों की नज़र से बचाए रखने के लिए वे घर दीवाल से घिरे हुए हैं। सारे कमरे प्रशस्त और नदी की ओर खुले हुए हैं। बरामदे से लगा हुआ एक छोटा कमरा है, एकदम अन्धकूप जैसा। एक तरह से कहा जा सकता है कि उसमें हवा और रोशनी जाने के लिए कोई स्थान ही नहीं है। यह तीव्र गर्मी में आराम से सोने की जगह है। छत पर जाने के लिए पतला और खड़ा जीना है, सूर्यास्त के बाद ठण्डी हवा खाने के लिए।

इलाहाबाद का किला पूरी तरह पत्थर का बना हुआ है। उसके भीतर के सारे भवन, घाट और मार्ग सभी पत्थरों से बने हुए हैं। अँग्रेज़ों के अधिकार में आने के पहले वहाँ काँच, लोहा, ईंट और गृह निर्माण के अन्य किसी दूसरे उपादान का कोई चिन्ह देखने को नहीं मिलता। सबसे पतली दीवाल भी कम-से-कम पाँच फुट चौड़ी है। भारतीय शैली में बने हुए कई अच्छे घर उसमें हैं, फिर भी सबसे अधिक अचरज में डालने वाले विशाल फाटक हैं, जिनकी समानता रोमनों के प्राचीन विजय तोरण द्वारों से की जा सकती है।

इलाहाबाद से लगा हुआ इलाका उपजाऊ है और यहाँ की जलवायु बहुत सुन्दर है। धान, गेहूँ, मूँग और जौ, जो यूरोप में पैदा होने वाली ओट्स की फसल की तरह होती है, यहाँ बहुतायत से पैदा होती हैं। नील भी यहाँ खूब पैदा होती है। गुलाब और यूथी की सुगन्ध से यह इलाका महकता रहता है। फलों में आम, अमरूद, अनार, अनन्नास, खरबूजा, तरबूज, नींबू और नारंगी प्रचुर मात्रा में होते हैं और अदरक, हल्दी भी। हल्दी के गुण-दोष अदरक जैसे ही हैं।

इलाहाबाद से मिण्डीघाट (Mendeguat) तक हमारी यात्रा अच्छी ही रही थी। मिण्डीघाट पहुँचते ही तेज़ आँधी, ओलों की वर्षा और वज्रपाठ तीन दिन तक होता रहा। यहाँ पर हम लोग एक सप्ताह रहे, आँधी में हुए नुकसान की मरम्मत कराकर नदी पारकर बिलग्राम पहुँचकर, उसी इलाके में हम लोगों ने अपना शिविर लगा लिया। यह १७७६ ईस्वी की बात है। बिलग्राम यहाँ से दो मील दूर होगा। कई माह बाद नवाब आसफ-उद्-दौला के फौज़दार महबूब (Maboub) एवं खोजा वसन्त (Cossibussant) उन्हें अपना बकाया राजस्व नहीं देना चाहते थे, इस पर नवाब ने उन पर आक्रमण करने का निर्णय लिया। अपनी फौज़ को इकट्ठा कर उन्होंने हमारी वाहिनी के अध्यक्ष जनरल स्टुवर्ट के पास अपना दूत भेजकर सहायता माँगी। इस वजह से कर्नल पार्क के अधीन दो रेजीमेंट सिपाही बिलग्राम से लगभग आठ मील दूर कोरा (Caragh) नवाब की फौज के साथ सहयोग करने चले गये। महबूब को जब यह पता चला तब कर्नल से भेंट करने के लिए मार्ग में ही उसने अपना दूत भेजा। भेंट अच्छी ही हुई, दूसरे दिन महबूब ने कम्पनी की फ़ौज के अफ़सरों को रात्रि भोज के लिए आमन्त्रित किया। इसी बीच उसने अपनी सेना को गुप्त रूप से आक्रमण करने के लिए तैयार कर रखा था और रात्रि भोज के खाने में विष मिला रखा था। भोज समारोह में जाते समय रास्ते में उसके एक नौकर ने अंग्रेज़ अफ़सरों से इस षड्यन्त्र का भेद खोल दिया। अफ़सरों ने जल्दी-जल्दी अपने शिविर में लौटकर देखा कि महबूब के सैनिक आक्रमण करने को तैयार हैं। एक क्षण में ही तैयार होकर कम्पनी की सेना ने ऐसा पलटवार आक्रमण शुरू किया कि बिना प्रयास के ही जीत की आशा छोड़कर शत्रु सेना के अधिकतर सिपाही भाग खड़े हुए, उनमें खोजा वसन्त भी था। महबूब पकड़ा गया और उसे कड़े पहरे में नवाब के पास लखनऊ भेज दिया गया। जहाँ पर उसे उचित दण्ड मिला।[१३]

हमारे कई सिपाही इस युद्ध में मारे गये और कैप्टन ग्रेहवली भी मारा गया, वह अत्यन्त बहादुर और साहसी अफ़सर था। उसके अधीनस्थ सैनिकों ने रोते हुए उसकी शोभायात्रा निकालकर उसे पूरे सैनिक सम्मान के साथ दफ़न कर दिया। जिस मैदान में वे लोग सैन्य अभ्यास किया करते थे, उसी से थोड़ी दूर पर उसकी विधवा पत्नी ने एक सुन्दर स्मारक तैयार करवा दिया था।

लखनऊ, जहाँ महबूब को भेजा गया था, व्यापारिक केन्द्र है और मुगल साम्राज्य की विविध वस्तुओं के निर्माण की मुख्य जगह है। यहाँ के निवासी धनाढ्य और उद्योगशील हैं। नवाब आसफुद्दौला बीच-बीच में यहाँ आकर सम्भ्रान्त लोगों के साथ प्रायः नर्तकियों के साथ मनोरंजन करने के लिए ठहरते हैं। यह जगह सूती वस्त्र, चीनी मिट्टी और मिट्टी से बने बर्तनों के लिए प्रसिद्ध है।

नवाब एक तरह की सेना यहाँ तैयार रखते हैं, उसे कहा जाता है बरकंदाज़ (Burkendaus) उनका अस्त्र होता है, पलीता लगाकर चलाने वाली बन्दूक, धनुष-बाण, बर्छा, छुरा, ढाल और तलवार।

लखनऊ से कुछ ही दूरी पर अवध (वर्तमान फैज़ाबाद) शहर है। वहाँ पर शुजाउद्दौला का दर्शनीय मक़बरा है। यह खम्भों पर खड़ा हुआ है, बहुत बड़ा गुम्बद, अन्दर चारों ओर चाँदी के बड़े-बड़े पात्रों में जल रखा रहता है। कारण, वे रात्रि में नहाने के लिए उठ सकते हैं, जिसे मुसलमान लोग जन्नत के राज्य में प्रवेश करने के पहले पवित्र होने के लिए आवश्यक समझते हैं। अवध शहर का उन्होंने ही अनेक प्रकार से विकास किया है। उनका महल भी प्राचीन गरिमा को वहन करने वाला है।

शहर के आसपास बड़े-बड़े वन और विस्तृत मैदान हैं जिसे देशी व्यक्ति चरागाह कहते हैं जहाँ पर नवाब घुड़सवारी करने और शिकार कर अपने फुरसत के समय को बिताते थे। उनके तालाबों में अद्भुत प्रकार की मछलियाँ हैं, उनकी पूँछ और पंखों में सोने के आभूषण पहनाये गये हैं। कई तरह के अद्भुत जीवों का भी उन्होंने संग्रह किया था, राजकोष से इसके लिए प्रचुर धन खर्च किया जाता था।

मृत्यु के कुछ समय पहले शुजाउद्दौला (Sujahdualah)[१४] को रुहिल्ला के नवाब मुहलानवीस (Mulnahoffis) ने बार-बार उनका कर देना अस्वीकार कर दिया था, यहाँ तक कि उन पर सशस्त्र आक्रमण करने का भय भी दिखाया था। शुजाउद्दौला ने तत्काल जनरल चैम्पियन की सहायता से युद्ध करने की यात्रा प्रारम्भ कर दी। भारी युद्ध हुआ, अन्ततः हमारी ही जीत हुई (अप्रैल, १७७४ ईस्वी)। शत्रु पक्ष की अधिकांश सेना मारी गयी, बाकी भाग गयी और कुछ पकड़ ली गयी। जनरल चैम्पियन बिलग्राम लौट आया किन्तु शुजाउद्दौला मृत मुहलानवीस के महल में घुस गया और उसकी सुन्दर कन्या को जबरदस्ती अवध ले आया। शुजाउद्दौला के हरम में उस समय नौ सौ रूपसी स्त्रियाँ थीं, फिर भी वह जब उस पर बल प्रयोग करने गया तब उसने पहले तो छुरी से उसे मार डाला, बाद में स्वयं अपने सीने में छुरी भोंक कर आत्महत्या कर ली। गम्भीर रूप से घायल होने के बाद भी शुजाउद्दौला कुछ दिन और जीवित रहता किन्तु अपनी तीव्र उत्कृट कामना के कारण उसके घाव खुल गये और अधिक रक्त बह जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी (जनवरी १७७५ ईस्वी)

अब मैं दिल्ली शहर का वृत्तान्त देने जा रहा हूँ। दिल्ली यमुना (Jemuna) नदी के किनारे अर्द्ध चन्द्राकार रूप में अवस्थित है। आजकल वह तीन शहरों में विभक्त है। सुना जाता है पहले शहर में कुल मिलाकर नौ किले और बावन फाटक थे। दूसरे शहर को भारतीयों के हाथ से मुगलों के एक पूर्व पुरुष ने छीन लिया था, प्राचीन वीरों के समाधि स्थलों तथा और भी अनेक प्रासादों के ध्वंसावशेषों से पूर्व उस स्थान पर जाने पर मन उदात्त भावों से भर जाता है। इन सब प्रासादों को औरंगजेब के पिता शाहजहाँ ने नष्ट किया था। तीसरा शहर, जो कि दूसरे से लगा हुआ है और एक भग्नावशेष स्थल पर निर्मित हुआ है, उसका नाम है जहाँनाबाद (Johanabad) किन्तु मुगलों ने उसका नाम दिल्ली रख दिया है।

शहर के चारों ओर सुन्दर बगीचे हैं, मुख्य प्रवेश द्वार से बादशाह के किले तक जो लम्बी सड़क चली गयी है, वह खूब

प्रशस्त और चौड़ी है, किले के फाटक के दोनों ओर सवार सहित दो हाथियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दो भाइयों के स्मारक जिन्होंने अकबर के विरुद्ध असाधारण वीरता का प्रदर्शन किया था।

किला बुर्जों और प्राचीर से अत्यन्त सुसज्जित है। इसके भीतर कई आँगन हैं, पहले आँगन के पूरब की तरफ न्यायालय है, पश्चिम में अन्तःपुर, बीच में एक सुन्दर बहने वाली जलप्रणाली है। पहले आँगन से दूसरे आँगन में जाने के लिए एक सुन्दर मार्ग है, अमीर उमरा वर्तमान मुगल बादशाह अहमदशाह (Ahamat Shaw Baushaw) (यहाँ दीन ने गलत लिखा है, उस समय दिल्ली का बादशाह द्वितीय शाह आलम था) से औपचारिक रूप से मिलने आते थे, जिसे वे लोग परम सम्मान की वस्तु समझते थे। तीसरे आँगन में है दीवान (Divan) और जनसाधारण के लिए दरबार तथा एक दर्शनीय स्थापत्य। बीच में हीरे और अन्य मूल्यवान पत्थरों से जड़ा हुआ सिंहासन, जिस पर बादशाह बैठा करते हैं।

मुगलों के इतिहास में इतनी दंतकथाएँ मिल गयी हैं कि उन्हें अलग करना बहुत कठिन है। एक ज़माने में मुगलों का प्रबल प्रताप था। उनका शीघ्र पतन होते-होते महान तैमूर लंग के वंश में निजाम अल मुराद (Almoulud) के जमाने से आज उन्हें कितना सम्मान मिल सकता है। अपने को आमोद-प्रमोद और भोग-विलास में डुबोए रखकर सारा कामकाज कर्मचारियों पर छोड़ रखा है इसलिए वे लोग प्रजा और जो विराट शक्ति के स्त्रोत हैं उनका अपने स्वार्थ में प्रयोग कर रहे हैं। जिन्हें एक जमाने में दुनिया का मालिक कहा जाता था, आज उनका मालिकाना अन्तःपुर और आसपास के लोगों पर आकर टिक गया है। वज़ीर (Viziers) लोग अपने स्वार्थ के लिए उनके हित की हानि करने में भी कुण्ठित नहीं होते हैं। बादशाह को बिना बताये इच्छानुसार युद्ध की घोषणा कर देते हैं और अपनी सत्ता स्थापित कर लेते हैं। प्रदेश के शासनकर्ताओं ने जिन्हें बादशाह नियुक्त अथवा पदच्युत किया था, वे भी अपने को राज्य का उत्तराधिकारी मनोनीत कर लेते हैं। स्वतन्त्र राजाओं की तरह वे लोग यूरोपीयनों अथवा जिसको भी इच्छा हो उसे इजारेदारी दे रहे हैं अथवा अन्य उचित सुविधाओं को मंजूर कर रहे हैं। बादशाह के उमरा लोग प्रजा पर भारी अत्याचार और उसको पीड़ित करने वाले हैं, आज हो या कल उनकी भ्रान्त नीति ही साम्राज्य को समूल नाश कर देगी। इतने बड़े शहर में कारीगर बहुत थोड़े हैं, उसका कारण यह है कि ये स्वेच्छाचारी लोग अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें दाम देते हैं। परिणाम यह होता है कि या तो वे दूसरी जगह चले जाते हैं अथवा अंग्रेज़ों के उद्योग संस्थानों में योग देने लगते हैं। दिल्लीवासियों को अन्य स्थानों से चीज़ें मँगाने के लिए काफी दाम देने पड़ते हैं।

हिन्दुस्तान के ग्रामीण अंचलों में मुख्य मनोरंजन का साधन है, शिकार करना और बाज पक्षी के द्वारा शिकार कराना। देश के सूबों और अन्यान्य मुख्य स्थानों में अधिकतर मनोरंजन का माध्यम होती है जंगली प्राणियों की लड़ाई। हाथी से हाथी लड़ता है, दोनों की पीठ पर महावत रहता है, यह लड़ाई तब तक चलती है, जब तक उनमें से कोई एक महावत सहित न मारा जाए अथवा जब तक एक अशक्त होकर गिर न पड़े। भैंसे के साथ बाघ को लड़ाया जाता है, कभी विभिन्न प्राणियों को एक-दूसरे के साथ अथवा मनुष्य के साथ लड़ाया जाता है।

बिलग्राम से साठ मील दूर छोटा-सा गाँव है माखनपुर (Muokenpore), वहाँ पर दिल्ली, अवध तथा अनेक अंचलों के फ़कीर आकर रहने लगे हैं। धार्मिक ग्रामवासी ही पुण्यप्राप्ति की आशा से उनकी चरण वन्दना करते हैं। फ़कीर लोग अपनी देह को कष्ट देकर साधना के फलस्वरूप पुण्यात्मा बन जाते हैं और इसीलिए उनकी प्रार्थना फलित होती है और लोगों की घोर विपत्ति भी दूर कर देते है। फ़कीरों में कोई तो अपने सीने में बर्छा छेद लेता है तथा कोई हाथ में छुरा घुसा लेता है और कोई जलते हुए पात्र को हाथ में लेकर चलता है। कई जूते-चप्पल की तरह देखने में लोहे के धारदार काँटे लगी हुई किसी चीज़ पर नंगे पैरों चहल कदमी करते हैं। कोई अपने कन्धे पर अपनी गर्दन घुमाकर सिर

को एकदम पीछे की तरफ ले जाते हैं और उसे तब तक उसी स्थिति में रखते हैं, जब तक निरन्तर उसी तरफ वे न देखने लगें। और एक दल ऐसा है जो अपनी मुट्ठी को इतनी सख्ती से बाँधे रखता है कि उसके नाखून हथेली को फोड़कर दूसरी तरफ न निकल आएँ। कोई मौन होकर नासाग्र की ओर देखता रहता है। दूसरी ओर देखने की उसकी क्षमता ही चली जाती है। इन सब कष्टों को अपनाना चाहे जितना विचित्र लगे, निरपेक्ष लोग ज़रूर यह स्वीकार करेंगे कि वासनाओं के दास, भोगी जीवन जीने वालों की अपेक्षा यह सब ईश्वर को अधिक स्वीकार्य होता है।

बिलग्राम छोड़ने के कुछ दिन पहले नवाब आसफुद्दौला लोगों को लेकर एक जुलूस बनाकर भेंट करने आए। जनरल स्टुवर्ट और अन्य पदस्थ अफ़सर लोग मार्ग में आगे बढ़कर उनका स्वागत करने गये। उनके लिए विराट शिविर लगाया गया। दूसरे दिन उन्होंने हमारी सात हज़ार सेना का निरीक्षण किया। उसके बाद उन्होंने साहबों के साथ कलेवा किया, हाँ, यह ज़रूर है कि उनके खाने की चीज़ें उनके नौकरों ने ही परोसी थीं, वे ईसाइयों का छुआ हुआ नहीं खाते थे, सौजन्यवश उन्होंने एक ही मेज़ पर साथ बैठकर खाया, यही क्या कम था। इस समय उनके सम्मान में तोपें बराबर गर्जना करती रहीं। शिविर में कई दिन बिताकर, फिर वे अपने राज्य में लौट गये।

बिलग्राम से कलकत्ता जाने का हुकुम पाकर हम लोग यात्रा की तैयारी में जुट गये। यात्रा पर निकलने के पहले दिल्ली राजदरबार और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच अच्छे सम्बन्ध बरकरार रखने के कारण जो छावनी, सेना के लिए बनवाए गए आवास और भवन उन्हें तोड़ डाला गया। रास्ते में हम लोगों को ओलन्दाज, दिनेमा और फ्रांसीसी कोठियाँ देखने को मिलीं। पुर्तगालियों की भी कोठियाँ देखने को मिलीं जो अब अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गयी थीं। १७७८ ईस्वी में हम लोग फोर्ट विलियम पहुँच गये।

फोर्ट विलियम से प्रायः पन्द्रह मील दूर नदी के दूसरे तट पर दिनेमा का उपनिवेश श्रीरामपुर (Serampoor) है, वहाँ पर अनेक प्रकार के वस्त्र और कपड़ों से बनायी गयी काफ़ी सामग्री तैयार होती है। चूँचड़ा में (Chinsura) है, ओलन्दाज का उपनिवेश है, वहाँ पैदा होने वाली चीज़ें श्रीरामपुर जैसी ही हैं। कुछ और दूर चन्दन नगर अथवा फ्रांस डांगा (Chandernagore or Fransdanga) स्थित है जो अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों के कई विवादों का साक्षी है। पश्चिमी दिशा के अलावा बाकी सभी दिशाएँ काफ़ी सुरक्षित हैं। व्यवसाय भी अच्छा चलता है, कुछ मात्रा में रूमाल और धारीदार मर्सराइज्ड कपड़ा तैयार होता है।

फ्रांसीसी डांगा के पास ही गिरीटी (Gretti) है, पहले माँसिये शेवाली की फ्रांसीसी सरकार के अधीन थी, अब अंग्रेज़ों के अधीन है। गवर्नर का प्रासाद एक अपूर्व भवन है। गंगा के तट पर स्थित उसकी भीतरी साज-सज्जा अतुलनीय है। प्रासाद में जाने वाले रास्ते में दोनों तरफ वृक्षों की कतारें हैं, मनोरम उद्यान, फव्वारा और संगमरमर की मूर्तियों से सुशोभित है। वहाँ पर ऑपेरा हाउस भी था।

कलकत्ता से पचास मील दूर हुगली (Hugley) गहरी खाई से घिरे हुए गढ़ के द्वारा सुरक्षित है। पटना से मँगायी जाने वाली अफ़ीम के व्यवसाय का यह प्रमुख केन्द्र है। इसका फल विषमय है यह जानते हुए भी ओलन्दाज लोग जहाँ भी उन्हें जमीन मिल जाती है, वहीं इसकी खेती करने लगते हैं, यद्यपि चीन में इसकी खेती करने वाले को मृत्यु की सज़ा दी जाती है।

हिन्दू-मुसलमान बिना किसी भेद के अफ़ीम का सेवन करते हैं, निम्न श्रेणी के लोग इसका सेवन कोई खतरनाक काम करते समय करते हैं, खतरे के समय अपनी बोध शक्ति लुप्त करने के लिए और भद्रलोग विलासिता के लिए।

इसके बाद दीन ने अफीम के उत्पादन और उसके बनाने की प्रक्रिया क्या है, इसका वृत्तान्त दिया है। अन्त में उसने

कहा है अफीम का अधिक सेवन करने से जो उन्माद आता है, उसका अन्त एकमात्र मृत्यु में होता है। आगे के परिच्छेद में उसने सूरत शहर का वृत्तान्त दिया है।

सूरत शहर व्यवसाय-वाणिज्य का बहुत बड़ा केन्द्र है। पिछली शताब्दी के मध्य भाग में इस जगह पर मात्र कुछ व्यवसायी ही रहते थे। व्यापार के फैलने का परिणाम यह हुआ कि कुछ वर्ष में ही सूरत दुनिया के उल्लेखनीय शहरों में एक बन गया। यह शहर चारों ओर से एक प्राचीर और बुर्जों से घिरा हुआ है और इसके दक्षिण-पश्चिम में एक चतुष्कोणीय किला है। कहा जाता है इसके निवासियों की संख्या दो लाख है। मुगल शासन के समय सभी धर्मों और सभी वर्गों के व्यापारी यहाँ रहते थे। यहाँ के व्यापारियों की ईमानदारी यहाँ तक प्रसिद्ध थी कि रुपयों की थैली पर अगर टिकट लगा (व्यवसायी के हस्ताक्षरों के साथ रुपयों की संख्या सूचक कागज़) हुआ है और उस पर सील-मुहर लगी हुई है, तो वह थैली अगर वर्ष-पर-वर्ष हाथों-हाथ घूमती रहे, तो कोई उसे तौल कर देखने की ज़रूरत महसूस नहीं करेगा। हिन्दू लोग यहाँ संख्या में अधिक हैं, विशेषकर बनियाँ लोग, जो ईमानदारी से व्यापार करते हैं, सच्चाई और लेनदेन के समय कभी भी मिजाज़ खराब नहीं करते हैं। उन्हें नाराज़ करना कठिन है और अगर दूसरा पक्ष नाराज़ हो जाए तो वे धैर्य के साथ उसका मिजाज़ ठण्डा हो जाए इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि आखिर में जीत उसी की होती है।

शासक लोग अपने दरबार से ही सूरत का शासन कार्य चलाते हैं, फ़ौजदारी और दीवानी सभी तरह के मामले उनके सामने लाये जाते हैं और प्राच्य कानून के हिसाब से उन्हें शीघ्र निपटाया जाता है। घर-द्वार हिन्दू और मूर शैली में निर्मित किये गये हैं। धनी लोगों के घर इस तरह बनाये जाते हैं कि यदि उनका सदर दरवाज़ा बन्द कर दिया जाए तो कुछ सशस्त्र आक्रमणकारियों को रोका जा सकता है। महिलाओं की सुरक्षा के लिए मूर लोग अत्यधिक सचेत रहते हैं, परिवार के रहने की जगह घर के पिछले हिस्से में होती है। उनके घर में एक कमरे के बीच में घर को ठण्डा रखने के लिए फव्वारा रहता ही है और बगीचे की ओर खुला बैठक खाना होता है। ग्रीष्मकाल में प्रायः वे लोग दल बनाकर शहर से बाहर कहीं नदी किनारे घूमने जाते हैं। कोठी के लोगों के लिए अंग्रेज़ों का एक अत्यन्त रमणीय उद्यान यहाँ विद्यमान है।

सूरत के रास्ते टेढ़े-मेढ़े हैं, दोनों तरफ के लटकते हुए छज्जों से आगे लटकते बरामदे (बालकनी) इतने आगे निकले रहते हैं कि रास्तों में प्रायः अँधेरा हो जाता है। खाने-पीने की दृष्टि से इतनी अच्छी जगह दुनिया में कहीं नहीं है। सभी तरह की खाने की वस्तुएँ यहाँ अत्यन्त सस्ते दामों में मिलती हैं। विलासिता के उपकरणों में यहाँ जन साधारण के लिए स्नानागार बने हुए हैं, वहाँ पर मालिश की भी व्यवस्था है।

सूरत से थोड़ी दूर पर बोम्बे है, एक द्वीप इस तरह से अवस्थित है जो सम्भवतः दुनिया के सबसे प्रशस्त बन्दरगाहों, खाड़ियों (bay) में एक है। इसी वजह से इसका नाम बोम्बे है। पुर्तगाली भाषा के शब्द 'Buon-bahia' का बिगड़ा हुआ रूप। इस बन्दरगाह पर कितनी भी संख्या में जहाज रुक सकते हैं और इसकी वृत्ताकार स्थिति के कारण चाहे जैसी तेज़ हवा चले, पर वे सुरक्षित रहते हैं। पत्थरों से बना एक किला भी समचतुष्कोणीय आकार का है, इसके अलावा भी कई छोटे किला और सुरक्षा के लिए एक प्राचीर भी है। एक अंग्रेज़ी गिरजा हरे-भरे मनोरम प्रान्तर में है। उसके चारों तरफ अंग्रेज़ों के भवन बने हुए हैं। सभी एक तल्ला घर हैं, उनके जँगलों में काँच की जगह एक प्रकार की स्वच्छ, सफ़ेद सीपियों को खोलकर चौकों में काटकर लगाया गया है। इससे भीतर खूब उजाला रहता है।

इसके बाद दीन ने नारियल के पेड़ तथा उनसे बनने वाली चीज़ की खेती की पद्धति, ताड़ के पेड़, ताड़ी निकालने की

पद्धति, उस पर गोरैया (Toddy birds) पक्षी का डेरा, वटवृक्ष- उसका कितना फैलाव होता है, उसे हिन्दू लोग किस दृष्टि से देखते हैं, पान का पौधा कैसा होता है, सुपारी, चूना, कत्था आदि से बना मसाला, तम्बाखू और उसे तैयार करने की विधि, गन्ने की खेती और चीनी बनाने की प्रक्रिया का विवरण दिया है। इसी प्रसंग में उसने अन्त में कहा है, इसी तरह से तैयार होती है मिश्री अथवा प्रसिद्ध (East Indian Loaf sugar) जिसका लन्दन में बड़ा सम्मान होता है और दुनिया में कहीं भी इससे उत्कृष्ट मिसरी तैयार नहीं होती।

भारत में जुआ के प्रति लोगों का बहुत आकर्षण है और वह कानून से भी निषिद्ध नहीं है। दीवाली के पूरे पखवाड़े में सभी वर्गों के लोग जुआ खेलते हैं। जुआरियों को मोटी रकम देकर अनुमति लेनी पड़ती है जिससे वे लोग पहरेदार नियुक्त कर सकें, जिससे खिलाड़ियों में झगड़ा और मारपीट न हो सके। जुआरियों के पास काफ़ी धन होता है, जिससे वे लोग खिलाड़ियों को रुपया उधार देते हैं, जिसका फल यह होता है कि थोड़े समय में ही उन्हें भारी मुनाफा हो जाता है। लेन-देन में इतना रुपया लगा रहता है किन्तु, स्थायी रकम इसमें लगा दी गयी हो ऐसी घटना कभी नहीं घटती।

अपने अनुभव से मैं कह सकता हूँ, एक सिपाही कलकत्ता से पटना जा रहा था, उसके पास एकमात्र सहारे के रूप में पचास रुपये थे। रास्ते में उसे एक ऐसा व्यक्ति मिला जो जाली रुपया बनाता था। सिपाही के पास सारे रुपया कलकत्ता की टकसाल के थे, वह पटना के रुपयों से बदलना चाहता था, उस व्यक्ति ने उसके असली रुपया लेकर अपने नकली रुपया उसे दे दिये। मुर्शिदाबाद पहुँचकर उस सिपाही ने कुछ चीज़ें खरीदनी चाही, तब उसे पता चला कि उसके साथ क्या घटना हुई है। वह मुर्शिदाबाद की सभी अलियों-गलियों में उसे खोजने लगा, अन्त में वह एक जुए के अड्डे पर दिखायी दे गया। उसे पाकर पहले तो पकड़ कर उसकी बेहद पिटाई की, मार खाने के बाद वह रुपया वापस करने को विवश हुआ।

एक असावधान व्यक्ति को ठगा जा सकता है, वैसे ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम है, किन्तु जो जादूगर हैं, जो लोग हाथ की सफाई का खेल दिखाने में माहिर हैं, उनकी संख्या बहुत है। वे अपने खेल में सिद्धहस्त होते हैं और यूरोप के जादूगरों से भी अच्छा खेल दिखा लेते हैं। मैंने इन अद्‌भुत लोगों में से एक व्यक्ति को देखा था, बाज़ार के बीच में बैठा हुआ एक छोटे पौधे पर कपड़ा डालकर आधे घण्टे तक अपनी महुअर बजाता रहा, फिर उसने भीड़ में से एक व्यक्ति को बुलाकर पौधे पर से कपड़ा हटाने को कहा। अजब तमाशा था, पौधा फल और फूलों से भरा हुआ था। इन लोगों की तरह-तरह की बातों का अगर बखान किया जाए तो उनका कभी अन्त नहीं होगा। उनका साँप का खेल देखकर यूरोपीयन लोग कहेंगे यह सब जादू और किसी शैतान का खेल है। फण वाले साँप को अपनी टोकरी से निकालकर महुअर बजाता है और साँप उसे सुनकर अपना फन ऊँचा कर नाचने लगता है। जैसे ही महुअर का बजना बन्द होता है, वैसे ही साँप एक-दूसरे को दंश मारना शुरू कर देते हैं। साँप अगर किसी को डँस ले और समय पर इन्हें (सपेरों को) बुला लिया जाए तो ये रोगी को अच्छा कर सकते हैं। ये लोग आकर फिर वही महुअर बजाते हैं और वही साँप बिल से निकलकर उस व्यक्ति को तब तक डँसता रहता है, जब तक उसका विष उतर न जाए। उसके बाद वह साँप मर जाता है और रोगी ठीक हो जाता है। कई बार तो ये लोग दो साँप अपने गले में लपेटे रहते हैं लेकिन साँप इन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाते। एक किस्म का साँप और होता है जो अत्यन्त विशाल, जिसका सिर एक शिशु की तरह होता है और मनुष्य की तरह ही देखने में उसका सुन्दर मुख होता है। इन साँपों के बारे में ऐसा सोचा जाता है कि आदि जननी ईव को इन साँपों ने ही मोहित और प्रलोभित कर लिया था।

विशालता में हाथी को पछाड़ सके ऐसा जीव पूरब या अन्य कहीं नहीं है। बारह से लेकर चौदह फुट ऊँचा, सात फुट

चौड़ा। पेट का चमड़ा इतना सख्त होता है कि उसे तलवार से नहीं बेधा जा सकता है। आँखें दोनों बहुत छोटी होती हैं, कान विराट होते हैं, पूरी देह मोटी और गोल होती है। मुख के भीतर दोनों तरफ के जबड़ों में चार दाँत होते हैं, किसी चीज़ को चुभाने के लिए बाहर निकले हुए दो दाँत होते हैं, मर्द हाथी के दाँत अधिक मोटे और कठोर होते हैं, मादा के दाँत पतले, नुकीले और छोटे होते हैं। मर्द और मादा दोनों हाथी बिना किसी विचार के बाहरी दाँत जो तीक्ष्ण होता है, उसका प्रयोग आत्मरक्षा के लिए करते हैं और जो दाँत भोंथरा होता है उसका प्रयोग फल-मूल उखाड़ने के लिए करते हैं। मर्द हाथी के दाँत कभी-कभी दस फुट तक लम्बे होते हैं और एक दाँत का वजन ३०० पाउण्ड (१३५ किग्रा.) तक होता है। मादा हाथी के दाँतों का मूल्य अधिक होता है। दस वर्ष के अन्तर से उनके दाँत सहज रूप से गिर जाते हैं, उन्हें वे लोग मिट्टी में गाड़ कर रखते हैं। माना जाता है ऐसा वे इसलिए करते हैं ताकि मनुष्य उन्हें न ले सके। हाथी की जीभ छोटी किन्तु चौड़ी होती है। पैर गोलाकार और नमनीय होते हैं। माथा ऊँचा और उनकी पूँछ सुअर जैसी होती है। इनका रक्त अन्य किसी भी प्राणी से ठण्डा होता है। इनका सबसे अनोखा और हटकर अंग होता है इनकी सूँड। प्रायः सात फुट लम्बी और धीरे-धीरे नीचे की ओर पतली होती जाती है। इसके छोर पर दो छेद होते हैं, एक नली दिमाग तक चली जाती है, दूसरी मुख तक। पहली से साँस लेते हैं, दूसरी से पानी पीते हैं। सूँड का काम हमारे हाथों जैसा होता है, उसके द्वारा हाथी लड़ सकता है, भारी वजन उठा सकता है और वह इतनी कुशल होती है कि धूल से छोटा-सा पैसा भी उठा सकता है। पानी में रहने से इन्हें आनन्द मिलता है, कई हाथी तैर भी सकते हैं।

भारत के कई स्थानों पर इन्हें जाल बिछाकर पकड़ लिया जाता है। गहरा गड्ढा खोदकर उसे घास-फूस से ढँक दिया जाता है, जब उसमें ये गिर जाते हैं, तब जो वयस्क हाथी होते हैं वे तो निकलकर भाग जाते हैं, किन्तु छोटे नहीं भाग पाते हैं। उन्हें कई दिन कुछ भी खाने को नहीं दिया जाता है, इससे वे कमज़ोर हो जाते हैं फिर उनके गले में रस्सी बाँधकर पालतू हाथी के द्वारा उन्हें घर लाया जाता है। फिर उन्हें नियमानुसार प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षित होने के बाद ये सब कुछ कर सकते हैं।

एक दिन हाथी के रक्षक का छोटा बच्चा झूले में पड़ा हुआ भूख के कारण रो रहा था, उसके माँ-बाप घर में नहीं थे, उस विशाल प्राणी ने उसे सावधानी से उठाया और दूध पिलाया, फिर झूले में उसे लिटा दिया। रक्षा करने वाले की दया से द्रवित व्यवहार के कारण मनुष्य के जिस गुण को हम कृतज्ञता कहते हैं, वह इन प्राणियों में भी संचरित हो जाते हैं।

हाथी की बिक्री सामान्यतः उसकी माप के अनुसार होती है। उम्र कम हो और सुशिक्षित हो तो हर हाथी १५० रुपया तक में बिक जाता है। प्रायः उसकी नाप सिर से लेकर पैर तक सात हाथ होती है, इसलिए उसके दाम १०० पौण्ड से भी अधिक होते हैं।

१७७९ ईस्वी में हम लोग फोर्ट विलयम से कूच कर बहरमपुर पहुँचे। उसके कुछ दिन बाद (३ अगस्त, १७८० ईस्वी में) कम्पनी की सेना ने ग्वालियर (Ganilin) के दुर्भेद्य दुर्ग पर अधिकार कर लिया। देश के विभिन्न हिस्सों में मराठों ने मज़बूत मोर्चा बना लिया था और वहीं से आसपास के इलाकों में लूटपाट करते रहते थे। उनमें से सर्वाधिक मज़बूत मोर्चा था ग्वालियर का किला। ऐसा माना जाता था कि इसे हराना एक प्रकार से असम्भव है। जिस पहाड़ी इलाके में यह दुर्ग बना हुआ है, वह लगभग दो कोस (अर्थात् साढ़े चार मील) लम्बा है, कई स्थानों पर तो वह ४०० फुट ऊँचा है, कहीं-कहीं ३०० किन्तु १५० फुट से कम ऊँचा कहीं नहीं है। किले के ऊपर का समतल इलाका पत्थरों की प्राचीर से घिरा है। वही दीवार एकदम पहाड़ की तरह ही ऊपर चली गयी है और अधिकतर जगहों पर सीधी

खड़ी है। दुर्ग के भीतर अनेक सुन्दर घर हैं, बड़े-बड़े सरोवर और कई कुएँ और काफ़ी कृषि भूमि है। दुर्ग में जाने का एक मात्र रास्ता है, जो सीढ़ी से ऊपर चला गया है। उसके एक ओर बुर्ज और दीवार है तथा दूसरी तरफ पहाड़ है। दुर्ग के भीतर जाने के लिए सात फाटकों को पार करना पड़ता है।

दो घण्टे से भी कम समय में, जिसे अपराजेय और दुर्भेद्य समझा जाता था, उसी ग्वालियर दुर्ग का पतन हो गया। इधर एक व्यक्ति भी नहीं मारा गया, उधर के मरने वालों की संख्या बीस थी। इस अभियान ने इस धारणा को प्रभावित कर दिया कि ऐसी कोई बाधा नहीं है जिसे एक ब्रिटिश सेना की दृढ़ प्रतिज्ञा और अध्यवसाय जीत न सकते हों।

मराठे लोग ग्वालियर दुर्ग के पतन से डर गये और कम्पनी की सामरिक शक्ति पर श्रद्धा करने लगे तथा कुछ दिनों में ही गोहड़ के राजा से उन्होंने जिन आठ किलों को जीता था उन्हें छोड़ दिया।

फरवरी के अन्त में बक्सर से हम लोग कानपुर गये। पहली मार्च को कैप्टन बेकर ने मेजर रोबर्ट की रेजीमेंट की सिपाही बटालियन का कार्यभार सम्हाला। उनकी सिफारिश पर एक ही वाहिनी में मैं जमादार नियुक्त हो गया।

यमुना (Jemuna) के तट पर स्थित कालपी (Calpee) के आसपास मराठे लोक विद्रोह कर रहे हैं, यह खबर पाकर कर्नल मोर्गन के हुकुम से पूरी ब्रिगेड उस शहर में गया। बगल के इलाकों से मराठों को भगाने के लिए उन्हें नियुक्त किया गया था, किन्तु दो-एक स्थानों पर मामूली संघर्ष के बाद मराठे दलबल सहित भाग गये।

कालपी में कई सप्ताह रुकने के बाद हम लोग कानपुर लौट आये, किन्तु वहाँ पर भी अधिक दिन रुकना नहीं हो सका।

इसी समय गवर्नर हेस्टिंग्स ने हैदर अली के साथ गत युद्ध के व्यय को पूरा करने के लिए चेतसिंह से अपना पूरी देनदारी का रुपया माँगा। वह देने में असमर्थ अथवा अनिच्छुक जो भी हो, यह देखकर दो कम्पनी के सिपाहियों का एक दल उसको गिरफ्तार कर लाने के (अगस्त १७८१ ई) लिए भेजा। उन्हें बन्दी बनाया गया है। इस तरह की हलचल मचाने वाली खबर बड़ी जल्दी चारों ओर फैल गयी। उनके सैनिक विशाल दल बनाकर रामनगर से नदी पार कर प्रासाद में आने लगे, जहाँ उन्हें कैद कर रखा गया था। दो कम्पनी के सिपाही, जिन्हें महल के बाहर एक घिरे हुए आँगन में पहरे पर नियुक्त किया गया था, उनमें से अधिकांश उस शक्तिशाली सेना के हाथों मारे गये, नदी के प्रबल प्रवाह की तरह वे लोग सब कुछ बहाकर अपने साथ ले गये।

राजा का एक सेनापति, रामजीवन (Ramjaun)[१५] प्रासाद के प्रवेश पथ पर रोक रहा था, जो सिपाहियों के सार्जेन्ट की हत्या कर प्रासाद में घुस गया। उसके बाद सेना की सहायता से राजा को छुड़ाकर एक बगीचे से होते हुए नदी के किनारे ले गया। नदी की पाड़ वहाँ पर बहुत ऊँची थी, इसलिए पगड़ी के साथ पगड़ी बाँधकर उसकी सहायता से राजा को नाव में उतार दिया गया। इस तरह राजा दूसरे किनारे पहुँचकर रात के अँधेरे में लतीफ़गढ़ (Luteefgur) भाग गया। वह राजा के सबसे शक्तिशाली दुर्गों में से एक था, अपनी रक्षा के लिए उसने चुने हुए कुछ लोगों को अपने साथ ले लिया था।

दूसरे दिन राजा की विशाल सेना ने, रामजीवन के नेतृत्व में वारेन हेस्टिंग्स का पीछा किया, इस पर वह चुनारगढ़ चला गया। उसे न पाकर वे रामनगर वापस आ गये और अंग्रेज़ी सेना की एक शक्तिशाली वाहिनी पर उन्होंने आक्रमण कर दिया। उस वाहिनी का नेतृत्व कर रहे थे कैप्टन मेफ्ये, उनके लिए शहर अपरिचित था, इसलिए वे

पतली और टेढ़ी-मेढ़ी अलियों-गलियों में सभी तरफ अटक कर रह गये। शत्रु पक्ष आड़ से गोली चला रहा था, यद्यपि अंग्रेज़ सेना को उस असुरक्षित स्थिति में गोली वर्षा को झेलना पड़ रहा था, इसी अवस्था में वह कैप्टन मारा गया। उसके साथ मारी गयी डेढ़ सौ से भी अधिक उसकी सेना, जिनमें कैप्टन डोक्सटी, लेफ्टीनेंट स्टोकर, सिमोस और स्कोट थे। अस्सी लोग घायल हो गये। असीम साहस के साथ लड़ते हुए कैप्टन ब्लेयर ने अन्त में पीछे हटने का मार्ग निकाल लिया, जिसके कारण उन्हें बाद में खूब सम्मान मिला। कई महीनों में चुनार पहुँचने तक उन्होंने शत्रु के आक्रमण को भी रोका था।

इस सफलता ने राजा के मित्र पक्ष के मन में खूब उत्साह जगाया था और गवर्नर हेस्टिंग्स को कई समस्याओं में डाल दिया था।

रामजीवन ने रामनगर को सुरक्षित कर अपनी मूल वाहिनी को पतीता नामक दुर्ग में भेज दिया। मेजर पोपहेम के नेतृत्व में चुनार से आवश्यकता से अधिक जो कई लोग थे, उनको लेकर एक वाहिनी बनायी गयी, उसे पतीता की तरफ भेजा गया। इसी बीच में कैप्टन ब्लेयर को उनकी बटालियन और दो कम्पनी ग्रेनेडियर देकर दुर्ग पर अचानक अधिकार करने के लिए भेजा गया। लेफ्टीनेंट पोलहिल अभी हाल में ही इलाहाबाद से आया था, उसे आसफुद्दौला की व्यक्तिगत रक्षक वाहिनी से छह कम्पनी सिपाही देकर आदेश दिया गया कि दूसरे तट पर शिविर डालकर बने रहने को, जिससे सम्पर्क करने का एक मार्ग अन्ततः खुला रहे। इस साहसी अफ़सर ने पहुँचने के दो दिन बाद ही शत्रु के हाथ सौंममानत नाम का एक छोटा-सा किला छीन लिया। वहाँ पर प्रचुर मात्रा में खाद्यान्न जमा कर रखा गया था। यह तो उनका मनचाहा पुरस्कार था, क्योंकि उनके पास अनाज का बहुत अभाव था।

पतीता के लगभग एक मील भीतर जब मेजर पोपहेम और कैप्टन ब्लेयर पहुँचे तब देखा कि शत्रुओं की एक टुकड़ी लड़ाई के लिए तैयार है। दोनों पक्षों ने जोरदार युद्ध किया, किन्तु लेफ्टीनेंट फेलो और वेरिल के न आने तक हार-जीत का कोई निर्णय नहीं हो सका। दोनों पक्षों में काफ़ी लोग हताहत हुए, पराजित शत्रु सेना ने अपने किले में आश्रय लिया और विजयी सेना क्षतिपूर्ति के लिए चुनार दुर्ग की तरफ बढ़ गयी। इसी बीच हेस्टिंग्स ने अविलम्ब चुनार में सेना भेजने के लिए कानपुर कर्नल मोर्गन के पास सम्वाद वाहक को भेजा। तीन रेजीमेण्ट तुरन्त भेजी गयीं, उनमें दो के अधिनायक थे मेजर क्लेव और क्रोफोर्ड, दूसरे का नायकत्व मेजर रोबर्ट्स का था। वे लखनऊ के रास्ते से आ रहे थे। सितम्बर की दस तारीख को मेजर क्लेव और क्रोफोर्ड चुनार के विपरीत किनारे आ पहुँचे, दूसरे दिन आसफुद्दौला ने पहुँचकर उसी जगह पर शिविर डाल दिया। थोड़े दिनों में मेजर रोबर्ट्स भी आ गया। अंग्रेज़ी सेना नदी पार कर मेजर पोपहेम के साथ मिल गयी, उनके अधीन उस समय चार पूरी रेजीमेण्ट, कर्नल ब्लेयर की एक बटालियन और नवाब के व्यक्तिगत एक सेना, दो कम्पनी यूरोपीयनों की सेना, एक कम्पनी आर्टिलरी और एक कम्पनी फ्रांसीसियों की घुड़सवार सेना (Rangers) इस मूल सेना का एक भाग लेकर मेजर क्लेव लतीफगढ़ की तरफ आगे बढ़ा और एक भाग लेकर मेजर क्रोफोर्ड पहाड़ पारकर आगे बड़ा सुकृत (Seekroot) एवं लोहरा ;स्वतंद्ध किले की ओर और कैप्टन बेकर और लेफ्टीनेंट सिम्पसन दो कम्पनी लेकर बढ़े पतीता किले की तरफ। उनके साथ एक बारह पौण्ड (अर्थात् गोले का वजन ५.४ किग्रा.) का गोला फेंकने वाली तोप, दुर्ग की उत्तर दिशा में बड़ी सफलतापूर्वक एक घण्टे तक दागी गयी। उसके बाद हरकारे ने आकर खबर दी कि पूरब दिशा में बहुत बड़ा सरोवर है, उसकी पाट मिट्टी डालकर ऊँची बनायी गयी थी, फिलहाल उसका उपयोग बैटरी के रूप में किया जा सकता है। उसकी खबर सटीक प्रमाणित होने पर वहाँ पर और भी तोपें और गोला-बारूद भेज दिये गये।

इस बार हम लोगों ने बड़े जीवट और उत्साह के साथ दुर्ग का घेराव शुरू कर दिया और लगातार तीन दिन तक घेरे

रहे। चौथे दिन सवेरे तीन बजे के लगभग कैप्टन बेकर और गार्डनर कुछ देर लगातार तोप दागते रहे और शत्रु सेना के चरम विभ्रान्ति के क्षणों में कैप्टन लेन, लेफ्टीनेंट सिम्पसन और विलियमास, जिनके साथ में था, शत्रु पर प्रचण्ड आक्रमण के साथ टूट पड़े। कुछ देर टिकने के बाद उन्होंने मोर्चा छोड़ दिया, अपना युद्ध का सामान और हाथी, ऊँट, बैल वहीं छोड़कर रामजीवन के नेतृत्व में वे लतीफ़गढ़ की ओर भाग गये।

मेजर क्लेव ने लतीफगढ़ के मार्ग में रामजीवन को पाकर उसके साथ युद्ध किया और उसकी पराजित वाहिनी को लोहरा के किले की ओर शरण लेने के लिए भागने को विवश कर दिया। उसके बाद वहाँ से विजय गढ़ की ओर। चेतसिंह ने भागकर विजयगढ़ में ही शरण ली थी किन्तु, राजा ने इसके बाद विजयगढ़ को अपने लिए असुरक्षित मानकर हीरे, जवाहिरात तथा अन्य बहुमूल्य सामग्री जो कुछ भी हो सका उसे अपने साथ लेकर पहाड़ पर मराठा लोगों के बीच में जाकर शरण ली।

कैप्टन बेकर अपनी वाहिनी लेकर रामनगर पहुँचकर अगले आदेश की प्रतीक्षा में वहीं रुका रहा, इधर मेजर पोपहेम शत्रु का पीछा करता हुआ चुनार से लगभग पचास मील दक्षिण-पूर्व में स्थित विजयगढ़ गया। दुर्ग विशाल शिला स्तूप पर बना हुआ था और भूमितल से लगभग सात सौ फुट ऊँचा था। दुर्भेद्यता की दृष्टि से इसका स्थान ग्वालियर के बाद दूसरा था। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि राजा अपनी धन-सम्पत्ति का एक भाग और अन्तःपुर की स्त्रियों को विजयगढ़ में ही छोड़कर भाग गया है।

राजा की माँ, उसकी रानियाँ और बलवन्तसिंह (Bulvant Sing, चेतसिंह के पिता) के वंशधर, जो सभी राजा के पक्ष में थे, इसी दुर्ग में उपस्थित थे। राजा की धन-सम्पत्ति पर पहरा देने के लिए कुछ सैनिक भी थे, उस दुर्ग में हीरा तथा अन्य जो भी मूल्यवान चीज़ें थीं, उनका मूल्य बहुत अधिक था।

मेजर पोपहेम ने एक माह तक अनेक विघ्नों को पार कर दुर्ग पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया, अन्त में राजमाता ने एक शर्त रखकर आत्मसमर्पण कर दिया। शर्त यह थी कि उसे सम्पत्ति में से पन्द्रह प्रतिशत भाग लेने दिया जाएगा और या तो वह अपने पुत्र के साथ रहेगी या उसे देश के किसी अन्य भाग में जाने दिया जाएगा।

विजयगढ़ में जो भी सम्पत्ति प्राप्त हुई, उसमें से अधिकांश पुरस्कार के रूप में विजयी सेना को मिली, बाकी कम्पनी के हिस्से आया। विजय के उपलक्ष्य में पूरी छावनी में आनन्द और उल्लास की लहर दौड़ गयी।

युद्ध में चेतसिंह को जो फल भुगतना पड़ा, उसके अपमान और दुःख का वर्णन उसकी अपनी भाषा के अलावा और कोई नहीं कर सकता है। अपनी गिरफ्तारी के समय उसने गवर्नर को जो पत्र लिखा था, उसमें उसने कहा था, मेरे पिता ने (आप लोगों के लिए) जो-जो किया है, उसे और मेरी अल्पवय और अनुभवहीनता पर विचार कर मेरे ऊपर आप दया कीजिए, मेरी आपसे यही प्रार्थना है। आपकी जो खुशी हो, उसे आप स्वयं करें, जब मैं आपका दास हूँ, तब मेरे ऊपर पहरा लगाने की क्या आवश्यकता है? मैं अपने पूर्व पुरुषों के राज्य से वंचित होऊँगा या नहीं, यह आप लोगों पर ही निर्भर करता है। मेरे साथ इस तरह का व्यवहार करने का क्या प्रयोजन है, जब मैंने आपके प्रति अपना जीवन और सम्पत्ति समर्पित कर दी है। इसके बाद उसने और भी कई चिट्ठियाँ लिखी हैं, उन सब में अपने एक ही दुःख का उसने बखान किया है।

ढाका सोने, चाँदी और रेशम की कढ़ाई के लिये विख्यात है। यहाँ सूती कपड़ा और महीन धारीदार तथा कढ़ाईदार मलमल आदि तैयार किये जाते हैं, देश के अन्य हिस्सों से यहाँ की मलमल बहुत बेहतर होती है। हाँ, सबसे उत्कृष्ट मलमल तैयार की जाती है मुगल बादशाह एवं उनके अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियों के लिए, देशी या विदेशी किसी को

भी जो मलमल बेची जाती है, उसकी तुलना में यह बहुत मूल्यवान तथा बेहतर होती है।

यहाँ प्रशंसनीय धातुओं की जाली (Filligrane) का काम होता है, इसकी मज़दूरी की दर धातु के मूल्य से बहुत अधिक होती है। पश्चिम की तरह उनमें छेद कर नहीं, बल्कि टुकड़े-टुकड़े काटकर उन्हें जोड़ दिया जाता है और खूब दृष्टि गड़ाकर देखने के बाद भी वह जोड़ दिखायी नहीं देते। सुई का काम वर्णनातीत है, यूरोप में जो कढ़ाई होती है, उससे कई गुना बढ़िया और लक्षित करने योग्य, इस काम को महिलाएँ नहीं पुरुष करते हैं, उनका धैर्य आश्चर्यजनक है। यहाँ खाने-पीने की चीज़ों की प्रचुरता है और वे बहुत सस्ती हैं। बहुत समय से स्थितिगत सुविधाओं के कारण ढाका विशाल व्यापार केन्द्र बन गया है। आज भी यहाँ एक शक्तिशाली दुर्ग के ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। उस किले पर इतनी बड़ी तोप लगी हुई थी, जो कई वर्ष पहले पूरे किनारे को तोड़ती हुई नदी के जल में गिर पड़ी थी। तोप की लम्बाई थी १४ फुट १०) इंच, उसकी नली का व्यास था १ फुट ३६४ इंच, उसमें प्रयोग किये गये लोहे के पेटे का घनफल २३४४१३ क्यूबिक इंची (3.84) क्यूबिक मीटर था। इसका वज़न ६४४१८ पौण्ड (२८.६८ मीट्रिक टन) और इसके गोले का वजन ४६५ पौण्ड (२०६.२५ किलोग्राम) होता था।

यहाँ पर बड़े नवाब का घर है। उनके सिंहासन पर बैठने का अनिवार्य रूप से पारित होने वाला समारोह वेनिस में डोजे के समारोह के अनुरूप होता है। वह दुनिया का सर्वाधिक कौतूहलजनक मनोरंजनों में एक है। नावों में उनका पूरा दिन नदी में पर बिताना। नाव चाँदी से मढ़ी होती है, उसके बीच में चाँदी का एक ऊँचा 'मंच' होता है, जिस पर राजमुकुट रखा जाता है। पतवार के पास उत्तम आसन पर नवाब राजकीय ठाटबाट के साथ बैठा रहता है, सिर के ऊपर सोने का काम किया हुआ चंदोबा तना रहता है, उसके चारों ओर चाँदी की झालर होती हैं। इस नौका तथा एक दूसरी नाव जिस पर उसके अनुचर लोग चलते हैं, इन दोनों का मूल्य एक लाख रुपये से कम नहीं होगा। इस उत्सव में पानी की तरह रुपया बहाया जाता है।

कुछ दिन ढाका में रहने के बाद हम लोगों ने कलकत्ते की तरफ यात्रा शुरू कर दी। नदी में दो दिन चलने के बाद हम लोग सुन्दर वन की नदी में जा पहुँचे। नदी बहुत सँकरी थी, कई शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त थी। दोनों ओर की ज़मीन नीची थी, जल की धार तक नदी बड़े-बड़े वृक्षों से ढँकी हुई थी। बीच-बीच में जंगल के वन्य पशुओं की दहाड़ के अलावा चारों ओर बड़ी निस्तब्धता थी।

नदी के किनारे जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उनमें सबसे उल्लेखनीय है चन्दन, सिसु और ।नउदवव्रम। यहाँ हिंसक जन्तुओं की प्रचुरता है, बाघ यहाँ इतने हिंस्र हैं कि वे नाव पर झपट पड़ते हैं और यात्रियों को पकड़ कर ले जाते हैं। तट पर बहुत से गाँव हैं, दस से बारह मील की दूरी पर एक-एक अवस्थित हैं। यहाँ के कुटीर शिल्प सौन्दर्य से रहित हरे कपड़े ;थ्संहेद्ध के फीतों से बाँस के ढाँचे में बँधे हुए हैं। बाढ़ आने पर बड़ी सहजता से वहाँ के निवासी अपने घर दूसरे स्थान पर जाते हैं, पहले उन्हें खोलकर अलग कर लेते हैं, उसके बाद उनकी छत के बण्डल बनाकर, उन्हें बाँधकर सुरक्षित जगह पर चले जाते हैं। इनकी ज़रूरतें बहुत मामूली होती हैं, वे थोड़े में ही संतुष्ट हो जाते हैं। शहरों की विलासिता और लोभ का पाप उनको स्पर्श नहीं करता है। गाँवों में कई बिखरे हुए कुटीर हमें दिखे, कई यूरोपीयन जो अपना भाग्य अजमाने यहाँ आए थे, उन्होंने इन्हें बनाया था। वे लोग बंगाल के कई स्थानों पर जहाज बनाने और अन्य कामों के लिए पेड़ काटकर उनकी लकड़ी जुटाया करते हैं।

१७८३ ईस्वी के जनवरी महीने में हम लोग कलकत्ते पहुँच गये। कलकत्ता समृद्धि, सम्पदा और व्यापार का विशाल केन्द्र है। वहाँ पर विभिन्न पदों पर नियुक्त व्यक्ति, यूरोप के उच्च वर्ग में जैसे व्यक्ति देखने को मिलते हैं, उनकी

तुलना में कहीं अधिक ठाठ-बाट के साथ कलकत्ते में चलते-फिरते हैं। हर भद्रपुरुष के साथ बीस नौकर रहते ही हैं, आठ बैरा, दो पैदल साथ चलने वाले, हरकारा जो आगे-आगे चलते हैं। घर-गृहस्थी का काम देखने के लिए तीन से चार लोग, खानसामा (Consumma), बावर्ची (Bowherchee), खिदमतगार (Kizmutgaur), इनके साथ और भी सात-आठ व्यक्ति शामिल हो सकते हैं, हुक्काबरदार (Hookeburdar), दो या तीन सईस (Sahees), घेसेड़ा (gusseara) तथा तीन या चार मशालची (Mussalchees) नामवाले बड़े-बड़े लोगों के साथ नौकरों की यह संख्या और भी बढ़ जाती है। इनके साथ जुड़ जाते हैं नकीब ;दांममअमेद्ध, चौकीदार (chowkdars), जो चाँदी का बड़ा दण्ड लेकर चलता है, सोटा बरदार (sotiburdars) जो चाँदी का छोटा-सा डण्डा लेकर चलता है, चपरासी जो चिट्ठियाँ लेकर चलता है।

मैंने अक्सर देखा है, एक सरकार (circar) अथवा किरानी, वह दिन के समय आता था, उसके सिर पर एक व्यक्ति छाता लगाये रहता था और जब वह रात में आता था तब उसके साथ दो मशालची आते थे।

प्रतिष्ठित हर व्यक्ति के दरवाज़े पर एक दरबान (derawan) रहता था, कोई मिलने आता था तब वह ज़ोर से उसके नाम की घोषणा करता था। विशाल सोपान पंक्ति के नीचे खड़ा एक और व्यक्ति उसके नाम की पुनः घोषणा करता था, जीने की विभिन्न सीढ़ियों पर खड़े अन्य लोग उस नाम को तब तक दुहराते रहते थे जब तक दरबान उसे न सुन ले, उसके बाद दरबान बैठक वाले कमरे में जाकर अपने स्वामी को, आने वाले उस व्यक्ति का नाम बताता था।

शहर के कई स्थानों पर घूमते हुए देखा है, कुछ लोग सड़क की मरम्मत कर रहे हैं, छोटे-मोटे अपराधों की सजा के रूप में उनके पैर ज़ंजीरों के साथ एक लकड़ी से बँधे हुए हैं। छोटे-मोटे अपराधों के कारण स्त्रियों के सिर मुड़ा दिये जाते थे। विवाहित लोग अगर व्यभिचार के अपराध में पकड़े जाते थे तो उन्हें गधे पर चढ़ाकर उनके सिर पर दो बर्छी अथवा वेयनेट इसलिए बाँध दिये जाते थे कि उनके विचित्र रूप को लोग देख लें और वे अपने अपराध के लिए लज्जा महसूस करें। फिर भी इस तरह की घटनाएँ एशिया में विरल थीं, यहाँ पर विवाहित जीवन में विश्वास भंग करना घृणित माना जाता है, जो दोनों पक्षों को ही (मृत्यु के बाद) चिरशान्ति और एक साथ सामाजिक जीवन से वंचित कर देगा।

१७८४ ईस्वी के जनवरी माह में हम लोगों ने कलकत्ता छोड़ दिया। हुगली नदी के बारह मील नीचे (दक्षिण में) (Belcoor) नामक एक छोटा-सा गाँव था, वहाँ तक नदी के रास्ते जाकर हम लोग जहाज पर बैठ गये।

सन्दर्भ

1. विदेश यात्री भारतीयों के आद्य विवरणों के सन्दर्भ में दृष्टव्य -

   Rozina Visram, Ayaha, Lascars and priness. Indians in Britain 1700-1974 London,1986.

   Peter Fryer, Staying Power The history of Black People in Britain, London 1984.

2. J.E., Alexander, Shigurf namah & Velait; or excellent intelligence, caneerning Europe; being the travels of Mirza. Itesa modern translated from the original persian manuseripts into Hindoostanee with an English version and notes, London 1827.

3. अप्रकाशित पाण्डुलिपि दृष्टव्य -

   Simon Digby, An eighteenth century narrative of a journey from Bengal to England Munshi Ismails, New History, Urdu and Muslim South Asia ed. Christopher shackle, Delhi 1991.

4. Charles Stewart, trans. Travels of Mirza Abu Taleb Khan in Asia Africa and Europe, 2 vols, London, 1811

5. Simon Digby – पहले उल्लेखित पाद टिप्पणी २४

6. Amiya Barat, the Bengal, Native Infantry, its organisation and dscipline 1796-1852, Calcutta 1962, pp. 183-84

7. दीन मुहम्मद के बारे में एकमात्र विवेचनात्मक प्रकाशित उदाहरण है Rozina Visram का पूर्वोल्लिखित ग्रन्थ, जिसमें उसकी जीवनी संक्षेप में दी गयी है। दीन के सम्बन्ध में पूरी और पाण्डित्य पूर्ण खोज Michael H. Fisher की है। ने यह ग्रन्थ प्रकाशनाधीन है। (यह बात जब यह अनुवाद किया गया तब की है अर्थात १९९५ की हो सकती है, इन वर्षों में छप चुका हो अनुवादक) दीन के इंग्लैण्ड में प्रवासी जीवन के सम्बन्ध में अधिकांश तथ्य Fisher क े अप्रकाशित निबन्ध From 18th Century Bengal to Victorian England, The travels of Shaikh Deen Mahamed (1759-1851)' से लिये गये हैं। अपने निबन्ध के प्रयोग की अनुमति देने के लिए मैं उसका विशेष कृतज्ञ हूँ।

8. इसके पहले जिस Tarchpoor के बारे में कहा गया है, अनुमान है वह समस्तीपुर से प्रायः ८ मील पश्चिम में बूढ़ी गण्डक की शाखा नदी के तट पर स्थित ताजपुर और Taharah है। वर्तमान ठकरा, ताजपुर से उसकी दूरी पैदल ११ मील के लगभग है।

9. यह प्रासाद गंगा के तट पर था। गत शताब्दी के अन्त में वह पूरी तरह ध्वस्त हो गया। पटना गजेटियर के लेखक L.S.S.O. Mallay ने देखा था कि वहाँ अब खुला मैदान है।

10. यह स्थान वर्तमान श्यामनगर से थोड़ी दूर है, काउगाछी नाम से परिचित है, हालाँकि रेनेल ने अपने मानचित्र में इसका नाम गौगाछि लिखा है, गढ़ की अवस्थिति को भी बताया है, नाम सुमुख अथवा शामूकगढ़ (Sumookgur)।

11. मियाना या महान्ना, बड़ी शिविका।

12. इस शब्द का शुद्ध भारतीय रूप क्या है, वह समझ में नहीं आता है। किस इमारत के बारे में कहा गया है, इसका भी ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा पा रहा है, फिर भी लावारनी के भ्रमण वृत्तान्त में इसी तरह की यात्रीशाला का उल्लेख है।

13. इस घटना का ऐतिहासिक विवरण भिन्न है। बहुत सम्भव है यहाँ दीन वसन्त अली खान को नहीं बता रहे हैं, जिसने मुख्तार उद्दौला की हत्या कर खुद भी आत्महत्या कर ली थी। यह तो वसन्त खोजा है, जिसके अधीन एक हज़ार घुड़सवार और एक पल्टन सेना थी। सियारूल मुताख्सरीन के विवरण के अनुसार आदेश पाकर अंग्रेज़ सेना नायक तीन-चार बटालियन तैलंगी सिपाही लेकर महबूब की सेना का सामना करता है। ऐसा अहसास कराते हैं जैसे वे युद्ध नहीं करना चाहते हैं। दूसरी जगह जाना चाहते हैं, और महबूब से सीधे-सीधे भेंट करने की प्रार्थना करते हैं। साक्षात्कार के बाद महबूब शिविर में भेंट करने आता है। मित्रतापूर्ण परिस्थिति के मध्य एक दिन सूर्योदय के ठीक पहले अंग्रेज़ लोग अचानक आक्रमण कर देते हैं और विजयी होते हैं। महबूब आत्मसमर्पण कर देता है। आसफुद्दौला उस पर यथेष्ट दया दिखाता है और भत्ता मंजूर कर देता है।

14. सियारूल मुताख्सरीन में इस घटना का इससे भिन्न विवरण है। रोहिला सरदार का नाम है हाफ़िज रहमत खाँ। शुजाउद्दौला यौन रोगी था और उसके निम्न अंग में घाव हो गया था। वह घाव बढ़ता जाता है और सारे उपचार विफल हो जाते हैं। एक अफ़वाह थी कि हाफ़िज रहमत खाँ की बेटी विषैली छुरी स े उसके निम्न अंग पर वार करती है और उसका परिणाम यह घाव हो जाता है। इस समाचार का कोई आधार नहीं है। किन्तु मुताख्सरीन के अनुवादक न े कहा है कि हाफ़िज रहमत का बड़ा बेटा महावत खाँ मुताख्सरीन के लेखक का मित्र था, मित्र के पारिवारिक सम्मान की रक्षा के लिए, इसे एक झूठी अफ़वाह कहा है। दरअसल लड़की, जिसकी उम्र उस समय सत्रह वर्ष थी, अपने केशों में छुरी छिपाए हुए थी, शुजाउद्दौला खड़े होकर उससे कक्ष से चले जाने का इशारा करता है, इसी क्षण वह शुजा पर वार करती है। दूसरे ही क्षण तीन खोजा आकर उस लड़की की देह में। छुरा भोंक देते हैं। उसने और भी कहा है, यह निश्चित है कि लड़की को उस दिन के बाद फिर किसी दिन देखा नहीं गया। और आगे चलकर शुजाउद्दौला के अन्तःपुर से जो दो हज़ार स्त्रियाँ बरखास्त कर दी गयी थीं, उनमें से हरेक एक ही कहानी कहती थी। वे एक व्यक्ति को पहचानती हैं, जिसके घर में ऐसी एक महिला रहती थी। वह थी चार सौ स्त्रियों में एक, जिसे सात वर्ष में दो बार शुजाउद्दौला के साथ शय्याशायी होने का सौभाग्य मिला था और इसी कारण से उसकी गिनती शुजाउद्दौला के प्रिय पात्रों में होती थी। वह भी बार-बार एक ही कहानी सुनाया करती थी।

15. दरअसल इसका नाम था 'रामजिआवन' इसका उच्चारण होता था 'रामजिआउन'। किसी-किसी ने इसे रामनगर का कोतवाल बताया है, किसी ने इसे सरदार कहा है, किन्तु विद्रोह के नेतृत्व की गुरुत्वपूर्ण भूमिका की जो कहानी दीन ने बतायी है, उसका उल्लेख किसी भी इतिहासकार ने नहीं किया है। यद्यपि दीन के कथन को हवा में भी नहीं उड़ाया जा सकता है। इस युद्ध में उसने स्वयं भाग लिया था।

कृतज्ञता स्वीकार - राधा प्रसाद गुप्त। अध्यापक अनिसुज्जमान, विकास चक्रवर्ती, गौतम भद्र। अनाथनाथ दास, समीरण नन्दी (विश्वभारती रवीन्द्र भवन), सुप्रिया राय, आशीष हाजरा (रवीन्द्र भवन ग्रन्थागार), कराली बारुई (विश्व मराठी केन्द्रीय पुस्तकालय), निमाई चट्टोपाध्याय (बीबीसी), 'देश' शारदीय अंक १९९५ से साभार।

अमरनाथक यात्रा

विवेकानन्द झा

'न' करना बड़ अजीब सँ लगैया, तय पँर दोस्त, ओकरो मे सुनील सन, एक असंभवे काज अछि। हुनक समझाबैक प्रयास कऽ सकै छि, मना नय कऽ सकै छि।

''देखु सुनील बाव, इमहर ढेर दिन पँर गाम सँ ऐने छि। आर आहां ते जानैत छि कि इ माया नगरी सँ बेसी दिन दूर रहू तऽ फेर शुरू सँ शुरू करू। बुझु हर छुट्टी आहांक शून्य पँर पठा दै या। आब आहीं कहु कि बार-बार शून्य सँ शुरू करना की नीक रहतै?''

उत्तर मे एक दिनक समय आर किछु अमूल्य वचन भेटलः

''आपनेक कथन तऽ ठीक अछिय मामा (किछु मित्र हमरा मामा सम्बोधित करैत अछिय) मुदा ऐना अवसरो प्रतिदिन नय भेटत। जहिना आहां एक बेर वै ठाम सँ ऐलौ, फेर देखब कहियो शून्य सँ शुरू नय करै पड़त। आहां बेसी नय सोचू बस चैल आबू। हँम कायल फेर फोन करब।''

नीके गँप्प। श्रद्धा पँर संदेह कोना! दुबारा फोन आबै सँ पहिने सँब निश्चय कँ लेलौ। निकले सँ पहिने सँब परिचित सँ गँप्प केलौ। मुदा आइयो इ सोचै छि जे ऐना सँब सँग गँप्प क्या केनै छलौ? इ जतबैक लेल कि जहि ठाम हँम जा रहल छि, आहां सब नय जा रहल छि? वा निश्चिन्त हैबाक लेल कि चलु गँप्प तऽ भऽ गेल, आब आगां जे भि"ट-अभिष्ट लिखला? दुख बस एके बातक छल जे मां-बाबूजी सँ भेट कऽ नय निकलै सकब। आर्शीवाद तऽ सँग छल। मुदा हुनक भीतर तऽ छलैन जे हँम नय जाय त ठीक। लोकक मँन मे भागवानक भक्तिक सँगे एकटा अदृश्य डँर तै पँर विश्वास आर प्रेमक माला ऐहैन गुथल रहै छैन जहि मे सँब संकोचक समाधान छैन। तय सऽ न उ रोकलखिन नय हँम रूकलौ।

आब निकलैक छल। मँन मे भेल जे विभो सँ मिलैत चली। विभो सँ मिलैक आकांक्षा मण्डी स्कूल सँ बिछड़ैक उपरान्ते जागृत भऽ गेने छल। आब भोपाल भेने जाय कऽ विचार केलौ। दु मित्र आरो सँग छल। देव, जे भोपाले सँ छथिन आर अभिमन्यु शिमला सँ। आब हमरा सँब ट्रेन पँर छलौ।

भोपाल ऐतिहासिक नगर तऽ अछिये आब आदरणीयो छल। दोसर दिन भोरे हमरा सँब भोपाल पहुँचलौ। देवक पिताजी जे एक बैंक अधिकारी छथिन, हमरा सँब कऽ आपन गाड़ी सँ घँर लऽ गेलखिन। घँरक अव्यवस्था एकर नया हुअैक प्रमाण छलैन। नहबैत, सुनबैल, जलपान करैत दुपहर भऽ गेल। गरमो अत्यधिके छल। ऐना मे विभो लँग जाना

उचित नय जायन पड़ल। हमरा सॅब भोपाल-दर्शनक लेल निकैल गेलौ। मुख्यमंत्री निवास, नया सोफिया कॉलेज, भारत-भवन, रविन्द्र भवन, एल.बी.टी., झील, पटौदी आवास देखलौ। आर हां मरीन ड्राइव बम्बईक नयका संस्करण सेहो देखलौ।

या बीच पता चलल जे आलोक दा ठामे रिहरसल करवा रहल छैथ। दादा हिमाचल सांस्कृतिक शोध संस्थान एवं रंगमण्डल मे पढ़वैक लेल एनै छलैन। मां कालीक असीम अनुकम्पा आर हुनक निरन्तर खोज आर प्रयोग रंगमंच मे हुनका विशि"ट पहचान दै छैन। मित्र ब्रजेश एक बेर गॅप्पे मे कहने छल जे स्वामी विवेकानन्द कऽ पढ़ैत जे छवि बार-बार उभरैन उ हिनकरे रहैन। ठीके गॅप्प, इ सॅब तऽ एकटा घरोहरे छथिन। वै ठाम हुनकर मण्डली आर शोभाजी सॅ सेहो भेट भेल। दादा आशीर्वाद सॅ भैर देलक। मुदा इ बेर दादा किछु थकल दिखल। इ वास्ते नय कि दादा मे उत्साह वा उर्जाक कमी छल। बस लागल तऽ लायग गेल। मां कठोर आर कर्म नरम कहिया भेने छै। तै सऽ तऽ विभो कहैत छैन जे समाजक इ उत्तरदायित्व हैवाक चाहि जे उ कलाकारक प्रश्रय दैन, हुनका पालैन।

आय सांझ खूऽब बाट जोहेलक। विभोक डाकिये पता सॅग नय छल। चोंगाक नम्बर तऽ छल, मुदा औचकक आनन्दे दोसर। दूरभाष केन्द्र सॅ पता लेल गेलैन, इ सॅब काज देवक एकटा स्थानीय मित्र अन्वे"ा करैत छलैन जे दुपहरे सॅ सॅग छल। किछ मधुर लैवाक बाद हमरासु आपन गन्तव्य पॅर छलौ। अन्हार भऽ गेने छल। हॅम आब हुनक घॅरक बाहर छलौ। एकटा कार बाहर लागल छल। दुई कन्या गॅप्प करैत छलि। मकान संख्या देखवाक बाद लपैक कऽ गाड़ी सॅ निकललौ। उत्सुकता छल मुदा एक बेर पुछना उचित जायन पड़ल। कन्याक अनुसार पता सही छल। अच्छृंखलता ताइड़ कऽ उ आपन सखी सॅ विदा लेलि आर हमरा सभक लेने अन्दर प्रवेश केलि।

जूता उतारैक बाद तखत पर प्रसाद रायख कऽ गोरका झबरैल कुकुर कऽ पुचकायर कऽ विभोक प्रणाम केलौ। मॅन शीतल भेल। गॅप्प चलै लागल ऐना जेना कतबा दिन सॅ चलैत आयब रहल अछिय। गॅप्पे मे जानलौ जे विभो सेहो दिल्ली जा रहल अछि। अवसर कऽ उचित जायन हमरो सॅब दोसर दिनक आरक्षण भोपाल एक्सप्रेस सॅ करा लेलौ। दोसर दिन सांझ तक बचल भोपालक देखलौ। फेर खाना खा कऽ, हां खाना खायत देवक माताजी कहलखिन ''एबता जल्दी जाय कऽ की कारण? आहां सब कऽ तऽ मनैक करवाक है या''। हुनक दुलार मे कने खीसो घोरायल छल। कहिनो कऽ समझेलौ, कहल जाय तऽ बनेलौ आर स्टेशन चैल देलौ। देव ऐतै रूइक जेता। गॅर लायग कऽ उ जा लागल। मॅन भारी भऽ गेल।

बम्बई मे नीरज, ब्रजेश, फिरोज़, गुलाब, अमिय, नरेन्द्र, सॅब सॅगे रहै छि। जखन चलने छलौ तखन आसपासक बड़ भाय आर मित्र जहि मे नागोरी, गिरीक्षित, ललित, नितिन, विनोद, ओपी, राहुल, यशवन्त, पु"पेन्द्र, अब्बास, सुनील, सौम्य, संजय, वरद, पीयु"ा, आनन्द, शिवेन्द्र हरीश, अनिल, हेमन्त, मुरारी, सुनील राय, नीरज सूद विदा केने छल। तखनो मॅन भारी तऽ छल, मुदा देव आर अभिमन्यु सॅग छल। आब देवो छूइट गेल छल।

ट्रेन चलल। ट्रेन नीक छल। दुर्भाग्य सॅ हमरा सभॅक सीट अलग छल। तैयो विभो ता धैर सॅगे रहलैन जा धैर निन्द अनुमति देलकैन। भोरे दिल्ली पहुंचलौ। विभो सऽ विदा लऽ कऽ दुनु चण्डीगढ़क ट्रेन लैवाक लेल बढ़लौ। एखन ट्रेन मे समय छल। दुनु प्रतिक्षा कक्ष मे नहा-सुना कऽ तैयार भऽ कऽ टिकट लऽ लेलौ। हमरा कुरूक्षेत्र जैवाक छल आर अभिमन्युक चण्डीगढ़। बचल समय मे जलपान केलौ आर किछु मित्र जहि मे अनूप, सन्तो"ा, आशी"ा, सुधीर, तज्जू, गिरधर, हरिकान्त, रजत, नवोदित, शिवा जे मण्डीक बाद दिल्ली चुनने छल नाटकादि गतिविधिक लेल हुनका फोन केलौ, आर दिल्ली छोइड़ देलौ।

ट्रेन किछु विलम्ब सँ चैल रहल छल। यात्रीगण ओकता गेने छल। दुनो गोटाक गँप्पो समाप्ते छल। मुदा ओकताय सँ दूर छलौ। तखने किछ पमरिया चढ़लैन। आर हुनकर जोना आदत रहै छैन, तोना करै लागलैन। बेसीतर लोक ऐना घड़ी मे गम्भीर भऽ जाय छैन। उल्टा हँम हुनक सँग रैम गेलौ। आर आय तक ऐना सम्पन्न मांगैवालाक किछु देने नय छलौ। मुदा उ दिन देने छलौ। आर माथा पँर हाथ रैख कऽ आशीर्वाद दैबाक लेल सेहो कहने छलौ। सुनने छलौ जे हिनक आशीर्वाद व्यर्थ नय जाय छैन। नीके, अगर बनवै वाला सँ कुनो चुक भेने हेतैन तऽ हिनक आशीर्वाद कऽ फलित कैर किछु शान्ति पावैत हेतैन।

कुरूक्षेत्र पहुंचलौ। पैग यात्राक छोटका पड़ाव। दुनो ऐहन गला मिललौ कि फेर भेट हायत नय हायत। ट्रेनक जमल संवाद पाइन बैन कऽ झड़ै लागल। ट्रेन अभिमन्युक लऽ कऽ चैल देलक।

कुरूक्षेत्र अनेकानेक बेर ऐने छि। मित्र सुनील आर श्यामक साझा व्यवसाय ऐतै छैन। हँम फोन सऽ आबैक सूचना देलौ। किछुए देर मे श्याम उपस्थित भऽ गेल। इ बात हमरा बाद मे पता चलल जे उ दिन शैन छल, श्याम बैंक नय जा सकल छल, जहि कारणे हुनक काज तीन दिन आगां बैढ़ गेने छल।

श्याम शादी-शुदा छैन। सुगढ़ पत्नी आर एक सुन्दर बालक छैन। विवाहक पश्चात श्याम अलग घँर लँ लेने छल। हँम पहिल बेर वैठाम जा रहल छलौ। किछु घड़ी सुस्ता कऽ, खाना खा कऽ, सुनील सँ मिलैक लेल चललौ। मिलन कुनो चकित करै वाला तऽ नै छल मुदा उत्साह आइख मे छल। वै ठाम बचपनक मित्र रोहित सँ सेहो भेट भेल। जे किछु दिन सँ सँगे काज करै छल। आर ओमजी, जे छलैन तऽ श्यामक मेहमान मुदा हुनका दहेजक रूप मे हमरा सभक सँन ढेर सार भेटने छलैन।

यात्राक व्यवस्था लेल किछु दिन रूकै पड़ल। कुरूक्षेत्रो धार्मिक क्षेत्र अछिय। अर्ध्य कुम्भक विशाल मेला जहि मे एक संगे दस लाख श्रद्धालु स्नान कऽ सकैया ऐहन सरोवर अछिय। महाभारत या ओकरा सँ पहिनेक अनेकानेक पौराणिक स्थल इ क्षेत्रक विशिष्ट बनावैया। माता पार्वतीक टखना खसल स्थान रहैन वा भीष्मक सरशैया पँर बितायल स्थान वा दिशाहीन अर्जुनक कृष्ण द्वारा कहल गीता ज्ञान सँब अलौकिक छैन।

सँगे उ घटनो बड़ अनूठा छैन जहि लेल कृष्ण इ भूमि कऽ युद्ध लेल चुनने छल। कहल जायत छैन जखन युद्ध भूमि चुनवैक लेल प्रभु निकललैन तऽ धरा हाथ जोइड कऽ सामना ठाड़ भऽ गेलि। अनाचार तऽ चरम पँर छल। मुदा भारतवर्षक तमाम महारथीक रक्त के आपन आंचल मे समेटक लेल तैयार हायत? प्रभु आश्वस्त केलखिन आर ढूड़ै लागलखिन। एक ठाम देखलखिन जे खेतक आयर सँ पायन निकलैत देखि पिता पुत्रक सिर कायट कऽ ओही ठाम लगा देलकैन। एकरा सँ पैग निष्ठुरता आर की भऽ सकै छल। जहिया भी समाज मे ऐहन कृत्य हेता महाभारते हेता आर की हेता।

हमरा सँब कऽ वी.आई.पी लिखल यात्रा स्वीकृति पत्र भेट गेने छल। तेसुर सांझ अम्बाला सँ जम्मूक लेल ट्रेन पकड़लौ। आर भोरे बुन्दा बुन्दीक बीच जम्मू सँ टाटा सूमो लऽ कऽ श्रीनगर विदा भेलौ। पहाड़क लऽ कऽ ऐना कुनो रोमांच तऽ नै छल। मुदा पहाड़ पँर छुपल एक डँर आर डँरक भगवैक लेल ठामेठाम ठाड़ भारतीय सेना रोमांचित करैवाला छल।

किछु वर्ष सँ समस्या वा सेटेलाइट चैनल कऽ लऽ कऽ इ राज्य तत चर्चा मे रहल कि लोगक आपन राज्य सँ बेसी जानकारी इ राज्यक छल। गाड़ी एक ठाम रोइक देल गेलैन। शरीर आर सामानक निरीक्षण भेल। ठामे चायक दोकान छल। चायक चुसकीक बीच ड्राइवर कहलक कि दु दिन पहिने बी.एस.एफ. आर सेनाक एक-एक गाड़ी उड़ा देल गेने

छल। ठामे नीचा घाटी मे एक गाम छल, सन्देह ओकरे पर गेलैन। पूरा गामक सील कऽ देल गेलैन। आर इ एक कैम्प बना देल गेलैन। दिन झापल छल। अन्हार हुए सॅ पहिने श्रीनगर पहुंचवाक छल। चलना शुरू छल। फेर तऽ गाड़ी उड़बैक गॅप्प रहैन वा गोला फेकैक, सॅब आम भऽ गेलैन। ड्राइवर सॅ ऐना-ऐना गॅप्प सुनैक मिलल कि अघा गेलौ। पाछां देखलौ तऽ श्याम सुतल छल। सुनील बाहर लीन छल। हुनक चुनाव उचित छल। घना जंगल, पहाड़, घुमावदार रस्ता हमु देखै लागलौ। अगर एक गोली इम्हर सॅ आबैन वा आतंकवादी सामना आयब कऽ ठाड़ भऽ जायन, तऽ की करब? कोना बचब? सुनील की सोचैत छला से तऽ नै मालूम मुदा हमर माथा मे उट-पटांग गॅप्प चलैत रहल।

''इ ठाम उ सॅब बेसी धनी छैथ जिनका बेटी बेसी छैन'' ड्रॉइवर सॅ तऽ हॅम ऐहिना पूइछ देने छलौ कि इ मंदी मे वा ऐना डॅर मे हिनका सभक रोजगार कोना चलैत छैन, माने पेट कोना भरैत छैन? ड्राइवर तऽ आरो किछ कहै वाला छल मुदा चुप भऽ गेल। दहेज हुअैन वा देह, वेदी पॅर तऽ बेटीये चढ़ै छैन, इ मे कुन नया गॅप्प। हॅम सॅब पवित्र यात्रा मे ऐहन गॅप्प सऽ परहेज चाहै छलौ। ड्राइवरोक ऐना गॅप्प करैत आनन्द तऽ नहिये भेटैत छल। मुदा हुनका नय रोकलियैन। किछु देर बाद चश्मा उतायर कऽ हुनका आंयख पोछैत देखलौ।

आब उतार-चढ़ाव समाप्त भऽ गेने छल। मैदानी भूभाग शुरू छल। चहु दिस हरियाली छल। पायन छल। संगीत छल। गीत छल। मवेशी छल। सूरजक तिरछा किरण छल। बाट चलैत निश्चिन्ति छल। मुदा किछु नय छल तऽ डॅर जे कथौ नय छल। डॅरक डॅरो कतैक दिन। ड्राइवर जे पचपन बर्षक हेता किछु गुनगुनावै छल।

''आहां सॅब कतबाक भाग्यशाली छि जे एतवाक रमणिय स्थल पॅर रहैत छि''। हुनकर मुस्कै सॅ इ झलैक गेल जे ऐना गॅप्प ढेरों बेर सुनने छल। एकरा सॅ मॅन आब नय बहैल सकै छल। श्रीनगर छोड़ैक दुख, आपन घॅर, आपन गाम, आब सॅब गीते मे छल आर वोहो कलपैत ओठ पॅर।

श्रीनगर पहुॅच कऽ जम्मू-कश्मीर टूरिज्मक होटल लेलौ। देर रायत सड़क पॅर घुरैत रहलौ। यात्रीक रेला छल। लागैन इ श्रीनगर नय, दिल्ली, बम्बई छल। घॅर फोन करैक सोचलौ तऽ बूथ सिद्धिविनायक बनल छल। कतारे कतार। भोर बालटाल जैवाक छल। हॅम सात बजै तक बस मे सवार छलौ। बॅस मे बेसीतर यात्रीये छल। रस्ता मे सादा वस्त्र मे किछु जन ड्राइवरक बस रोकैक लेल कहलकैन। ड्राइवर नय रोकलकैन। किछु देर बाद उ सॅब कुनो पगडंडी धऽ कऽ बस कऽ सामना सॅ रूकवा कऽ चैढ़ गेलैन। फेर किराया लेल झमेला हुअै लागल। हुनक कहवाक छलैन जे एक तऽ आधा रस्ता मे चढ़ेलौ, छः मे चार जनक बैठक लेल स्थान देलौ, तऽ पूरा पाय कोना दऽ देब। बात बाढ़ैत गेल। रस्ता उबड़-खाबड़ छल। अनेको गाड़ी रूकल छल। अवसर देख कऽ छहो जन बस सॅ उतरै लागल। मुदा सॅब यात्री ठाड़ भऽ कऽ हुनक सॅब सॅ पाय लऽ कऽ कण्डक्टरक दिलवेलकैन।

अहिना तऽ हैत रहै छैन, हर बस मे, हर राज्य मे। एकरा मे महत्व कऽ की। मुदा इ गॅप्पक बिना वृतान्तक की महत्व? की औचित्य? जे पाय नय दैत छल, उ सॅब रक्षक छल, जे छुट्टी लऽ कऽ दर्शनक लेल जायत छल। दोसर बसवाला जे स्थानीय छल जिनकर सालभरक आमदनीक पैग साधन या यात्रा छैन। तेसर दर्शनार्थी छलैन जकर प्रयास सॅ न्याय भऽ सकलैन। भाषायी वा जायतक मतभेदक बादो एक सॅग ठाड़ भऽ कऽ अन्यायक विरोध, यात्राक उद्देश्य तऽ किछ भऽ सकै या। तऽ कि इ प्रवेशकक परीक्षा छल?

एक सौ तेरह किलोमीटर यात्राक बाद बालटाल पहुँचलौ। यात्रीक सुविधा आर नियंत्रण रखवाकलेल संकरी नदी पॅर बनल पुल कऽ सीमा बना कऽ यात्रीक दुई भाग मे विभाजित कऽ देल गेल छल। पुल सॅब महर सॅ कन्टीला तार सॅ

गुथल छल। एक छोट रस्ता सँ बड़ सावधानी सँ यात्रीक भेजल जायत छल। छः बजे भोर सँ दस बजै भोर तक यात्री जा सकैत छल। हम सँब तऽ बारह बजे पहुँचबे केने छलौ। देखलौ उ पार जायक लेल यात्री उमड़ल छैन। देखा-देखी हमु सँब 'ामिल भऽ गेलौ। मुदा असफल रहलौ। पुलिसिया हिदायत छलैन 'जे आगां रस्ता संकरा आर असुरक्षित हैवाक कारणे धाम पहुंचैत-पहुंचैत रायत भऽ जायक सम्भावना छैन। वा आधा रस्ता सँ घुरा देबैक अंदेशो छैन। से लऽ कऽ यात्रा आब भोरे 'ारू हेतैन आर पुल पार करैक छूट सांझे देल जेतैन'। असुविधा तऽ छल मुदा सुरक्षितो या छल। हमरा सँब भोर छः बजैक विचार कऽ लेलो। मुदा किछ यात्री पानीक रस्ता, किछु पुल सँ लटैक कऽ, किछु बहादुर कन्टीला तार सँ भऽ कऽ निकलैत रहल, आर लाठीयो खायत रहल।

इ बेरक यात्रा मे जम्मू-कश्मीर पुलिसक प्रमुखता छलैन। जकरा मे हिन्दु-मुस्लिम दुनो छलैन। यात्री कऽ वास्ता देबैक लेल एक नया बहाना भेट गेलैन। हिन्दु पुलिसक कहैन जे 'आहां क्या विघ्न डायल रहल छि? ऐना मे कि बुझै छि किछ भला हायत?' वा अगर मुस्लिम हुअैन तऽ हुनका सुनै पड़ैन, 'आहां जायन-बुइझ कऽ हैरान कऽ रहल छि। आहां रोकै वाला के है छि? जे एहि ठाम तक नीक जोना पहुंचेने छैन आगुओ पहुंचेतैन'। जखन योहो हथंकडा नै चलैन तखन, 'देखु भाय, हमर मां वा परिवारक लोक निकैल गेने छैन बस हमीं टा छुइट गेने छि' कहैन। जखन एकरो पॅर सुनवायी नै हुअैन तखन अन्तिम हथियार धरनाक धमकी देल जायन। कहल जायन जे 'एना लाठी खा सँ तऽ गोली खाना ठीक, या तऽ आगां जा दिअ वा गोली मायर दिअ'।

''हां हॅम सँब तऽ पापी छि जे आहां सभक रोकै छि। मुदा हॅम सँब बस आहां सभक सुरक्षित दर्शन करवावैक लेल प्रतिबद्ध छि। आहां सभक कष्ट है या इ जानैत छि। मुदा हाथ जोइड़ कऽ प्रार्थना करैत छि। किछु दुर्घटना नै हुए भगवानो सँ या आराधना करैत छि...।''

भावुक स्वरक याचना किछु घड़ी लेल यात्रीक शांत कऽ दैन। किछु घुरीयो जायन। फेर किछु कालक बादे एक नया जत्था आर वे पुरान बहाना आर वे पुलिसिया दांव पेंच।

नटराजक सामना नाटक। युक्ति जे भी रहैन कारण तऽ बस जल्द सँ जल्द दर्शन छलैन। आर यात्रीगणक शब्दवाणक झेलैत इ नीलकण्ठ जे यात्रीयेक सुरक्षा मे ठाड़ छलैन। सँब तऽ हुनकरे माया तऽ उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण के?

छः बजै सांझ तक ऐना दृश्य अनेकानेक बेर देखैक मिलल। छः बजैक बाद पुल पॅर आवाजाही शुरू भेल। कुरूक्षेत्रक आयोजक जहि शिविर मे हमरा सभक व्यवस्था केने छल उ पुल पार छल। किछ पूछताछक बाद हमरो सभक पुल पार करैक मिलल। ओना रहैक व्यवस्था दुनो महर छल। एक किराया वाला छल जे स्थानीय लोकक सहयोग सऽ चलैन आर दोसर शिविर वा भण्डारा छल जकर आयोजक बाहरक लोक छलैन। रहना-खाना सँब निःशुल्क छल। स्वेच्छा सँ जे दैवाक चाहि दऽ सकै छि। किछु नय दैवाक या तऽ संकोच नय। केहु टोकै वाला नय। कोनो प्रकारक उंच-नीच नय।

हॅम सँब आपन निर्धारित शिविर मे गेलौ। वै ठामक कार्यकर्त्ता सँ मिललौ। जलपानक बाद संचालक सँगे पूरा व्यवस्था देखलौ। व्यवस्था अद्‌भुत छलैन। एक सँगे सैकड़ो यात्रीक ठहरैक व्यवस्था। मोट पुआर पॅर लकड़ीक तखता, तै पॅर रबरक दरी ओकरा पॅर गद्दा तै पॅर कम्बल तखन चादर, तकिया आर ओढ़ैक लेल ढेर कम्बल, एक-एक कऽ लेल सात-आठ कम्बल। माने ठण्डा छुबै तऽ दूर देखियो नय सकत। आर इ पूरा व्यवस्था टिनक चादर आर त्रिपाल सँ सुरक्षित सौसे क्षेत्र मे फैलल छलैन।

सुतैक व्यवस्थाक बाद खायक व्यवस्थाक बारी। योहो व्यवस्था अद्‌भूत। माने प्रतिस्पर्धे छलैन दुनो मे। खाय मे सँब

प्रदेशक खाना। भोरक 'ाुरूआत चाय, कॉफी, पोहा, पुड़किया रकम-रकमक मिठाय सॅ हुअैन तऽ रायत खीर, पूड़ी, हलवा, लस्सी, छाछ, दूध, दही, मलाई सॅ। इ सेवा अनवरत चौबीसो घड़ी चलैन। जे शिविर मे हमरा सॅब ठहरने छलौ उ सालों-साल सॅ लागैत आयब रहल छल। इ भव्य आयोजन कोना है छैन, दान-गुप्तदान, श्रमदान, महादान इ समीकरण मे तऽ बेसी नय उलझलौ। मुदा एतबा समझै मे आयब गेल जे सेवाभाव आर विश्वास सॅ किछ भी आर कथौ भी करल जा सकैया।

समूचा क्षेत्र रमणीय छल। आगां गूंजैत नदी तऽ पाछां ऐड़ी उठा कऽ आकाश छूबैत पहाड़। आर इ प्रयास कऽ निष्फल करैत उपर सॅ बरफक दाबन, अदभुत छलैन। यात्रीक मनोरंजनक लेल भजन-आरती, कीर्तन, ढोल-ताशा, पैग-पैग टी.वी. पॅर शिव महिमाक सेहो व्यवस्था छल। भोपू पॅर यात्रीगणक आपन-आपन शिविर मे आमंत्रित कऽ सेवाक अवसर प्रदान करवाक लेल आग्रह करल जायत छल। आर असुविधाक दूर करवैक दिशा-निर्देशो क्रमशः कहल जायत छल।

सुतैक लेल कोय तैयार नय छल, न परिचित न अपरिचित। देर रायत हॅम घुमैत रहलौ। या क्रम मे दर्शन सॅ लोइट रहल यात्री सॅ पता चलल जे गर्मी आर यात्रीक भीड़क कारणे तापमान मे अन्तर आयब रहल छलैन। आर आकारो छोट भेने जा रहल छलैन। भोर तक दर्शन हेबो करतैन की नय कहना असंभव छलैन।

'असंभव-संभव तऽ हुनकरे हाथ। एहि ठाम तक साथ तऽ आगुओक वे जानैन बात। हुनकर आदेश हेतैन तऽ दर्शनो हेतैन नय तऽ जय सिया-राम...।' हमरा सभक सॅग दिल्लीक पांच यात्री सेहो छल। जे आपन गॅप्प सॅ यात्रीक अंदेशाक भगवै मे लागल छल। हमरा छोइड़ कऽ लगभग सॅब दू-पांच-दस बेर यात्रा करैवाला छल। आपन-आपन अनुभव सॅ अवगत करावैत भोर भऽ गेल।

श्याम उठल आर इम्हर-उम्हर घुरैत बाहर निकैल गेल। किछु देर बाद आयल तऽ उ नहायल छल। हॅम आर सुनील एक दोसराक देखलौ। आब मूसल खायक बारी अपना छल। हिम्मत कऽ शिविर सॅ बाहर निकललौ। लागल सहत्र सूई एकबारगीये चेहरा मे घुइस गेल। डेग पाछां भऽ गेल। मुदा यात्रा आर यात्रीक संख्याक देखैत ऐखने साहस करना ठीक छल। दिशा-मैदान सॅ निवृत्त भऽ कऽ पायन मे हाथ देलौ तऽ लागल हथेली पायन मे भैस गेल। किछु देरक बाद हथेलीक संज्ञान भेल तऽ हिम्मत भासने चैल गेल। श्याम तैयार भऽ कऽ बाहैर आयब गेने छल। आर हमरा सभक दशा देखि मुस्कै छल। हमरा सॅब दांत माजै लागलौ। आर नदीक काते-कात कनेक आगां पहॅुच गेलौ। 'याम एखनो इम्हरे देख रहल छल। तौनी लपेट कऽ दुनो आदमी सरपट नदी मे कूइद गेलौ। जानो भैस कऽ चैल जायत रहल। पोलियो, लकवा, बेकामी, सुन्न पडव, इ प्रकारक जतबा रोग छल, सॅब एके साथ भऽ गेने छल। तीन डुबकी आवश्यक छल। सुनील हिसाब-किताब मे बड़ पक्का। नाक-आंयख मुइन कऽ माथाक धऽ कऽ पायन मे गोतारलौ। मुदा आब चेतनो शून्य भऽ गेलौ। किछ टा स्मरण नय। कते सुनील-कते हॅम। किछु कालक बादे चेतना लौटल। फेर तऽ हमरो सु चहकै लागलौ। साढ़े तीन बाजैत तैयार भऽ गेने छलौ।

यात्रीक सुविधा मे कमी नय छल। नहबैक वास्ते गर्म पानीक व्यवस्था छल। शौचादिक लेल कतार सॅ शौचालय गृह छल। चाय-काफीक सॅगे जलपानक सॅब व्यवस्था छल। यात्रा दुर्गम आर लम्बा हुअैक कारणे कोय भुखल नय जाय एकर ध्यान राखैक लेल पचासो कार्यकर्त्ता। ओना आपन इच्छा सॅ वा उपवासे कोय जायक लेल चाहैन तऽ अलग गॅप्प। रायते घोड़ावाला सॅ गॅप्प कऽ लेने छलौ। यात्रा पैदल, घोड़ा सॅ, टट्टू सॅ, खच्चर सॅ, डोली सॅ करल जा सकै छैन। सामान ढुआबैक लेल पिट्ठू माने सामान ढोबै वाला आदमी सेहो उपलब्ध छैन। सहाराक लेल लाठी आर गरम

कपड़ा सॅब उपलब्ध छैन। यात्राक आवश्यक वस्तु सॅ सुसज्जीत भऽ कऽ आब चलैक लेल तैयार छलौ। पांच बायज चुकल छल।

उत्साह तऽ वरक सन छल मुदा घोड़ा पॅर सवार सैनिक जोना भेलौ। शरीर चुस्त ऐना जोना लड़ाई मे जा रहल छलौ। मुदा इ कि घोड़ाक रास तऽ सैनिकक बदला घोड़ावालाक हाथ। हॅम पुछलियैन ''भाय रस्सी तऽ पकड़ा दिअ''। उत्तर भेटल ''आहां आपनेक सम्हार लिअ, इ हमरे लॅग रहै दिअ''। आर निर्देशो देलक ''चढ़ाई पॅर आगां आर ढलान मे पाछां भऽ जायब''। फेर तऽ भैर रस्ता आगां-पाछां झुलैत रहलौ।

पहाड़ी जानवर खाईये पकैड़ कऽ चलत। हॅम कतबो प्रयास करौ नय उ तऽ किनारे धैने छल। यात्रा मे मॅने कुनो खीझ नय हैवाक चाही। मुदा इ तऽ तय छल जे इ देखै मे ही अश्व छल मुदा छल गर्धवराज। कखनो लागल कि आब गेलौ मुदा नय गेलौ। दुइ-चार बेर गेलौ नय गेलौक खेल चलल फेर आपने-आप सॅब खीझ लुढ़ैक कऽ खाय मे खैस पड़ल। धीरे-धीरे विश्वास बढ़ैत गेल तऽ निश्चिन्त भेने गेलौ। इ परिवर्तनक पता तऽ घोड़ोक हेतैन। दुर्गम घाटी पार करबैक भार तऽ हिनके पॅर छल। आब इ नन्दी छल। हुनकर पीठ थपथपेलौ। मनोदशा बुझै मे जानवर तऽ जादूगर। वोहो पुछ सॅ हमरा स्पर्श केलक। यात्रा तऽ या सब छोट-छोट घटनाक युग्म छल। मुदा इ जिम्मा सॅ उ आर सजग भऽ गेने हायत।

धाम जाय कऽ दू मार्ग छैन, ओना आब तीन भऽ गेने छैन। एक मार्ग कम जोखिम उठवैवाला, प्रकृति प्रेमी आर आराम सॅ समय लऽ कऽ जाय वालाक लेल छैन। इ मार्ग श्रीनगर सॅ छियानबै किलोमीटर दूर पहलगाम भऽ कऽ छैन। फेर सोलह किलोमीटर दूर चन्दनबाड़ी पड़ै छैन। फेर तीन किलोमीटर पॅर पिस्सूटॉप। तकर ग्यारह किलोमीटर बाद शेषनाग। फेर चौदह किलोमीटर बाद पंचतरणी। तकर छः किलोमीटरक बाद पवित्र गुफा। इ सॅब स्थल रमणीय आर दार्शनिक छैन। शेषनाग एक झील छैन तऽ पंचतरणी पांच नदीक संगम। कहल जायत छैन जखन माता पार्वती महादेव सॅग जाय छलि तखन एक एक स्थल पॅर आभूषण छोड़ने गेने छलि। इ मार्ग सॅ यात्री हर स्थान पॅर रूकैत, अनुभव करैत बढ़ैत अछि।

दोसर मार्ग जिम्हर सॅ हॅम सॅब आयब रहल छि। इ मार्ग रोमांच प्रेमीक लेल वा कहल जाय तऽ हड़बड़िया लोकक लेल छैन। मार्ग दुर्गम छैन। समैयो कमे लागै छैन। देखैक लेल बहुत किछु छैन। मुदा रूकैक स्थान नय छैन। देखैत चलु आर बढ़ैत चलु। हां आहां रूकै छि तखन जखन टट्टू वा घोड़ाक सांस लेबैक आवश्यकता पड़ै छैन।

तेसर मार्ग हेलिकॅप्टर सॅ छैन जे हालिया छैन।

धरणा छैन जे चढ़ाई पहलगाम सॅ आर उतरायी बालटाल सॅ करवाक चाहि। बेसीतर एहिना करैत छैन। पहलगाम मार्गक विशेषता छैन जे वर्षा भऽ गेने पॅर यात्रा प्रभावित नय है छैन। किछु घड़ीक लेल रूकै छैन, बन्द नैय है छैन। मुदा बालटालक मार्ग पॅर तऽ प्रश्नचिन्हे लायग जाय छैन। कहल जाय तऽ बालटालक मार्ग प्रतिदिन तैयार है छैन। छोट-छोट पाथर, बुरादा, गिट्टी सॅ मार्ग बनायल जायत छैन। अनवरत सेनाक जवान काज करैत देखल जा सकै छैन।

घोड़ाक आरामक आवश्यकता छल। हॅम एक छोट समतल स्थान जहि ठाम बीस सॅ पच्चीस छोट-छोट पन्नी आर दरी सॅ बनल तम्बू लागल छल, रूकलौ। जकरा मे आवश्यक समान भेटै छल। हॅम चायक इच्छा जतेलौ। घोड़ावाला टोकलक ''साब इ हमरा सभक बिरादरीक दुकान अछिय। आहां पूजाक लेल जा रहल छि, चाय कोना पियब?'', इच्छा भेल तऽ बुझू ग्रहणो कऽ लेलौ, जाति-बिरादरी सॅ की। मुदा टोकक कारणे बिना चायक आगां बढ़लौ। इ पड़ाव

विशुद्ध घोड़ा आर घोड़ावालाक लेल छल। जहि मे बीस मीनटक विश्राम भेटल।

इ ठाम सँ उतरायी शुरू छल। फटाफट हँम सँब नीचा उतरै लागलौ। रास धैने घोड़ावाला सँगे-सँग भागैत रहल। लागल जे किछु आहिस्तो तऽ जा सकै छि? एतबा हड़बड़ाबैक कि अवश्यक्ता? मुदा इ असम्भव छल। बम्बई मे आहिस्ता चलल जा सकैया? बिन हड़बड़ैने जीवन मे किछ पायल जा सकैया? जीवनक उतार-चढाव मे गति गड़बड़ायल तऽ गेलौ। घोड़ा रूकत तऽ पाछांक घोड़ा कोना बढ़त। ठाड़ो रहै सँ स्थाने छेकल जायत। जखन मैदान मे पिसल जाय कऽ अंदेशा रहैया तऽ इ तऽ शिखर छल। वा तऽ भागैत रहु वा खाय मे खसु।

आब हँम सँब तलहटी मे चैल रहल छलौ। एक विशाल नदी सँग छल। या नदी किछु काल पहिने एक नाला सँ लागै छल जखन उपर छलौ। पल मे कि सँ कि देख रहल छि। रस्ताक बारे मे किछ नय जनैत छि। के लऽ जा रहल या नय पहचानै छि। सँब जा रहल अछि तऽ हमु जा रहल छि। गन्तव्य निर्दि"ट मुदा मार्ग सँ अनभिज्ञ छि। रस्ता मे जहैन खड़ी चढ़ायी अैछ ओहिने गहिर उतराय। घोड़ा पँर लाजो लागै जखन बच्चा सभक नाचैत-गाबैत मां-पिताजीक सँग वा कुनो वृद्ध कऽ लाठी टेकैत जैते देखौ। महिमा तऽ इ जखन तीन-चायर मासक बच्चाक मांक कोरा मे जैते देखलौ। अनुभव अद्भुत छल। ऋणात्मकता वा कसाय तत्वक नाश छल। घँर सँ तऽ इ यात्रा मौतक कुआं ही दिखै छल। ऐहैन-ऐहैन डरबै वाला समाचार, ऐहैन-ऐहैन खिस्सा कि..., हे महादेव।

'प्रभु हर बेर घुरा दैत छैन। कि कमी रैह जाय छैन? एके अभिला"ाा जे इ बेर आपन लँग बजा लियैन' अस्सी बरखक व्यक्ति डोली मे बैस कऽ बस मरैक कामना करैत दर्शनक जा रहल छल। मृत्युक सनातनी सत्कार। पूर्वाग्रहक ध्वस्त करैत बच्चा सँ बूढ़ तक सँब मलंग। विभो कहै छैन 'भावे बस भगवान'। तऽ कि दर्शन आर 'ाुद्धिकरण सँगे भेने जा रहल छल।

एकबारगी घोड़ाक रोइक देल गेलैन। नीचा पुल लँग पैदल आबैक लेल कैह कऽ घोड़ा लऽ कऽ घोड़ावाला चैल गेलैन। उ जिम्हर सँ गेल उ रस्ता नय छल सीधा ढलान छल। धूल उड़ाबैत उ बिला गेल। आब हमरो सँब पैदल छलौ। बाबो प्रसन्न हायत। आगां सँ पाछां तक यात्री भरल। अचानक सांस चढ़ै लागल। झटैक कऽ चलै लागलौ। दँम घुटै लागल। धीरे-धीरे दौड़े लागलौ। सांस फूलै लागल। एक स्थान पँर बैस गेलौ। स्थिति जहिनाक तहिना बनल रहल। तीन मासक बच्चाक कोरा मे लैने महिला बगल सँ गेलि। बच्चा रैह-रैह कऽ मुंह बाबैन आर बन्द कऽ लियैन। जेना माछ पायन सँ निकलैक बाद फक-फक करै छैन। नीचा पुल दूर छल। गँर सूखै लागल। बेचैनी बढ़ै लागल। गरम लागै लागल। वस्त्र उतारै लागलौ। घोड़ा पँर बैस कऽ यात्रा नय करवाक छल।

भोरे-भोर जे दर्शन कऽ लैने हेतैन उ आब घुइर रहल छलैन। जकरा मे पहलगामक यात्री सोहो छल। आब बालटालक मार्ग पँर अपेक्षाकृत यात्री बेसी छल। तीन सँ चार फीटक रस्ता पँर चढ़ैत-उतरैत यात्री। तै पँर चौपाया, डोली, पिट्ठू। एतबा गण आर दुर्घटना नय। इ रस्ता छोट छलैन वा हँम कुनो चोटी सँ देख रहल छलौ! मुदा हमु तऽ मार्गे पँर छलौ। तऽ कि रस्ता चौड़ा भऽ गेने छल? वा यात्रीक चलैक तरीका आयब गेने छल? यात्रा सुरक्षा विज्ञापनक बिना यात्रा सुरक्षित कोना भऽ सकै छैन? महानगर मे तऽ यातायात सुरक्षा आर विज्ञापन पँर अकूत पाय बोहाबैक बादो हर दिन पचासो दुर्घटनाक सूचना तऽ बस एक समाचार पत्र सँ भेटै छैन। यात्रा मे हमु 'ाामिल छलौ नय तऽ कहतौ कि इ कुनो आर लोकक लोक हेतैन जे आपन उत्तरदायित्वक निर्वाह जानैत छैन।

धीरे-धीरे सांस सहज भेने गेल। पुल समीप छल। हँम तीनो जे बीच मे बिछैड़ गेने छलौ पुल पँर एक भऽ गेलौ। हँम सांस उखड़ैक गँप्प छुपा लेलौ। कहतिये 'कि मामा एतबैटा चलै मे सांस उखैड़ गेल'। घोड़ा पँर बैस कऽ यात्रा प्रारंभ

करै सँ पहिने हँम पुनः एक बेर पुइछ लेलौ। 'आर कतबाक देर भाय'। कहल गेल 'बुझु आयब गेलौ'। प्रश्न-उत्तर पिछले बेरक पुनरावृत्ति छल।

पहाड़क एकटा अलगे समस्या। एतबा छोट-मोट पैरा, टेढ़-मेढ़ पगडंडी छैन जे लागै छैन हर जन आपन सुविधाक लेल एकटा अलगे रस्ता बना लेने छैन। आर एहन पैरा पँर दूरी बतबैक पाथर तऽ है नय छैन। तऽ अनुमान लगबैक लेल डूबैत-उगैत सूरज छैन जकरा सँ समयाभास हेते रहै छैन। नय तऽ लोकक आपन डेग छैन जहि सँ नैप कऽ अनुमान लगवै छैन।

एक कऽ बाद दोसर फेर तेसर जाने कतबा पहाड़ पाछां छोड़ैत गेलौ। बीच-बीच मे बादलक टुकड़ा व कोनु बढ़ियां घाटी दिखे आर दूर्भाग्य सँ आनन्द लिये लागौ कि तर सँ आदेश हुअैन 'साहब आगां झुइक जाव इ चढ़ाय छैन'। नीन सँ उठा कऽ चौकीदार हांक लगबैन कि 'जागैत रहु'। रे बुइड़ जखन हमीं जागब तऽ तोरा क्या राखने छियौ। बालपनक सोचल तऽ नै कहलौ मुदा ''हां-हां जानैत छि चढ़ाई मे आगां आर ढलान मे पाछां'' दुहरा लेलौ।

सघनता बढ़ै लागल। पैदल चलना उचित जान पड़ल। यात्रीगणक सँगे हँम चलै लागलौ। चलैत-चलैत पंक्ति दूई भाग मे विभाजित भऽ गेल। इ आपन मनक रस्ता छल वे पहाड़ीमन। हमु सँब एकटा चुइन कऽ चलै लागलौ। बिना प्रयासक इ सँब भेने जायत छल। आब ढलान शुरू छल। नीचा उतैर कऽ एक समतल स्थान सँ जा लागलौ। किछु देर तऽ ठीक सँ चललौ। फेर जहिना-जहिना आगां बढ़ने गेलौ रस्ता पिछड़ाहा भेने गेल। ऐना कि पायर जमाना मुश्किल। कतबा पिछड़ल-गिरल मुदा चोट-चाट तऽ नय लेकिन स्त्रीगण आर वरीय जनक लेल तऽ क"टप्रदे छलैन। मुदा सम्हैल कऽ, एक-दोसर कऽ थायम कऽ यात्रीगण आगां बढ़ल। आर किछु नीचा उतैर कऽ एक नदी लँग पहुँचल। हँम सँब आर किछु यात्रीगण नीचा नय उतैर कऽ आगां बैढ़ गेलौ। तऽ देखै छि कि जहि पँर सँब चैल कऽ ऐने छलौ उ तऽ विशुद्ध नदी छल। उपर ठोस आर नीचा तरल। हँम सँब मुहाना पँर ठाड़ छलौ आर नीचा सँ जल प्रवाह भऽ रहल छल। बिना तपक तपस्वी छलौ, जे नदी पँर चलैत छलौ। अनजानले कतबा करतब बाबा करवा देत अछि।

भोरक अपेक्षा जल कम ठार छल। किछु यात्रीगण स्नान करै छल, भरसक भोरे नय केने हेता वा जल देखि कऽ नहबैक आदत हेतैन। हमरो सु हाथ-मुंह धोए कऽ आचमन केलौ आर विदा भेलौ।

पंक्ति मे घिसकैक शुरूआत भोर साढ़े आठ सँ भेने छल। अनगिनत यात्रीक सँग हमरो सँब चैल जायत रहल छलौ। कतवा चलना अैछ किछु जानकारी नय। एक मोड़ पँर दर्शनस्थलक आभास मात्र सँ यात्री मे उत्साह भैर गेलैन। जयकारा सँ पूरा घाटी गुंजयमान भऽ गेलैन। यात्री गरदन घुमा-घुमा कऽ देखैत रहलैन। उड़ैत-उड़ैत गुड्डी जखन दूर चैल जाय छल। तऽ मात्र आभासे रैह जाय छल। जकरा हँम सँब हवाचट वा ब्रम्हाण्डक खा जाना कहै छलौ। दर्शनस्थल ओहिने छलैन। दिखैन आर बिला जायन। हँम यात्रीगण उ आभासक सूत छलौ, जे मोड़ पँर गुड्डी सँ जुड़ै फेर कैट जाउ। अनेकानेक बेर गुड्डी सुत सँ जुड़ल आर हवाचट हुअैत रहल।

उचाई पँर प्रकृतिक हर तत्व सुन्दर, प्रखर आर लँग छल। कनियाक आंचल सँ छैन कऽ आबैत शुद्ध वायु छल तऽ पूजा करैत पिताक सन स्वच्छ आकाश। मांक भंसा सन सजल प्राकृतिक छटा तऽ नेरूक सँग उछलैत-कूदैत बटुक जोना धुमड़ैत बादलक टुकड़ा छल। हिलसा माछक चमड़ी सन चमकैत बरफ छल तऽ पाकल गेहुंकबाली सन सूरजक किरण। मुदा किरण बेसी लँग आर प्रसन्न छल आर बाली जोका सौसे आकाशी खेत मे बिखरल छल। धीरे-धीरे बाली सुइया सँ चुभै लागल। गरम कापड़ देह सँ उतैर कऽ हाथ मे आयब गेल। खुलल धूप मे बैरागी हवा नीक लागल। मुदा इ आनन्द किछुये देरक लेल। जहिना कुनो बादलक टुकड़ा सूरजक झापैन कि वे हवा मनुखक मुरदा कऽ जायन। आर

हमरा सॅब झटपट अंगा चढ़बै लागौ। किछुए देर मे सौसे पांगत अभ्यस्त भऽ गेल। जहिन कुनो बादलक टुकड़ा सूरज लॅग बढ़ैन कि सॅब अंगा धारण कऽ लियैन। ऐना छोट-छोट मनोरंजक दृश्य मे खिसकै सॅ ध्यान हटले रहल।

गिरैत-पड़ैत-हापैत एक स्त्री कहै लागलि ''भोले (ऐहन यात्रा मे श्रद्धालु लेल 'भोले' व किछु ठाम 'बम' सम्बोधित हैत छैन) हमरा कऽ किछु देर एहि ठाम ठाड़ हुअै देब? हमर परिवारक लोक आगां निकैल गेने छैन।''

भगवानक कि भरोस, कुन रूप मे उपस्थित भऽ जायन। हमु हुनका जायक अवसर दियैन? पंक्ति मे शामिल कऽ लेलौ। आर बैस कऽ सांस लेबैक लेल सेहो कहलौ। मुदा हुनका ठाड़े रहना उचित लागल। दर्शन सॅ पहिने विश्राम कते। महिला धार्मिक छल। हॅम पुनः मगन भऽ गेलौ। समैयो साढ़े दस भऽ गेने छल। किछु देरक बाद एक स्त्री फेर सॅ ओहिना पंक्ति मे लागैक लेल आग्रह करै लागलि। मित्रक ध्यान गेल। पहिल स्त्रीक तन्दुरुस्ती तऽ लौटिये आयल छल। सॅगे परिवारक आन लोको पंक्ति मे आयब गेने छल। स्त्री पुरान तीर्थयात्री हेति। फेर तऽ बुझु पंक्ति मे लागैक इ प्रारूप भऽ गेल। यात्री सजग भऽ गेने छल। किछ यात्री कार्यकर्त्ता भऽ गेल। आर बीच मे घुसैवालाक पाछां करै लागल।

आब हॅम सॅब एक मोड़ पॅर छलौ। एहि ठाम धीमी गति सॅ खिसकैक कारण पता चलल। इ मोड़ पॅर दुय रस्ता आयब कऽ मिलैत छल। एक रस्ता जकरा पॅर हमरा सॅब छलौ। दोसर नीचा सॅ आयब कऽ एहि ठाम मिलैत छल। एक बाजै छल। जानकार कहलैन 'जतबा समय एहि ठाम आबै मे लागल ओकरा सॅ आधा लगवाक चाहि'। यात्रीगण कोनो ओकता कऽ घण्टा-पलक गॅप्प नय करैत छल मुदा हुनका दर्शन सॅ वंचित रहैक डॅर छल। रायतका कहल एखनो यात्रीक ध्यान मे छल। धूप-घाम-उमस बढ़ैत जायत छल। अन्देशा स्वभाविक छल। इ दोहरा रस्ता पार करैक बाद डेग बाढ़ै लागल। जानकार कहलैन आब तीन घण्टा लागवाक चाहि। पैराक दुनु महर दुकान शुरू भऽ गेने छल। यात्री जा-जा कऽ फूल-परसाद लिये लागल। हमरो सु एक दुकान मे झोला-झमटा राखलौ। जे आवश्यक छल लेलौ आर पुनः पंक्ति मे आयब कऽ लायग गेलौ।

एहि ठाम जतबा दुकान छल मुसलमानक छल। हिनक मुख्य व्यवसाय या छैन, जे सालों सॅ चैल रहल छैन। हिनक लेल इ व्यवसाय कम पवित्र कर्म बेसी छैन। जहि ठाम हमरा सॅब सामान राखने छलौ, ओकरा मे तीन पीढ़ीक लोक छल। हिनक अभिला"ाा छैन जे इ यात्रा बारो महीना चलैन।

सूत गुड्डी सॅ जुइड़ गेने छल। आर धीरे-धीरे लटाय मे लपेटल जा रहल छल। आब एक घण्टा लागत ऐना जानकारी भेटल। जयकारा आर घड़ी-घन्टक ध्वनि रहि-रहि कऽ हवाक सॅग हृदय तक पहुँचै लागल। यात्री ध्वनिमुग्ध छल। बातचीत स्वतः बन्द भऽ गेने छल। उबैड़-खाबैड़, पथरीला रस्ता जहि मे चलना मुश्किल छल किछ भक्त दण्ड प्रणामी दैत जा रहल छल। चायर बाजै छल। घड़ी निकट छल। सीढ़ी 'ारू भऽ गेने छल। हाट पाछां छुइट गेने छल। ऐतबा उचाईक बादो ठामे-ठाम नल लागल छल। यात्री जा-जा कऽ मुंह पॅर पायनक छीटा मायर कऽ आबैत रहल। तपस्या पूर्ण हुअै वाला छल, विश्वास मे समय तऽ लागतैन।

आब हमरा सॅब सुरक्षा घेरा सॅ जा रहल छलौ। सुरक्षाक दृ"ि सॅ आर किछ तऽ नय कैमराक बैट्री लॅ लेल गेल। चिकित्सकीय शिविर, हैलीपैड, सेनाक शिविरक सॅगे ठामे-ठाम पुलिसक व्यवस्था छल। भक्तजनक गीत, घड़ी-घण्टक ध्वनि, मंत्रक उच्चारण सॅ समूचा घाटी शिवमय छल। प्रतीती ऐना कि कंकड़-कंकड़ मे शंकर। सीढ़ी गिनतीक छल।

ठीक तखने चायर लोकक कन्हा पॅर सफेद चादर मे लिपटल किछ उतरैत देखलौ। यात्रीगण हाथ जोइड़ कऽ माथा

झुका कऽ प्रार्थना केलक आर फेर सँ शिवमय भऽ गेल। शिवघो"ा आर प्रार्थनाक बीच ऐना स्वर लहरी पैदा भेने गेल जे मृत्युक प्राप्त व्यक्तिक फेर-फेर जन्म देने गेल। सीढ़ी समाप्त। आब हँम सँब उ मुहक सामना ठाड़ छलौ जकर कौर बनैक लेल कहिया सँ इच्छित छलौ।

अमरनाथक गुफा या छल। यात्रीगण कानैत छल। चिल्लाबैत छल। नाचैत छल। गाबैत छल। मग्न छल। मूक छल। अहलादित छल। निश्चिन्त छल। हमरा सँब मुख्य द्वार पँर मोली बान्हलौ। टप सँ एक बूंद जल छत सँ माथा पँर खसल। हुनक आशीर्वाद भेट गेल। फड़-फड़ करैत कबूतरक जोड़ा उइड़ कऽ गुफा सँ बाहर भऽ गेल। कथा मे वर्णित अमरत्व प्राप्त कबूतरक देखि प्रणाम केलौ।

आब हँम बरफक पवित्र शिवलिंगक सामना ठाड़ छलौ। बाबाक दर्शन बाल रूप मे भेल। बाबा दुइ फुटक छल। रस्ता मे जानकार गपियावैत छल जे बाबाक आंयखो दिखैत छैन। प्रयासक बादो सफलता नय भेटल। अपनाक कतबा कोसतौ? बाल रूप मे नय दिखैत हेतैन सोयच कऽ चित्त शान्त केलौ। भक्तक संख्यां बढ़ने गेल। समय पांच बतवै छल। भक्त भगवानूक आगां सँ हटैक लेल तैयार नय छल। पुलिस तैयार छल। हँम ठामे बनल माता पार्वती आर भगवानू गणेशक दर्शन केलौ। कहल जायत छैन जहि ठाम माता पार्वतीक स्वरूप उभरैत छैन वहि ठाम माताक केस खसल छलैन।

अन्दर सीढ़ी सँ उतैर कऽ हँम सँब गुफाक दोसर हिस्सा मे आयब गेलौ। किछ स्मरण हुअैक बाद हँम पुनः बाबाक सामना ठाड़ भऽ गेलौ। इबेर हमर हाथ मे मां-बाबूजीक देल धातुक बनल 'उँ' छल जकरा दर्शन करवावैत छलौ। लागैत छल मां-बाबूजी दर्शन कऽ रहल छल। पुलिस हमरा बाहर खिचलक। हँम बाहर छलौ। निश्छल-निर्मल स्वरूपक दर्शनक बाद स्वतः के हैट सकत।

गुफा मे बून्द-बून्द जल अनेको ठाम खसैत छल। मुदा स्वरुप एकहि ठाम उभरैत छल। बाहर सँब महर कच्चा बरफ छल। अन्दर आकार ठोस रूप मे छल। कुनो बरस शिवलिंगक उचाइ चौदह फुट तक भऽ जायत छैन। इ बेर तऽ नागक फन सेहो बनल छलैन, जे ठीक शिवलिंगक उपर छलैन। फेर हमरा सँब एक छोट पंक्ति मे लायग कऽ पवित्र जल प्राप्त केलौ। एकटा छोट लोहियाक आकारक जगह सँ यात्री जल लेने जायन आर ओकरा मे ओतबैक ओतबे बचैन। न जलक स्रोत दिखल न लोहिया सँ छलकैत देखलौ। आपन डब्बू भैर कऽ माथा मे भस्म लगा कऽ पुनः बाबा नीलकण्ठक प्रणाम कैर बाहैर आयब गेलौ।

बाहैर दूर तक एक नय समाप्त हुअै वाला पंक्ति दिखल। दर्शनक अभिला"ाा मे पंक्ति मे ठाड़ यात्री हमरा सभक ओहिने देखैन जोना हमरा सँब दर्शन कैर कऽ लौटेत यात्रीक देखैत छलौ। दर्शन प्राप्त यात्री एक सँ। चित्त 'ाान्त। मँन निश्चिन्त। आत्मा तृप्त। मुख पँर निश्छल मुस्कान आर दर्शनाभिला"ाीक लेल अपार स्नेह। हुनका सभक देखैत आंयख सामनाक पहाड़ पँर गेल। जे बहुत दूर आर उंचा छल। जहिक चोटी पँर चट्टानक एक आकृति छल जे अबक्त लागैन कि महादेव बैसल छैन। पायर पँर पायर चढ़ैने, दुनो हाथ जांघ पँर धैने सँब देख रहल छैन। आर वहि ठाम सँ लहरावैत एक आकृति आयब कऽ गुफाक नीचा समाप्त भऽ रहल छलैन। प्रतीती ऐना कि लागैन उचाई पँर बैसल भोला आपन जटा खोयल कऽ नीचा गुफा तक पहुंचा देने छैन।

एखैन तक जे अन्तिम छल एकबारगी प्रारंभ भऽ गेने छल। सनातनीक कथा सनातनीये जानै। हमरा लेल तऽ इ कलाकारी अविस्मरणीय छल। किछु देरक लेल सँब किछ असहनीय छल। लागल जे हँम देख रहल छि से कि खाली हमी देख रहल छि? हमर पुछै पँर श्याम अगर असहमति जतैतिये तऽ विचारक गँप्प छल। मुदा आश्वस्त भेलौ कि श्यामो वे देखलक जे हँम देखलौ। मुदा एक-दुइटा उलझन आर छल। एकै साथ निपटा लेल सोचलौ। शिवलिंगक

आंयख दे पुछलौ। उत्तर छल कि आकार छोट भेने सॅ नय दिखै छैन। उ सब पहिनो आयल छल से लऽ कऽ ज्येष्ठ छल आर सही। रस्ता मे दम घुटै वाला शंकाक समाधनो भाइये जायन। किछु विशेष नय, कुनो धर्मिक आध्यात्मिक गॅप्प नय, बस ऑक्सीजनक कमी बता देलक।

ठण्ड बाढ़ै लागल। आब हमरा सॅब उ दुकान पॅर छलौ जते सामान धरने छलौ। सामान लऽ कऽ भाईचारगी सॅ गॅर मिल कऽ विदा लेलौ। सांझ भेने जायत छल। अन्हार हुअै सॅ पहिने बालटाल पहुंचवाक छल। सवार बेसी आर घोड़ा कम। दर दुगुना-तीगुना। हमरो सु मोल-भाव कैर कऽ रवाना भेलौ। इ बेर घोड़ावालाक आपन अनुभवक परिचय देलौ। चढ़ाई पॅर आगां आर ढलान मे पाछां हुअैत रहलौ। दर्शनक लेल आबैवालाक संख्या आब नामात्र छल। बस एक-दुटा जाय वाला छल। बाल-दाढ़ी बढ़ल, एक धोती पिनहल, एक लपेटल, एक कनहा पॅर कम्बल, एक बगल झोला, केहु लाठी तऽ केहु बिना लाठीक गरदन झुकैने चैल जायत छल। संध्या काल हुनक सभक जायत देख कऽ सवाल तऽ ढ़ेर छल। आब दर्शन कोना हेतैन? रूकतैन कतै? ठण्ड बेसी हेतैन तऽ खेपतैन कोना? आदि-आदि। मुदा शंका नय छल। मुख्य गॅप्प तऽ जीवन ीली जानैक छल। हुनक सानिध्य पावैक छल जे एखन असम्भव छल।

रस्ता खाली आर घोड़ावालाक उमर कम हैवाक कारण घोड़ा दौड़ने जायत छल। दौड़ैत-दौड़ैत छौरा हापै लागल। हॅम ओकरा सॅ किछु देर आराम करैक लेल कहलौ। ''नय साब, किछु फुरुटी-ठंडा पिया दिय सॅब ठीक भऽ जायत''। एकटा छोटका दुकान पॅर छौराक इच्छा पुर्ति कऽ आगां बढ़लौ। हॅम पुनः आराम सॅ चलैक लेल कहलौ। उ कहलक : ''एतबा डॅर लागैया? अरे हॅम अस्कर हेतौ तऽ दस मिनट मे नीचा हेतौ''। ''बाव! नीचा तऽ एक मिनट मे पहुॅच सकै छि। मुदा हमरा नीचा नय बालटाल जैवाक या''। उ हंसै लागला। हॅम दोस भऽ गेलौ। ता तक सुनील आयब गेने छल। श्यामक घोड़ा आर घोड़ावाला दुनो पहुंच गेने छल। श्याम नदारद। पुछै सॅ पता चलल जे श्याम बाबू पैदल आयब रहल छैन।

श्याम शुरू सॅ पैदल यात्राक पक्ष मे छल। धर्मिक स्थल देवघर हुअैन या देवालय अमरनाथ उ पैदलेक पक्ष मे रहैत अछि। इ यात्रा मे बेचारा मजबूर छल। एक महर सुनील छलैन तऽ दोसर महर हॅम। तैयो आबैक काल 'याम आपन मॅनक काइले लेलक। किछु काल रूइक कऽ जखन ओकरा आबैत देखलौ तऽ आगां बढ़लौ। गॅप्प पुनः प्रारम्भ भेलः ''आहां सॅब बड पुण्यक काज करै छि। हमरा सभक लॅ कऽ जाय छि, आबै छि, दर्शन करवावै छि...''

''इ तऽ हमरा सु पैसा लेल करै छि'' बिना लाग-लपेटक कहलक।

''पैसाक लेल?''

''आर कि साब, इ जे दु तीन महीना यात्रा चलैया एकरा सॅ घॅर चलैया''

''से तऽ छै, कतबा कमा लै छि?''

''ठीक भेट गेल तऽ हजार-बारह सौ भेट जाय या। नै तऽ तीन-चार सौ कथौ नय गेल''

''तऽ कि पूरा यात्रा सॅ एतबा भेट जाय या कि साल भैर चैल जाय या...?''

''साल तऽ नय मुदा छः-सात मास चैल जाय या। अगर सब नीक रहल तखन...''

''सब नीक रहल, माने?''

''एक तऽ मौसमक कुनो भरोस नय, कखन बिगैड़ जायन। इ कमाय मे मौसमक बड़ खेल। मौसम बिगड़ल, कमाय बन्द। आर कहीं उपर-नीचा करैत कुनो दुर्घटना भऽ गेल तऽ...''

''कहैन दुर्घटना?''

''छोट-मोट चोट-चाट तऽ लागते रहैया। कखनो-कखनो फिसलन वा किछु लापरवाहिक कारणे घोड़ा उँचाइ सँ नीचा खैस पड़ै या आर...''

''आर सवार?''

''...दुनोक बचैक उम्मीद तऽ कमे रहै छैन। आहां आवैक काल नीचा एक घोड़ा मरल देखने हेबैन''

''हां देखने छलौ। मुदा जायक काल तऽ नय छल। आर ओकर सवार?''

''संयोग सँ ओकरा पँर केहु सवार नय छल। किछु देर पहिने इ दुर्घटना भेने छैन'' फेर एक तरह सँ उ अपना-आप कऽ कहलक। ''बेचारा घोड़ावालाक बड़ नुकसान भऽ गेलैन...''।

हम दुनो आपन-आपन गँप्प करैत छलौ। हँम सवार कऽ देखैत छलौ आर उ घोड़ा कऽ। किछु देर पहिने एकटा बदामी रंगक हिष्ट-पुष्ट घोड़ा मरल देखने छलौ। घोड़ा पँर केहु सवार नय छल जायन कऽ आश्वस्त तऽ भेलौ मुदा घोड़ावालाक नुकसान याद कऽ पूछलौः

''एक घोड़ा कतबा मे आबै छैन?''

''बीस-तीस हजार मे''

''आहां इ घोड़ा कतबा मे लेने छलौ?''

''इ घोड़ा नय छैन खच्चर छैन, पूरा चालीस हजारक छैन''

''आंय हँम खच्चर पँर बैसल छि?''

''एकर नसल बड़ नीक छैन। आठ-दस साल तऽ इ ऐहिना रहत''

''फेर?''

''एकरा कुनो पहाड़ी पँर छोइड़ एबैन''

''अच्छा एक बात कहु। जखन यात्रा नय चलै छैन आहां सँब की करैत छि?''

''किछु न किछु तऽ भऽ जाय छैन। यात्रा जतबा दिन चलल से चलल। फेर हमरा सु एहि ठाम सँ किछ दूर एकटा गाम छैन वहि ठाम चैल जायब। वहि ठाम फिरंगी सँब खूब आबैत छैन, उ हमरा सभक पन्द्रह-बीस दिनक लेल भाड़ा पँर लँ जायत छैन...''

''कतऽ लँ कऽ जायत छैन...''

''बरफ गिरैक बाद नयका-नयका दूब सन पौध पहाड़ पँर उगैत छैन। ओकरे लेल आवैत छैन। एक ठाम दू-तीन दिन

रूइक कऽ आगां बैढ़ जायत छैन। हमरा सभक आरामे रहैत छैन। उ सॅब दिन-रायत छाबैत रहैत छैन, हॅम सॅब खायत-सुतैत रहैत छि''

''आहां जानैत छि उ सॅब कि छाबैत रहै या?''

''हां किछु विशेष औषधिक लेल आबैत अछि। जे हुनका लोकैन कऽ पूरे दुनिया मे बस कश्मीर घाटी मे भेटैत छैन'' अनमनायल कैह कऽ उ चुप भऽ गेल। हमरो लॅग कहैक लेल कि छल? वा कहि तऽ बस कहैक लेल हि किछ छल। कऽ तऽ किछ नय सकैत छलौ।

''जखन आहां सभक घोड़ा मैर जाय या वा कुनो दुर्घटना भऽ जाय या तऽ ओकर भरपाय कोना करैत छि?'' सवाल तऽ बुड़बकाइये वाला छल। मुदा चुप्पी तोड़वावैक लेल किछ तऽ कहतौ।

''ओकर भरपाय... इ सॅब तऽ चलु हैत रहैत छैन। मुदा एकटा गॅप्प कहवाक छल...'' ओकरा किछु झिझक भेल।

''आहां कि कहैत छलौ? किछु देर विश्राम करब तऽ कऽ लिय'' हम किछु देर सॅग बिताबै लेल चाहैत छलौ।

''आब तऽ आबिये गेलौ। मुदा एक बात कहि आहां सॅग गॅप्प कैर कऽ नीक लागल। हॅम जानैत छि आहां हमरा सभक किछ सहयोग नय कऽ सकब। तइयो कहै चाहै छि। हमरा सॅब इ आतंकवाद सॅ अघा गेने छि। तबाह भऽ गेने छि...''

हॅम देखैक प्रयास केलौ। अन्हार मे लबादा ओढ़ने बाइस बरखक एक नौजवान घोड़ाक सॅगे भागैत-भागैत इ कि कहि रहल छल।

''सच कहै छि साब, नरक बना देने अैछ इ स्वर्गक''

नौजवानक आवाज साफ सुनाय दैत छल। भरसक धाटीयो मे गुजैत रहत। इ पहाड़ सॅ टकरा कऽ उ पहाड़, उ पहाड़ सऽ इ पहाड़।

''ऐना तऽ नय कि हम एक यात्री छि हिन्दू छि, हमरा ऐना गॅप्प नीक लागत तय सॅ कैह रहल छि?''

''नय साब, ऐना नय छैन। हॅम जे कहै चाहै छलौ से कहि देलौ।''

''अच्छा की भेने छल? कि लागै या?''

''मौसम बिगैड़ जायन वा घोड़ाक किछु भऽ जायन, इ सॅब तऽ हैत रहै छन। मुदा इ किछु काल सॅ सॅब किछ बदलैत जा रहल छैन। सॅब चीज एक मजबूरी भऽ गेने छैन। हर घड़ी ऐना लागैया कि केहु हमरा सॅब पॅर नजर राखैया। हर गतिविधिक सूचना राखैया। हॅम कि कमबै छि, कतबा कमबै छि। ककरा सॅ मिललौ। आर्मीवाला सॅ कि गॅप्प केलौ। सॅब हुनका सभक पता रहैत छैन। हमरा सभक घॅर ढुइक कऽ डरबैत छैन। मारैत छैन। पाय-कौड़ी छिन लैत छैन। आर केहु आर्मीवालाक सॅगे गॅप्प करैत देखल गेल तऽ बुझु जान सॅ गेल''

''आहां सॅब किछ नय कहै छियैन?''

''कि कहबैन? ककराक कहबैन? हमरा सॅब तऽ इहो नय जानैत छि जे हुनका सभक सूचना के दैत छैन? स्वयं लगबैत छैन वा केहु आपसेक लोक दैत छैन? ऐहन स्थिति बना देने छैन जे केकरो सॅग दर्द तऽ साझा नहिये कऽ सकै छि मुदा एक दोसर कऽ सन्देह सॅ देखैत छि। आर घुटैत रहै छि। हिनक कारणे हमर घॅर, घॅर नय रहल। इ सॅब बतवै

छैन कि करवाक चाहि कि नय। बुझु हमरा सभक हाथ-मुह बायन कऽ रस्सी आपन जिमा राखने छैन।''

चुपचाप सुनैत छलौ। कुनो आर अवसर रहतिय वा अहि ठाम सँ दूर रहतौ आर ऐना सुनतौ तऽ सोचतौ जे 'आब भुगतु, आहां सभक हिमायती बैन कऽ आयल छलैन आब हलाल कऽ रहल छैन'। मुदा किछु पल बिताबैक बाद तऽ लागैया कि इ तऽ आपने भाय अछिय। हिनक दुख तऽ आपन दुख अैछ। एक त्रासदि जे इ सँब भुगैत रहल अछि, ओकरा मे हिनक कि दोष? हिनक स्वतंत्रता छिनैवाला के हैत छैन? एक स्वतंत्र देश मे इ कहैन परतंत्रता? ऐतबा सुरक्षा, ऐतबा आर्थिक सुविधा, बहुमत सँ चुनल सरकार फेर ऐहन कुव्यवस्था? व्यवस्था सुधार चाहतो अैछ कि नय? हमरा जतबा सामर्थ छल नौजवानक समझावै मे लगेलौ। मुदा कि लगेलौ, उ तऽ सँब जानैत छल। आर बौद्धिक जन सँ सुनबो केने हायत। नौजवान माथा झुकेने घोड़ाक रस्सी थामने आगां-आगां जायत छल।

''निराश नय होउ। एक दिन ऐना अवश्य आयत जहिया इ रस्सीक सन आहांक घॅरक, आहांक समाजक, आहांक आपन रस्सी आहांक हाथ मे हायत आर आहां ओकरा सही ठिकाना पॅर पहुंचा रहल हायब''

सामना जुगनु जोका किछु दिखै लागल।

''भाय, हमर ठिकाना तऽ कि मुदा आहांक ठिकाना आयब गेल''

घुप्प अन्हार मे संजीवनी सन जगमगावैत घाटी दिखै लागल। सच कड़वा तऽ सुनने छलौ, नंगा हुअैक कारण 'ार्मिन्दो करै वाला छल। किछु देर मे नीचा पहुँच गेलौ। पाय चुकता कऽ हॅम शिविर मे जा लागलौ। पलैट कऽ एक बेर देखलौ। नौजवान दोसर दिनक सवार ढुड़ै मे व्यस्त छल। थकान छल। हल्का भोजन करैक बाद सुइत गेलौ। भोर सात बजै श्रीनगर लेल गाड़ी भेट गेल। रस्ता मे सूचना भेटैत रहल 'यात्रा दु महीना लेल बढ़ा देल गेलैन', 'डल झील मे चार आतंकी मारल गेल व एक सुरक्षाकर्मी शहीद भेल', 'स्थिति तनावपूर्ण मुदा नियंत्रण मे', 'सीमावर्ती क्षेत्र मे सुरक्षा बढ़ा देल गेलैन'।

नियंत्रण कतबा भेल? चौकसी कतबा बढ़ायल गेल? मुदा इ तऽ व्यवस्थे जानैन। मुदा आपन जीवित हैवाक सूचना सन्देश लोक भेजै मे लागल छल। हॅम जम्मूक मार्ग पॅर छलौ। फेर कुरूक्षेत्र। फेर बम्बई।

अशोक सेक्सरिया की कविताएँ

ये कविताएँ अशोक जी के अत्यन्त निकटस्थ संजय भारती से मिली हैं। अशोक जी अपने लिखे हुए को छपाते नहीं थे, शायद हर किसी को दिखाते भी नहीं थे। अपने प्रति इतनी पैनी आलोचनात्मक दृष्टि अशोक जी की थी कि उन्होंने अपनी किसी कृति को प्रकाश में नहीं आने दिया। जिस भाषा में काम का एक वाक्य भी ठीक से न लिख पाने वाले आत्मविश्वास का स्तम्भ बने हुए हैं, ऐसा आत्मसंशय अनोखा ही कहा जायेगा। अशोक जी को गये पूरा बरस हो गया। उनका केवल एक कथा संग्रह प्रकाशित है, 'लेखनी', शायद उनके मित्र और अन्य सुनने वाले ही उनका प्रकाशित शेष हैं। यह कहने की बात नहीं कि इन कविताओं को प्रकाशित कर हम आनन्द का अनुभव कर रहे है।

१.

ज्वार-सा प्रेम उमड़ता है
ज्वार-सा ?
उमड़ता है और फिर घुमड़ता है
अपने में सिमट जाने में
देह ज्वार में विलीन हो गयी है-
देह के परे यह प्रेम
वासना से भी कठिन है।

तुम्हारी हित चिन्ता
क्या मेरी वासना का नक़ाब है ?
यदि है ?
तो ईश्वर मुझे दो मृत्युदण्ड।

२.

मैं क्यों असम्भव सोचता हूँ
क्यों सोचता अक्षम हूँ।

३.

इस मशीन में असंख्य पेच हैं
कुछ सिद्धान्तों पर बनी है यह
अनजान आँखें पहचान भी नहीं पाती
यह क्या है ?
चलती है, यही सत्य है
जानकर भी क्या पायेंगी ?
बिगड़ेगी तो बना लेंगी, यही न ?

४.

सुबह-सुबह जयघोष
करते हुए निकले
छात्र परिषद के छोकरे!
ये प्रभात फेरी नहीं जानते
कहते हैं वन्दे मातरम्।

५.

नाटक और व्याख्यान
आख्यान और प्रत्याख्यान
तुक हैं
हर भाषण में होता है
जब मन सोता है
और अपने को ढोता है
बातें हैं सिर्फ़ बातें हैं

डर ने तुम्हारा साथ छोड़ा
और तुम ऐसे कि कभी
उससे मुँह मोड़ न पाए।

११.

अब बची नहीं कोई उम्मीद
जब नहीं हुए उम्मीदवार
तब क्यों पोसी उम्मीद
जो भगा देती है नींद ।

नींद भी कैसी ?
जिसमें आराम न हो
जिसमें थके-हारे पाँव कुछ दुखना हों कम
पाँव दुखते हैं
हाथ काँपते हैं
सिर दर्द करता है ।

डर और दर्द का दरिया
बहा जा रहा है
अब बस सहा नहीं जा रहा है।

१२.

अलेग्ज़ान्दर सोलज़ेनित्सिन के प्रति

एक टुच्चे कम्युनिस्ट ने कहा
कि तुम मारवाड़ी हो इसीलिए सोलजेनित्सिन
की तरफ़दारी करते हो
वह यही कह सकता था
उसने यही सीखा था
पर अलेग्जान्दर सोलज़ेनित्सिन,
मैं बहुत दुःखी हुआ था
मुझे याद भी न रहा कि वे तुम्हें भी तो ऐसी ही
गालियाँ देते हैं
अगर याद होता तो मैं सचमुच कितना खुश होता,
एक बार तुम्हारे नाम के स्पर्श से अपने को जोड़कर।

१३.

एक समुद्र था
सच बड़ा विशाल था
उसमें लहरें उठती थीं
और उन लहरों की ऊँचाई देखकर
मन में नाना भाव उमगते
कभी भय होता था
तो कभी सुकून भी मिलता था
समुद्र के किनारे
लहरें सीप फेंक जाती थीं
समुद्र हर दिन अपने को स्वच्छ करता था
लहरों को दैवी आदेश से बन्द कर दिया गया है
अब वह नाम को ही समुद्र रह गया है
लोग धीरे-धीरे उसको किसी नये नाम से
पुकारने भी लगेंगे
लेकिन उन्हें शायद कभी याद आये कि
दरअसल क्या से क्या हो गया।

१४.

मेरी ज़िन्दगी में रह ही क्या गया है ?
फिर भी भय क्यों सताता है ?
मन में केवल घृणा का उबाल उठता है
और फिर नपुंसकता का सत्य समाप्त हो जाता है
ऐसे ही दिन बीत जायेंगे
गुलामी मजबूत होती जायेगी
और टुच्चों का राज हमें जीने भी नहीं देगा
राक्षसों की जमात पैदा हो रही है
अँगरेज़ी बोलते हैं
ताकत की पूजा करते हैं
वह नकल होती है
इन्हें लोग आधुनिक कहते हैं
आधुनिकता का मतलब
राक्षसी भाव के सिवाय
और कुछ नहीं।

दुनिया को मूरख बनाने की घातें हैं
कोई बना या नहीं बना
ठीक पता भी नहीं
पर बनाना है
सो बोलना है।

६.

उस भूले
चेहरे को
याद किया
अपने को थोड़ी देर
आबाद किया
थोड़ा-सा खूब तेज हुआ
थोड़ा-सा दिल बहला
वह चेहरा सुभान अल्ला।

७.

आया था रात चोर
अब हुआ भोर
पुलिस लगाती गश्त
उठो, कोई कहेगा
पढ़ने बैठो,
नहीं पढ़ते
जाओ,
नहीं पढ़ते
गधे पर नहीं चढ़ते
फेल हो जाएँ तो हो जाएँ
फिकर नहीं
पास हुए बिगर
काम चला दे हे भगवान!

८.

वे जो तुम्हें कूड़ा समझ अपमानित करते हैं,
वे मनुष्य होने की पात्रता वर्षों से खोते आ रहे हैं,
तुम उन्हें मन ही मन नपुंसक प्रतिहिंसा में गाली देते हो
और गाली देने के श्रम से चूर निढाल हो जाते हो
फिर थकान में लेट जाते हो
और सोचते हो
क्या करोगे उनकी अमानुषिकता का
और क्या करोगे अपनी थकान का ?
तुम कुछ भी समझ नहीं पाते
सिर्फ़ एक डरावनी तस्वीर देखते हो
तुम्हारा पजामा पाखाने से भर गया है
तुम बदबू फैला रहे हो
दूर सहस्त्रों योजन तक पानी नहीं है
कि नंगे होकर अपना पाजामा साफ़ कर सको।

९.

वे कितने झूठ लिख-बोल सकते हैं
यह मैं सोच भी नहीं सकता था-
मैं उन्हें पढ़ता हूँ तो
लगता है मैं अब कभी सोच भी न पाऊँगा।
एक बिना सोच की दुनिया में
रहना ही मेरे भाग्य में बदा होगा
जीवन क्या मैं इतना-सा
सत्य जानने के लिए जीया ?

१०.

कुछ भी नहीं एक अनजान डर के सिवाय
डर, डर
क्या होगा
दुनिया में जो कुछ होता आया है
उसी में से कुछ होगा
पर यह तो कहने की बात है
मेरा मन तो कुछ भी नहीं मानता
बस डरता है।
सैकड़ों डर आये और गये हैं
एक गया तो
दूसरा आ गया
कभी ऐसा नहीं हुआ कि

१५.

हे प्रभु, तुम बस इतना बल देना
सत्य मेरे लिए कभी न बने असत्य
और दुःख-कष्ट सहने और मरने का
संकल्प आये।

१६.

वह मुझे बता गया सब
उसका बताना उसे कितना ऊँचा
और महान बनाता था
सुनते हुए मैं कितना नीचा और
क्षुद्र हो गया था
वह जो बता सका, क्या मैं बता पाता ?

१७.

कुछ दिनों से लगता है
इस दिमाग़ में कुछ नहीं है
कभी था या नहीं,
इस पर मौन रहूँगा
एक रहस्य बनाने में थोड़ा आनन्द आता है
सो बनाऊँगा।
शाम घूमकर आया कि कोई बात आयेगी,
छोटा शहर है,
एक चक्कर में ही पूरा हो गया
बात नहीं आयी, रात हो गयी।
दोपहर पाखाने में एक चलताऊ लेख सूझा था
दिन भर सूझने का यही हिसाब है
उमर का खेल है, प्यारे ।

१८.

दूसरे चरण का अन्त सूझ गया है
तुम हो सबसे न्यारे!
आँखों के तारे नहीं
यह बड़ा फ़िल्मी होता
शहर में जो फ़िल्में थीं
वे देख डालीं
अब गिनते हैं तारे
हम किसी से हैं नहीं न्यारे।

१९.

अभी अफ़सोस हो रहा है
यह दिन बीत रहा है,
रात बची है
सो उसे बचाना है
सोते हुए जगना है।

२०.

बारह या एक
बज रहे होंगे,
सुनसान में कान
चौंकते हैं हर आवाज़ पर
कितने भले हैं लोग
रात एक बजे तक
फ़िल्मी गीत
बजाते हैं
तारों भरी रात
सजाते हैं।

२१.

फ़िल्मी गानों की
थपकी से सो जायेगा
यह क्लान्त शरीर
जगेगा कल फिर
फिर भी दिमाग़ में
कुछ नहीं आयेगा
दिन में बस खाना
नहीं भायेगा।

२२.

अचानक गिलास में चाय देख
इतने बरसों बाद वे गिलास याद आये
हरे कप
गुलाबी कप बाई के टी सेट के
पुराने कपड़ों रखे अपनी पुरानी कमीज़
कभी पहनते थे।
लिखकर क्या होगा,
किसी से प्रेम कर क्या होगा ?
रच कर देह के सपने
सो गया, खो गया।

२३.

घर में बनी होगी खीर
ऐ वीर हो न अधीर
किताबें पटकीं
खोले जूते
भागा वीर
खाने खीर ।

२४

झी माँ का मकान या कमरा

बस्ती मनोहर पुकुर
पतली गली फिर कमरा बगल का कमरा
सामने कमरा - बीच में तुलसी चौरा
दादा, दूध मुड़ी, बाउल।
हण्टली पामर्स के बिस्कुट, गिरीश दे के
सन्देश।
अमृत दवा खाना, कुत्ता,
नकुल, तप्ती, गुलाबी मकान। इला, रेबा।

२५.

यह भी एक दिन समाप्त होगा
या निःशेष होगा
तब क्या होगा ?
क्योंकि यही अन्तिम था
१७-१८ वर्ष बाद
एक कहानी शुरू हुई
शुरू हुई एक कहानी
शब्दों के छल से उसमें लाता हूँ
रवानी।
यह एक दिन समाप्त होगा ज़रूर
पर तब तक
मैं सैकड़ों यात्राएँ कर चुका होऊँगा।

आह्वान एवं अन्य कविताएँ

(अप्रतिम कवि कमलेश जी का स्मरण करते हुए)

संगीता गुन्देचा

आह्वान

नहीं किया आह्वान। हे देवताओं !
नहीं किया कोई आह्वान।
किया नहीं। नहीं किया !
हे देवताओं ! मैंने नहीं किया तुम्हारा कोई
आह्वान ।

क्षमा करो। हे पितरों ! क्षमा करो।
किया नहीं तृप्त।
नहीं किया। किया नहीं।
हे पितरों ! मैंने किया नहीं तुम्हें तृप्त।
नहीं किया सुवासित पुष्प से। धूप से। शब्द से।
किया नहीं सुवासित। नहीं किया।
हे पितरों ! मुझे क्षमा करो।

विचरते हो किस लोक में।
हे मृतकों ! विचरते हो किस लोक में !
मिलते नहीं तुम्हारे कोई पदचिह्न।
नहीं मिलते। मिलते नहीं।
हे मृतकों ! हम तुम्हें कहाँ खोजें ?
मिलता नहीं कोई द्वार ।
नहीं मिलता। मिलता नहीं कोई द्वार ?
जड़े हों जिस पर तारे।
हे मृतकों ! विचरते हो किस लोक में !

हे देवताओं ! हे पितरों ! हे मृतकों !
हमें क्षमा करो।

हे देवताओं ! हे पितरों ! हे मृतकों !
हम तुम्हारा आह्वान कैसे करें ?

हे देवताओं ! हे पितरों ! हे मृतकों !
भेजो हमें
कोई

संकेत ...

विलय

क्या यह तुम्हारी देह ही है
जहाँ से उठती है धुँधलके -सी धुन
तुम्हारे काँधों पर फिसलते हैं
बादलों के श्वेत भुजंग
ऊषा की पहली किरण ज्यों ही तुम्हारे माथे को
छूती है
तुम्हारे भीतर सोयी रात्रि
अचानक उज्ज्वल हो उठती है
ओ प्रातःकालीन प्रशान्त पहाड़ !

तुमने पहना है हरीतिमा का अंगवस्त्र
उसका सौन्दर्य मुझे भीतर से घेरता है
शाखामृगों से बचते-बचाते
देवदारुओं के बीच भटकना
क्या अपने विचलन से परिचित होना है ?
ओ मध्याह्नकालीन प्रशान्त पहाड़ !

भाल पर शोभता है अर्द्धचन्द्र
तुम्हारे
जुगनू आलोकित करते हैं मेरा अन्धकार
यह हर ओर बिखरा हुआ तुम्हारा मौन
किसे पुकारता रहता है ?
ओ रात्रिकालीन प्रशान्त पहाड़!

मैं अपनी इच्छाएँ-आकांक्षाएँ
राग-द्वेष, ईर्ष्या-असूया
सब तुम्हें समर्पित करती हूँ, सब
कि तुम्हारी प्रशान्त धीरता में,
मौन स्थिरता में,
अपना विलय होते देख सकूँ
ओ आदि-अन्तहीन प्रशान्त पहाड़ !

माया

मौत जब आएगी, तुम्हारी आँखे लिए होगी-

सीज़र पावेस

तुम इतने पास हो
इतने पास
कि तुम मैं हुआ जाता है

सबसे पहले अम्बर ने तजे अपने वस्त्र
कि वह लिपटा सके हमें अपनी दिगम्बरता में
ये टिमटिमाते तारे यहाँ-वहाँ
उसकी जली हुई देह के फूल हैं
इस तरतीब से रखे हुए
कि भरम हो चुनर है

फिर पृथ्वी ने अपने को सजाया
बुना हरा वस्त्र
महीन जाल-सा
कि उस पर बैठकर भीगते हुए
बतियाया जा सके कुछ देर

जल्दी ही वीरबहुटियों ने
सोख ली सारी आकांक्षाएँ
कि वे पा सकें अपनी थिर-उदात्त लालिमा

अब तुम्हारी आँखों की जगह जुगनुओं की उज्ज्वलता है
और मेरी जगह अन्धकार

छटपटाहट

कवियों को अमरता के स्वप्न आते हैं उस पार से
झनझनाती घण्टियों का नाद उनके कानों को
खींचता है बार-बार
अपनी गूँजती हुई स्वर्णिम आभा में

मन्दिरों के गर्भगृह खाली हैं
देवताओं को सोख लिया है
लोगों की भटकती आकांक्षाओं ने

दोनों ओर का गुरुत्वाकर्षण उन्हें खींचता है
वे रो पड़ते हैं खड़े-खड़े सीवान पर
उनकी आह बरस पड़ती है
पृथ्वी के विराट दूबवक्ष पर

उनकी छटपटाहट को अटा नहीं पाते शब्द
और कविता कुछ भी कह नहीं पाती अवसाद उनका

अबके कवि

मर्त्यों - अमर्त्यों के बीच पड़ गयी धुँधली रेखा से
कोई खींचता है अपनी ओर लगातार

रंगाकाश अचानक प्रकाशित हो उठता है

तमसा के किनारे
वहाँ उस शिला पर बैठे हैं सन्ध्याविहीन वाल्मीकि
यहाँ इस पर व्यास
जैसे अभी-अभी लौटे हों हारकर युद्ध
और यहाँ
महाकवि भास
अतृप्त, उदास।

क्रोध से उद्विग्न दुर्वासा
रंगपटी को ठेलकर
करते हैं प्रवेश
किसी और से नहीं
वे क्रुद्ध हैं स्वयं के दिये शाप पर

'पीढ़ी दर पीढ़ी तुम्हें भूले रहेंगे शब्द
उन्मत्त की तरह
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।'

(मानस हंस से उतरकर माँ विश्राम पर चली जाती है)

उदास आँखों से देख रहे हैं भास, वाल्मीकि, व्यास...
दुर्वासा का प्रत्यंचा पर चढ़ा शरीर ढीला पड़ जाता है
कुछ खोजते-खोजते वे ठिठक जाते हैं
कालिदास पर :
शचीतीर्थ पर सदियों से काँटा डाले
ऊँकडू बैठे हैं कालिदास
मछली की प्रतीक्षा में
अँगूठी की प्रतीक्षा में
अभिज्ञान की।

तड़कती है बिजली
कौंधता है प्रकाश
अन्धकार छा जाता है रंगमण्डप पर
दर्शक अधूरी कथा को पूरी समझ
तालियाँ बजाते हैं
और लौट जाते हैं अपने आवासों पर।

मानस हंस से उतरकर विश्राम पर गयी माँ विस्मृत हो जाती है:
अबके कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास।

गुरुत्वाकर्षण

बाहर से सारे दरवाज़े खटखटाये जा रहे हैं
भीतर मौन को समर्पित है

भीषण तूफान और आँधियाँ गुज़र जाने पर
प्रलय के बाद की प्रशान्त नदी से गुज़रता है
स्वच्छ जल

पता लगाना
उतना ही निरर्थक है
जितना पता लग जाने के बाद होता ।

पतंगें आपस में गुँथकर आकाश को जाल बना गयी हैं
मेरा देखना पक्षी की भाँति उलझकर
थोड़ी देर अपने पंख फड़फड़ाता है
फिर पृथ्वी अपने दोनों हाथों से
उसे भींच लेती है।

श्राप

वे बार-बार पहुँचती हैं वहाँ
जहाँ से कोई प्रतिध्वनि तक नहीं लौटती
प्रार्थनाएँ
मौन को समर्पित हैं
जिसमें पड़ी हुई दरारों से झाँकते हैं देवगण
क्या वे उन वारांगनाओं की तरह हैं
जो खेल से मन उचट जाने पर
कभी-कभी झाँक लिया करती हैं
अपने गवाक्षों से बाहर।

जो तुम्हें प्रमाद लगता है वह सौन्दर्य की आकांक्षा है
एक यक्षिणी चीखती है
जिसे पंचामृत मानकर आचमन कर लेते हैं समस्त यक्षगण
और पृथ्वी पर जहाँ-तहाँ फैले हुए बूढ़े ईश्वर।

अन्धकार

फूटते नहीं शब्द
कितने दिन बीत गये
कण्ठ से उसके

मौन साधना
सार्थक वा निरर्थक
नहीं उसे भान।

घना अन्धकार
घना
इस कन्दरा में
सोता वह है कहाँ
जहाँ से उठता है -
शब्द का उजास।

शीशा घाट

नय्यर मसूद

अनुवाद : रिज़वानुल हक़

भारत में उर्दू के सबसे बड़े कथाकार नय्यर मसूद का जन्म १९३६ में लखनऊ में हुआ। उनके पिता मसूद हुसैन रिज़वी 'अदीब' उर्दू के प्रख्यात विद्वान और लखनऊ यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर और विभागाध्यक्ष थे। उनका अपना पुस्तकालय भारत के सबसे बड़े व्यक्तिगत पुस्तकालयों में प्रतिष्ठित था। नय्यर मसूद ने उर्दू और फ़ारसी दोनों में पीएच.डी की और लखनऊ विश्वविद्यालय में वह फ़ारसी के प्रोफ़ेसर के पद से कार्य मुक्त हुए। पहले वह उर्दू फ़ारसी शायरी के विद्वान और अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कहानी लेखन काफ़ी बाद में शुरू किया। स्वरचित कहानियों से पहले उन्होंने फ़ारसी कहानियों का उर्दू में अनुवाद किया। इसके बाद उन्होंने काफ्का की कहानियों का अनुवाद किया।

सिर्फ़ चार कहानी संग्रहों 'सीमिया', 'इतरे काफ़ूर', 'ताऊस चमन की मैना' और 'गंजफ़ा' से ही उर्दू के सबसे प्रतिष्ठित और मौलिक कहानीकारों में उनका नाम आता है। नय्यर मसूद ज़िन्दगी की छोटी-छोटी घटनाओं से कहानी शुरू करते हैं और देखते ही देखते वह एक प्रतिसंसार की रचना कर देते हैं जो इस संसार से मिलता-जुलता होने के बावजूद इससे कुछ अलग भी होता है और उसे एक रूपक में बदल देते हैं। नय्यर मसूद का कहना है कि अक़्सर उनकी कहानियों का प्लॉट देखे गए किसी सपने पर आधारित है जिसे वह एक विशिष्ट भाषा में कहानी का रूप देते हैं। भाषा के बारे में उनका कहना है कि वह उर्दू के प्रचलित मुहावरों से अलग रहते हैं, अगर ग़लती से कोई मुहावरा प्रयोग हो जाता है तो उसे काटकर फिर से उस बिम्ब की रचना करते हैं।

आठ बरस तक बड़े प्यार के साथ मुझे अपने यहाँ रखने के बाद आख़िर मेरा मुँहबोला बाप मजबूर हुआ कि मेरे लिए कोई और ठिकाना ढूँढ़े। ज़्यादती उसकी नहीं थी, मेरी भी नहीं थी। उसे यक़ीन था और मुझे भी कि कुछ दिन उसके साथ आराम से रहने के बाद मेरा हकलाना खत्म हो जाएगा, लेकिन उसको उम्मीद नहीं थी और न मुझे कि घर के बाहर लोग मेरा तमाशा बना लेंगे, जिस तरह किसी पागल का तमाशा बना लिया जाता है। बाज़ारों में मेरी बात सबसे ज़्यादा दिलचस्पी और ध्यान से सुनी जाती थी और वो बात हँसी की हो या न हो, लोग उस पर हँसते ज़रूर थे। कुछ दिन में मेरी ये हालत हो गई कि बाज़ार तो बाज़ार घर के अन्दर भी अगर कभी कुछ कहने की कोशिश करता तो बोल मेरे होंठों से और मेरे दाँतों से और मेरे तालू से टकरा-टकरा कर वापस चले जाते, जैसे पानी की लहरें किनारों को छूकर पलटती हैं। आखिर मेरी ज़बान में गाँठें-सी पड़ जातीं, गरदन की नसें फूलने लगतीं, गले और सीने पर इतना ज़ोर पड़ता कि दम घुटने लगता और ऐसा मालूम होता कि साँस उखड़ जाएगी। लाचार होकर बात अधूरी छोड़कर हाँफ़ने लगता और साँस ठहरने के बाद नये सिरे से बात शुरू करता। इस पर मुँहबोला बाप मुझे डाँटता :

''जहाँ तक कह चुके हो, मैंने सुन लिया। अब आगे बढ़ो।''

वह अगर कभी मुझे डाँटता तो इसी बात पर डाँटता था, लेकिन मेरी मज़बूरी ये थी कि मैं बीच से बात शुरू नहीं कर सकता था। वह कभी तो सब्र से मेरी बात सुनता और कभी हाथ उठाकर कहता- ''अच्छा, बस करो।''

लेकिन मेरी मज़बूरी ये भी थी कि मैं बात अधूरी नहीं छोड़ सकता था। बड़ी बेचैनी होने लगती थी। आखिर वह मुझे हकलाता छोड़कर चला जाता और मैं अकेला बोलता रह जाता। उस वक़्त कोई मुझे देखता तो ज़ाहिर है पागल समझता।

मुझे बाज़ारों में घूमने-फिरने और लोगों में उठने-बैठने का भी शौक था। मैं खुद अपनी बात तो ठीक से नहीं कह पाता था, लेकिन ये कमी दूसरों की बातें ध्यान से सुनकर और दिल ही दिल में उन्हें दुहराकर पूरी करता था। कभी-कभी मेरी तबियत उलझने ज़रूर लगती थी लेकिन मैं वहाँ खुश भी था। इसलिए कि वहाँ के लोग मुझे नापसन्द नहीं करते थे, और सबसे बढ़कर इसलिए कि मेरा मुँहबोला बाप मुझे बहुत चाहता और मेरी हर ज़रूरत का ख़्याल रखता था।

लेकिन कुछ दिन से वह परेशान नज़र आ रहा था। एक नयी बात ये हुई थी कि वह देर-देर तक मुझसे बातें करने लगा था। ढूँढ़-ढूँढ़ कर ऐसे सवाल करता था जिनके जवाब में मुझे देर तक बोलना पड़े और बीच में टोके बगैर बड़े ध्यान से मेरी बात सुनता रहता था। मैं थक कर हाँफने लगता तब भी वह मेरी बात पूरी होने का इन्तज़ार करता और जब मैं नये सिरे से बोलना शुरू करता तब भी वह इतने ही ध्यान से सुनता रहता। मैं सोचता था कि अब वह मुझे डाँटने ही वाला है और मेरी जुबान में गाँठ पड़ने लगती, लेकिन वह कुछ बोले बग़ैर मेरी तरफ़ देखे जाता था।

तीन ही दिन में मुझको अपनी जुबान कुछ-कुछ खुलती मालूम होने लगी। सीने पर ज़ोर पड़ना भी कम हो गया और मैं उस दिन के सपने देखने लगा जब मैं भी दूसरों की तरह आसानी और सफ़ाई से बोलने लगूँगा। मैंने दिल ही दिल में वो बातें भी जमा करना शुरू कर दीं जो दूसरों से करना चाहता था। लेकिन चौथे दिन बाप ने मुझे पास बुलाकर बिठाया। देर तक इधर-उधर की बातें करता रहा, फिर चुप हो गया। मैं इन्तज़ार कर रहा था कि अब वह मुझसे कोई सवाल करेगा, लेकिन अचानक उसने कहा-

''परसों तुम्हारी नयी माँ आ रही है।''

उसने मुझे खुश होते देखा, कुछ परेशान हुआ, फिर धीरे से कहा-

''तुम्हें बोलते देखेगी तो पागल होकर मर जाएगी।''

दूसरे दिन सुबह मेरा सामान बँधा हुआ था। इससे पहले कि मैं कुछ पूछता, बाप ने मेरा हाथ पकड़ा और कहा- ''चलो।''

सफ़र में वह मुझसे कुछ नहीं बोला। लेकिन रास्ते में मिलने वाले एक आदमी के पूछने पर उसने बताया-

''इसे जहाज़ ने माँग लिया है।''

फिर वो दोनों जहाज़ की बातें करने लगे। मुझे भी जहाज़ याद था। जब मैं शुरू-शुरू में बाप के पास आया था तो जहाज़ मेलों और बाज़ारों में मसखरेपन की नक़लें करके पैसे कमाता था। वह अपनी पीठ पर छोटा-सा गुलाबी रंग का पाल बाँधे रहता था। शायद इसीलिए उसका नाम जहाज़ पड़ गया था या शायद जहाज़ नाम होने की वजह से वह पीठ पर पाल बाँधने लगा हो। हवा तेज़ चलती तो गुलाबी पाल फूल जाता और जहाज़ कुछ ऐसा मालूम होता कि उसी पाल के सहारे आगे बढ़ रहा है। वह तूफ़ान में घिरे हुए जहाज़ की नकल बहुत अच्छी उतारता था। बिल्कुल ऐसा मालूम होता कि गुस्सैली हवाएँ, बिफरी हुई लहरें और तेज़ घूमते हुए भँवर किसी जहाज़ को डुबोने पर तुल गए हैं।

बहुरूपिये के मुँह से हवा की गुर्राहट, लहरों के थपेड़ों, भँवर के सन्नाटे बल्कि पाल के फड़फड़ाने तक की आवाज़ें साफ़ निकलतीं और आखिर वह डूब ही जाता। ये नक़ल बच्चों और लड़कों को बहुत पसन्द थी, लेकिन ये सिर्फ़ उस वक़्त दिखाई जाती थी जब हवा तेज़ चल रही हो। अगर हवा रुक जाती तो ये छोटे तमाशायी और भी खुश होते और शोर मचाने लगते-

''तम्बाकू, तम्बाकू।''

जहाज़ का-सा तम्बाकू पीने वाला मैंने कोई नहीं देखा। तम्बाकू की जितनी क़िस्में और तम्बाकू पीने के जितने तरीक़े हो सकते थे शायद वह सब उसके इस्तेमाल में थे और रुकी हुई हवा में वह मुँह से धुँए के बादल छोड़-छोड़कर उनसे ऐसे-ऐसे खेल दिखाता था कि तमाशाइयों को अपनी आँखों पर यकीन नहीं आता था। कभी-कभी वह धुएँ के बहुत से छल्ले निकाल कर कई क़दम पीछे हट जाता, फिर हाथों और कलाइयों को इस तरह घुमाता और मोड़ता था जैसे नर्म गुँथी हुई मिट्टी से कोई मूर्ति बना रहा हो और वाक़ई छल्ले किसी मूर्ति की सूरत बनकर कुछ देर तक हवा में टिके रहते। कुछ नक़लें वह ऐसी भी करता था जिनका देखना-सुनना लड़कों को सख़्त मना था। इन मौक़ों पर वह बाज़ारियों के तंग होते हुए दुहरे-तिहरे घेरों में छुप जाता और दूर वालों को सिर्फ़ झोंके खाते हुए पाल और तमाशाइयों के क़हक़हों से पता चलता कि जहाज़ नकलें कर रहा है।

मुँह बोले बाप के पास मेरे आने के पहले ही साल जहाज़ की आवाज़ ख़राब हो गई थी और वह बुरी तरह खाँसने लगा था। नकलें दिखाने में वह बहुत तरह से बोला करता था, लेकिन अब कुछ बोलना शुरू करता तो खाँसी बार-बार उसका गला बन्द कर देती और कभी-कभी उसे भी अपनी बात पूरी करने में क़रीब-क़रीब उतनी ही देर लगती जितनी मुझे लगती थी। उसने नक़लें करना बल्कि हमारी तरफ़ आना भी छोड़ दिया और पहले साल के बाद से मैंने उसे नहीं देखा था।

हमारे रास्ते में बड़ी झील के किनारों की कई बस्तियाँ और घाट आए। हर जगह मेरे बाप के जानने वाले मौजूद थे और वो सबको यही बताता था कि जहाज़ ने मुझे माँग लिया है। इसका मतलब मेरी समझ में नहीं आता था, मगर मैंने बाप से कुछ पूछा नहीं। मैं दिल ही दिल में उससे नाराज़ भी था, इसलिए कि उसके पास न रहने के ख़्याल से मैं बिल्कुल खुश नहीं था। लेकिन खुश मेरा बाप भी नज़र नहीं आ रहा था। कम-से-कम ऐसा आदमी तो वह बिल्कुल नहीं मालूम होता था जो दूसरे दिन नई बीवी लाने वाला हो।

आखिर हम एक मैली-कुचैली बस्ती में पहुँचे। यहाँ के लोग शीशे का काम करते थे। थोड़े से घर थे लेकिन हर घर में शीशा पिघलाने की भट्टियाँ थीं जिनकी भद्दी चिमनियाँ छतों और छप्परों से कुछ ऊपर निकली हुई धुआँ छोड़ रही थीं। दीवारों पर, गलियारों में बल्कि वहाँ के दरख्तों पर भी कालिख की तहें थीं। आदमियों के कपड़े और आवारा कुत्ते, बिल्लियों के बदन भी धुएँ से काले हो रहे थे। मेरे बाप के जानने वाले यहाँ भी मौजूद थे। इनमें से एक ने हमको कुछ खाने-पीने को बैठा लिया। मुझे वहाँ की हर चीज़ से वहशत हो रही थी। मेरे बाप ने कुछ देर तक ध्यान से मेरे चेहरे को देखा, फिर उस सफ़र में पहली बार मुझसे बात की-

''यहाँ लोग बूढ़े नहीं होते।''

मेरी समझ में उसकी बात नहीं आई। मैंने वहाँ चलते-फिरते लोगों को देखा। वाकई उनमें कोई बूढ़ा नज़र नहीं आ रहा था। मुझे बाप की आवाज़ सुनाई दी-

''धुआँ इन्हें खा जाता है।''

''फिर वो क्यों यहाँ रहते हैं ?'' मैंने पूछना चाहा लेकिन ये सवाल मुझे बे-फ़ायदा सा महसूस हुआ और मैं बाप की तरफ़ देखने लगा-

''जहाज़ भी शीशे का काम जानता है''

कुछ देर के बाद उसने कहा, ''उसका घर, यहीं है।''

मैं एक झटका खाकर उठ खड़ा हुआ। मेरी ज़ुबान में एक साथ बहुत-सी गिरहें पड़ गईं, लेकिन अब मैं चुप नहीं रह सकता था। क्या इस बस्ती में, जहाँ की हर चीज़ पर स्याह वहशत बरसती मालूम होती है, मुझको जहाज़ के से धुआँ उगलते हुए बाज़ारी मसख़रे के साथ रहना पड़ेगा ? ये बात पूछे बगैर मैं नहीं रह सकता था। चाहे इसमें जितनी भी देर लगती। लेकिन बाप ने मुझे बैठने का इशारा करते हुए इत्मीनान दिलाने वाले अन्दाज़ में कहा-

''लेकिन वह यहाँ का रहना कब का छोड़ चुका है।''

मुझे वाक़ई कुछ इत्मीनान हुआ। अगर जहाज़ यहाँ, इस बस्ती में नहीं रहता है, मैंने खुद से कहा, तो मैं उसके साथ कहीं भी रह सकता हूँ। उसी वक़्त मेरे बाप ने कहा-

''अब वह घाट पर रहता है।'' उसने एक तरफ़ इशारा किया, ''शीशा घाट पर।''

इस नाम पर एक बार फिर मुझे वहशत होने लगी। यक़ीनन मेरे बाप को नहीं मालूम था कि मैं उसी के घर में कुछ लोगों से शीशा घाट का जिक्र सुन चुका हूँ। मुझे मालमू था कि ये बड़ी झील का सबसे मशहूर और सबसे उजाड़ घाट है और बीवी नाम की एक डरावनी औरत उसकी तन्हा मालकिन है। वो एक मशहूर डाकू, या शायद विद्रोही की प्रेमिका थी, फिर उसकी बीवी हो गई। वह बीवी से ही मिलने आया था कि मुख़बिरी हो गई और उसी घाट पर वह सरकारी आदमियों के हाथों मारा गया। लेकिन उसके बाद कुछ ऐसी उलट-पुलट हुई कि पूरा शीशा घाट बीवी के हवाले कर दिया गया जहाँ उसकी बहुत बड़ी नाव झील में पड़ी रहती है और बीवी ने उसी नाव में अपने रहने का ठिकाना बना लिया है। वह कुछ कारोबार भी करती है जिसकी वजह से कभी-कभी कोई आदमी घाट पर आने दिया जाता है। बाक़ी किसी को उधर का रुख करने की इजाज़त नहीं। किसी की हिम्मत भी नहीं। बीवी से सब डरते हैं।

जहाज़ शीशा घाट पर किस तरह रहने लगा ? क्या मेरा बीवी से मिलना हुआ करेगा ? वो मुझसे बातें तो नहीं करेगी? मुझे उसकी बातों का जवाब ज़रूर देना पड़ेगा ? वो मेरे बोलने पर गुस्से से पागल तो नहीं हो जायेगी ? मैं इन सवालों और इनके ख़्याली जवाबों में ऐसा खो गया था कि मुझे शीशे वालों की बस्ती से उठकर चलने का पता भी नहीं चला। मैं उस वक़्त चौंका जब मेरे कान में बाप की आवाज़ आयी-

''पहुँच गये।''

(२)

बड़ी झील का शायद यही सबसे उजाड़ हिस्सा था। एक बंजर मैदान के अन्त पर मटियाले पानी का फैलाव शुरू हुआ था जिसका दूसरा किनारा नज़र नहीं आता था। हमारे बाएँ हाथ पर थोड़ा पानी छोड़कर एक बहुत बड़ी नाव झील के कुछ हिस्से को छिपाये हुए थी। उस पर शायद कभी लकड़ी के लट्ठे लादे जाते होंगे। अब उसमें लट्ठों ही से कई

छोटी-बड़ी कोठरियाँ-सी बना ली गयीं थीं। नाव के सारे तख्ते ढीले हो गये थे और उनसे हल्की चरचराहट की आवाज़ निकल रही थी। जैसे कोई बहुत बड़ी चीज़ धीरे-धीरे टूट रही हो। झील के किनारे एक लम्बी-सी मुण्डेर जमीन पर लेटी हुई थी। आस-पास चार-पाँच चबूतरे थे जिनमें बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई थीं। उनके करीब एक लम्बा गला हुआ बाँस था जिसको मिट्टी ने करीब-करीब छुपा लिया था। इतनी कम चीज़ें थीं फिर भी मुझे यक़ीन हो रहा था कि जब ये सब कुछ टूटा-फूटा हुआ नहीं होगा तो इस जगह चहल-पहल रहती होगी। अब घाट के नाम पर एक लम्बा साएबान रह गया था जिसका अगला हिस्सा दाहिनें तरफ़ के ढलान में झील के थोड़े से पानी को ढाँके हुए था। साएबान के पीछे ज़रा ऊँचाई पर एक बेडौल इमारत थी, जिसमें लट्ठों और चिकनी मिट्टी का इस्तेमाल कुछ इस तरह हुआ था जैसे बनाने वाला फैसला न कर पा रहा हो कि उसे लकड़ी से बनाए या मिट्टी से और इसी उधेड़बुन में इमारत बन कर तैयार भी हो गई हो। छत अलबत्ता पूरी लकड़ी की थी। उसके बीचोंबीच वाले उभार पर लगा हुआ गुलाबी रंग का एक छोटा-सा पाल हवा से बार-बार फूल रहा था।

मेरा मुँह बोला बाप ज़रूर पहले भी यहाँ आया होगा। मेरा हाथ पकड़ कर वह तेज़ी के साथ सीधा ढलान में उतरा और साएबान के नीचे से शुरू होने वाले मिट्टी के पाँच ज़ीने चढ़कर इमारत के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ। जहाज़ सामने ही ज़मीन पर बैठा तम्बाकू पी रहा था। हम दोनों भी अन्दर जाकर ज़मीन पर बैठ गये।

''आ गया ?'' उसने बाप से पूछा और खाँसने लगा।

आठ बरस में वह बहुत बूढ़ा हो गया था। आँखों का पीलापन और होठों का कालापन इतना बढ़ गया था कि शक होता था उन्हें अलग से रँगा गया है। कुछ-कुछ देर बाद उसकी गरदन इस तरह हिल जाती थी जैसे किसी बात का इकरार कर रहा हो और इसी तरह गरदन हिलाते हुए उसने पीली आँखों से मुझे देखा, फिर बोला-

''बड़ा हो गया।''

''आठ बरस बाद देख रहे हो।'' मेरे बाप ने उसे बताया।

हम बहुत देर खामोश बैठे रहे। मुझे शक हुआ वो दोनों इशारों में बातें कर रहे हैं, लेकिन वो एक-दूसरे की तरफ़ देख भी नहीं रहे थे। अचानक मेरा बाप उठ खड़ा हुआ। मैं भी उसके साथ उठा। जहाज़ ने सर उठा कर उसे देखा और पूछा-

''कुछ रुकोगे नहीं ?''

''काम बहुत है'', मेरा बाप बोला, ''अभी कुछ भी नहीं किया है।''

जहाज़ ने इकरार के अन्दाज़ में गरदन हिलाई और मेरा बाप दरवाज़े से बाहर निकल गया। मिट्टी के ज़ीने उतरते-उतरते वह रुक कर मुड़ा, वापस आया और मुझे चिमटाकर देर तक चुपचाप खड़ा रहा, फिर बोला-

''दिल न लगे तो जहाज़ को बता देना, मैं आकर ले जाऊँगा।''

जहाज़ की गरदन फिर उसी तरह हिली और मेरा बाप ज़ीनों से नीचे उतर गया।

मुझे जहाज़ के खाँसने की आवाज़ सुनाई दी और मैं उसकी तरफ़ मुड़ गया। उसने जल्दी-जल्दी तम्बाकू के बहुत से कश खींचे, देर तक अपनी घरघराती हुई साँस को बराबर करता रहा, फिर उठा और मेरा हाथ पकड़ कर साएबान

से नीचे आ गया। वहीं खड़े-खड़े वह झील पर नज़रें दौड़ाता रहा। फिर मिट्टी के ज़ीनों की तरफ वापस हुआ, लेकिन पहले ज़ीने पर पैर रखते-रखते रुक गया-

''नहीं'', उसने कहा- ''सबसे पहले बीबी''

झील के किनारे चलते हुए हम बड़ी नाव के करीब पहुँचे। दो लम्बे लट्ठों को मिलाकर किनारे से नाव तक पहुँचने का रास्ता बनाया गया था। लट्ठों पर सँभल-सँभल कर पैर रखते हुए हम दूसरे सिरे की छोटी सीढ़ी तक और सीढ़ी चढ़कर नाव तक पहुँचे। सामने की एक कोठरी के दरवाज़ें पर तिरपाल का पर्दा पड़ा हुआ था। पर्दे के आगे एक दोरंगी बिल्ली बैठी ऊँघ रही थी। उसने अधखुली आँखों से हमको देखा। जहाज़ पर्दे के करीब पहुँचकर रुक गया। मैं उससे कई क़दम पीछे खड़ा हुआ था। जहाज़ ने फिर खाँसना शुरू किया था कि पर्दा हटा कर बीवी सामने आ गयी।

उसे देखकर मुझे डर लगा, लेकिन उससे भी ज़्यादा ये सोच कर हैरत हुई कि ये बेढंगी औरत कभी किसी की महबूबा थी। उसने जहाज़ को देखा, फिर मुझको।

''बेटा आ गया ?'' उसने जहाज़ से पूछा।

''अभी पहुँचा है।'' जहाज़ ने बताया।

बीवी ने मुझे सर से पैर तक कई बार देखा फिर बोली-

''दुखिया मालूम होता है।''

जहाज़ कुछ नहीं बोला। मैं भी कुछ नहीं बोला देर तक ख़ामोशी रही। मैंने बीवी की तरफ़ देखा और उसी वक़्त उसने पूछा-

''तैराकी जानते हो ?''

''नहीं'', मैंने गरदन के इशारे से उसे बताया।

''पानी से डरते हो ?''

''डरता हूँ।'' मैंने फिर इशारे से उसे बताया।

''बहुत ?''

''हाँ, बहुत'' मैंने उसे बता दिया।

''डरना चाहिए'', उसने यूँ कहा जैसे मैंने उसके दिल की बात कह दी हो।

मैंने झील के विस्तार को देखा। रुकी हुई हवा में मटियाला पानी बिल्कुल ठहरा हुआ था और झील पर किसी बंजर मैदान का आभास होता था। मैंने बीवी की तरफ़ देखा। वह अभी तक मुझे देख रही थी। फिर वह जहाज़ की तरफ मुड़ गयी जो उसकी तरफ तम्बाकू पीने का सामान बढ़ा रहा था। देर तक वो दोनों तम्बाकू पीते और बातें करते रहे। कुछ हिसाब-किताब किस्म की कारोबारी बातें थीं। इस बीच में भूरे रँग का एक कुत्ता किसी तरफ़ से निकल कर आया और मुझे सूँघ कर चला गया। ऊँघती हुई बिल्ली ने कुत्ते को देखकर दुम फुलाई और पीठ ऊँची कर ली, फिर पर्दे के पीछे चली गयी। मैं थोड़ी-थोड़ी देर बाद बीवी को देख लेता था। मजबूत बनी हुई औरत थी और अपनी बड़ी

नाव से भी कुछ बड़ी मालूम होती थी, लेकिन ऐसा मालूम होता था कि वह भी अपनी नाव की तरह धीरे-धीरे टूट रही है। कम-से-कम उसके चेहरे से ऐसा ही ज़ाहिर होता था, और उसकी बातों से भी जो मुझे साफ़ सुनाई नहीं दे रही थीं। बातें करते-करते रुक कर एक बार उसने गरदन उठाई और ज़ोर से आवाज़ दी-

''परिया''!

दूर किसी लड़की के हँसने की आवाज़ पानी पर तैरती हुई हमारी तरफ़ आयी और जहाज़ मेरा हाथ पकड़कर लट्ठों वाले रास्ते की तरफ़ बढ़ने लगा। सीढ़ी के पास पहुँच कर मैंने अपने पीछे बीवी की आवाज़ सुनी-

''इसे अच्छी तरह रखना जहाज़'' और फिर वही, ''दुखिया मालूम होता है।''

ये उसने कुछ इस तरह कहा कि मैं खुद को वाक़ई दुखिया समझने लगा।

लेकिन कोई वजह नहीं थी कि मैं खुद को दुखिया समझता। बीवी के यहाँ से आकर जहाज़ ने मुझको मेरे रहने का ठिकाना दिखाया तो मुझे यकीन नहीं आया कि ये एक उजाड़ घाट पर बने हुए उसी बेडौल मकान का हिस्सा है जिसके सामने मटियाले पानी की झील और पीछे बंजर मैदान है। वहाँ मेरे आराम का अच्छे से अच्छा सामान मौजूद था। सजावट भी बहुत थी जिसमें शीशे की चीज़ों से ज़्यादा काम लिया गया था। दरवाज़ों और रोशनदानों में भी शीशे इस्तेमाल हुए थे। मुझको ताज्जुब हुआ कि जहाज़ किसी जगह को इतने सलीके से सजा सकता है। फिर ख़्याल हुआ कि उसने इसमें किसी और की मदद ली है या फिर सजावट का काम बाक़ायदा सीखा है। वहाँ कई चीज़ें आज ही की लायी हुईं मालूम होती थीं। लेकिन मुझे शक हुआ वहाँ से कई चीज़ें हटाई भी गई हों और ये शक भी हुआ कि इस जगह मुझसे पहले, शायद बहुत पहले, कोई और भी रहता था।

अपने ठिकाने को देख लेने के बाद मैं सोच रहा था कि पहले ही दिन मैंने शीशा घाट का सब कुछ देख लिया है, लेकिन परिया को मैंने दूसरे दिन देखा।

मुझे आज तक हैरत है कि मेरे मुँहबोले बाप के यहाँ जो लोग शीशा घाट की बातें कर रहे थे उनमें से किसी ने बीवी की बेटी का नाम भी नहीं लिया था। मैंने पहली बार उसका नाम शीशा घाट पहुँचने के पहले दिन सुना था जब बीवी ने नाव पर से उसे पुकारा था। उस दिन की घबराहट में मुझे ये सोचने का ख़्याल भी नहीं आया था कि परिया कौन है। लेकिन दूसरे दिन सुबह मैंने घाट के सामने झील पर से हँसी की आवाज़ सुनी। फिर किसी ने कहा-

''जहाज़, तुम्हारे बेटे को देखेंगे।''

जहाज़ ने लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया।

''बीवी की बेटी'' उसने बताया और मुझे साएबान के नीचे लाकर खड़ा किया।

कोई पचास कदम के फासले पर झील में धीरे-धीरे हिलती हुई पतली-सी कश्ती के पिछले सिरे पर मैंने देखा कि परिया बिल्कुल सीधी खड़ी हुई है। फिर उसने अपने बदन को हल्का-सा झकोला दिया और कश्ती साएबान की तरफ़ बढ़ी। परिया के बदन ने एक ओर झकोला खाया, कश्ती और आगे बढ़ी। इसी तरह रुकती बढ़ती हुई वह साएबान के बहुत क़रीब आ गयी।

''यही है ?'' उसने जहाज़ की तरफ देखकर पूछा।

मुझे हैरत हो रही थी कि ये लड़की बीवी की बेटी है, जिस तरह इस पर हैरत हुई थी कि बीवी किसी की महबूबा रह चुकी है। मैंने उसे ज़रा गौर से देखना चाहा लेकिन अब वह मुझे सिर से पैर तक देख रही थी।

''दुखिया तो नहीं मालूम होता'', उसने जहाज़ से कहा, फिर मुझसे बोली- ''दुखिया तो नहीं मालूम होते।''

''मैंने कब कहा कि मैं दुखिया मालूम होता हूँ'' मैंने ज़रा झुँझलाकर कहना चाहा, लेकिन सिर्फ़ हकलाकर रह गया। परिया हँस पड़ी और बोली-

''जहाज़, ये तो सचमुच.....''

फिर उसने ज़ोर-ज़ोर से हँसना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि नाव पर से बीवी की पाटदार आवाज़ आयी-

''परिया, उसे न सताओ।''

''क्यों ?'' परिया ने पुकारकर पूछा, ''दुखिया जो है ?''

''परिया,'' जहाज़ ने उसे समझाया, ''इससे तुम्हारा जी बहलेगा।''

''हमारा जी घबराता ही नहीं है,'' उसने कहा और फिर हँसने लगी।

मैं खुद को किसी मुसीबत में फँसा हुआ महसूस कर रहा था, लेकिन उसी वक़्त उसने मुझसे पूछा-

''तुमने अपनी नयी माँ को देखा है ?''

''नहीं देखा,'' मैंने सिर के इशारे से उसे बताया।

''देखने को जी नहीं चाहता ?''

मैंने कोई जवाब नहीं दिया और दूसरी तरफ़ देखने लगा।

''नहीं चाहता ?'' उसने फिर पूछा।

जवाब में मेरा सिर इस तरह हिला कि उसका मतलब हाँ भी हो सकता था, नहीं भी। मुझे ख़्याल आ रहा था कि आज नयी माँ मेरे पहले घर में आने वाली है, या शायद आ चुकी हो।

बाप ने कहा था वह मुझे बोलते देखकर पागल हो जायेगी। मैं ख़्याल ही ख़्याल में खुद को बोलते और उसको धीरे-धीरे पागल होते देखने लगा। मैंने सोचने की कोशिश की कि ऐसी औरत के साथ, जो मेरी वजह से पागल हो गयी हो, मेरा उस घर में रहना कैसा होता। मुझे ये भी ख़्याल आया कि कल इस वक़्त तक मैं उस घर में था और ये मुझे बहुत पुराने ज़माने की बात मालूम हुई। मुझे वहाँ गुज़ारे हुए आठ साल आठ लम्हों की तरह याद आये। फिर मुझे अपना मुँहबोला बाप याद आने लगा जो कल मुझे चिमटा कर जहाज़ के पास छोड़ गया था। पहले भी मुझको यक़ीन था, अब और ज़्यादा यक़ीन हो गया कि वह मुझसे बहुत मुहब्बत करता था।

''जहाज़ भी तुमसे बहुत मुहब्बत करेगा,'' परिया की आवाज़ ने मुझे चौंका दिया।

मैं उसे भूल गया था लेकिन वह इतनी देर से मेरी ही तरफ़ देख रही थी। फिर वह सँभल-सँभल कर चलती हुई कश्ती के दूसरे सिरे पर आयी। उसका बदन आहिस्ता से घूमा और साएबान की तरफ़ उसकी पीठ हो गयी। बदन के एक

झकोले के साथ उसने कश्ती को आगे बढ़ाया और धीरे-धीरे हमसे दूर होती गयी। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैंने कोई अजूबा देखा है।

''अगर बीवी ने उसका नाम लेकर न पुकारा होता,'' मैंने खुद को बताया, ''तो मैं उसे झील की आत्मा समझता।'' वह झील की आत्मा नहीं तो अजूबा ज़रूर थी, इसलिए कि वह पानी के नीचे पैदा हुई थी और उसके पैरों ने आज तक ज़मीन नहीं छुई थी।

बड़ी नाव बीवी को बाप-दादा से मिली थी और मालूम नहीं कब से झील में पड़ी थी, परिया के जाने के बाद जहाज़ ने बताया, लेकिन खुद बीवी झील से दूर कहीं और रहती थी जहाँ उसका शौहर, वही डाकू, या जो कोई भी वह था, छुप कर उससे मिलने आया करता था। जब परिया पैदा होने को हुई तो शौहर ने एक दाई के साथ बीवी को नाव पर पहुँचा दिया। पैदाइश के वक़्त जहाज़ बीवी के दर्द से चीखने की आवाज़ें सुन रहा था। फिर ये आवाज़ें कुछ बदल गयीं। सरकारी आदमी पहुँच गये थे और बीवी से उसके शौहर का पता पूछ रहे थे। बीवी ने कुछ नहीं बताया तो उन्होंने उसको झील में गोतों पर गोते देना शुरू किए और ऐसे ही किसी लम्बे गोते में परिया पैदा हो गयी।

''मैंने साफ़ देखा'' जहाज़ ने बताया, ''कि पानी के नीचे से बीवी की साँसों के बुलबुले उठ रहे हैं और उन्हीं बुलबुलों के बीच में एक बार परिया का छोटा-सा सिर उभरा और उसके रोने की आवाज़ आयी।''

तब उन लोगों ने समझा कि बीवी बन नहीं रही थी। वह चले गये, लेकिन घात में रहे और जैसा कि उन्हें यक़ीन था, एक दिन परिया का बाप घाट पर आया। इसी नाव पर उसको घेरा गया। उसने बचकर निकल जाना चाहा, लेकिन ज़ख्मी होकर झील में गिरा और झील ही में डूब गया।

उस दिन से बीवी ने बड़ी नाव को अपना और परिया का ठिकाना बना लिया है। खुद बीवी कभी-कभी दूसरी बस्तियों की तरफ़ निकल जाती है लेकिन परिया को उसने आज तक ज़मीन पर नहीं आने दिया है। वह अपनी कश्ती पर झील में घूमती रहती है या फिर बड़ी नाव पर माँ के पास आ जाती है। ये क्यों हो रहा है ? बीवी ने कोई क़सम खायी है ? कोई मन्नत मानी है ? किसी को नहीं मालूम, इसलिए कोई नहीं जानता कि परिया कब तक झील में चक्कर लगाती रहेगी और उसके पैर कभी मिट्टी को छुएँगे या नहीं।

(४)

शीशा घाट पर मैंने एक साल गुज़ारा और उस एक साल में झील पर से सब मौसमों को गुज़रते और हर मौसम में परिया की कश्ती को पानी पर घूमते देखा। उसके सिवा वहाँ मेरे लिए दिल बहलाने का ज़्यादा सामान नहीं था। मेरे ठिकाने का बाहरी दरवाज़ा बंजर मैदान में खुलता था। जिसके नज़दीकी किनारों पर शीशे वालों की धुआँ देती हुई बस्ती को छोड़कर सिर्फ मछुआरों की आबादियाँ थीं। सूखती हुई मछलियों की वजह से मैं उन आबादियों से दूर-दूर रहता था। मछुआरे हर वक़्त किसी न किसी काम में भी लगे रहते थे और मेरे किसी काम के नहीं थे, जिस तरह मैं उनके किसी काम का न था। मैदान के दूसरे किनारों पर बहुत घाट थे, मल्लाहों की बड़ी-बड़ी आबादियाँ भी थीं। किसी-किसी घाट पर बहुत चहल-पहल रहती थी। लेकिन एक-दो बार जब मैं किसी घाट पर पहुँचा तो पता चला वहाँ जहाज़ के मुँहबोले बेटे की खबर पहुँच चुकी है और लोग मुझे पहचानने ही वाले हैं, इसलिए खाली मैदान में घूमने और वहाँ की कुछ चीज़ों को ख्वाहमख़्वाह अपनी दिलचस्पी का सामान बना लेने के सिवा ज़्यादातर मैं साएबान के नीचे बैठा रहता था। बूढ़ा जहाज़ भी अपने कामों और इधर-उधर घूमने से फ़ुर्सत पाकर तम्बाकू पीने के सामान

के साथ वहीं आ बैठता और तरह-तरह के क़िस्से सुनाता था जो याद रखने के क़ाबिल थे मगर मैं उन्हें भूल गया हूँ। अलबत्ता ये मुझको अब तक याद है कि जब उसका कोई क़िस्सा मेरा ध्यान अपनी तरफ़ न खींच पाता तो वह जोश में आकर, बल्कि कुछ वहशतज़दा होकर उसे अपने पुराने बहुरूपियों वाले अन्दाज़ में बयान करने की कोशिश करता था, इसमें उस पर खाँसी का दौरा पड़ जाता और उसके किस्से की रही-सही दिलचस्पी भी ख़त्म हो जाती।

शुरू-शुरू में मेरा ख़्याल था कि शीशा घाट दुनिया से अलग-थलग कोई जगह है और झील का ये हिस्सा हमेशा वीरान पड़ा रहता होगा। ऐसा नहीं था, अलबत्ता वहाँ बीवी की इजाज़त के बग़ैर कोई नहीं आ सकता था। यही मैंने बाप के घर पर उन लोगों से सुना था और यक़ीन कर लिया था कि बीवी कभी किसी को उधर नहीं आने देती। लेकिन जहाज़ के यहाँ आने के बाद मैंने देखा कि कुछ ख़ास-ख़ास दिनों में मछुआरे अपनी कश्तियाँ और जाल लेकर यहाँ आते हैं। किसी-किसी दिन तो उनकी संख्या इतनी ज़्यादा बढ़ जाती थी कि मालूम होता था पानी पर कोई छोटा-सा मेला लगा हुआ है। मैं अपने ठिकाने पर, कभी साएबान के नीचे बैठा हुआ मछुआरों की आवाज़ें सुनता था कि एक-दूसरे को पुकार रहे हैं और कुछ निर्देश दे रहे हैं। उनकी आवाज़ों के बीच में कभी-कभी परिया के हँसने की आवाज़ भी सुनायी देती थी। कभी उनकी आवाज़ों से मालूम होता कि वे परिया को किसी बात से रोक रहे हैं। कभी किसी बूढ़े मछुआरे की आवाज़ सुनायी देती कि परिया को डाँट रहा है और ज़ोर-ज़ोर से हँसता भी जा रहा है। उस वक़्त नाव पर से बीवी की आवाज़ आती-

''परिया, उन्हें काम करने दो।''

जवाब में- परिया की हँसी सुनाई देती और बूढ़ा मछुआरा बीवी को मना करता कि परिया को कुछ न कहे।

उन दिनों में भी और दूसरे दिनों में भी परिया सवेरे-सवेरे घाट पर ज़रूर आती थी। साएबान के सामने अपनी कश्ती पर खड़े-खड़े वह कुछ देर तक जहाज़ से बातें करती, कभी मुझको भी साएबान के नीचे बुलवा लेती और अगर जहाज़ उठकर चला जाता तो मुझसे बातें करने लगती। कुछ बचकानी-सी बातें करती थीं। अपने कुत्ते-बिल्ली के किस्से ज़्यादा सुनाती या ये बताती थी कि कल बीवी ने उसे किस-किस बात पर डाँटा था। कभी वो मुझसे कोई बात इस तरह अचानक पूछ बैठती कि मुझको गर्दन के इशारे की जगह जुबान से जवाब देने की कोशिश करनी पड़ती। इस पर वह खूब हँसती और बीवी की डाँट खाती, फिर झील के दूर बंजर भागों की तरफ़ निकल जाती। दोपहर को बीवी उसे ज़ोर से पुकारती और उसकी कश्ती नाव की तरफ़ बढ़ती नज़र आती। इसके बाद से नाव पर से बार-बार उसके हँसने और बीवी के बिगड़ने की आवाज़ें आतीं। तीसरे पहर को वो फिर निकलती और फिर घाट के सामने ठहरती। अगर उस वक्त जहाज़ मौजूद न होता तो वो मुझसे उसकी बातें करती थी। उसे जहाज़ की हर बात में हँसी का सामान नज़र आता था चाहे वो उसका तम्बाकू पीना हो, या उसका बेढँगा लिबास हो, या उसके मकान पर लगा हुआ पाल।

एक दिन जब वो मुझे जहाज़ का कोई किस्सा सुना रही थी, मुझे शक हुआ, फिर यक़ीन हो गया कि उसे बिल्कुल नहीं मालूम कि आठ बरस पहले तक जहाज़ बाज़ारों में मसखरापन किया करता था और उस दिन पहली बार मैंने ज़रा इत्मीनान के साथ बोलने और जहाज़ की नक्कालियों के बारे में बताने की कोशिश की। देर तक कोशिश करता रहा। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। फिर भी वो हँसे बग़ैर बड़े ध्यान से मेरी बात सुन रही थी, जिस तरह आखिर में मेरा बाप मेरी बात सुनने लगा था। उसी वक़्त जहाज़ तम्बाकू पीता हुआ साएबान के नीचे आ गया। उसने मेरी मुश्किल आसान की और परिया को बता दिया कि मैं क्या कहना चाह रहा हूँ। फिर उसने दो-तीन छोटी-छोटी नकलें

करके दिखा भी दीं। मुझको वो उसकी पुरानी नकलों की भौंडी नकलें मालूम हुई लेकिन परिया को इतनी हँसी आयी कि उसकी कश्ती डगमगाने लगी। वो कुछ और नकलें देखना चाहती थी लेकिन जहाज़ इतनी ही देर में खाँसी से हलकान हो गया था। परिया उसकी खाँसी के रुकने का इन्तज़ार कर रही थी, लेकिन जहाज़ ने उसे हाथ से इशारा किया कि वहाँ से चली जाए। परिया ने हँसते हुए अपनी कश्ती मोड़ी और जाते-जाते बोली-

''जहाज़, जहाज़, तुम तो बीवी को भी हँसा दोगे।''

दूसरी सुबह वो रोज़ से कुछ पहले साएबान के सामने आ गयी, लेकिन उस दिन जहाज़ कहीं निकल गया था। उसने मुझसे जहाज़ की बातें शुरू कर दीं और कल की नक़लों का हाल इस तरह बताया जैसे मैंने कल, बल्कि उससे पहले भी कभी, जहाज़ को नक़लें करते न देखा हो, बल्कि मुझे यही पता न हो कि जहाज़ कभी नक़लें भी करता था। मैं सुनता रहा, फिर उसे बताने की कोशिश करने लगा कि जहाज़ पीठ पर पाल बाँध कर बाज़ारों में घूमता था और जहाज़ों के डूबने की भी नक़लें करता था। नहीं बता सका, न ज़बान से, न इशारों से। आख़िर चुप हो गया।

''कल'', मैंने दिल में कहा, ''जैसे भी हो, मैं तुमको ज़रूर बताऊँगा।''

मैंने उसे वापस जाते देखा।

''कल'' मैंने फिर दिल में कहा, ''जैसे भी हो।''

उसी शाम मेरा मुँहबोला बाप शीशा घाट पर आया।

उस एक साल में वो इतना बूढ़ा हो गया था जितना आठ साल में जहाज़ नहीं हुआ था। उसकी चाल में लड़खड़ाहट आ गई थी और जहाज़ उसको सहारा देकर ला रहा था। आते ही उसने मुझको चिमटा लिया। आखिर जहाज़ ने उसको मुझसे अलग किया, ठीक से बिठाया, फिर मेरी तरफ मुड़ा।

''तुम्हारी नयी माँ मर गयी,'' उसने मुझे बताया और खाँसने लगा।

(५)

मुँहबोले बाप से मेरी कोई बात नहीं हुई थी। जहाज़ उसके आने के थोड़ी ही देर बाद उसे लेकर कहीं चला गया था और रात गये अकेला वापस आया था। उस वक्त मैं सोने के लिए लेट गया था। जहाज़ भी कुछ देर तक तम्बाकू पीने के बाद शायद सो गया। मैं सोचता रहा कि मेरा मुँहबोला बाप इतनी जल्दी बूढ़ा किस तरह हो गया। फिर मुझे अपनी नयी माँ का ख़्याल आया जो मुझे बोलते देखे बग़ैर मर गयी थी और शायद पागल भी नहीं हुई थी। फिर मुझे शीशा घाट पर गुज़ारा हुआ अपना एक साल याद आने लगा। मैं वहाँ फैली हुई और बहुत कम टूटने वाली ख़ामोशी से कभी-कभी उकता जाता था लेकिन अब मुझे एहसास हो रहा था कि वो जगह हमेशा आवाज़ों से भरी रहती थी। शीशे वालों और मुछआरों और दूसरे घाटों की तरफ़ से मध्यम पुकारें आती थीं और झील पर पानी के परिन्दे बोलते थे। लेकिन मैं ध्यान नहीं देता था। उस वक़्त भी मैंने ज़रा-सा कानों पर ज़ोर दिया तो साएबान की तरफ़ से किनारों को छूकर पलटती हुई लहरों की रुकी-रुकी आवाज़ें आयीं और बीवी के नाव के तख़्तों की हल्की चरचराहट सुनायी दी।

मैंने फ़ैसला कर लिया कि शीशा घाट को मेरे ही रहने के लिए और मुझको शीशा घाट ही पर रहने के लिए बनाया गया है।

''कल सुबह मैं जहाज़ को बता दूँगा,'' मैंने खुद से कहा और सो गया।

सुबह को मेरी आँख रोज़ की तरह जहाज़ के खाँसने की आवाज़ से खुली। फिर मुझे परिया की आवाज़ भी सुनाई दी। दोनों रोज़ की तरह बातें कर रहे थे, लेकिन जहाज़ जहाँ बैठा था वहाँ से परिया की कश्ती दिखायी नहीं देती थी, इसलिए जहाज़ को ज़ोर-ज़ोर से बोलना और बार-बार खाँसना पड़ रहा था।

मैं उठकर साएबान के नीचे आ गया। परिया सामने ही अपनी कश्ती के बीच में खड़ी थी। उसने जहाज़ से एक-दो बातें और कीं। बीवी का कुछ जिक्र था फिर वो उल्टे कदमों चलती हुई कश्ती के दूसरे सिरे पर पहुँच गयी। उसके पैरों के हल्के से इशारे से कश्ती ने धीरे-धीरे घूम कर आधा चक्कर खाया। अब परिया की पीठ साएबान की तरफ़ थी। मैंने पहली बार बीवी की उस बेटी को सिर से पैर तक ग़ौर से देखा और ये सोच कर पहले से भी ज़्यादा हैरान हुआ कि बीवी की सी औरत उसकी माँ है। उसी वक़्त उसके बदन ने झकोला खाया और कश्ती साएबान से दूर होने लगी। फिर आहिस्ता से डगमगाई और रुक गई। परिया ने अपने दाहिने, बाएँ और सामने फैली हुई झील को देखा। कश्ती फिर आहिस्ता से डगमगाई लेकिन परिया ने अपने बदन को साधकर उसका संतुलन सही कर लिया। उसके पैरों में फिर हल्की लड़खड़ाहट हुई। कश्ती ने एक बार फिर बहुत धीरे-धीरे घूम कर आधा चक्कर खाया और मैंने सामने से भी परिया को सिर से पैर तक देखा। मुझको शक हुआ कि उसको मेरा इस तरह देखना बुरा न लगे, लेकिन उसकी नज़रें मेरी तरफ नहीं थीं। वो घाट के ठहरे हुए पानी को बहुत ग़ौर से जैसे ज़िन्दगी में पहली बार देख रही थी। फिर वो रुक-रुक कर चलती हुई कश्ती के साएबान वाले किनारे पर आ गयी। थोड़ा झुककर उसने एक बार फिर पानी को ग़ौर से देखा, सीधी खड़ी हुई, अपने पूरे बदन को साधा और बहुत सुकून से झील की सतह पर क़दम रख दिया जैसे कोई सूखी ज़मीन पर कदम रखता है। फिर उसके दूसरे पैर ने कश्ती को छोड़ा। उसने एक कदम आगे बढ़ाया फिर दूसरा कदम।

''पानी पर चल रही है।'' मैंने कुछ हैरत और कुछ ख़ौफ के साथ खुद को बताया, ज़रा दूर पर तम्बाकू पीते हुए जहाज़ की तरफ़ गर्दन मोड़ी, फिर झील की तरफ़ देखा। परिया की खाली कश्ती और साएबान के बीच सिर्फ़ पानी था। जिस पर मोटी लहरों के दुहरे-तिहरे दायरे फैल रहे थे। चन्द लम्हों के बाद उन दायरों के बीच से परिया का सिर उभरा। उसने पानी पर कई बार हथेलियाँ मारीं जैसे झील की सतह को पकड़ना चाह रही हो। पानी की आवाज़ के साथ बहुत से छींटे उड़े और मुझे जहाज़ की आवाज़ सुनाई दी :

''परिया, पानी का खेल न करो।''

फिर उसके गले में धुएँ का फन्दा पड़ा और वह खाँसते-खाँसते दुहरा हो गया। दम भर के लिए मेरी निगाह उसकी तरफ़ मुड़ी। उस पर दौरा-सा पड़ा हुआ था और वो किसी की मदद का मोहताज मालूम हो रहा था। मैंने फिर झील की तरफ़ देखा मुझे सपाट पानी पर लहरों के नये दायरे फैलते दिखाई दिए।

वो फिर उभरी और फिर नीचे बैठने लगी। मेरी नज़र उसकी आँखों पर पड़ी और मैं एक झटके के साथ उठकर खड़ा हो गया।

''जहाज़!-- मैंने ज़ोर से पुकारा, फिर मेरी जुबान में गाँठ पड़ गयी।

मैं जहाज़ की तरफ़ लपका। उसकी खाँसी रुक गयी थी लेकिन साँस थरथरा रही थी। वो एक हाथ से अपना सीना और दूसरे से आँखें मल रहा था। मैंने सीढ़ियों पर चढ़कर उसके दोनों हाथ पकड़े और उसे ज़ोर से हिलाया।

... परिया... मेरे मुँह से निकला।

अपनी ज़र्द आँखों से कुछ देर वो मेरी आँखों में देखता रहा, फिर उसकी आँखों में बिजली-सी कौंधी और मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे हाथ से कोई शिकारी परिन्दा छूट गया है। साएबान में उतरने वाली कच्ची सीढ़ियों पर धूल उड़ रही थी और जहाज़ पानी के किनारे था।

परिया की कश्ती अब पूरा चक्कर काट रही थी। जहाज़ ने कश्ती को देखा, फिर पानी को। फिर उसने किसी अजनबी की सी बोली में पूरी ताक़त से एक आवाज़ लगायी। मैंने सुना कि नाव पर से बीवी ने भी इतनी ही ताक़त से उस आवाज़ को दोहराया। फिर दूर-दूर तक कई तरफ़ से यही आवाज़ आयी। मुझे फिर बीवी की आवाज़ सुनायी दी :

''दुखिया ?''

''परिया।'' जहाज़ ने इतनी ज़ोर से कहा कि उसके सामने झील का पानी हिल गया।

दूर और क़रीब की आवाज़ों ने जहाज़ की आवाज़ को बार-बार दुहराया और मुझे जाल घसीटते हुए और खाली हाथ मछुआरे कई तरफ़ से घाट की ओर दौड़ते दिखाई दिए। साएबान तक पहुँचने से पहले-पहले उनमें से कई पानी में उतर गये। जहाज़ उन्हें इशारे से कुछ बता रहा था कि बायीं तरफ़ से पानी के उछलने की आवाज़ आयी। मैंने देखा कि बड़ी नाव पर कुत्ता भौंकता हुआ इधर से उधर दौड़ रहा है और दोरंगी बिल्ली पीठ ऊँची किए एक कोठरी की छत पर से उसे देख रही है। फिर मैंने देखा कि बीवी, क़रीब-क़रीब नंगी, किसी खुजलीदार आदमख़ोर मछली की तरह पानी को काटती चली आ रही है। उसका बदन परिया की कश्ती से टकराया और कश्ती अपनी जगह पर फिरकी की तरह घूम गयी। बीवी ग़ोता लगाकर कश्ती के दूसरी तरफ़ उभरी। उसने जल्दी-जल्दी मछुआरों को कई इशारे किए और फिर ग़ोता लगाया।

दूसरे घाटों से मल्लाहों की कश्तियाँ शीशा घाट की तरफ़ दौड़ती दिखायी दीं। कई मल्लाह रास्ते ही में कूद कर अपनी कश्तियों के आगे-आगे तैर रहे थे।

अब परिया की कश्ती से साएबान तक और साएबान से कश्ती तक पानी में सिर ही सिर थे। झील के किनारे-किनारे भी मजमा बढ़ रहा था। हर चीज़ हिल रही थी और हर तरफ़ एक शोर था, हर शख़्स कुछ न कुछ कह रहा था। लेकिन कुछ समझ में नहीं आता था कि कौन, क्या कह रहा है ? पानी की उछालों का शोर सबसे ज़्यादा था जिसमें वक़्त के गुज़रने का कुछ पता नहीं चल रहा था। आख़िर एक आवाज़ ने बहुत ज़ोर से कुछ कहा। शोर तेज़ होकर अचानक थम गया और पानी में उतरे हुए सारे बदन बेआवाज़ तैरते हुए आहिस्ता-आहिस्ता एक जगह जमा होने लगे। सब बिल्कुल ख़ामोश थे, सिर्फ़ नाव पर से कुत्ते के भौंकने की आवाज़ आ रही थी और उस वक़्त मुझे महसूस हुआ कि मेरा एक हाथ किसी शिकंजे में जकड़ा हुआ है। जहाज़ मेरे पास खड़ा था।

''चलो,'' उसने मेरा हाथ हिलाकर कहा।

मेरी समझ में नहीं आया कि वो मुझे किधर चलने को कह रहा है। मगर अब वो मुझको मकान के अन्दर लिए जा रहा था। मैंने पीछे घूमकर झील की तरफ़ देखना चाहा, लेकिन जहाज़ ने मेरे हाथ को ज़रा-सा झटका दिया और मैं उसकी तरफ़ देखने लगा। उसकी नज़रें मुझ पर जमी हुई थीं।

''चलो'' उसने फिर कहा।

हम मकान के पीछे वाले दरवाज़े पर आये। जहाज़ ने दरवाज़ा खोला। सामने बंजर मैदान था।

''वो मिल गयी है।'' उसने मुझे बताया फिर मैदान के बायें किनारे की तरफ़ इशारा किया और जल्दी-जल्दी कहने लगा, ''थोड़ी देर में शीशे वालों के यहाँ पहुँच जाओगे। वहाँ से सवारी मिल जायेगी। न मिले तो किसी को भी मेरा नाम बता देना।''

उसने रूमाल में बँधी हुई कुछ रकम मेरी जेब में डाल दी। मैं उससे बहुत कुछ पूछना चाहता था और वहाँ से जाना नहीं चाहता था लेकिन उसने कहा :

''उसे सिर्फ़ तुमने डूबते देखा है। सब तुम ही से एक-एक बात पूछेंगे। बीवी सबसे ज़्यादा। बता पाओगे ?''

मेरी आँखों में वो मंज़र आ गया कि सारे लोग कानों में बाले पहने हुए मछुआरे और हाथों में कड़े डाले हुए मल्लाह, और घाट-घाट के सैलानी मेरे चारों ओर दुहरे-तिहरे घेरे बनाए हुए हैं और हर तरफ़ से सवाल हो रहे हैं और बीवी मेरी तरफ़ देख रही है। फिर सब चुप हो जाते हैं और बीवी आगे बढ़कर मेरे क़रीब आ जाती है।

जहाज़ ने मेरे कँपकँपाते हुए बदन को देखा और बोला

''मुझे कुछ बता दो... कुछ भी...वो पानी में गिर गयी थी ?''

''नहीं... नहीं... '' मैंने किसी तरह कहा।

''फिर ?'' जहाज़ ने पूछा, ''खुद झील में कूद गयी थी ?''

''नहीं,'' मैंने कहा और सिर से इशारा भी किया।

जहाज़ ने मुझे झिंझोड़ कर कहाः

''कुछ बताओ, जल्दी''

मुझे मालूम था कि मैं ज़बान से कुछ न बता पाऊँगा इसलिए मैंने हाथों के इशारे से उसे बताने की कोशिश की कि वो पानी पर चलना चाह रही थी, लेकिन मेरे हाथ बार-बार रुक जाते थे। मुझे महसूस हुआ कि मेरे इशारे भी हकलाने लगे हैं और उनका कोई मतलब नहीं निकल रहा है। लेकिन जहाज़ ने घुटी-घुटी आवाज़ में पूछा :

''पानी पर चल रही थी ?''

''हाँ'', मैंने फिर ज़रा मुश्किल से कहा।

''इसी में डूब गई ?''

''हाँ''

''पानी पर..... बीवी की तरफ़ जा रही थी ?''

''नहीं''

''फिर ?'' उसने पूछा, ''हमारी तरफ़ आ रही थी ?''

''हाँ'', मैंने गर्दन के इशारे से बता दिया। जहाज़ ने गर्दन झुका ली और मेरे देखते-देखते कुछ और बूढ़ा हो गया।

''जिस दिन उसका छोटा-सा सिर पानी से उभरा था'', कुछ देर के बाद उसने कहा, ''उस दिन से मैं हर रोज़ उसे देखता था,'' उसकी खाँसी आते-आते रुकी, ''मुझे ये भी पता नहीं कि अब वो कितनी बड़ी मालूम होती थी।''

मैं चुपचाप खड़ा उसको बूढ़ा होते देखता रहा। ''बस, जाओ'' उसने मेरे कंधे पर हाथ रखा और बोला, ''मैं उन्हें कुछ बता दूँगा। तुम किसी से कुछ न कहना।''

मैं किसी से क्या कहूँगा, मैंने सोचा और मेरा ध्यान जो इतनी देर में घाट की तरफ़ से हट गया था, फिर उधर चला गया। लेकिन जहाज़ ने बहुत आहिस्ता से मुझे घुमा कर मैदान की तरफ़ बढ़ा दिया। मैदान में पहुँच कर मैं उसकी तरफ़ मुड़ा और वो बोला :

''तुम्हारा बाप कल ही तुम्हें लिए जा रहा था। मैंने कहा था कुछ दिन बाद...''

फिर उसे हल्की-सी खाँसी आई। उसने दरवाज़े के दोनों पट पकड़ लिए और धीरे-धीरे पीछे हटने लगा।

दरवाज़ा बन्द होने से पहले ही मैंने वापसी का सफ़र शुरू कर दिया। लेकिन पन्द्रह क़दम चला होऊँगा कि उसने मुझे पुकारा। मैंने घूमकर उसे देखा कि कुछ रुक-रुक कर मेरी तरफ़ बढ़ रहा है। उस वक़्त वो तूफ़ान में घिरे हुए किसी ऐसे जहाज़ की नक़ल उतारता मालूम हो रहा था जिसके पाल हवाएँ उड़ा ले गयी हों। पास आकर उसने मुझे चिमटा लिया। देर तक चिमटाए रखा। फिर मुझे छोड़कर पीछे हट गया।

''जहाज़।'' घाट की ओर से बीवी की दहाड़ सुनायी दी।

बूढ़े मसखरे की पीली आँखों ने आख़िरी बार मुझे देखा। उसकी गर्दन इक़रार के अन्दाज़ में हिली और मैं मुड़कर आगे बढ़ गया।

अनन्तमूर्ति का आत्मकथ्य

ज.न. तेजश्री
कन्नड़ से अनुवाद : नीरज पाण्डे

यादें हमेशा सिर्फ़ अपने अनुभव की ही नहीं होतीं । कभी-कभी किसी दूसरे की यादें भी, ठीक वैसी ही होतीं हैं, जैसी अपनी पुरानी यादें ।

अनन्तमूर्ति के लेखन ने अपने पाठकों के लिए कई पीड़ादायी यादें भी छोड़ी हैं । अपनी अच्छी और बुरी यादों के सहारे उन्होंने अपने पाठकों का दिल जीतने की पूरी कोशिश की है ।

अगर भाग्य दोबारा वापस आकर अनन्तमूर्ति से पूछे कि क्या वे दोबारा जन्म लेना चाहेंगे? तो इसके बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं, क्योंकि बड़ा होना कभी भी एक आसान काम नहीं है ।

अनन्तमूर्ति की माँ का नाम सत्यभामा था। बचपन में उनकी माँ अक्सर बोला करतीं कि अगर उनकी सास ने उन्हें प्रताड़ित करना नहीं छोड़ा, वे कुएँ में कूद कर आत्महत्या कर लेगीं । उन्हें यह पता नहीं था कि ये बात उनकी माँ उनका या उनके पिताजी में से किसका ध्यान खींचने के लिए किया करती थीं।

उनकी दादी माँ जो मूलतः केरल की थीं, गोरे रंग की लम्बी औरत थीं, कानों में मलयाली बाली पहनती थीं। अनन्तमूर्ति को हमेशा लगता था कि उनकी दादी माँ की आज्ञा का पालन उनके घर में सब करते हैं । उनके दादा जी का नाम पद्मनाचार्य था। अपनी माँ की देखभाल के बन्दोबस्त के लिए उन्हें घर छोड़कर केरल जाना पड़ा। वो इमली बेचा करते थे। एक बार इमली बेचते हुए वे राजा रवि वर्मा के घर गये, राजा रवि वर्मा ने उन्हें कुछ काम दिलाया और अपने घर पर रख लिया । जब रवि वर्मा पेंटिंग किया करते, पद्मनाचार्य लालटेन लेकर उन्हें रोशनी दिखाते रहते । जब राजा रवि वर्मा को पता चला कि पद्मनाचार्य ब्राह्मण परिवार से हैं, उन्होंने उन्हें अपना पुरोहित बना लिया । इसी दौरान अनन्तमूर्ति के दादा जी जानकी से मिले और उनको एक बेटा हुआ। वे अपने पति को पिन्ने बुलाती थीं। अनन्तमूर्ति के पिता को अपनी माँ से यह शिकायत थी कि उन्होंने कभी उन्हें अपना दूध नहीं पिलाया था ।

अनन्तमूर्ति के पिता का नाम राजगोपालाचार्य था । उनकी शादी पन्द्रह या सोलह बरस की उम्र में हुई थी । उस वक्त वे बनारस में रहते थे। कुछ ही समय बाद उनकी पहली पत्नी का देहान्त हो गया था । उस समय उनकी उम्र महज पन्द्रह या सोलह थी। उसके बाद वो बनारस छोड़ कर गौनीबिडी आ गये थे और वहाँ एक पोस्ट ऑफिस में पोस्टमास्टर का काम शुरू कर दिया था । दरअसल उनकी बीमारी की वजह से उन्हें हफ़्ते में चार दिन छुट्टी लेनी पड़ती थी, उसी वजह से उन्हें रेलवे की नौकरी नहीं मिली थी। रेलवे की नौकरी न मिलने की वजह से उनको

गौनीबिडी वापस आना पड़ा और वहाँ आकर उन्होंने डाक खाने में पोस्टमास्टर का पद सँभाला । कुछ समय बाद वो मुम्बई चले गये और वहाँ उन्होंने कुछ वक़्त अकाउण्टेंट का काम किया और कुछ दिनों बाद वो काम भी छोड़ दिया । अनन्तमूर्ति के दादा जी कहा करते थे कि मेरे और तुम्हारे पिता जी दोनों के हाथों और पैरों में चक्के लगे हुए थे, दोनों दौड़ते ही रहते हैं ।

इनके दादा जी चिकमंगलूर जिले के गौनीबिडी के सुब्रमण्यम मन्दिर में पुजारी थे और अनन्तमूर्ति के पिता जी अपने पिता जी का हाथ मन्दिर के कामों में बँटाया करते । इसी दौरान वहाँ आने-जाने वाले पर्यटकों से अनन्तमूर्ति के पिता जी किताब लेकर, सबसे छिपाकर पढ़ते थे और ऐसे ही पढ़-पढ़ के उन्होंने लन्दन मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर ली और यही उनकी शादी की वजह भी बना। उसके बाद वो गौनीबिडी छोड़कर काशी चले गये। इसी बीच उनकी पत्नी का देहान्त हो गया ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी कभी स्कूल नहीं गये थे पर वो जीवन के अनुभवों से सीखते थे। ऐसे वे बहुत सख्त थे पर अन्दर से उतने ही भावुक भी । उनकी दो ही पसन्दीदा चीज़े थी। एक ताश खेलना और दूसरी तारों और आसमान को देखना। आसमान को देखकर ही उन्होंने ज्योतिष भी सीखा था और कुछ वक़्त बाद खुद ही पंचांग भी लिखने लगे थे। वो फ्राँस से पंचांग मँगवाकर उसका अध्ययन करते थे और दूसरे पण्डितों को भी इसके बारे में बताते थे । उनका मानना था कि हमारे देश के ज्योतिषशास्त्र में दिन-पर-दिन गिरावट आती जा रही है। इसी दौरान वो 'गौरीशकईकिप्पी' से मिले, 'गौरीशकईकिप्पी' पुराने पंचांग का अध्ययन कर उसको आधुनिक पंचांग में बदलते थे। इसी वजह से उन्हें मठ से भी बाहर कर दिया गया था । उनसे अनन्तमूर्ति की मुलाकात गोकर्ण में हुई थी ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी की गिनती उस वक़्त के आधुनिक लोगों में हुआ करती थी । वो खुद अपना उस्तरा तेज़ कर फसूकर के साथ दाढ़ी बनाया करते जिस पर लोग उन्हें आश्चर्य से देखा करते । उन्होंने अपनी बनारस, दिल्ली और काशी की यात्रा के दौरान ही खुद से दाढ़ी बनाना सीखा था । उस वक़्त उनके पास एक कैमरा भी था जिसको उस वक़्त बॉक्स कैमरा भी बोला जाता था जो उस वक़्त उस गाँव में अनोखी बात थी ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी की मौत के बाद अनन्तमूर्ति के पिता जी के दोस्त अनन्तमूर्ति को ताश के दौरान होने वाले किस्से सुनाया करते । ऐसे ही एक किस्से की माने तो अनन्तमूर्ति के पिता जी, अनन्तमूर्ति के दादा जी की गैर हाज़िरी में एक बार बिना नहाये मन्दिर गये, पूजा की और वापस आकर ताश खेलने में जुट गये। अगले दिन जब लोगों को मन्दिर में साँप दिखा, उन्हें लगा कि इसकी वजह अनन्तमूर्ति के पिता का मन्दिर में बिना स्नान किये जाना है। इससे लोगों को लगा कि इस मन्दिर में वाकई बड़ी शक्ति है । पर इस सारी कहानी में अनन्तमूर्ति के लिए उनके पिता का ताश में रुझान ही आकर्षण का केन्द्र था । अनन्तमूर्ति अपने आस-पास की ऐसी ही कहानियाँ सुनते और देखते हुए बड़े हुए थे ।

एक बार अनन्तमूर्ति के पिताजी आइवनहो नाम की किताब पढ़ रहे थे, जो बहुत सारे लोगों के मरने के बारे में थी । उसी दौरान एक बार ताश खेलते हुए उनके एक दोस्त की मौत हो गयी । इस घटना से अनन्तमूर्ति के पिता जी को बहुत दुःख पहुँचा । ये बात उनके अन्दर ऐसे घर कर गयी कि अन्ततः वो इस घटना की वजह से डिप्रेशन में चल गये। उस दौरान उनकी माँ उन्हें कुएँ पर ले जाकर उनके सर पर पानी डाला करती थीं कि उन्हें आराम मिले । समय के साथ वो ठीक होते गये और अन्त में पूरी तरह से सामान्य भी हो गये।

अनन्तमूर्ति के पिता जी की इच्छा थी कि अनन्तमूर्ति गणितज्ञ बने पर अनन्तमूर्ति का रुझान साहित्य की ओर था। और इसलिए उनके पिता जी ने ये शर्त रखी कि वो अगर वह किताब (आइवनहो जिसकी वजह से अनन्तमूर्ति के पिता जी डिप्रेशन में गये थे) न पढ़े तो वो साहित्य पढ़ सकते हैं।

करेकोप्पा अनन्तमूर्ति की नानी का घर था । वहाँ हर घर का अपना एक अलग नाम होता था जो खुद में एक गाँव जैसा था। वहाँ जब भी वो अपने हमउम्र दोस्तों के साथ खेलने बाहर जाते, उनकी नानी उनसे कहा करती कि ज़्यादा मत खेलो नहीं तो ठण्ड लग जाएगी ।

उनके घर के बाहर एक पेड़ था जिसके बारे में उनके घर आने वाले लोग उन्हें कहानियाँ बताया करते कि किस तरह से गर्भवती राजकुमारी राजकुमार से उस पेड़ के फल की माँग करती थी पर राजकुमार को सामने वाले पेड़ से वो फल लाने में काफ़ी बाधा हुआ करती थी । अनन्तमूर्ति ये सारी कहानियाँ सुनने के बाद जानना चाहते थे कि वो कौन-सी ऐसी बाधाएँ हैं ।

आस-पास जंगल होने की वजह से उन दिनों उनके गाँव में अक्सर शेर आया करता था, जिसकी आहट गाँव की गायों को सबसे पहले लग जाती थी और वो शोर मचाना शुरू कर देती थीं जिससे अनन्तमूर्ति की माँ को यह पता चल जाता कि शेर आने वाला है । रात में लालटेन लेकर अनन्तमूर्ति, अनन्तमूर्ति की माँ और उनके दादा जी उनकी निगरानी किया करते। अनन्तमूर्ति के दादा जी ने उनको डर को दूर भगाने वाला एक मन्त्र भी सिखाया था, उसी मन्त्र को पढ़ते-पढ़ते अनन्तमूर्ति को नींद आ जाया करती । पर उनकी माँ पूरी रात जाग कर घर का ख्याल रखती कि कहीं किसी वज़ह से घर को कोई नुकसान न हो जाये ।

अनन्तमूर्ति के लिए उनकी माँ ही उनकी पहली शिक्षक थीं । उन्होंने कुछ समय के लिए स्कूल की शिक्षा ली थी । वह फर्श पर रेत डालकर उसमें अक्षर खींच कर अनन्तमूर्ति को लिखना सिखाया करतीं ।

शेर के आक्रमण के डर की वजह से भी उनकी माँ ने उन्हें कभी स्कूल नहीं भेजा, पर घर पर उनको पढ़ाने एक मास्टर आते थे जिनका नाम कृष्णापइया था। वो अपने साथ कुछ फूल लाते थे जिनका गजरा बनाकर अनन्तमूर्ति पहना करते थे जो कृष्णापइया को पसन्द नहीं था। इस वजह से जब भी कृष्णापइया घर में नहीं होते, उनके लंगड़े होने की वजह से अनन्तमूर्ति उन्हें लंगड़ा कृष्णापइया, लंगड़ा कृष्णापइया ही बोला करते और इसी वजह से उन्हें अपने दादा जी से डाँट भी पड़ती थी ।

उन दिनों लगातार बारिश के दौरान घर को गर्म रखने के लिए आग जलायी जाती थी जिसके आस-पास बैठकर सारे बुजुर्ग कहानियाँ सुनाया करते। इन कहानियों को अनन्तमूर्ति बड़े ही चाव से मुँह फाड़कर सुना करते थे ।

गर्मी के दिनों में उनके घर में चकली और पापड़ बनाना आम बात थी । उस वक़्त उनके घर में औषधि का एक पौधा था जिसका प्रयोग वो खाने में करते थे। यह द्वितीय विश्व युद्ध के आस-पास का वक़्त था। घर के सामने के जंगल से अनन्तमूर्ति अपने दादा जी के पूजा करने के लिए दूध और फूल लाया करते और दोपहर को उनके शिक्षक कृष्णपाइया उन्हें पढ़ाने आया करते थे । अनन्तमूर्ति हर बार मन ही मन में प्रार्थना करते कि किसी तरह कृष्णापइया को बुखार हो जाये और वो आज पढ़ाने न आ पाये ।

करेकोप्पा में उन दिनों सच्ची कॉफी कभी-कभी मिलती थी । पर अनन्तमूर्ति की माँ कॉफी के बीजों को उबालकर और महीन कपड़े से छान कर घर में ही कॉफी बनाया करतीं और अनन्तमूर्ति के पिता जी, दादा जी और गाँव के

मुखिया को परोसा करती । कई बार जब अनन्तमूर्ति के दादा जी को घर की बनी कॉफी नहीं मिलती थी, वो बाहर बाज़ार में जाकर कॉफी पीते थे और दक्षिणा में मिलने वाले पैसों से उधार बाद में चुकाया करते । साथ ही साथ उनको इस बात का डर था कि किसी को ये दक्षिणा से कॉफी का बिल चुकाने वाली बात पता न चल जाए, क्योंकि ये उस वक़्त बुरी बात मानी जाती ।

जब भी घर में अनन्तमूर्ति की माँ और उनकी दादी का झगड़ा शुरू होता, उनके दादाजी जंगल की तरफ चले जाया करते और अक्सर अनन्तमूर्ति भी उनके साथ हो लेते । अनन्तमूर्ति की दादी उनके दादाजी को बोला करती कि अपनी तरह वे अनन्तमूर्ति को न बिगाड़ें । वो चाहती थी कि अनन्तमूर्ति पक्के ब्राह्मण बने । दादी की इस बिगड़ने वाली बात से उनके दादा जी को ठेस पहुँचती थी । अनन्तमूर्ति अपने दादा और दादी में से किसी को दुःखी नहीं करना चाहते थे। इस वज़ह से वो अपनी हरकतों के बारे में उनसे झूठ बोलने लगे ।

उस वक़्त उनके घर में करने बाई आया करती जो अपने जीवन के सुख-दुःख की बातें साझा किया करती थी । उसको दो जुड़वाँ बच्चे थे, उसके लम्बे बाल थे जिसमें वो लीली के फूल लगाया थी और माथे पर बड़ी बिन्दी और गाल पर हल्दी लगाया करती । वो गाँव में होने वाली हर खबर के लिए एक अच्छा सन्देशवाहक थी । बाई के शरीर में कभी-कभी देवी आती थी और जब भी ऐसा होता उस वक़्त वो बिलकुल ही अलग बर्ताव किया करती । गाँव के सब लोग उस वक़्त फूल लेकर उसके सामने आया करते और अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान पूछा करते । देवी आने के दौरान उसके बाल खुले हुआ करते, चेहरे पर हल्दी लगी होती और माथे पर कुमकुम। उस वक़्त अनन्तमूर्ति के दादा जी इस आयी हुई देवी से अच्छे मुहूर्त के बारे में सवाल करते। अनन्तमूर्ति के लिए यह बात बहुत ही अचम्भित करने वाली थी कि किस तरह से देवी के शरीर से जाते ही वह बाई बिलकुल सामान्य व्यवहार करने लगती।

उस वक़्त औरतें अपने पतियों से पैसे लेकर उनका सोना खरीद कर रख लेती थी और आर्थिक तंगी के दिनों में उसे निकाला करतीं। उसी सोने को गिरवी रख कर उन्हें उसके बदले पैसा मिल जाया करता । तीर्थहल्लड़ी में उस वक्त एक सुब्रोय बट्टू नाम के व्यक्ति हुआ करते थे जो इस काम को बड़ी ही ईमानदारी के साथ करते थे। पर इमरजेन्सी के वक़्त जब इन्दिरा गाँधी ने इस काम पर रोक लगा दी तो पुलिस ने सुब्रापाइया के पास रखा सारा सोना जप्त कर लिया था । जब अनन्तमूर्ति की उम्र स्कूल जाने की हुई वे करेकोप्पा से बेगूवल्दी चले गये जो करेकोप्पा से बड़ा गाँव था । इस गाँव में उस वक़्त स्कूल से जुड़ी सारी सुविधाएँ मौजूद थीं। वहाँ पर अनन्तमूर्ति के पिता जी ने अपना पुराना शानभोगा का काम चालू रखा । वहाँ अनन्तमूर्ति को इस बात का पता चला कि किस तरह शानभोगा होना इस गॉव में रुतबे वाली बात है । उसी गाँव में एक और आदमी था जिसका नाम अनप्पा नायका था । वे इस गाँव के पटेल थे, जो अनन्तमूर्ति के पिता जी के अच्छे दोस्त थे ।

वहाँ साल में एक बार जमाबन्दी होती थी जिसमें गाँव के लोग एक साथ इकट्ठे होते थे और मिलजुल कर एक मिठाई बनाकर सब में बाँटते थे। उसी महोत्सव में एक व्यक्ति मलधार था जो टोपी पहनता था । अनन्तमूर्ति को उनका टोपी पहनना बहुत भाता था और वो सिर्फ़ उस टोपी को पहनने के लिए बड़े होकर मलधार बनना चाहते थे ।

अनन्तमूर्ति को यह भी याद था कि पहली बार उनके बाल जिस नाई ने कटे थे, उसने एक सफ़ेद रंग का गमछा ओढ़ रखा था । उन नाई से बाल कटवाकर अनन्तमूर्ति इतने सन्तुष्ट हुए थे कि अब जब भी उन्हें बाल कटाना होता,

अनन्तमूर्ति उसी नाई को ढूँढ़ा करते थे ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी चोटी नहीं रखते थे पर उनके दादा जी की चोटी कन्धे तक आती थी और लौकिक ब्राह्मण होने की वजह से वो शरीर पर बस एक गमछा जैसा कुछ पहना करते थे ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी आधुनिक तो थे ही पर साथ ही साथ गाँधीवादी भी थे, गाँधीवादी भी तभी तक जब तक मसला प्रॉपर्टी का न हो । उनका रुझान सरकार के बनाये हुए प्रॉपर्टी के कानूनों को पढ़ना और उसके बिना पर प्रॉपर्टी के लिए मुकदमा लड़ना था । आस-पास के सारे वकील उनसे प्रॉपर्टी के मामले में सलाह माँगने उनके पास आया करते । उनके पास भारत के संविधान की एक प्रति थी, जिसके हर पन्ने पर उनके अपने विचार लिखे हुए थे ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी हमेशा अंग्रेज़ी में हस्ताक्षर करते थे 'U-P- Rajgopalacharya इस हिसाब से अनन्तमूर्ति का नाम अनन्तमूर्ति आचार्य होना चाहिए था । पर चूँकि उनके पिताजी को हमेशा से ही कुछ अलग करने की आदत थी, उन्होंने 'आचार्य' शब्द उनके नाम से हटाकर अनन्तमूर्ति का नाम बस 'अनन्तमूर्ति' रखा ।

अनन्तमूर्ति के पिता जी नक्षत्र पंचांग और विज्ञान में खासी रुचि रखते थे। अपने आखिरी दिनों में जब वे इंग्लैण्ड से लौटे, उनको लकवा मार गया था। उस वक़्त उनके पास 'ह्यूमन बॉडी' और 'एलिमेन्ट' के नाम से दो किताबें पड़ी थीं। बिस्तर पर होने के बावजूद वो पंचांग पढ़ कर अनन्तमूर्ति को यह बताते रहे कि उनके साथ कल क्या होने वाला है। उसके बाद अनन्तमूर्ति उन्हें अच्छी चिकित्सा के लिए बंगलौर लाना चाहते थे पर उनके पिताजी ने इच्छा जाहिर की कि वो अस्पताल में मारना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें पता है कि आने वाले तीन-चार दिनों में वो गुज़र जाएँगे ।

जब उनका देहान्त हुआ अनन्तमूर्ति की माँ ने उनका नकली दाँत निकाल कर रख दिया और उसके बाद ज़ोर-ज़ोर से रोने और सर पटकने लगी और कुएँ में कूदकर जान देने की कोशिश भी की । यह सब चल ही रहा था कि मृत शरीर को ज़मीन पर रखा गया और पास ही दीपक जलाकर पुरोहित का इन्तज़ार होने लगा ।

अपने पिता जी के मरने के बाद अनन्तमूर्ति को उनकी डायरी देखकर पता चला कि उनका सम्बन्ध एक वैश्या से भी था जिसको दिये जाने वाले पैसों का हिसाब उन्होंने अपनी उस डायरी में लिख रखा था । उनको यह भी पता चला कि उन पर तीन हज़ार रुपये का उधार है जिसे उनके पिता जी चाहते थे कि वो पैसे अनन्तमूर्ति द्वारा चुकाये जाएँ। अनन्तमूर्ति और उनके छोटे भाई गुरुराज ने मिलकर धीरे-धीरे वो उधार चुका दिया ।

उनके पिता का संसार

अनन्तमूर्ति के पिता जी के मन में इंग्लैण्ड की बहुत इज्जत थी। अनन्तमूर्ति को उन्होंने 'एडमंट बर्क' का भाषण कण्ठस्थ करने को भी कहा था । इस बात का दबाव अनन्तमूर्ति पर इतना था कि वो अपनी पढ़ाई से ज़्यादा वक़्त एडमंट बर्क के भाषण को देने लगे थे।

अनन्तमूर्ति के पिता जी की लेखनी से कोई यह नहीं कह सकता था कि वो अंग्रेज़ी का उच्चारण सही ढंग से नहीं करते । पर अनन्तमूर्ति की अंग्रेज़ी व्याकरण का सुधार भी वो ही किया करते।

एक दिन खाना खाते वक़्त घर में रूस की क्रान्ति पर चर्चा चल रही थी । अनन्तमूर्ति के पिता जी का मानना था कि वहाँ की क्रान्ति एक घोर अपराध है। इस पर अनन्तमूर्ति का कहना था कि नहीं, वहाँ के लोग अपने राजा की

राजशाही से नाराज़ होकर यह आन्दोलन कर रहे हैं। इस पर उनके पिताजी ने उन्हें तमाचा मारा और वहाँ से उठकर चले गये। अगले दिन उन्होंने रूस की क्रान्ति से जुड़े हुए अखबार और किताबें पढ़ीं तो उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्होंने अनन्तमूर्ति से माफ़ी माँगते हुए कहा कि अनन्तमूर्ति की बात ठीक थी।

इस तरह की चर्चा अनन्तमूर्ति और उनके पिता जी की ज़िन्दगी का हिस्सा बन गयी। अनन्तमूर्ति के पिता जी के पास एक कम्पास वाली कलम थी, एक बार अनन्तमूर्ति ने उनसे वो माँगा तो उन्होंने यह कहकर मना कर दिया कि अभी तुम्हें पेन्सिल से ठीक से लिखना नहीं आता, पेन का क्या करोगे। यह बात अनन्तमूर्ति के अन्दर ऐसी घर कर गयी कि उनको बुखार आ गया, लोगों ने कई कोशिश और इलाज़ किये फिर भी तब तक बुखार नहीं उतरा जब तक अनन्तमूर्ति के पिता जी ने वो कम्पास वाली कलम लाकर उनके हाथ में नहीं रख दी। यह बस एक वाकया है पर अनन्तमूर्ति जब भी कोई चीज़ चाहते और अगर उन्हें नहीं मिलती, उन्हें अचानक बुखार आ जाया करता।

बचपन में जब भी अनन्तमूर्ति माँ को घर में नहीं पाते, परेशान हो जाया करते और चिल्लाते माँ कहाँ मर गयी तू? और जब माँ सामने आ जाती, खुशी उनके चेहरे पर लौट आती। उनको ऐसा इसलिए लगता था क्योंकि जब भी उनकी माँ की उनकी दादी से लड़ाई हुआ करती, वो आत्महत्या की धमकी दिया करती थी।

अनन्तमूर्ति के पिता जी एक अकाउण्टेण्ट के तौर पर काम करते हुए शिवमुगा में रहने लगे। घर पर सिर्फ़ अनन्तमूर्ति, दादा, दादी और उनकी माँ थे। उनके घर के पास एक स्कूल था जिसमें पढ़ाने वाले एक मास्टर से अनन्तमूर्ति की माँ की अच्छी बनती थी। वो भी अक्सर घर आया करते। इस पर अनन्तमूर्ति की दादी ने उनकी माँ पर यह लाँछन लगाना शुरू किया कि उनकी माँ के उस मास्टर से सम्बन्ध हैं। उस दिन के बाद से अनन्तमूर्ति अपनी माँ की हरकतों को ध्यान में रखने लगे। उस वक़्त सिर्फ़ अनन्तमूर्ति प्राथमिक विद्यालय में थे। ये चीज़ें अनन्तमूर्ति अपने जीवन के कड़वे अनुभवों में गिनते हैं।

उनकी माँ को एक बार स्तन में कुछ बीमारी हुई जिससे उनके स्तन में गाँठें बनने लगीं। अनन्तमूर्ति अपनी माँ के पहले बेटे थे उससे पहले उनकी माँ का एक गर्भपात हो चुका था। उनका जन्मदिन दिसम्बर २१, १९३२ को हुआ था। उनके बाद उनके भाई वेंकटेश का ज़न्म हुआ।

एक दिन अनन्तमूर्ति की माँ रात के वक़्त बेहोश हो गयीं। उनके पिता जी उन्हें रात में ही लेकर अस्पताल भागे। वहाँ अस्पताल में बस एक ही लेडी डॉक्टर थी, उसने दूसरे डॉक्टर को बुलाया और फिर वो कुछ ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ते हुए उन्होंने कहा की 'डेटोल' नहीं है। यह पहली बार था जब अनन्तमूर्ति ने 'डेटोल' शब्द सुना। उसके बाद बिना 'डेटोल' के डॉक्टरों ने उनकी माँ का उपचार शुरू किया। उस वक़्त उनकी माँ के शरीर से काफ़ी खून बह रहा था।

अगले दिन सुबह अनन्तमूर्ति के पिता जी ने अस्पताल के बाहर एकलौती खड़ी टैक्सी बुक करायी और घर पहुँचे। उस लेडी डॉक्टर ने बताया था कि यह सब कुछ क्यों हुआ और अब उनको बचाना क्यों मुश्किल होगा।

उस रात घर वापस आने के बाद पूरी रात आसमान में तारों को देखते हुए अनन्तमूर्ति मन्नत माँगते रहे कि उनकी माँ को कुछ न हो और अगली सुबह जब वो कमरे में आये तो उनको बेहतर हालत में कॉफ़ी पीता हुआ देख फूले नहीं समाये। उसके बाद उन्होंने अपनी माँ से वो सारी बातें कीं जिसके बारे में उनको और उनकी माँ के सिवा किसी को कुछ पता नहीं था।

दादाजी का घर

बारिश का मौसम आने से पहले अनन्तमूर्ति के दादा जी छप्पर की घास बदला करते थे। पर अपने थिएटर के काम की वजह से जब उन्हें बाहर जाना पड़ता, यह ज़िम्मेदारी अनन्तमूर्ति की दादी पर आ जाती थी। छप्पर से निकले हुए लकड़ी के पुराने फट्टों को उनके दादा जी थिएटर के लिए इस्तेमाल करते थे ।

उनके दादा जी के थिएटर करने की वज़ह से उनकी आमदनी बहुत कम थी जो घर चलाने के लिए पर्याप्त नहीं होती थी, पर उनकी दादी उनको बताया करतीं कि उनके दादा जी ने सारी जायदाद और ज़मीन कई वैश्याओं के नाम लिख दिया है और अब हमारे पास कुछ नहीं बचा। उनकी दादी के पन्द्रह बच्चे थे, उनमे सें कुछ मर गये और कुछ बचे थे। एक बार ऐसा हुआ कि अनन्तमूर्ति की दादी और उनकी दादी की माँ दोनों एक साथ गर्भवती हो गयी थीं।

अनन्तमूर्ति के घर में यह नियम था कि भगवान के सामने ज्योति हमेशा जलती रहेगी और साथ ही घर की साफ़-सफ़ाई पर भी ज़ोर था । अगर कोई भी खाने की चीज़ गेहूँ से बनायी गयी है, वह अपवित्र नहीं मानी जाती थी और एकादशी के दिन भी वो खायी जा सकती थी । पर चावल से बनने वाली चीज़ अपवित्र मानी जाती थी । उसको तीन दिनों तक पानी में डालकर रखा जाता और दही मिलाकर बच्चों को परोसा जाता कि जो बहुत स्वादिष्ट हुआ करता । उस वक़्त रेफ़्रीजरेटर न होने की वज़ह से खाने की चीज़ों को ख़राब होने से बचाने के लिए दूसरे तरीके अपनाने पड़ते थे ।

अनन्तमूर्ति की दादी दही मथ कर उसका घी निकाला करती और बचे छाछ को अमीरों के घर बेच दिया करती। उनके घर में जो गायें थीं, उन सबके नाम नदियों के नाम पर रखे थे। अनन्तमूर्ति ने नदियों का नाम ऐसे ही सीखा था।

जब अनन्तमूर्ति के दादा जी अपने आखिरी वक़्त में बीमारी से जूझ रहे थे, काफ़ी लोग उनसे मिलने आया करते थे जिसके लिए उन्हें घर से बाहर ही रखा गया था । बाहर लेटे हुए जब वो पास वाले मन्दिर के भजन-कीर्तन सुनते तो सो जाया करते । अनन्तमूर्ति के लिए वो मन्दिर देखना नाटक देखने जैसा होता।

उन्हें मन्दिर जाना बहुत पसन्द था क्योंकि वहाँ उन्हें अलग-अलग तरह की आरती और कीर्तन देखने को मिलते। उस वक़्त अनन्तमूर्ति की माँ की समस्या ये थी कि उनके पिता जी उनके सामने मर रहे थे पर उन्हें अपने बेटे को ये भी समझाना था कि वो मरने वाले हैं। एक दिन अचानक वो नींद से उठे और चिल्लाये, उस दिन रामनवमी का दिन था । अनन्तमूर्ति की माँ अचानक भाग कर आयी और पूछा कि क्या हुआ, उन्होंने कहा, देखो विष्णु एकटक देखे हैं। यह कहकर कुछ देर बाद उनका देहान्त हो गया ।

पुरानी परम्परा के तहत उनके मरने के बाद एक दीपक उनके सर, एक पैर और एक -एक दाहिने और बाएँ तरफ रखे गये । उनके नाना जी के इकलौते लड़के गुण्डसामक जो दक्षिण कन्नडा जिले में पढ़ते थे, वो देहान्त के दो दिनों बाद ही वहाँ पहुँचे ।

अनन्तमूर्ति के गाँव में एक साहूकार थे जो बहुत पैसे वाले और सादे इन्सान थे । वे कपड़े भी बहुत सादे पहनते थे और उनके घर में कोई भी आकर भोजन कर सकता था । उनके बारे में एक बात मशहूर थी कि उन्होंने एक बार बाघ से लड़ाई की थी । पर इस बात पर अनन्तमूर्ति का कोई विश्वास नहीं है ।

उस समय दक्षिण कन्नडा जिला जैसे एक परदेस था और वहाँ से आने-जाने का एकमात्र साधन पैदल ही था । उस

वक़्त टॉर्च या घड़ी रखना फैशनेबल होने की निशानी थी। अगर कोई इन्सान ऐसी घड़ी या टॉर्च लेकर आता था तो यह माना जाता वो बाहर से आ रहा है । गुण्डसामक भी दक्षिण कन्नडा से ऐसे ही आये थे । उसका रुझान नाटक और फ़िल्मों के प्रति भी काफ़ी था । एक दिन गुण्डसामक को करेकोप्पा जाते हुए जंगल में एक बाघ दिखा और उन्होंने डर के मारे धोती में ही पेशाब कर दिया, जिसके कारण वो अपवित्र हो गये । इस कारण उन्हें घर लौटकर स्नान करना पड़ा और दुबारा पवित्र होने के लिए जनेऊ भी बदलना पड़ा ।

मौसी

लोगों का अनन्तमूर्ति की मौसी के बारे में मानना था कि वो मन्दबुद्धि हैं, पर अनन्तमूर्ति को ऐसा नहीं लगता था । वो उनसे 'लारी' शब्द दोहराने के लिए कहते थे पर वे 'लारी' को 'राली' कहती थी । इस सवाल को बार-बार पूछ कर वो मज़े लेते थे । पर इससे उनकी मौसी को भी अच्छा लगता था। एक बार अनन्तमूर्ति को पेट में भयानक दर्द हुआ, तो उनको खुश करने के लिए उनकी मौसी ने बड़े घर की औरतों की तरह साड़ी पहनी और चलकर अनन्तमूर्ति को दिखाने लगी। अनन्तमूर्ति को ये बड़ा मज़ाकिया लगा और वो उन्हें खदेड़ते हुए उनके पीछे भागने लगे। जब भी उनकी मौसी खाना खा रही होती, अनन्तमूर्ति देखते कि किस तरह से उन्होंने प्लेट पूरी सफाई से खाली किया है। उनकी मौसी को यह भी लगता था कि जानवर उनकी भाषा समझते हैं और वो अक्सर उनसे अपना दुःख -सुख बाँटा करतीं। जब भी उनकी मौसी को कोई कहता कि वो बुद्धू है तो वो उस पर हँस दिया करतीं ।

मौसी को उनके पति ने छोड़ दिया था। मौसी के पति की एक सिगरेट की दुकान शिवमुगा में गोपी होटल के सामने थी। अनन्तमूर्ति और उनके मामा एक दिन उनके पति की तलाश में शिवमुगा पहुँचे और उनसे पूछा कि वो श्रीनिवास जी के दामाद हैं? और साथ ही साथ उन्हें अपने गाँव ले आये । घर पर आने के बावजूद उन्होंने किसी भी तरह की भेंट लेने से मना कर दिया । उसकी वज़ह ये थे कि अभी उनकी और अनन्तमूर्ति की मौसी की सुहागरात नहीं हुई थी। इस समय उनकी मौसी और उनके पति का रिश्ता लगभग खत्म होने की कगार पर था । यह सुनकर अनन्तमूर्ति और उनके मामा ने एक कार्यक्रम का आयोजन किया जिसके बाद अनन्तमूर्ति के मौसा और मौसी सुहागरात मनाएँगे। पर मन्दबुद्धि होने के कारण उनकी मौसी रात में ही कमरे से निकल आयी और चिल्लाने लगीं कि ये आदमी मुझे छू रहा है । उस रात के बाद अनन्तमूर्ति के मौसा वहाँ कुछ दिनों के लिए रुके और फिर चले गये पर कभी वापस नहीं आये ।

स्नान

अनन्तमूर्ति के शब्दों में बचपन का स्नान उनके लिए किसी उत्सव जैसा होता था। पहले बालों में तेल लगाकर मालिश करते हुए वो गाना गाते थे, उसके बाद वही तेल शरीर के दूसरे हिस्से पर नग्नावस्था में लगाया करते। उम्र के थोड़ा बढ़ने पर वो लंगोट पहनने लगे थे । पर उनकी माँ कहा करती कि मेरे सामने क्या शर्माना, लंगोट उतार दो। तेल लगाने के बाद वो कुछ देर मुँह सूरज की तरफ तो कुछ देर पीठ सूरज की तरफ करके खड़े रहते थे। उसके बाद गुनगुने पानी से उनका स्नान होता, जबकि उनकी माँ का मानना था कि स्नान के पानी में गर्म पानी कम मात्रा में मिला होना चाहिए। अनन्तमूर्ति को भी यही लगता था कि उनकी माँ के द्वारा मिलाया हुआ गर्म और सामान्य पानी का मिश्रण ही सबसे बेहतर मिश्रण है । उस वक़्त वो नहाने के लिए घर में बने साबुन का इस्तेमाल करते थे ।

उस वक़्त लोग जंगल से मत्रिसोपू नाम की पत्ती लाया करते । जिसे दो-तीन दिन पानी में भिगो कर रखने से झाग

बनता था, जिसका उपयोग लोग नहाने के लिए करते थे। गर्मियों के दिनों में जब गर्मी बढ़ जाती, इस झाग का इस्तेमाल सर पर लगाने के लिए भी किया जाता, जो अनन्तमूर्ति को बेहद पसन्द था। उनको जब भी उनकी माँ वो झाग गरदन पर लगाती, अनन्तमूर्ति को गुदगुदी होती। उस पर उनकी माँ कहा करती कि अगर इतनी गुदगुदी हो रही है तो खुद ही लगा लो। नहाने के बाद उनकी माँ लकड़ी की कालिख से उनको टीका लगाया करती और फिर सोने भेज दिया करतीं। सोने के वक़्त जो चादर उनकी माँ उन्हें उढ़ाती थी, उससे इतना पसीना होता कि वो दूसरे स्नान जैसा हो जाता।

जब भी गौडर लोग शहर को जाते, बालों में तेल लगाया करते। जब भी वो अपनी टोपी निकालते तेल की अच्छी खुशबू आती। तेल बालों से निकलकर चेहरे पर आ जाता तो रुमाल से पोंछ लिया करते।

नारियल तेल गर्मियों के दिनों में शरीर का तापमान सामान्य रखने के लिए बहुत ज़रूरी माना जाता था। शरीर के तापमान को सामान्य रखने के लिए लोग इसमें अपना पैर रखा करते। जब कभी किसी वज़ह से उन्हें यह तेल नहीं मिलता, वो दूसरा तेल प्रयोग में लाते। उस वक़्त स्वास्थ्य की दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण था कि कौन किस कुएँ का पानी पी रहा है। यहाँ तक कि पानी के स्वाद से लोग बता देते थे कि ये कहाँ यानी कि किस कुएँ का पानी है।

कुआँ – रसोई – घर का पिछला हिस्सा

बचपन में अनन्तमूर्ति जब कुएँ के पास खेलते थे, वहाँ पानी भरने आयीं औरतों की सुख-दुःख की बात सुनते जो उन्हें बड़ी दिलचस्प लगती थी।

गाँव की वो लड़कियाँ जो अभी ठीक से जवान नहीं हुई थीं, कुएँ के पास नहीं आतीं। पानी भरने वाली औरतें एक मटका या गगरी अपने सर पर और दूसरा कमर पर रख कर ले जातीं, कभी-कभार कमर पर मटके या गगरी की जगह उनके बच्चे होते थे।

किसी विशेष पर्व पर अनन्तमूर्ति की माँ को चावल का आटा पीसने में काफ़ी दिक्कत होती थी। इसकी वज़ह से कोई न कोई उनका हाथ बँटाता था।

उस समय रसोई में लड़कों या मर्द का जाना ठीक नहीं माना जाता था, पर अपनी माँ की माहवारी के वक़्त अनन्तमूर्ति रसोई सँभालते और उनकी माँ उन्हें सारे रसोई के कामों में निर्देश दिया करतीं। यहाँ तक कि मेहमानों के सामने किस तरह से पेश आना है, अनन्तमूर्ति को उनकी माँ ने सिखाया था। जैसे अगर कोई प्यासा हो तो उसे रस देना वगैरह-वगैरह।

माहवारी के साथ कुएँ पर हो रही बातों से अनन्तमूर्ति को ये भी पता चला कि खाने के लिए आग जलाना भी एक मुश्किल काम है। इसके लिए उनकी माँ उपले का सहारा लेती थीं। युद्ध के समय में जब इन लोगों के पास खाने का चावल तक नहीं था, अनन्तमूर्ति के दादा जी ने अपने माँ-बाप के लिए श्राद्ध किया था, श्राद्ध के मन्त्र पढ़ने 'कटोरी' नामक एक व्यक्ति आता था, जिसका अपना परिवार नहीं था क्योंकि उसकी पत्नी की मौत गर्भावस्था के दौरान हो गयी थी। उसको पैसे जोड़ता देख लोग पूछते थे कि वो किसके लिये पैसे जोड़ रहा है तो वो कहता 'अपने श्राद्ध' के लिए।

त्यौहार

त्यौहार के वक़्त सारे गाँव वाले रथ में मूर्ति को रखकर खींचा करते और उसकी झाँकियाँ निकला करतीं । रथ बहुत ही खूबसूरत और सजा-धजा होता और उसके अन्दर नौ ग्रहों की स्थापना होती । इस त्यौहार के वक़्त सड़क के दोनों किनारों पर मेला लगता था जिसमें मिठाइयों की खासी दुकानें होती थीं। उस वक़्त अनन्तमूर्ति कॉफी और मिठाई खाना बहुत पसन्द किया करते । उनके लिए पूरे आयोजन का मतलब ही यही था, मीठा और कॉफी । इसी अवसर पर लोग जंगल में किये जाने वाले सुअर के शिकार पर भी बात किया करते। त्यौहार के दिन मन्दिरों में होने वाली पूजा बहुत ही भव्य और नियमानुसार होती । पूजा के वक़्त सारे मर्द धोती पहनकर हाथ जोड़कर खड़े होते और अनन्तमूर्ति को यह भी किसी नाटक जैसा लगता था । सारी पूजा-अर्चना के बाद इसका समापन संगीत समारोह के साथ होता था ।

मेले में बाईस्कोप वाला भी आता था जो अपने डिब्बे से अलग-अलग तस्वीरें दिखाया करता जैसे मैसूर का महल , मुम्बई की वैश्या और अन्त में तिरुपति की मूर्ति।

मेले में जाने के लिए अनन्तमूर्ति चाहते कि उनके कपड़े इस्त्री किये हुए हों, पर इस्त्री के न होने की वज़ह से वो अपने कपड़ों को तकिये के अन्दर दबाकर रख दिया करते जिससे उनकी सिलवटें कम हो जाती थीं। जो लोग मेले में नये कपड़े पहनकर आते थे उनके कपड़ों से सल्फास के गोलियों की महक आती थी । लड़कियाँ साड़ी पहनकर मेला देखने आया करतीं ।

मिडिल स्कूल

अनन्तमूर्ति की मिडिल स्कूल की शिक्षा 'तीर्थहल्लडी' में हुई थी, जब शुरू में वो स्कूल जाते लगभग एक साल तक पैदल ही बहुत दूर तक जाते, नदी तैरकर पार करनी पड़ती और उसके बाद स्कूल के लिए बस पकड़नी पड़ती थी । उस वक़्त अनन्तमूर्ति का स्कूल काफ़ी प्रसिद्ध था ।'कोयम्पू' की मिडिल स्कूल की शिक्षा भी इसी स्कूल में हुई थी । स्कूल जाते वक़्त अनन्तमूर्ति छाता लेकर जाया करते पर उनकी आदत थी छाते का अक्सर कहीं रखकर भूल जाना । उनके स्कूल का ही चपरासी उन्हें ढूँढ़ कर दिया करता । उसको छाता ढूँढ़कर देने के लिए अनन्तमूर्ति उसे कुछ पैसे दिया करते थे, पर काफ़ी बच्चों का यह मानना था कि वो चपरासी पैसों के लिए ही जानबूझ कर खुद ही छाता छिपाता है और खुद ही ढूँढ़ कर अनन्तमूर्ति को वापस भी दे देता है।

चिदम्बरम शास्त्री अनन्तमूर्ति के पिताजी के पास पंचांग लिखने की विद्या सीखने आया करते । वे १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन का हिस्सा थे। अनन्तमूर्ति उन्हें चियेमा कहा करते थे । चिदम्बरम शास्त्री का गणित कुछ खास नहीं था जिसकी वज़ह से अनन्तमूर्ति के पिताजी उन्हें डाँटा करते थे । बाद में चिदम्बरम शास्त्री भी तीर्थहल्लडी में पढ़ने गये ।

चिदम्बरम शास्त्री १९४२ भारत छोड़ो आन्दोलन में 'शान्तपेरी गोपाल गौड़ा' के साथ थे और दोनों छात्र समूह के नेता थे । उस वक़्त उनकी उम्र दस साल की थी । वह 'दुवीसापुर' से तीर्थहल्दी पढ़ने के लिए आते तो थे पर स्कूल न जाकर भारत छोड़ो आन्दोलन की प्रभात फेरी में शामिल हुआ करते। देशभक्ति के गाने गाते और स्कूल में कोई दाखिल न हो इसके लिए वे स्कूल के बाहर ही सो जाया करते ।

उसी स्कूल में मुकुन्द सैनी नाम के शिक्षक थे जो कि बहुत स्ट्रिक्ट थे। नाक पर चश्मा टिका कर विद्यार्थियों को घूरा करते और छात्रों से बायाँ हाथ निकलवाकर उस पर छड़ी से मारा करते। छड़ी अरिकोप्पा वहाँ का चपरासी लाया करता। अनन्तमूर्ति और बाकी के बच्चे ये चर्चा किया करते कि अगर अरिकोप्पा को पैसे दिये जाएँ तो वो इतनी मज़बूत छड़ी नहीं लाएगा । जब भी छात्र भारत छोड़ो के दौरान स्कूल के बाहर सोया करते और अगर उस वक़्त मुकुन्द सैनी आ जाते तो उन्हें डाँटते और रास्ता खाली करने को कहा करते । पर स्कूल के विद्यार्थी उन्हें रास्ता नहीं देते । एक दिन मुकुन्द सैनी अपनी बेटी के साथ जा रहे थे, इसी दौरान अनन्तमूर्ति ने उनकी टाँग खींच दी और वो गिर पड़े । जिससे मुकुन्द सैनी काफ़ी नाराज़ हुए और इस बात की खबर पिता जी तक भी पहुँच गयी । इसी दौरान एक रात अनन्तमूर्ति के पिता जी ने उन्हें बुलाया और साथ चलने को कहा, पर अनन्तमूर्ति को बहुत नींद आ रही थी तो उन्होंने पूछा - कहाँ ? फिर अनन्तमूर्ति के पिता जी ने उन्हें डाँट कर सोने के लिए बोल दिया । थोड़ी देर बाद उन्हें उठाकर गाड़ी में डालकर हदिगल्लू ले गये । जहाँ उनका एडमिशन कराया और रहने के लिए भी एक जगह ढूँढ़ी । वहाँ रहते हुए ही अनन्तमूर्ति को सिगरेट पीने की लत लगी। तब उनकी उम्र महज दस साल थी ।

चिदम्बरम शास्त्री उस समय स्कूल में भारत छोडो आन्दोलन के सबसे बड़े नेता थे । अबचूरी के पोस्ट ऑफिस से चिदम्बरम शास्त्री, गोपाल गौड़ा और उनके दोस्त ने लैटरबॉक्स चुराकर रामेश्वर मन्दिर के पीछे गाड़ दिया । अगले तीन दिनों तक इस बात की खबर बहुत बड़ी बन गयी थी कि वो लैटरबॉक्स आखिरकार गया कहाँ ? क्योंकि ये घटना तब बहुत बड़ी बात थी ।

छात्र नेताओं की वजह से चिदम्बरम शास्त्री के पास पैसे होते थे। वे लोग अक्सर कृष्णा पय्या होटल में कॉफी पीने जाया करते थे। एक दिन एक लड़के ने आकर पूछना चालू किया कि मैंने तो भारत छोड़ो आन्दोलन के लिए ये- ये चीज़े की हैं। छात्र नेता होकर तुमने क्या किया ? उसने जब बार-बार उन लोगों को उकसाया लैटरबॉक्स गाड़ने वाली बात चिदम्बरम शास्त्री ने बतायी ।

चिदम्बरम शास्त्री की बातों से उकस कर एक सी.आई.डी. ऑफिसर ने सारे छात्र नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और उनके सहारे वो वहाँ पहुँचा जहाँ लैटरबॉक्स गाड़ा गया था । इस पर गोपाल गौंडा, जो उसी संघ का कार्यकर्ता था, ने कहा कि चिदम्बरम शास्त्री के बड़बोलेपन की वज़ह से सब लोग फँसे हैं।

चिदम्बरम शास्त्री के जेल से रिहा होने के बाद अनन्तमूर्ति उनसे अक्सर मिला करते और चिदम्बरम शास्त्री जेल के अन्दर की कहानियाँ अनन्तमूर्ति को बताया करते। हदिगल्लू के शुरुआत के दिनों में अनन्तमूर्ति का एक लड़की के साथ रिश्ता था। वो उसके साथ वहाँ खेतों में घूमा करते । जब वो तीर्थहल्लडी अपनी पढ़ाई के लिए गये तो उन्हें ज़्यादा कुछ आता नहीं था पर वे एक मास्टर से मिले, जिनका नाम अनन्तमूर्ति को याद नहीं पर वे बहुत अच्छे मास्टर थे, वे अपने पूरे शरीर के अंगों का इस्तेमाल पाठ समझने के लिए करते थे, उनके इस तरीके से छात्रों के लिए पाठ समझना काफ़ी आसान हो जाता था।

अनन्तमूर्ति की गणित में अच्छी पकड़ होने की वज़ह से एक मास्टर जिनका नाम सर्वोत्तम रायर था, उन्हें 'दिरा' कहते थे। जैसे-जैसे अनन्तमूर्ति की रुचि गणित में बढ़ती गयी। वैसे-वैसे उन्हें पढ़ाई में भी रुचि आने लगी। पर चरित्र विषय उनके लिए अभी भी टेढ़ी खीर था। उस वक्त माँ से मिलने वाली चकली अनन्तमूर्ति बचा कर अपनी पॉकेट में रख लिया करते और बाद में शाम्भवी नाम की लड़की को दिया करते थे । जब उनकी माँ को ये पता चला, उन्होंने शाम्भवी को बुलाकर कहा कि वो उसे अलग से चकली दिया करेगी बस वो अनन्तमूर्ति से चकली न लिया

करे, क्योंकि वो चकली अपने पैंट के पॉकेट में रखते हैं। उस वक़्त अनन्तमूर्ति की उम्र ग्यारह साल की थी । उस वक़्त वे भैंसों की सवारी किया करते थे । एक बार वो शाम्भवी के सामने उस पर से गिरे और झेप गये, पर इस चकली वाली कहानी की वज़ह से शाम्भवी ने उनकी तरफ देखा भी नहीं।

हाई स्कूल

अनन्तमूर्ति की हाई स्कूल की शिक्षा 'तीर्थहल्लडी' में ही हुई थी। सुबह नहाने के बाद रेत पर खड़े होकर गायत्री मन्त्र का जाप १०८ बार किया करते । उस वक़्त कटोरी नाम का व्यक्ति उन्हें मन्त्र सिखाया करता । इस गायत्री मन्त्र के जाप के बाद वह स्कूल जाया करते, घर से स्कूल की दूरी की वज़ह से अनन्तमूर्ति का काफ़ी वक़्त स्कूल जाने में ही चला जाया करता। बाद में उन्होंने इस वक़्त में किताबें पढ़ना शुरू कर दिया। उन किताबों में ज़्यादातर किताबें बंकिमचन्द्र चटर्जी और गड़गनाथ की होती थीं। उनके गाँव में भी एक ग्रन्थालय था जिसमें अच्छी किताबें मिल जाती थीं। वहीं से अनन्त मुफ़्त किताब लेकर पढ़ा करते। उस समय एक और पत्रिका आया करती जिसका नाम उन्हें याद नहीं, वो इस पत्रिका को बिना एक शब्द छोड़े पढ़ा करते। अनन्तमूर्ति को अपने स्कूल में हुई ज्यादातर घटनाएँ याद हैं। हाई स्कूल के दिनों में सीताराम नाम का लड़का था जो पढ़ने में बहुत अच्छा नहीं था। उसे एक बार परीक्षा से एक दिन पहले ही प्रश्न-पत्र पता चल गया जिसके उत्तर वो अनन्तमूर्ति से लिखवाकर ले गया।

उस स्कूल के हेडमास्टर योगनरसिंह थे और संस्कृत के विद्वान भी। बड़े ही कायदों और सोलों को मानने वाले व्यक्ति थे । वह अच्छा गाते भी थे। उन्होंने सीताराम को परीक्षा में नकल करते हुए पकड़ लिया और पूछा कि उसे किसने इन सवालों के जवाब दिये। इस पर सीताराम ने अनन्तमूर्ति का नाम ले लिया। अगले दिन योगनरसिंह ने अनन्तमूर्ति को बोला कि उन्हें उनसे ये उम्मीद नहीं थी, इस बात पर अनन्तमूर्ति की आँखों से आँसू टपक पड़े और वे बहुत ही शर्मिन्दा हुए। उसके बाद अनन्तमूर्ति परीक्षा में बहुत ही अच्छे नम्बरों से पास हुए और योगनरसिंह ने उनके चरित्र प्रमाण-पत्र पर एक्सीलेंट लिख कर दिया । जबकि उस वक्त सभी चरित्र प्रमाण-पत्र पर सटिस्फेक्ट्री लिखा जाता था। अनन्तमूर्ति के पास वो प्रमाण-पत्र अभी भी है । योगनरसिंह अनन्तमूर्ति के बहुत चहेते बन गये थे।

अनन्तमूर्ति गाँव में जाकर लोगों को पढ़ना और लिखना सिखाते थे। योगनरसिंह शेक्सपीयर की कहानियों को कनन्ड़ में अनुवाद करके सुनाया करते और उनको इस बात से भी फ़र्क नहीं पड़ता था कि कोई ये समझ रहा है या नहीं। महात्मा गाँधी के निधन के वक़्त अनन्तमूर्ति स्कूल में थे, उस दिन यह खबर योगनरसिंह ने ही बच्चों को रोते-रोते बतायी थी। अनन्तमूर्ति के लिए यह बहुत बड़ी बात थी। अनन्तमूर्ति घर लौट आये और ब्राह्मणों को यह खबर बताई। गाँव के कुछ ब्राह्मणों का यह मानना था कि गाँधी जी अच्छे आदमी नहीं थे क्योंकि वो नीच जाति के लोगों को मन्दिर में प्रवेश करने की अनुमति की अगुवाई करते थे । पर अनन्तमूर्ति के पिताजी गाँधी जी के अनुयायी थे और वे गाँधीजी की तरफदारी भी किया करते । उसी वक़्त से अनन्तमूर्ति इन चीज़ों के बारे में सोचने लगे ।

उनके पिताजी के दोस्त जो अक्सर घर पर आते थे कहा करते कि तुम्हारा बेटा इक्कीसवीं सदी के लड़कों जैसे बाते करता है। हाई स्कूल के वक़्त छात्र दो गुटों में बँटे हुए थे। अक्सर इनमें झड़प होती और ये आपस में बात नहीं करते। इसी दौरान किताबें पढ़ने की वजह से अनन्तमूर्ति में आदर्शवाद पनपने लगा ।

उन्होंने 'चोम्नादुड़ी' नाम का एक उपन्यास पढ़ा। अनन्तमूर्ति के घर एक लकड़हारा आया करता था, वो किताब पढ़ने के बाद ही अनन्तमूर्ति को अहसास हुआ कि उस लकड़हारे में भी जीवन है । इस बात का एहसास होते ही उनके मन

से नीची जाति के प्रति घृणाभाव खत्म हो गया। एक और ब्राह्मण लड़का जो मिलिट्री से आया था और बच्चों को फुटबॉल सिखाता था, उसकी प्रेमिका नीच जाति की एक लड़की ही थी, जो कि पूरे गाँव में सबसे सुन्दर थी। अनन्तमूर्ति को भी वो बहुत अच्छी लगती थी। गाँव में रोग फैलने के वक़्त जब इलाज़ सिर्फ़ ब्राह्मणों को दिया जा रहा था, इस वज़ह से नीच जाति के लोग मरने लगे, उसी वक़्त वह लड़की भी गाँव छोड़कर भाग गयी। उनके गाँव में रामचन्द्र भट नाम के एक आदमी थे, जो महात्मा गाँधी के हरिजन उत्थान के भाषण से प्रभावित होकर हरिजनों के लिए फण्ड इकट्ठा किया करते । उसमें जेवर भी एक प्रमुख था। औरतें उनके भाषण के प्रभाव में आकर अपने जेवर दान दे दिया करतीं पर उनके पति इस वज़ह से अपनी पत्नियों के जेवर छुपा के रखा करते। अनन्तमूर्ति रामचन्द्र जैसे ऐसे कई लोगों को जानते थे जिसमें से 'श्याम' नाम का एक व्यक्ति भी था । स्वतन्त्रता आन्दोलन के वक्त जेल में उन्हें माँस खाने के लिए बाध्य किया गया था, जिसकी वजह से गाँव के लोग उन्हें गाँव से दूर ही रखना चाहते थे, क्योंकि लोगों का मानना था कि वो अपना ब्राह्मणत्व खो चुके हैं। आगे चलकर अनन्तमूर्ति के पिता जी एक मठ के एजेण्ट बन गये । उस वक़्त मठ का प्राथमिक काम त्यौहारों में पूजा का आयोजन था ।

मठ के अन्दर एक कमरा हुआ करता था जिसमें दही और घी बनाया जाता था । विधवा औरत दही से घी निकालने का काम करती थी। अनन्तमूर्ति के पिता जी के मठ के एजेण्ट होने की वज़ह से उनको मठ के इस स्थान में प्रवेश करने का मौका मिला। वहाँ काम करने वाली विधवा औरत इनको दही-चावल और काफ़ी कुछ खाने को देती। मठ के स्वामी भी चुपके-चुपके लोगों से बच बचाकर कॉफी पिया करते और जो भी मठ की गुप्त बातें होतीं, अनन्तमूर्ति चुप चाप सुना करते।

गाँधी जी की मृत्यु के पश्चात् उनके अन्दर क्रोध और काम की भावना उठनी शुरू हुईं। उसी वक़्त उन्होंने (ब्रह्मचर्य जीवन - वीर्यनाशवे मृत्यु) किताब पढ़ी जो शिवानन्द सरस्वती ने लिखी थी। उसको पढ़ने के बाद अपनी कामुकता को लेकर अनन्तमूर्ति के अन्दर पापभाव जागना शुरू हुआ। इससे बाहर वो शिवराम का आत्मा चरित्र पढ़ने के बाद ही आ सके ।

मठ में अनन्तमूर्ति कई विषयों पर एक लड़के से बात किया करते जिसे वो अपना छोटा भाई मानते थे। हाई स्कूल ख़त्म होने के बाद अनन्तमूर्ति मैसूर चले आये जहाँ फिर से उनकी मुलाकात अपने इस दोस्त से हुई और फिर से दोनों द्वैत-अद्वैत के विषय पर चर्चा करने लग गये। त्रितहली के घर से शुरू करके करिकोप्पा में अकेले रहकर, बेगुहल्ली में कुछ साल बिताकर अनन्तमूर्ति के मिडिल और हाई स्कूल के साल बीते।

किसने चुराया

त्यौहार के दिनों में अनन्तमूर्ति के पिता जी उन्हें कुछ पैसे दिया करते थे। एक बार की बात है, त्यौहार खत्म होने के साथ ही अनन्तमूर्ति के पास पैसे खत्म हो गये। उसी रात वो अपने एक रिश्तेदार रामचार्य के पास गये। लौटते वक़्त रामचार्य ने उन्हें खजूर का बक्सा दिया । अनन्तमूर्ति को खजूर बहुत पसन्द था, इस वज़ह से उन्होंने पूरा खजूर खुद ही खत्म कर दिया। अब उनके पास घर लेकर जाने के लिए कुछ नहीं बचा था। तब डाँट से बचने के लिए उन्हें एक उपाय सूझा। दरअसल रामचार्य के घर एक व्यक्ति आया करते थे। वे दोपहर के खाने के वक़्त सबको कहानियाँ सुनाया करते। जब भी वो कोई कहानी सुनाते, उनकी कहानियों में नयापन होता।

अब घर पहुचने पर अनन्तमूर्ति ने ये कहानी बनायी कि जो व्यक्ति कहानी सुनाने आते थे, उनके लड़के ने सारा

खजूर खा लिया। पर तब भी अनन्तमूर्ति को इस बात के लिए डाँट पड़ी कि आखिर उन्होंने उसे ये खजूर दिये ही क्यों ? अनन्तमूर्ति कई सालों तक कई बार इस व्यक्ति को बताना चाहते थे कि उन्होंने अपने घर में उनको लेकर क्या झूठ बोला था, पर वो कभी ऐसा कर नहीं पाये। उसी कहानी सुनाने वाले व्यक्ति को एक बार पैसों की सख्त ज़रूरत थी, ताकि वो अपने गाँव जा सके। इसके लिए वे अनन्तमूर्ति के घर आये हुए थे। अनन्तमूर्ति ने सोचा कि अगर वो इसे पैसे दे दें तो ये कहीं और खर्च न कर दे, इस वज़ह से उन्होंने उनके लिए बस की टिकट खरीद कर उन्हें दे दी और इस प्रकार अपने पाप का प्राश्चित किया ।

अनन्तमूर्ति के ऊपर एक और व्यक्ति का बहुत प्रभाव था जिसे लोग अडिगर के नाम से जानते थे। वो व्यक्ति अक्सर देश-विदेश भ्रमण करता रहता था। अनन्तमूर्ति उससे मिला करते और उसके साथ भजन भी गाया करते। अनन्तमूर्ति के पिताजी नहीं चाहते थे कि वे अडिगर से ज़्यादा घुले-मिले। एक बार अडिगर से ली हुई किताब के अन्दर अनन्तमूर्ति को दस रुपये का एक नोट मिला, जिसे अनन्तमूर्ति ने चुपचाप अपने पास रखकर किताब लौटा दी। उन्हें इस बात का डर था कि कहीं अडिगर उनसे वो दस रुपये न माँगे पर ऐसा कभी हुआ नहीं ।

कुछ सालों के बाद अनन्तमूर्ति अपने बीवी और बच्चे के साथ अडिगर के घर गये। उसी वक़्त अडिगर ने दोपहर का भोजन खत्म किया था। उसने अनन्तमूर्ति से पूछा, कब आये आप। उसके बाद दोनों बैठकर हरिजनों के मन्दिर में प्रवेश के बारे में बात करने लगे । बातों के दौरान अनन्तमूर्ति ने उन्हें बताया कि सालों-पहले उन्होंने उनके दस रुपये चुराये थे, जो वो लौटाने आये है, जबकि उस वक़्त उनके लिए दस रुपये बहुत ज़्यादा थे। बचपन के दिनों में जब अनन्तमूर्ति दुर्वासादुर में रहते थे, उस वक़्त जंगल जाकर औषधि चुनकर लाया करते और उसे सुखाकर बेचा करते। इसके बदले उन्हें अधिकतम १ या २ रुपये मिल जाया करते ।

गौरी पूजा के दिनों में अनन्तमूर्ति उनके छोटे भाई वंकट और मामा रामसानक जंगल से पूजा का सामान इकट्ठा किया करते। छोटे-छोटे फल जो उनकी पहुँच से ऊपर होते उन्हें वो डण्डे या पत्थर की मदद से मार कर गिरा लिया, करते। उसके बाद उसे चूसकर मज़ा लिया करते ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के वक़्त सिर्फ़ स्कूल इंस्पेक्टर, कम्पोण्डर और सरकारी कर्मचारी ही साइकिल चलाया करते। पर साइकिल चलाने के लिए भी वो मुहुर्त देखा करते । वो हमेशा अपने साथ हवा भरने वाला पम्प भी रखते थे और अपने पहुँचने की सूचना घण्टी बजाकर दिया करते । साइकिल रोकने के लिए वह अपने पैरों का सहारा लेते थे । वो माथे पर लाल टीका लगाया करते जो इस बात का भी सूचक होता था कि उन्होंने अपना दोपहर का भोजन कर लिया है और उसके बाद ही वो आये हैं। अनन्तमूर्ति की माँ उन्हें आता देखकर कहा करती कि आप लोग मुँह-हाथ धो लें मैं कुछ खाने के लिए बना देती हूँ । उनके लिए अक्सर छाँछ और शरबत का बन्दोबस्त रहता था । इसकी खास बात यह भी थी कि ये लोग कभी भी आ धमकते थे और अनन्तमूर्ति की माँ को इनके लिये कुछ न कुछ बनाना पड़ता, जैसे खीर वगैरह । .... जब अनन्तमूर्ति के घर में खीर बनाने का सामान नहीं होता था, तो पड़ोसी के घर से माँगना पड़ता था, जिसे वे बाद में लौटा दिया करते ।

अनन्तमूर्ति को द्वितीय विश्वयुद्ध के वक़्त लगता था कि इसमें हिटलर की जीत होगी, पर उनके पिता जी का ऐसा मानना था कि अँग्रेज़ ही हिन्दुस्तानियों के लिए अच्छे हैं और यह चर्चा वो अक्सर यहूदी लोगों से किया करते । यहूदी की पत्नी अनन्तमूर्ति को पसन्द किया करती क्योंकि वो चबाने वाला तम्बाकू उसे बिना किसी को बताये देते थे। त्रिथली में रंगप्पा नाम का व्यक्ति भी था जो छाते मरम्मत किया करता और यही व्यक्ति अनन्तमूर्ति को तम्बाकू देता

था ।

विधवा ब्राह्मणी

बचपन की स्मृति में अविस्मरणीय स्मृति विधवाओं की है । उस वक़्त अगर किसी को कहीं जाते हुए कोई विधवा दिख जाया करती उसे अशुभ माना जाता है, वह व्यक्ति थोड़ी देर बाद रुककर ही आगे बढ़ता । पर उसी गाँव की एक विधवा 'लक्ष्मी देवम्मा' ने अनन्तमूर्ति को इसके मिथक के बारे में बताया ।

लक्ष्मी देवम्मा से जुड़ी एक और कहानी में जब वो एक बार नदी में नहाने गयी, एक लड़के ने उनके साथ बदतमीज़ी करना चाही । उसकी मनसा को भाँपते हुए लक्ष्मी देवम्मा ने उसके अण्डकोषों को पकड़ कर ज़ोर से दबाया और इसके बाद वो लड़का अपनी इज्ज़त बचाने सर पर पैर रखकर भागा ।

जब लक्ष्मी देवम्माा विधवा हुई, उनके पास सम्पत्ति का कोई हिस्सा नहीं आया था, सारी सम्पत्ति उनके रिश्तेदार हड़प गये थे। वो लक्ष्मी देवम्मा को एक महीने के दो रुपये दिया करते। इन दो रुपये में वो चावल खरीद कर उसका माड़ बनाकर खाती और रहने के लिए उसके पिता जी ने अपने घर के पास ही थोड़ी-सी जगह दे दी थी । अनन्तमूर्ति के लक्ष्मी देवम्मा को सामान्य तरीके से व्यवहार करने की वज़ह से वो अनन्तमूर्ति की बहुत इज्ज़त किया करती। पूजापाठ करने के बावजूद वो हर बार भगवान को अपने भाग्य के लिया कोसा करती।

महीनें में एक बार उनका मुण्डन हुआ करता, इसके लिए एक नाई उनके घर आता और जब भी थोड़े बाल उनके सर पर ग़लती से छूट जाते, उस पर वो चिल्लाया करती। उन दिनों जब अनन्तमूर्ति विधवाओं को देखते वो मुण्डन किये होतीं और साड़ी के साथ ब्लाउज़ नहीं पहनती ।

एक और विधवा जिनका नाम नागवेडी था, उनकी शादी एक बूढ़े व्यक्ति से हुई थी जिसका पहले से ही एक बेटा था । जब भी अनन्तमूर्ति इनके घर जाते, वे अनन्तमूर्ति को कॉफी पिलाती और ये भी बतलाती कि कैसे उनके स्वर्गीय पति के दो भाइयों की उन पर बुरी नज़र है। कुछ दिनों बाद वो अपनी बेटी को साथ लेकर दक्षिण कन्नाडा चली गयीं और उन्होंने किसी दूसरे जाति की व्यक्ति से शादी की, जबकि वो यह नहीं चाहती थीं । पर यह भी सच था कि उन्हें हर तरीके का सुख अन्य जाति से ही मिला था ।

गाँव के एक व्यक्ति श्रीमन्त ने एक विधवा से शादी की थी। उनकी शादी के कुछ वक़्त बाद उनके रिश्तेदार का परिवार कहीं जाते हुए दुर्घटना का शिकार हुआ और इस वज़ह से सभी लोग मारे गये। इस घटना पर लोगों का कहना था कि ये सब एक विधवा से शादी करने की वज़ह से हुआ है ।

उस दिनों विधवाओं की स्थिति किसी निर्जीव वस्तु से ज़्यादा नहीं थी। यह बात अनन्तमूर्ति के पिता जी को क़ाफी परेशान करती । अनन्तमूर्ति के पिता जी की एक पादरी से ऐसे मुद्दे पर बात होती थी जो हिन्दू धर्म की कुछ चीज़ों को लेकर सहमत थे, कुछ चीज़ों से असहमति रखते थे।

अनन्तमूर्ति के मामा दक्षिणी कर्नाटक से थे, लम्बे बाल रखते थे और हर बार गाँव में रथोत्सव के समय हनुमान का वेश धरकर नाचते हुए उत्सव में शामिल होते। अनन्तमूर्ति की माँ इनसे बहुत करीब थी। उनका अपना एक होटल था और वो अपने होटल को मॉडर्न बनाकर रखना चाहते थे । अनन्तमूर्ति की माँ ने अपने भाई को होटल में रखने के लिए कई वस्तुएँ दी थीं, जैसे पतीला, जब भी उसमें पानी गरम होता, अनन्तमूर्ति के मामा जी उसमें सिक्का डाल

दिया करते जिससे कि उसकी आवाज़ सुनकर ग्राहक आकर्षित हों।

धीरे-धीरे लोग उनकी दुकान पर आने लगे। शाम होते ही अच्छे खासे लोग उनके होटल पर जमा हो जाते थे। मामा जी के गैस लाइट लाकर लगाने के बाद होटल की रौनक बढ़-सी गयी ।

गैस लाइट उस वक्त एक नयी चीज़ थी । ये गाँव के साहूकार की नाराज़गी का कारण बना। एक और बात यह भी थी कि अनन्तमूर्ति के मामा जी की दुकान पर सिर्फ़ एक ही बेंच था जिस पर सभी जाति के लोग एक साथ बैठते थे। इस तरह की व्यवस्था भी लोगों में रोष का कारण बनी। लोगों को ये भी लगता कि कैसे कोई दलित किसी ब्राह्मण को कॉफी लाने बोल सकता है ।

तीर्थहल्लडी में आर्य समाज के एक बड़े चिन्तक थे जिसके बारे में अनन्तमूर्ति को उनके पिता जी से पता चला था । उसी गाँव में उनके एक रिश्तेदार भी थे जो डॉक्टर थे और बहुत ही सुन्दर पुरुष भी थे, अनन्तमूर्ति जब भी उनके घर जाया करते, उनकी फोटो पर नज़र गड़ा कर सोचा करते कि किसी भी सुन्दर पुरुष की परिभाषा यही होना चाहिए।

डॉ. चन्द्रमा की कोई औलाद नहीं थी। डॉक्टर होने के बावजूद वो काला जादू और टोना-टोटका में विश्वास करते थे। वो अनन्तमूर्ति के पिताजी से कुछ ऐसी चीज़ माँगा करते जिससे उन्हें औलाद हो जाये। एक बार कुछ मन्त्र पढ़कर अनन्तमूर्ति के पिता जी ने भी कुछ हल्दी कुमकुम उन्हें दे दिया और चन्द्रमा की औलाद हो गयी ।

कुछ दिनों बाद डॉ. चन्द्रमा को शराब की लत पड़ गयी और सिर्फ़ वही नहीं उनकी बीवी और बच्चों को भी यही लत लग गयी । इस शराब पीने की आदत की वजह से उन्हें अपना क्लिनिक ही बन्द करना पड़ा। कुछ दिनों बाद उन्होंने पीना बन्द कर दिया, पर थोड़े दिन में ही यह लत दुबारा चालू हो गयी। अनन्तमूर्ति के पिता जी डॉ. चन्द्रमा के करीबी थे, पर वो लाचार भी उनकी मदद न कर सके और आखिरकार डॉ. चन्द्रमा का पीने की वज़ह से देहान्त हो गया।

अनन्तमूर्ति को शेक्सपीयर और बर्नाड के साहित्य की पहचान उन्हीं के गाँव के एक व्यक्ति ने करायी। वो पहले सिन्हा थे और धर्म परिवर्तन करने के बाद उन्होंने अपना नाम बदलकर श्रीनिवास जोइस कर लिया था, क्योंकि वो बी.बी. सी. रेडियो सुन-सुन कर काफ़ी अच्छी अंग्रेज़ी सीख गये थे। उनको इन नाटकों की अच्छी समझ हो गयी थी । अनन्तमूर्ति के इंग्लैण्ड से लौटने के बाद उन्हें सिन्हा जो कि श्रीनिवास जोइश थे, का एक खत मिला जिसमें उन्होंने ३०० रुपये की माँग की थी। अनन्तमूर्ति तुरन्त पोस्ट ऑफिस गये और ३०० रुपये का टी.एम.ओ. किया । सिन्हा को जिस दिन पैसे मिले उसके अगले दिन ही उनका देहान्त हो गया ।

राउ बीमारी का इलाज

अनन्तमूर्ति से दो साल छोटे भाई वेंकटेश को कभी-कभी चक्कर आने की शिकायत थी । गाँव के पोस्टमास्टर जो तान्त्रिक भी थे, अनन्तमूर्ति के पिता जी झाड़-फूक के लिए लेकर आये । दिनरात महामृत्युंजय मन्त्र का जाप चलता रहा और वो पोस्टमास्टर काम पर नहीं जा पाये । उस दिन चिट्ठियों से भरा ट्रक आया पर उसको लेने के लिए डाकघर में पोस्टमास्टर साहब थे ही नहीं । इसी वज़ह से उनकी नौकरी भी जाती रही ।

वेंकटेश भी अजीब ही था, वो मिर्च, जीरा, मसाले ऐसे ही खा जाता। अनन्तमूर्ति की माँ को यही सब देखकर एहसास हुआ कि वेंकटेश को राउ बीमारी हो गयी है। जिसके दौरान बच्चे बस खाते ही रहते हैं। इलाज के तौर पर एक

आयोजन किया गया और वेंकटेश को खाने के लिए बिठाया गया । पेट भरने के बावजूद भी उसे सभी लोग और बार-बार खाने के लिए कहते रहे । वेंकटेश के मना करने के वावजूद भी लोग उस पर दबाब डालते रहे, आख़िरकार उसने उल्टी कर दी और इस तरह उसकी बीमारी का इलाज़ हुआ ।

अनन्तमूर्ति की रात की पढ़ाई मिट्टी के तेल से जलने वाली लालटेन में होती थी, जिनमें जितनी मात्रा में रौशनी होती उतनी ही मात्रा में धुआँ होता था। मिट्टी के तेल तीर्थहल्लडी के 'शार्ट' नामक व्यक्ति की दुकान पर मिलता था जहाँ से अनन्तमूर्ति ब्लैक में मिट्टी का तेल खरीदा करते थे। 'शार्ट' का ये कहना था कि पहले पैसा कमा लो... क्योंकि पैसा ही इज्ज़त दिलाता है । पढ़ाई करते वक़्त अनन्तमूर्ति लालटेन की आँच पर एक विशेष प्रकार का फल सेंक कर खाया करते, ये पढ़ने के वक़्त का उनका एक विशेष आकर्षण था।

तीर्थहल्लडी जाने के रास्ते में तुंगे नदी के पास सुनसान जगह थी जहाँ अनन्तमूर्ति अक्सर अकेले में समय बिताया करते । उन्हें अक्सर लगता कि ऐसी ही जगहों पर फिल्मों में हीरों हीरोइन मिला करते होंगे ।

उन दिनों दो किताबें 'हरिज़न' और 'बालप्रपंच' 'वयश्क शिक्षा समिति' द्वारा प्रकाशित होती थीं, वो दोनों किताबें अनन्तमूर्ति के पिताजी के पास थीं । अनन्तमूर्ति ने वो किताबें अपने पिता जी की अलमारी से निकाल कर पढ़ी थी । ब्राह्मण होने की वज़ह से ये सब पढ़ने के बाद उन्हें ग्लानि होने लगी। अनन्तमूर्ति के घर पर पूजा और त्यौहारों के वक्त एक पुरोहित आते थे, उनके पास भी 'कलयुग' की एक प्रति थी, जो वैसी ही एक वयस्क पत्रिका थी। अनन्तमूर्ति ने वो भी पढ़ी तब अनन्तमूर्ति की उम्र १२ साल की थी । उसी अलमारी में ढूँढ़ते हुए अनन्तमूर्ति को वात्स्यायन की कामसूत्र के साथ साथ ऐसी कई किताबें मिलीं ।

बारह-तेरह साल की उम्र में एक बार अनन्तमूर्ति अपने माँ और पिता जी के साथ सफर कर रहे थे। आधी रात के दौरान अनन्तमूर्ति को कामोत्तेजना जागी, जैसे ही उनकी आँख खुली उन्होंने देखा की एक बूढ़ी औरत ने उन्हें पकड़ा हुआ है, इस तरह की कामोत्तेजना उन्हें पहली बार महसूस हुई थी । पर इसका कारण उन्हें भी नहीं पता कि ये क्यों और कैसे हुआ । तिरुपति जाने पर पहली बार अनन्तमूर्ति ने स्नोफॉल देखा । पापनाशिनी में उपनयन के सारे तौर-तरीके देखने के बाद उन्हें लगा कि इन पत्थरों पर कोई भूत है। उस रात अनन्तमूर्ति यह सोच कर डरते रहे कि कहीं कोई भूत उनके सामने न आ जाये । पर भूत नहीं आया । इस वक़्त अनन्तमूर्ति भगवान के अस्तित्व को लेकर अन्जान थे। इसी वज़ह से वो न तो यह कह सकते थे कि भगवान का कोई अस्तित्व नहीं है ।

ईश्वर का अस्तित्व है कि नहीं यह बहुत पुरानी बहस है। आइंस्टाइन और टैगोर जब मिले, उन्होंने भी इस बारे में बात की थी । अनन्तमूर्ति के दिमाग़ पर बौद्धधर्म का बहुत प्रभाव पड़ा, उन्हें ये बात अच्छी लगी कि बौद्धधर्म सुख और दुःख की बातें करता है। अनन्तमूर्ति का पहला काम का अनुभव १५ साल की उम्र में घर में होने वाले त्यौहार के दौरान हुआ । उनके दूर के रिश्ते में उनसे उम्र में १० साल बड़ी एक लड़की थी जो उन्हें कहानी सुनाया करती थी। एक रात साथ में सोते हुए उसने अनन्तमूर्ति का मुँह बन्द करते हुए चुपचाप रहने को कहा और अनन्तमूर्ति के साथ सम्बन्ध बनाया । सुबह होने पर वो लड़की इस तरह से रोज़ की दिनचर्या में लग गयी जैसे बीती रातें कुछ हुआ ही न हो।

उसी रात के बाद अनन्तमूर्ति को उस लड़की के लिए कुछ महसूस होने लगा और उन्हें इस बात की भी ग्लानि हुई कि आखिर जो बीती रात हुआ वो क्यों हुआ। उस लड़की ने अनन्तमूर्ति को समझाया कि अपनी कामोत्तेजना पर वह

काबू नहीं कर पायी थी और इस वज़ह से वो सब कुछ हुआ। उसने अनन्तमूर्ति को ये भी बोला कि तुम बुरा मत मानो, मैं तुम्हें दुबारा कभी छुऊँगी भी नहीं। इस घटना के बाद अनन्तमूर्ति को एक औरत के हृदय की कोमलता का एहसास हुआ । एक बार अनन्तमूर्ति के पिता जी उन्हें स्कूल से घर काफी लम्बे रास्ते से लेकर आये क्योंकि छोटे रस्ते में एक किराने की दुकान पड़ती थी जिससे अनन्तमूर्ति के घर पर उधार आया करता था। अनन्तमूर्ति के पिता जी को इस बात का डर था कि कहीं दुकानदार उन्हें देख कर पैसे न माँग ले । इस घटना से अनन्तमूर्ति को बहुत ठेस पहुँची थी ।

अनन्तमूर्ति के दादा जी अक्सर मन्त्रों का जाप किया करते। उनका चलने का और मन्त्र जाप करने का अलग तरीका था । वो कुछ मन्त्र पढ़ने के बाद कुछ कदम चलते थे, इसका अपना गणित था। उनके दादा जी उनको मन्त्र पढ़ना सिखाते थे और उनसे सौ बार ओम नमः शिवाय का जाप करवाते । आश्चर्य की बात ये थी कि अनन्तमूर्ति के मन में अगर कोई भय आता, इस मन्त्र को दोहराने से भाग जाया करता । अनन्तमूर्ति के दादा जी का उनकी दादी जी से हमेशा छत्तीस का आँकड़ा रहता था। उनके दादा जी दोपहर के भोजन से पहले गाय और एक भूखे आदमी के लिए अपने खाने का एक हिस्सा निकाल कर रखना कभी नहीं भूलते थे ।

जब अनन्तमूर्ति तेरह साल के थे, अग्रहार के कुछ लड़के तरंगिनी नामक मासिक पत्रिका लेकर आया करते। अनन्तमूर्ति को लेखन की प्रेरणा एक पण्डित से मिली। उस वक़्त अनन्तमूर्ति तीर्थहल्लडी के स्कूल में थे, अनन्तमूर्ति ने 'स्लीपिंग प्रिंसेस' नाम की कहानी लिखी। यह कहानी लिखते हुए उन्हें वो निचली जाति की लड़की की याद बार-बार आती थी, जो उन्हें बहुत प्यारी लगती थी। उन्हें लग रहा था कि वह लड़की ही उनकी कहानी की राजकुमारी है । अनन्तमूर्ति चनप्पा गौड़ा के थिएटर में पहली बार फिल्म देखने गये। यह उनकी पहली फ़िल्म थी। इस फ़िल्म के नारद मुनि आकाश से उतरकर धरती पर आ जाते थे । इण्टरवल के दौरान अनन्तमूर्ति ने मूँगफली खायी और इस फ़िल्म का आनन्द लिया ।

यात्रा त्यौहार के दौरान मण्डपों में नाटकों का आयोजन होता जो पूरी रात चला करते। अनन्तमूर्ति पूरी-पूरी रात बैठकर ये नाटक देखा करते । उनका पसन्दीदा नाटक सदारमे था।

घमण्ड चूर

अनन्तमूर्ति का पहला नाटक उनके अब तक के देखे गये नाटकों से प्रेरित था। अनन्तमूर्ति और उनके दोस्तों ने मिलकर नाटक करने के लिए सामान इकट्ठा किया जैसे रंग, गुलाल, साड़ियाँ इत्यादि । नाटक के लिए एक भैंस का भी प्रबन्ध किया गया था। नाटक में सम्वाद के दौरान वो कहीं भाग न जाये, इसके लिए घास का भी प्रबन्ध किया गया था । अनन्तमूर्ति के मामा जी ने यमराज और अनन्तमूर्ति ने कृष्णा की भूमिका की । यमराज के भेष के लिए नारियल के पत्तों से वस्त्र बनाये गये थे। जैसे ही यमराज मंच पर आये उन्हें देख भैंस भड़क गयी और दर्शकों के बीच में दौड़ने भागने लगी ।

अनन्तमूर्ति के एक और मित्र थे जिनका नाम मींगेली था । तीर्थहल्लडी में एक खेल का मैदान था। स्कूल के खत्म होने के बाद जिसमें ये लोग खेलने जाया करते थे कबड्डी और मल्लविद्या का खेल खेलते थे। मींगेली ताकतवर थे, क्योंकि वो मछली और अण्डे खाया करते थे । दूसरी तरफ अनन्तमूर्ति को अपनी ताक़त का राज गायत्री मन्त्र का जाप लगता था । एक बार 'मींगेली' और अनन्तमूर्ति के बीच कुश्ती हुई, जिसमें अनन्तमूर्ति का एक दाँत टूट गया। मींगेली

ही उन्हें उठाकर डॉक्टर के पास ले गया। तीर्थहल्लडी में तीन जाने-माने डॉक्टर थे डॉ. चन्द्रशेखर, डॉ. रामू भट्ट और डॉ. चार्ल्स। एक डॉक्टर और थे, डॉ. रंगप्पा जो बिना परीक्षा दिये ही डॉक्टर बन गये थे। अनन्तमूर्ति अपना दाँत पकड़कर उनके पास गये। ये डॉरगप्पा अपने काम के लिए जाने जाते थे और शोऑफ करने से भी परहेज़ नहीं करते थे। अनन्तमूर्ति को दर्द हो रहा था पर वो अपने रासायनिक सूत्र उन्हें समझा रहे थे, जैसे नमक को नमक न कहकर NACL कहना।

इस घटना के कुछ सालों बाद तक अनन्तमूर्ति अपने टूटे दाँतों को छुपाने के लिए अपना हाथ इस तरह से मुँह के पास रखते कि वो टूटे हुए दाँत को छिपाना नहीं बल्कि स्टाइल लगता। जिस वक़्त इनकी उम्र थी जब मुँहासे आने शुरू हुए थे पर वो चाह कर भी उसे फोड़ नहीं सकते थे, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं वो और फैल न जाएँ । इनका दोस्त शंकरनारायण अनन्तमूर्ति को शिवमुगा लेकर गया और उसने इनका दाँत ठीक करवाया। शंकरनारायण भट्ट, शान्तवेरी, गोपाल गौंडा, रामकृष्ण एक दूसरे के लिए बिना हिसाब-किताब किये खर्च करते थे, ये सारे लोग गोपी होटल जाकर कॉफी पिया करते। रात की चाय मस्जिद के पास वाले होटल में पिया करते और इनकी चर्चाएँ हमेशा शिवभोगा के रमन्ना शेट्टी पार्क, नेशनल लोड्स और अनन्तमूर्ति के पिता जी के नये बिसनेस 'मारुति प्रेस' पर होती।

ये अंश 'सुरगी' (सम्पादन और आख्यान ज.न. तेजश्री) से लिये गये हैं।

ब्रह्मपुत्र के तट पर
क्या तसलीमा ने अपनी वसीयत लिख दी है ?

मोहन कृष्ण बोहरा

तसलीमा का नया लघु उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र के तट पर' कोई पच्चीस वर्ष पहले बांग्ला भाषा में लिखे गये उसके अपने ही लघु-उपन्यास 'अपर पक्ष', हिन्दी में अनूदित 'दो औरतों के पत्र' का अनुवर्ती उपन्यास है। आलोच्य उपन्यास की कोई भूमिका उसने नहीं लिखी है, न अन्यत्र ही कहीं उसने इसके विषय में कोई उल्लेख ही किया है, लेकिन इसके बावजूद उसके सतत अध्येता को यह लक्ष्य करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि 'ब्रह्मपुत्र..' है, 'दो औरतों के पत्र' का सिक्वैल ही। यद्यपि दोनों की रचना लेखिका ने इस तरह से की है कि इन्हें स्वतन्त्र रूप से भी पढ़ा जा सकता है, लेकिन यदि पहले के बाद दूसरे को पढ़ा जाय तो उसके कथानक को समझने और उसके आस्वादन और आशंसा में भी, निश्चित रूप से सहायता मिलती है। इसके शीर्षक से ऐसा भ्रम होता है, जैसे ब्रह्मपुत्र रचना के केन्द्र में हो, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है यद्यपि तब भी लेखिका ने ब्रह्मपुत्र को भी अपना एक सरोकार बनाये रखा है।

पहले उपन्यास के कथानक ने ही दूसरे में अपना विकास पाया है। कथा-नायिका जमुना गर्भवती तो पहले उपन्यास के कथा-काल में ही हो जाती है, परन्तु अपनी पुत्री तपु (तपन) को जन्म वह दूसरे उपन्यास में ही देती है।

अपने लेखन में तसलीमा का प्रयत्न प्रायः अपने नारी-विमर्श को कथायित करने का रहा है। 'दो औरतों के पत्र' में उसने एक ओर नारी पर पुरुष के अत्याचार दिखाये हैं, तो दूसरी ओर अपनी स्वतन्त्रता के लिये नारी का संघर्ष भी दिखाया है। 'ब्रह्मपुत्र..' में दूसरे पक्ष की व्यंजना है।

जमुना का अभीष्ट अपनी यौन-स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करना है। यौन-स्वतन्त्रता के अभाव में नारी की स्वतन्त्रता अधूरी है, यह बात तसलीमा प्रारम्भ से ही कहती रही है लेकिन इससे उसका असल तात्पर्य क्या है, इसे खोलकर समझाते हम उसे कहीं भी नहीं देखते। ज़्यादातर वह यौन-स्वतन्त्रता के अन्तर्गत नारी के वरण का अधिकार, न कहने का अधिकार और कोख पर अधिकार की बात ही करती है। लेकिन वास्तव में यौन-स्वतन्त्रता से उसका अभिप्राय क्या है, इसका पहली बार खुलासा करते हम उसे 'दो औरतों के पत्र' में ही देखते हैं। जमुना जो यौन-स्वतन्त्रता चाहती है, उसमें वह 'इच्छित पर-पुरुष के साथ सहवास' की स्वतन्त्रता ही नहीं चाहती, किसी भी पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्त सन्तान पाने और उसकी 'अकेली अभिभावक बनने का अधिकार' भी शामिल है।इसके अनुरूप ही जमुना अपने पति हुमायूँ को तलाक दिये बिना ही पर-पुरुष पाशा से निकटता बढ़ाती है और सहवास करके उससे गर्भ भी धारण कर लेती है। फिर वह उसे ठुकरा कर पितृत्व के दावे से मुक्त सन्तान पाने की दिशा में बढ़ जाती है। 'ब्रह्मपुत्र....' में लेखिका ने नारी की इस यौन-स्वतन्त्रता का पूरक-पक्ष रचा है। इसमें जमुना

ही तपु को बड़ा करती है और वही उसकी 'अकेली अभिभावक' भी बनती है।

२

प्रसंगवश, यहाँ हम तसलीमा के ही एक अन्य उपन्यास 'फ्रांसीसी प्रेमी' का भी स्मरण कर सकते हैं। उसकी नायिका नीला में भी बच्चा पाने की लालसा थी परन्तु गर्भ धारण करने के बाद वह अचानक अपना गर्भपात करवाने पर आमादा हो गई। हम असमंजस में पड़ जाते हैं कि वह गर्भपात चाहती क्यों है, जबकि गर्भ उसने धारण उस व्यक्ति से ही किया होता है जिसे अपना बनाने के लिये कभी उसने अपनी जान लड़ा दी थी और जिसे अपना बनाये रखने के लिये उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी उस पर लुटा दी थी! लेखिका ने इस उलझन का कोई तोषदायक समाधान किये बिना ही उपन्यास का निरंकुश समापन कर दिया है। इससे नीला की ज़िद एक अबूझ पहेली बनकर रह गई है।

यदि हम जमुना को संदर्भभूत रखकर नीला पर विचार करें तो उसके ज़िद की गुत्थी कुछ सुलझती जान पड़ती है। नीला चाहे कहती कुछ भी नहीं है, लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि चाहती वह भी केवल 'अपना' बच्चा ही है। 'अपना' यानी किसी भी पुरुष के 'पितृत्व के दावे से मुक्त' बच्चा। पुरुष के दावे से मुक्त बच्चा पाना न तो रूढ़िवादी पूर्व-पति किशनलाल के साथ रहते सम्भव था और न अब इस दृढ़, हठी, उग्र स्वभाव वाले बनोया के साथ रहते ही सम्भव है। हम नीला की इस संकटपूर्ण स्थिति को समझ सकते हैं। जमुना के लिये तो किसी भी पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्त सन्तान पाना सम्भव इसलिये हो गया कि उसका पति और प्रेमी दोनों ही रीढ़हीन व्यक्ति थे; फिर उनकी अपनी रुचि भी 'इस' सन्तान में नहीं थी। लेकिन नीला के प्रेमी बनोया में तो सन्तान पाने की आकांक्षा बलवती थी। वह सन्तान पर अपना दावा छोड़ने वाला व्यक्ति नहीं था। इन तमाम परिस्थितियों को देखते हुए ही नीला ने गर्भपात करवाने का निश्चय कर लिया। इस तरह, इस कोण-विशेष से विचार करने पर 'फ्रांसीसी प्रेमी' के समापन को स्वतः एक संगति और नीला की ज़िद को एक अर्थ मिल जाता है। साथ ही, औरत का, किसी भी पुरुष के 'पितृत्व के दावे से मुक्त' सन्तान पाने का आग्रह ही वह धरातल भी हो जाता है, जहाँ हम नीला को भी जमुना के साथ खड़ा कर सकते हैं, उपन्यास को चाहे 'दो औरतों के पत्र' का सिक्वैल न भी कहें!

यह अनुमान मैंने 'ब्रह्मपुत्र...' के प्रकाशन के पहले ही व्यक्त कर दिया था। अब 'ब्रह्मपुत्र...' के प्रकाशन ने इसकी और भी पुष्टि कर दी है।

क्या 'शोध' की नायिका झूमर को भी हम इस पंक्ति में नहीं रख सकते ?आखिर, झूमर भी पति हारून को जो बच्चा सौंपती है, वह भी तो था किसी भी पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्त बच्चा ही! हारून चाहे उसे अपना समझता रहे! था तो वह चित्रकार का बच्चा जिसके साथ सहवास से झूमर ने उसे धारण किया था! लेकिन चित्रकार को यह पता चले कि झूमर ने उससे गर्भ धारण किया है, उससे पूर्व ही वह देश छोड़कर चला गया था। अब भविष्य में भी इस तथ्य को वह कभी जान नहीं पायेगा। इस तरह झूमर के इस बच्चे को भी हम किसी पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्त बच्चा कह सकते हैं। 'शोध' पर मैंने पहले भी विचार किया है लेकिन उसमें इस कोण का आकलन नहीं हुआ है। अस्तु।

३

तसलीमा की नारी केवल पितृत्व के दावे से मुक्त सन्तान ही नहीं चाहती, वह उसे अपने ही परिचय से बड़ा करना और उसकी 'अकेली अभिभावक' बनना भी चाहती है! जमुना भी तपु की अकेली अभिभावक बनती है। वह नूपुर की

सहायता से उसका लालन-पालन करती है, अपने परिचय के साथ उसे बड़ा करती है, उसे संस्कार देती है, पढ़ाती-लिखाती है और अपने पैरों पर खड़ी होने लायक बनाकर उसे आगे पढ़ने के लिये अमेरिका भेज देती है।

अपेक्षा होती है कि लेखिका यह भी दिखाती कि 'इस' 'अकेली औरत' को 'ऐसी' बच्ची को बड़ी करने में क्या-क्या कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं और उसने उनका सामना कैसे किया। इसी तरह, पितृहीन बालिका को कैसे-कैसे 'ट्रोमा' से, मानसिक उथल-पुथल से गुजरना पड़ा, उसका भी मनोविश्लेषणात्मक चित्रण वह करती। उसके लिये यह कठिन भी नहीं था। 'फेरा' में बालक दीपन का कुछ चित्रण उसने मनोविश्लेषण के कोण से किया भी है। लेकिन इस पटल पर 'ब्रह्मपुत्र...' में उसने अपना अलग ही सिद्धान्त गढ़ कर मनोवैज्ञानिक पहलू को ही दरकिनार कर दिया है। उसने लिखा है कि यदि बच्चों को बचपन से ही पिताजी, डैडी आदि सिखाकर दिमाग़ खराब न करें तो उनके मन में पिता नामक वस्तु को देखने के लिये कोई कौतूहल नहीं रहता।'

इस प्रसंग पर जमुना की सेविका निर्मला से बातें करते हुए नूपुर एक सटीक सवाल उठाती है कि वह निरुत्तर हो जाती है। वह कहती है कि ये सब पूछकर दिमाग़ खराब करना घर में नहीं तो स्कूल में तो दोस्त लोग करते ही हैं। पूछ-पूछकर नाक में दम कर देते हैं कि हमारे तो पापा हैं, तेरे क्यों नहीं हैं ? यहाँ लगता है कि लेखिका के अपने ही संशय ने नूपुर की राह से अभिव्यक्ति पाई है। लेकिन इसका कोई निराकरण करते उससे नहीं बन पड़ा है।

४

पश्चिम में सम्भव है, केवल मातृ-परिचय वाले बच्चे भी बहुतायत में हों, इसलिये वहाँ बच्चे ऐसे सवाल न भी उठाते हों, लेकिन भारत में ऐसे (मातृ-परिचय वाले) बच्चे अभी अपवाद रूप में ही मिलेंगे इसलिये स्कूल में ऐसे बच्चों को शरारती बच्चों द्वारा सताये जाने की आशंका ही अधिक रहती है। ज़्यादा सताये जाने पर ऐसे बच्चे मातृ-द्रोही हो उठते हैं या आत्महत्या तक कर लेते हैं! यदि लेखिका तपु के बड़ी होने में इस भारतीय परिवेश का भी आकलन किये रहती, जहाँ समाज और बाहरी जीवन-क्षेत्र में तो क्या, घर-परिवार तक में बिना पिता की (अवैध) बालिका को न जाने कितने ताने-तिश्ने झेलने पड़ते हैं और उसके बहाने उसकी माँ के चरित्र की भी बखिया उधेड़ी जाती है, तो उपन्यास को वस्तुगत आधार मिल जाता और वह यथार्थ की जीवन्तता भी पा लेता। लेकिन लेखिका बाल-मनोविज्ञान और सामाजिक-यथार्थ दोनों से ही कतरा कर निकल गई है।

इस प्रसंग की तुलना 'दो औरतों के पत्र' में वर्णित जमुना के गर्भ-रक्षण वाले प्रसंग से करें तो पायेंगे कि वह अधिक प्रभावी बन पड़ा है। रहस्य इसका यह है कि वहाँ लेखिका ने रचना को वस्तुगत आधार दिया है। घर में वह पति और प्रेमी से संघर्ष करती है, तो बाहर कार्य-स्थान पर और पास-पड़ौस से भी जूझती है। उसके इसी संघर्ष-क्षम रूप ने उसे अलग नारी बनाया है!

तपु को बड़ा करने में जो संघर्ष जमुना को झेलना पड़ा होगा, वह भी कम अग्नि-परीक्षा का नहीं रहा होगा, उसकी आँच में तपकर ये दोनों चरित्र अपने सशक्त रूप में उभरते, उससे उपन्यास ज़्यादा प्रभावी बनता, लेकिन लेखिका ने यह पूरा प्रसंग निरे सपाट उल्लेख में ही समाप्त कर दिया है।

अवश्य ही, तपु के शैशव-काल में उसके प्राणों पर मंडराये संकट का और उसकी रक्षा के लिये किये गये जमुना के संघर्ष को लेखिका ने वस्तु-भूमि प्रदान की है।

५

'दो औरतों के पत्र' में ही हम देखते हैं कि जमुना के गर्भवती होने के बाद पाशा ने उसके पास आना बन्द कर दिया था। तपु के जन्म के बाद ('ब्रह्मपुत्र....' में) उसने फिर से जमुना के पास आना-जाना प्रारम्भ कर दिया। वह जमुना का तो देह-लोभी था ही, जमुना भी उसे प्यार करने लगी थी। नूपुर तो (जो तपु के लालन-पालन में उन दिनों जमुना की सहायता कर रही थी) उसे तपु के पिता के रूप में ही देखती थी। उसने (यानी पाशा ने) इस परिवार का विश्वास इतना जीत लिया था कि फ्लैट की एक चाबी उसके पास भी रहती थी! लेकिन वह केवल जमुना का देह-लोभी ही नहीं था; वह मनसा अति कुटिल भी था। तपु को वह अपने लिये सामाजिक कलंक के रूप में और जमुना को भोगने की राह में उसे काँटे के रूप में देखता था और इस काँटे को निकाल फेंकने के फेर में रहता था। इस बात को जमुना देर से ताड़ पाई। इस बीच पाशा ने उस घर की नौकरानी फूली को घूस देकर प्रलोभित किया और उसके हाथों तपु की हत्या करवाने का षड्यन्त्र भी रच डाला! यह तो संयोग से ऐन वक्त पर जमुना के घर आ जाने से तपु के प्राण बच गये अन्यथा उसकी हत्या हो जाती! जमुना ने रोती-चिल्लाती तपु को संभाला, इतने में फूली बाथरूम से निकल कर भाग गई। पाशा ने उसे जो दस हज़ार रुपये बतौर घूस दिये होंगे, वे कमरे में ही रह गये! जमुना बच्ची को अस्तपाल ले गई। वह जब लौटी, तब कमरे में वे रुपये नहीं थे। जमुना समझ गई कि यह षड्यन्त्र पाशा का रचा हुआ ही था; उसी ने फूली को प्रलोभित किया होगा और तपु की हत्या के लिये बतौर घूस उसे रुपये दिये होंगे!

इस घटना-क्रम में लेखिका ने यह संकेत दिया है कि पाशा का आचरण संदिग्ध होने की कुछ भनक लगने पर जमुना ने पाशा की जेब से फ्लैट की चाबी निकाल ली थी। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि जमुना जब तपु को अस्पताल ले गई, तब पीछे पाशा फ्लैट में आया कैसे ? और वह फ्लैट से रुपये कैसे ले गया ? दूसरा प्रश्न यह कि षड्यन्त्र सामने आ जाने के बाद जमुना ने पाशा से सम्बन्ध तोड़ क्यों नहीं लिया ? फूली के भाग जाने और रुपये पाशा द्वारा उठा ले जाने की वजह से पुलिस में रपट लिखाने के लिये अपेक्षित पुख्ता प्रमाण चाहे नहीं भी रह गये थे, तब भी पाशा का कुकृत्य तो सामने आ ही गया था। फिर उसने तत्काल उससे नाता तोड़ा क्यों नहीं ? लेकिन लेखिका इन शंकाओं का निराकरण नहीं करती।

६

जमुना पाशा को आरोपित करने के लिये किसी और प्रमाण की प्रतीक्षा में ही थी कि पाशा ने उसके देखते-देखते ही तपु को खिलाते हुए ऐसे उछाला कि वह फर्श पर आ गिरी। फर्श पर गद्दा बिछा होने से उसका सिर फूटने से तो बच गया, लेकिन उछाल में वह काँच की अलमारी से ऐसे टकराई कि काँच टूटकर उसके शरीर में जगह-जगह चुभ गया! जमुना फिर उसे अस्पताल ले गई।

अब उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह पाशा का काम तमाम करके रहेगी। क्रुद्ध और प्रति-हिन्सक औरत के रूप में जमुना इतनी अधीर हो उठी कि वह यह देख ही नहीं पाई कि उसकी योजना अविचारित ही नहीं, निहायत कच्ची भी है; उसमें वह अपना जीवन भी जोखिम में डाल रही है! वस्तुतः यह प्रसंग एक उत्तेजित और आविष्ट औरत द्वारा घबराहट में, परिणाम की गम्भीरता का विचार किये बिना, जैसे भी हो, ताबड़तोड़ काम अन्जाम देने की ज़िद में, बदहवास हो, मारे गये हाथ-पैर के रूप में ही देखा जाना चाहिये। अन्यथा किसी भी रूप में देखे जाने पर इसे रचना का सर्वथा कमजोर अंश ही कहा जायेगा। हत्या के इस प्रयत्न में उठाया गया हर कदम अधीर और उत्तेजित औरत का अविवेक ही दिखाता है।

यह तो क्योंकि लेखिका ने कथानक की नकेल अपने हाथ में थाम रखी है इसलिये उसने जमुना को जैसे-तैसे पुलिस के शिकन्जे और जेल के सीखचों से बचाकर (ढाका से) भारत भेज दिया अन्यथा जमुना का यह बचाव भी विश्वसनीय नहीं बनाया जा सका है।

७

जो भी हो, एक वासना-लोलुप, देह-लोभी, कुटिल और षड्यन्त्रकारी व्यक्ति के रूप में पाशा का चरित्र जीवन्त बन पड़ा है। वैसे तो, मनोविज्ञान कहता है कि पुरुष अपने ही नवजात शिशु को भी अपने प्रेम की राह में अवरोधक के रूप में देखता हुआ, उससे ईर्ष्या करता है; परन्तु पाशा में ईर्ष्या की भावना नृशंसता की हद तक चली गई है। यहाँ देखने की बात यह भी है कि पाशा कामान्ध तो था ही, साथ में, लेखिका ने उसके चरित्र में एक अन्य वृत्ति की सक्रियता भी दिखाई है। वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये भी चिन्तित था (यद्यपि इस प्रतिष्ठा का कोई वस्तु-पक्ष उपन्यास में नहीं है)। एक अवैध सन्तान के पिता के रूप में अपनी पहचान उसे कतई गवारा नहीं थी। इसी तरह, तपु को वह अपने लिये सामाजिक कलंक के रूप में देखता था इसीलिये वह प्रारम्भ से ही चाहता था कि जमुना अपना गर्भपात करवा ले। लेकिन जब जमुना नहीं मानी, तब पहले तो उसने उसके पास आना-जाना ही छोड़ दिया। परन्तु अब, जब बच्ची ने जन्म ले ही लिया था, तब वह इस मुद्दे पर अलग ही कोण से सोचने लगा। अब उसने जमुना के पास जाना फिर से शुरू कर दिया। यह सेंत-मेंत में मिल रही नारी-देह के लोभ से तो था ही (ऐसा वह स्वयं ही कहता भी है), उसका एक अन्य हेतु और भी प्रबल था। यदि हमारी श्रवण-संवेदना सजग हो और हम रचना की वस्तु-ध्वनि सुन सकें तो पायेंगे कि जमुना के घर में पुनः आना-जाना असल में उसने शुरू भी इस दृष्टि से किया कि उस राह से वह अपना सामाजिक कलंक मिटाने की कोई सुरक्षित युक्ति खोज सके; ऐसी कि तपु का काम तमाम हो जाय और वह स्वयं निर्दोष बना रह सके। फूली को प्रलोभित करके उसने ऐसी योजना बना भी डाली लेकिन दुर्योग से वह उसमें सफल नहीं हो सका।

लेखिका के वस्तु-संयोजन में हम पाशा के मन को पढ़ सकते हैं। यदि लेखिका पाशा के अन्तर्मन में भी पैठ पाती और उसका ऊहापोह भी हमें दिखाती तो पाशा का चरित्र अधिक जटिल, अधिक जीवन्त और अधिक प्रभावी बनकर उभरता।

८

'दो औरतों के पत्र' में जमुना का व्यक्तित्व ही रचना के केन्द्र में रहा है। नूपुर भी वहाँ है लेकिन उसकी अपनी कोई पृथक हैसियत वहाँ नहीं है। वहाँ वह जमुना की अनुचरी ही अधिक रही है। उसको कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व उसने नहीं दिया है। 'ब्रह्मपुत्र..' में भी उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित नहीं हुआ है लेकिन 'ब्रह्मपुत्र..' में उसके अस्तित्व को कुछ स्वीकृति देकर लेखिका ने अपनी भूल का कुछ मार्जन किया लगता है।

कथानक का कुछ विस्तार उसने नूपुर की स्मृतियाँ जोड़कर किया है। अब, जब कि जमुना नहीं रही है, नूपुर उसकी बातें याद कर-करके रोती है। सबसे बड़ा पछतावा उसे इस बात का है कि उसने अकारण ही जमुना को अपमानित करके अपने घर से निकाल दिया था! उसने जय (नूपुर के बेटे) को देखते ही ताड़ लिया था कि वह 'ड्रग-एडिक्ट' यानी नशेड़ी हो गया है। उसने उसका इलाज भी करवाना चाहा लेकिन उसके पति ने और स्वयं उसने भी, उसकी बातों का ग़लत अर्थ लगाया कि वह स्वयं पुत्रहीना है इसलिये उसे जय से जलन है। इसीलिये उस पर 'ड्रग एडिक्ट का

लाँछन लगाकर वह जय को कलंकित कर रही है।' वह उसके ऐश्वर्य और वैभव को भी सह नहीं पा रही है इसलिये उनके घर को भी वह बदनाम करना चाहती है। इसी तरह की बातें सोचते हुए तैश में आकर उन्होंने उस पर अनर्गल लाँछन लगाये और उसे धक्के मार कर घर से निकाल दिया! थोड़े दिनों बाद, नशे में कार चलाते हुए दुर्घटनाग्रस्त होकर जब जय की मृत्यु हुई, तब उसकी आँखें खुली कि जमुना की बातों में कितनी सच्चाई थी काश! उसने तभी उसकी बातें मान ली होती! तो जय का जीवन शायद बच जाता।

अपना आत्म-विश्लेषण करते हुए नूपुर पाती है कि सारी ग़लती उसकी ही है। दरअसल, स्वयं के प्रति हीनता की भावना और जमुना के प्रति ईर्ष्या की आग उसके अवचेतन में बचपन से ही जलती आ रही थी। यह वास्तव में, उस ज्वाला का ही लावा था जो जमुना के अपमान के रूप में फूटा था। इस दृष्टि से देखे जाने पर, हीन-भाव से ग्रस्त और ईर्ष्यालु छोटी बहन के रूप में हुआ नूपुर का यह चित्रण अप्रतिम कहा जायेगा। जमुना के अपमान का सांगोपांग-चित्रण और नूपुर का आत्म-मंथन, ये दोनों अंश उपन्यास के श्रेष्ठ अंश हैं। ये खूब जीवन्त और खूब प्रभावी बन पड़े हैं। इसी प्रसंग में तमाम अनर्गल आक्षेप और अपमान बर्दाश्त करके भी बार-बार जय के उपचार के लिये आग्रह करने वाली तथा संयत और शालीन रहकर बड़प्पन दर्शाने वाली बड़ी बहन के रूप में हुआ जमुना का चित्रण भी प्रशंसनीय कहा जायेगा।

नूपुर से जुड़े हुए दो और प्रसंग भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं यद्यपि ये निर्मला और तपु पर भी उतना ही प्रकाश डालते हैं।

जमुना कोई धर्म नहीं मानती थी। उसकी सेविका निर्मला हिन्दू धर्म मानती थी। जमुना ने उसे उसकी आज़ादी दे रखी थी। वर्षों से जमुना के साथ रही निर्मला आज भी जब जीवन-व्यवहार में धर्मगत भेदभाव देखती है और 'हम लोगों में ऐसा होता है', 'तुम लोगों में ऐसा नहीं होता', कहकर बात-बात में उस भेदभाव को उभारती है, तब एक प्रसंग में नूपुर उसके प्रति क्रोध से फट पड़ती है। असल में, ग्लानि और क्षोभ होता तो नूपुर में अपने प्रति है लेकिन यहाँ निशाने पर निर्मला के आ जाने से वह फूटता उसके प्रति है। उसके इस क्षोभ को लेखिका ने यह कहते हुए खूब सधे हुए ढंग से व्यक्त किया है कि जमुना से अकुंठित स्नेह पाकर भी उसने उससे सीखा क्या है; वह धर्मगत भेदभाव तक भुला नहीं पाई है!

यह प्रसंग अनायास ही उपन्यास को तल्ख यथार्थ का स्पर्श देकर उसे एक अलग ही आस्वाद दे देता है।

एक अन्य प्रसंग तपु से नूपुर की बातों का है। नूपुर उससे उसके प्रति जमुना के प्रेम के विषय में जानना चाहती है लेकिन तपु उसे टालते हुए एक ही बात कहती है, 'आई एम प्राउड ऑफ माई मदर।' 'मुझे अपनी माँ पर गर्व है।' यह सुनकर एक बार तो वह अचकचा जाती है। फिर, उसके अन्तस्तल में एक तीखी टीस उठती है, जय ने उसके लिये ये शब्द कभी भी नहीं कहे। उसका कलेजा तरस गया, उससे ऐसे शब्द सुनने के लिये! जय से उसने कम प्यार नहीं किया था, लेकिन उसने कभी उससे ये शब्द नहीं कहे। शायद हर माँ में यह कामना दमित रहती है, बच्चे से ये शब्द सुनने की। इस दृष्टि से इन शब्दों में एक शाश्वत सत्य समाया हुआ है, लेकिन शायद प्रति-प्रश्न भी उसे टीस जाता है, क्या माँ के रूप में उसने बच्चे को ऐसे संस्कार दिये भी थे ?

कथानक को कुछ और विस्तार भी लेखिका ने नूपुर की राह से ही दिया है।जय की मृत्यु के बाद नूपुर ने पति से नाता तोड़ लिया। वह अलग रहने लगी। उसने जमुना की सहायता से अमेरिका में ही एक होटल खोल लिया। उस व्यवसाय से ही उसने अकूत सम्पत्ति अर्जित की। अपना पैतृक घर भी उसने भाई नईम से खरीद लिया। अपना अन्तिम समय

वह वहीं रहकर गुजारना चाहती थी। तपु को भी वह कभी-कभी वहीं बुला लिया करेगी। (इस दृष्टि से यह विस्मयकारी लगता है कि न्यूयार्क में रह रही नूपुर ने हार्वर्ड में पढ़ रही तपु से कभी मिलने का कोई विचार तक नहीं किया!)।

यदि लेखिका नूपुर-प्रकरण को मूल कथानक से सम्पृक्त कर पाती, जमुना के जीवन के समान्तर ही नूपुर का जीवन भी रचती, घटनाओं के घात-प्रतिघात के रूप में कथानक का विकास करती तो कथानक सुगठित होता और उससे उसका उपन्यास रचने का कौशल भी उजागर होता अन्यथा यह नूपुर-प्रकरण अलग-थलग सा ही रहा है।

९

इस रचना के शिल्प-विधान में तपु के चरित्र के लिये कोई स्पेस नहीं जान पड़ती। उसे हम उसकी माँ की मृत्यु के अवसर पर ही देखते हैं। यहाँ भी उचित यह होता कि निर्मला उसे जमुना की बीमारी के दिनों में बुलवाती ताकि वह जिद-पूर्वक माँ का इलाज करवाती। लेकिन तथ्य तो यह है कि जब उसे माँ की मृत्यु की सूचना दी गई, तब भी उसने आना ही कहाँ चाहा! जो माँ उसका सम्बल ही नहीं, सर्वस्व थी, वात्सल्य का तक़ाजा था कि वह समाचार पाते ही फूट-फूट कर रोती और जैसे भी होता, पहली फ्लाइट पकड़ कर आती। लेकिन फ्लाइट तो दूर, वह तो बिल्कुल भी आना नहीं चाहती थी! उसने तो स्वयं आने के बजाय मौसी से अनुरोध किया कि वही चली जाये! अपनी इस प्रतिक्रिया में वह असामान्य चरित्र ही जान पड़ती है। वह कैसी लड़की है ? क्या माँ की मृत्यु का उसे कोई दुःख नहीं हुआ ?

वस्तुतः उपन्यास में तपु का चरित्र कुछ इस तरह आया है कि उसके वास्तव को हम वस्तु-ध्वनि पर कान देकर ही पा सकते हैं। इसके लिये हमें उसे समग्रतः देखना होगा। तब हम पायेंगे कि माँ के जिस अनुशासन में उसका पालन-पोषण हुआ और जिस पश्चिमी परिवेश का प्रभाव उस पर आया, उसका व्यवहार, उसी का प्रतिफलन था। यह इन्हीं का सम्मिलित प्रभाव था कि वह भावुकता के बहाव में बहने वाली लड़की नहीं बनी। अन्यथा भावनाशून्य वह नहीं थी। अपने कमरे में वह खूब रोई थी । वह कहती है कि वह माँ का खुश-मिजाज चेहरा ही अपनी स्मृति में सदा के लिये बसाये रखना चाहती थी, मृत चेहरा नहीं, इसलिये वह आना नहीं चाह रही थी। हम देखते हैं कि बाद में, मौसी के आग्रह पर वह आई और उनकी भावना का सम्मान भी उसने किया।

तपु के चरित्र का और कोई पहलू उपन्यास में नहीं है। निर्मला भी जमुना के बारे में ही अधिक बोलती है, तपु के बारे में कुछ विशेष नहीं बताती, जबकि बड़ी वह उसी के हाथों में हुई थी! अस्तु।

रचना में निर्मला के चरित्र का महत्व दोहरा है- एक तो, वह स्वयं एक पात्र है; दूसरे, जमुना के जीवन के भी एक बड़े भाग को हम उसकी आँखों से ही देखते हैं।

१०

वह जमुना की सच्ची सेविका ही नहीं, उसकी विश्वासपात्र सहायक भी थी। नूपुर उसमें जो धर्मगत भेदभाव देखती है, वह उसका सांस्कारिक-स्वभाव अधिक है, संकीर्णता कम। अपने अन्तर में वह निष्कपट और निश्छल थी। उसके गुणों के प्रति आश्वस्त होकर ही जमुना ने उसकी भेदवृत्ति को दरगुजर कर दिया और उसे अपना धर्म-कर्म पालन करने की स्वतन्त्रता और सुविधा भी दे दी। जमुना का विश्वास उसने इतना जीत लिया था कि जमुना ने घर की सारी व्यवस्था उसी के भरोसे छोड़ दी थी। उसकी योग्यता देखकर ही 'सिस्टरहुड' संस्था के संचालन का भार भी उसने

उसे ही सौंप दिया। तपु को भी हम उस पर इतना ही अडिग विश्वास करते देखते हैं।

उपन्यास कथानक दो भागों में बँटा हुआ है। पूर्व-भाग में जमुना का ढाका में जिया हुआ जीवन है जिसमें वह शिशु तपु का लालन-पालन करती है और पाशा के षड्यन्त्र से उसके प्राणों की रक्षा करती है और किसी भावी संकट से बचाने के लिये वह उसे ढाका से कलकत्ता ले आती है। उत्तर-भाग में उसका यानी (जमुना का) कलकत्ता में जिया हुआ जीवन दर्ज है। उसका यही जीवन निर्मला बयान करती है। उसका ठौर-ठिकाना तय होना, उसकी नौकरी -सोलर पॉवर प्लाण्ट में उसका उच्च वैज्ञानिक पद पाना (यद्यपि हम यह नहीं जान पाते हैं कि एक कम्पनी की कर्मचारी ने अचानक उच्च वैज्ञानिक पद पा कैसे लिया), उसका पुनः विवाह करना, उसका विवाह-विच्छेद, 'सिस्टरहुड' संस्था की स्थापना आदि प्रसंग इस भाग में हैं। लेकिन ये रहे लगभग उल्लेख के स्तर पर ही अधिक हैं, निर्मला ने इनका वर्णन नाममात्र को ही किया है। लेखिका यह देख ही नहीं पाई है कि जमुना के उत्तर-जीवन के इस पक्ष का सम्यक वर्णन नहीं होने का परिणाम यह हुआ है कि औरत की यौन स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष का यह पूरक-पक्ष उपेक्षित रह गया है और उसकी स्वतन्त्रता केवल स्वैच्छिक सहवास और स्वैच्छिक गर्भ-धारण में सिमट कर ही रह गई है! इसने भी 'ब्रह्मपुत्र...' के महत्व को कम किया है। वस्तु-ध्वनि से हम पाते हैं कि संघर्ष इस दौर में भी उसे कम नहीं करना पड़ा था। इसी वज़ह से उसके गुर्दे खराब हो गये थे! लेकिन गहरा आत्मतोष उसे इस बात का था कि उसने तपु को आत्म-विश्वासी और आत्म-निर्भर बना दिया था। वह विदेश में अपने पैरों पर खड़ी थी।

99

यह देखकर उसने संसार से विदा लेने का संकल्प कर लिया। जैसे अपनी मंज़िल पर पहुँच कर पथिक सुकून पाता है, वैसे ही अपनी ज़िम्मेदारी भली प्रकार से निभा देने की तसल्ली जमुना को थी। अब उसने संघर्ष से ही नहीं, जीवन से भी हाथ खींच लिया। वह लगभग वीतरागी हो गई। अपने जीवन का अन्त समीप जानकर जैसे एक वीतरागी अपने उपचार के प्रति उदासीन होकर अपनी काया-माया समेटने लगता है, वैसे ही, जमुना भी अपने जीवन से उदासीन हो गई थी। उसने डायलिसिस लगवाना या अन्य कोई उपचार करवाना स्वीकार नहीं किया। वह पूर्णतः निस्पृह व निर्लिप्त हो गई और एक प्रकार से मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन जीने लगी! और, एक दिन उसने देह त्याग दी।

जमुना के जीवन के इन अन्तिम दिनों का चित्रण तसलीमा ने बड़े मनोयोग से किया है। लेकिन यह विस्मयकारी है कि रचना-प्रवाह में वह उसे ठीक से विन्यस्त नहीं कर पाई है। उसके शिल्प-विधान में इसके लिये भी कोई स्पेस नहीं जान पड़ती है! परिणामतः निर्मला को तपु और नूपुर को इस प्रसंग की जानकारी एक पत्र लिखकर ई-मेल से भेजनी पड़ी है! और, यह पत्र भेजा भी जमुना की अन्त्येष्टि के बाद ही जा सका है! लेखिका ने इसे जोड़ा भी रचना के अन्त में है! रचना में इसकी स्थिति वैसी ही है जैसे किसी मजमून में किये गये 'भूल-सुधार' की होती है या पत्र लिख जाने के बाद उसमें जोड़े गये 'पश्च-लेख' की होती है!

यह देखकर भी हैरानी होती है कि जो औरत उम्र-भर संघर्षशील रही, लेखिका ने उसके सक्रिय-जीवन का अवसान उसे निष्क्रिय, निरीह और वीतरागी साध्वी-सा बनाकर किया है! यह अन्त एकाएक गले नहीं उतरता।

निश्चय ही, उसने अपना अभीष्ट पा लिया था, परन्तु योद्धा थकते कब हैं ? प्रारम्भ में उसकी संघर्षशीलता उभरी है, परन्तु ढाका से कलकत्ता आने के बाद के जीवन में उसके संघर्ष का कोई चित्रण रचना में नहीं मिलता। नारी-जाति के कल्याण के लिये उसने 'सिस्टरहुड' संस्था बनाई थी। यदि उसके ही किसी उद्देश्य के निमित्त संघर्ष करते हुए वह अपना प्राणोत्सर्ग करती तो उसके जीवन का वह अन्त कहीं अधिक श्रेयस्कर होता! वह उसके चरित्र की मूल प्रकृति

की अनुरूपता में भी होता, लेकिन 'सिस्टरहुड' संस्था भी उल्लेख के स्तर पर ही रही है!

१२

जमुना अपना देह-दान मेडिकल कॉलेज, कलकत्ता को कर गई थी इसलिये अन्त्येष्टि का कोई प्रश्न ही नहीं था लेकिन नूपुर का विचार कुछ अलग था। परन्तु अकेली फैसला लेने में झिझकते हुए उसने तपु को भी आग्रहपूर्वक बुलवा लिया।

जिस घर में रोना-धोना, शोक-स्यापा चाहे न भी हो, लेकिन मौत की काली छाया व्याप्त हो, वहाँ बोझिल मौन-सा पसर जाता है। जहाँ सतत् कुछ घट रहा हो, उसका वर्णन करना सहज होता है लेकिन जहाँ समय को कुछ घटने की प्रतीक्षा में काटना पड़ता है, उसका वर्णन करना अपेक्षया कुछ कठिन होता है। लेकिन इस कठिन कार्य को लेखिका ने बड़ी सहजता से किया है। उस बोझिल वातावरण के चित्रण में वह दूर तक सफल रही है। नूपुर से बातचीत करते हुए निर्मला चाय आदि का प्रबन्ध करती है; शहर में खबर फैल जाने की वज़ह से लोग आने लग गये थे, जमुना के परिचित और श्रद्धालु अपनी शोक-सम्वेदना प्रकट करने या श्रद्धा-सुमन अर्पित करने आ रहे थे, जमुना के व्यक्तित्व और गुणों की चर्चा हो रही थी, छुटपुट औपचारिक बातें भी हो रही थीं, जमुना की देह अस्पताल ले जाने वाले भी आ गये थे, लेकिन अभी अन्त्येष्टि के विषय में फैसला हो नहीं पाया था, उस कारण से घर में तनाव-सा छाया हुआ था। लेखिका ने इस बोझिल वातावरण का अच्छा चित्रण किया है।

तपु को ज्ञात था कि माँ अपना देहदान कर गई है इसलिये वह चाहती थी कि माँ की इच्छा का आदर किया जाय। परन्तु नूपुर उसकी देह पैतृक-घर ले जाना चाहती थी। (वह घर उसने भाई से खरीद लिया था। कभी वह स्वयं जमुना के सान्निध्य में रहते हुए अपना शेष जीवन वहीं गुज़ार देना चाहती थी।) अन्ततः मौसी की भावना का सम्मान करते हुए तपु ने भी अपनी सहमति दे दी। इस पर जमुना की देह बांग्लादेश में ब्रह्मपुत्र के तट पर स्थित पैतृक-घर ले जाई गई। वहाँ नूपुर ने जमुना की भावनाओं का ध्यान रखते हुए उसकी देह अधार्मिक रीति से दफना दी।

१३

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब जमुना स्वयं अपना देह-दान मेडिकल-कॉलेज को कर गई थी, तब उसकी इच्छा की अवमानना की क्यों गई ? उसकी देह अन्यत्र ले जाने का कथात्मक औचित्य भी क्या है ? प्रश्न यह भी उठता है कि रचना के इस अतिरिक्त विस्तार की अर्थवत्ता क्या है ?

प्रकटतः तो यह नूपुर का ही भावात्मक आग्रह जान पड़ता है। वह घर के प्रति जमुना के गहरे ममत्व को जानती थी; वह उसे 'घर-पगली' कहती भी थी। जब जीते जी वह वहाँ नहीं जा सकी, तो अब उसकी आत्मा की शान्ति के लिये, और शायद अपने आत्म-प्रक्षालन के लिये भी, वह उसकी देह वहाँ ले जाना चाहती थी।

लेकिन गहराई में जायें तो बात कुछ और भी जान पड़ती है।

इस उपन्यास को आत्म-कथात्मक भी कहा गया है; लेकिन क्योंकि कथानक इसका काल्पनिक है इसलिये आत्मकथा की छाया इस पर अधिक नहीं हो सकती थी। परन्तु इसके पात्रों पर आत्मकथा के पात्रों की कुछ छाप जहाँ-तहाँ मिल जाती है। जमुना-नूपुर के भाई नईम पर तसलीमा के भाई कमाल का प्रभाव स्पष्ट है, तो बहिन यास्मिन का नूपुर पर। सबसे अधिक यह स्वयं तसलीमा के व्यक्तित्व की छाप है जो जमुना पर उभरी है। नारी की यौन-स्वतन्त्रता के विषय में तसलीमा के विचार जमुना ने अपने जीवन में उतार लिये हैं! जमुना के जीवन पर भी तसलीमा का प्रभाव कम

गहरा नहीं है। यह तसलीमा का केवल कलकत्ता-प्रेम या देह-दान ही नहीं है, उसका स्वभाव और उसके शौक भी हैं जो जमुना में प्रतिच्छायित हैं। तसलीमा की तरह ही जमुना भी स्वभाव से एकान्तिक और अध्यवसायी है। उसे भी फल-फूलों से गहरा प्रेम है और उनकी अच्छी पहचान भी है। उसने भी अपने घर में फल-फूलों के पेड़-पौधे लगा रखे हैं। तसलीमा की तरह ही माता-पिता से जमुना के सम्बन्ध भी तनावपूर्ण ही रहे लेकिन इसके बावजूद घर से उसका लगाव भी कम नहीं रहा। निर्वासन के साथ ही घर की याद में हम तसलीमा को तड़पते देखते हैं। निर्वासन में स्वीडन उसका पहला पड़ाव ही था, लेकिन वहीं वह घर के लिये आकुल-व्याकुल हो उठी थी। वह प्रतीक्षा करने लगी थी कि वह दिन कब आयेगा जब से मैं अपने घर जाने के दिन गिनने लगूँगी! घर लौटने की कोई सूरत नहीं रह जाने पर, पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करने वाली (तसलीमा) भी उसे सम्भव मान लेती है और अपने देश को आश्वस्त करती हुई कहती है कि एक दिन वह अवश्य ही लौटेगी-

ब्रह्मपुत्र सुनो!/मैं लौटूँगी/मैं वापस लौटूँगी/अगर न लौट पाई/मनुष्य के रूप में/लौटूँगी किसी दिन/पंछी बनकर ही।

इन पंक्तियों को पढ़ते हुए अनायास ही रसखान याद आ जाते हैं जो कृष्ण-प्रेम में ऐसे बिंधे हुए थे कि कृष्ण का सान्निध्य पाने के लिये मनुष्येत्तर योनि में जन्म लेने के लिये भी तैयार थे-

जो खग हौं तो बसेरौं करौं/मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।

स्पष्ट है कि घर के प्रति अनुरक्ति तसलीमा में कम गहरी नहीं है। देखने की बात यह भी है कि इस उपन्यास का शीर्षक भी उसने 'ब्रह्मपुत्र' नहीं रखकर, रखा है, 'ब्रह्मपुत्र के तट पर।' इस 'तट पर' ही तो उसका घर है! यह तट घर का ही वाचक है!

तसलीमा का एक विश्वास यह है कि व्यक्ति को अपनी अन्तिम साँस अपनों के बीच ही लेनी चाहिये। इसी विश्वास से परिचालित होकर ही वह अपनी मरणासन्न माँ को ढाका से मैमनसिंह ले गई थी ताकि माँ अपने परिजनों से मिल ले और अपनी अन्तिम साँस उन्हीं के बीच ले। और भी बड़ा सच तो यह है कि अपनी माँ को उसने दफ़नाना भी घर में ही चाहा था! यह तो क्योंकि पिता ने उसकी बात मानी नहीं इसलिये वह सम्भव नहीं हुआ। लेकिन अवचेतनतः ही सही, अपने लिये भी उसकी आकांक्षा यही हो तो क्या आश्चर्य! स्वयं उसके लिये यह कभी सम्भव नहीं होगा, यह उसने बहुत पहले ही जान लिया, लेकिन इसके उपरान्त भी इसकी चाह तो उसमें रह ही सकती है। अपनी यही चाह उसने अपने सर्जित पात्र जमुना में नूपुर की राह से संक्रमित कर दी जान पड़ती है। निस्संदेह, 'ब्रह्मपुत्र.....' एक काल्पनिक रचना है और जमुना एक काल्पनिक पात्र है लेकिन लेखक की (दमित) आकांक्षा उसकी रचना में व्यक्त या व्यंजित होती ही आई है, इसमें अनहोनी कुछ भी नहीं है। आखिर, रचना होती क्या है, यदि वह आत्माभिव्यक्ति नहीं होती; रूपान्तरित होकर ही सही।

एलियट का विचार है कि यह लेखक के निजत्व का ही कोई अंश होता है जो वह पात्र में रूपायित करता है, वही उसे (पात्र को) जीवन्त बनाता है। प्रस्तुत प्रसंग में यह तसलीमा की अपने देश लौटने की दुर्निवार आकांक्षा ही है जो उसने जमुना में संक्रमित कर दी है और देश की मिट्टी भी उसके नसीब में सम्भव कर दी है!

कथानक के स्वाभाविक विकास में इसके लिये कोई अवकाश सम्भव नहीं कर पा सकने के कारण ही लेखिका के भावात्मक दबाव ने ही उससे उसमें निरंकुश हस्तक्षेप करवाया है। रचना के अन्त में घटनाओं का जो व्यतिक्रम है, वह

इसी का प्रतिफलन है। उसने अनौचित्य की परवाह किये बिना ही, यह हस्तक्षेप किया है और मरणोपरान्त जमुना की देह ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुँचाई है और अधार्मिक रीति से उसका अन्तिम संस्कार करवाया है (क्योंकि स्वयं तसलीमा धर्म नहीं मानती) अन्यथा रचना ने अपना अभीष्ट तो तपु के अपने पैरों पर खड़ी होने योग्य होकर विदेश चली जाने में पा लिया था! लेकिन जमुना की देह को ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुँचाकर और उसे देश की मिट्टी नसीब करवा कर लेखिका ने अपनी मनोतृप्ति पा ली जान पड़ती है। यदि ऐसा है तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि 'ब्रह्मपुत्र के तट पर' लिखते हुए तसलीमा ने प्रकारान्तर से अपनी वसीयत भी लिख दी है!

१४

'ब्रह्मपुत्र.....' पर विधायी दृष्टि से विचार करें तो इसका स्वरूप-विधानमूलतः लम्बी कहानी का जान पड़ता है। आधुनिक औपन्यासिक आलोचना उसके रूपगत भेदों को ज़्यादा महत्व नहीं देती है। वह उपन्यास को इतना लचीला तन्त्र मानती है कि यह कोई-सा भी रूप धारण कर सकता है। लेकिन तब भी विधायी-चेतना रखते हुए उसके साथ प्रयोग करना एक बात होती है और उसके अभाव में रचना का कुछ भी बन जाना, एक बिल्कुल अलग बात। बहरहाल, विधायी कोण से विचार कराते हुए स्वयं तसलीमा ने 'ब्रह्मपुत्र.....' को 'लघु-उपन्यास' कहा है। उपन्यास चाहे लघु हो या वृहत्, वह बहु-सम्वेदी होता है; कहानी चाहे लम्बी भी हो, होती एक-सम्वेदी है। अपनी प्रकृति में 'ब्रह्मपुत्र...' एक-सम्वेदी ही है। सच तो यह है कि अपने मूल में 'दो औरतों के पत्र' भी एक-सम्वेदी ही है। यह मूलतः जमुना की कहानी ही है, यौन-स्वतन्त्रता के लिये किये गये उसके संघर्ष की कहानी। यह जमुना का संघर्ष ही है जिसे, लेखिका ने दोनों कथा-कृतियों में दिखाया है। उस दृष्टि से इसे लम्बी कहानी कहा जा सकता है। परन्तु बात इतनी सरल भी नहीं है। 'दो औरतों के पत्र' में साबिर-प्रसंग भी है जहाँ जमुना अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है। इसी तरह, 'ब्रह्मपुत्र...' में नूपुर-प्रसंग है जो इसे बहु-सम्वेदी बनाता है। क्योंकि लेखिका ने इस प्रसंग का विकास नहीं किया है इसलिये उसका लघु-उपन्यास कहना उचित ही है।

१५

भाषा इसकी मोटे तौर पर प्रवाहपूर्ण ही कही जायेगी, लेकिन वाक्यों में जगह-जगह मिलने वाला काल-दोष व्यवधानकारी हो गया है। भूलें मूल लेखन की नहीं, अनुवाद की हैं। अनुवादक को हम वाक्य-रचना में वर्तमान-काल और भूतकाल के बीच दुविधाग्रस्त देखते हैं। लेखिका की आत्मकथा के अनुवादों में भाषा की जो रौनक मिलती है वह कथा-साहित्य में नहीं लौटी है। सूत्र वाक्य रचने की लेखिका की प्रवृत्ति इसमें भी यत्र-तत्र मिल जाती है। एक जगह भाव यह है कि व्यक्ति में जो गुण बाहर वाले देख लेते हैं, घर वालों को वे ही गुण उनकी आँख में उँगली डालकर दिखाने पड़ते हैं! अनुवादक ने इसका जो अनुवाद किया है, वह सर्वथा अनर्थकारी हो गया है कि - बाहर वालों को वे आँख में उँगली डालकर दिखाने पड़ते हैं! यद्यपि ऐसी भूले हैं एकाध ही। परन्तु अनुवादक की असावधानी तो दिखाती ही है। अस्तु।

१६

अन्त में, लेकिन कदाचित अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि तसलीमा के यौन-स्वातन्त्र्य के आग्रह की भारतीय संदर्भ में प्रासंगिकता कितनी है ? इस आग्रह में प्रमुख रूप से दो बातों पर बल है; एक तो औरत को अपने इच्छित पर-पुरुष के साथ सोने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। दूसरे, औरत को किसी भी पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्त सन्तान पाने और उसकी अकेली अभिभावक बनने की स्वतन्त्रता भी होनी चाहिये। क्या ये आग्रह भारतीय नारी की

ओर से भी किये जा सकते हैं?

भारतीय संदर्भ से भी पहले यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि क्या इन विचारों को तसलीमा का मत मानना उचित भी होगा ? ये विचार तो जमुना के हैं और जमुना अन्ततः एक औपन्यासिक यानी काल्पनिक पात्र ही है। उपन्यास के पात्र के विचारों को लेखक का मत मान लेना क्या उचित भी होगा ? प्रश्न अपनी जगह सही है। रचना में कई पात्र होते हैं और उनके विचार परस्पर विरोधी भी होते हैं। ऐसे में लेखक के मत का निर्णय कैसे किया जायेगा ? निश्चय ही, यह एक जटिल स्थिति होती है; लेकिन सैद्धान्तिक धरातल पर यह मुद्दा चाहे जितना विवादास्पद हो, तसलीमा के संदर्भ में यह उतना उलझा हुआ नहीं है। इसका कारण यह है कि उसकी आत्मकथा से और इतर लेखन से भी इसकी पुष्टि हो जाती है कि जमुना के मत को दूर तक तसलीमा का मत माना जा सकता है।

सच तो यह है कि इन विचारों का विकास उसमें काल-क्रम में नहीं हुआ है; इनका प्रतिपादन उसने अपने लेखन-काल के प्रारम्भ में ही कर दिया था! यानी १९९२ में ही 'अपर पक्ष' ('दो औरतों के पत्र') का प्रकाशन हो गया था, जिनमें उसके इन क्रान्तधर्मा विचारों ने अपनी अभिव्यक्ति पा ली थी। 'ब्रह्मपुत्र...' का प्रकाशन तो उसके लगभग बीस-पच्चीस वर्ष बाद हुआ है! 'ब्रह्मपुत्र...' क्योंकि उसका सिक्वैल है, इसी में कथानक ने अपनी पूर्णता और यौन-स्वतन्त्रता विषयक विचारों ने अपनी पूर्ण चरितार्थता पाई है, इसलिये यह कहना भी निरापद है कि इस पूरी अवधि में वह इन विचारों को बराबर पोसती रही है। इन विचारों को वह अपने कथात्मक-लेखन में और उससे इतर लेखन में भी बराबर पुख्ता करती चली है, यह मैंने अन्यत्र दिखाया है। अतः यह कहने का दृढ़ आधार है कि इन विचारों में स्वयं तसलीमा का विश्वास है, लगभग उतना ही जितना जमुना का है। अस्तु।

अब हम पुनः भारतीय संदर्भ में इन विचारों की प्रासंगिकता के प्रश्न पर लौटें तो पूछना यह होगा कि क्या इस तरह की यौन-स्वतन्त्रता की माँग भारतीय नारी की ओर से भी की जा सकती है ?

जहाँ तक इच्छित पर-पुरुष से सहवास की कामना की बात है, मनोविज्ञान की साक्षी इतनी प्रबल सच्चाई है कि उसे नकारा नहीं जा सकता, चाहे सामाजिक वर्जनाओं के कारण उसे स्वीकारा न भी जा सके। यद्यपि इस क्षेत्र में भी ऐसी औरतें कम नहीं मिलेंगी जिनमें एकनिष्ठता और यौन-शुचिता का संस्कार इतना गहरे पैठा हुआ मिलेगा कि कोई भी आधुनिकवादी, नारीवादी और मनोविद भी चकित रह जाय! क्या स्वयं तसलीमा ने किरणमयी नहीं रची है ? वह इसी वर्ग की कुछ-कुछ निकटधर्मी है। लेखिका ने उसे मनो-यथार्थ का कुछ संस्पर्श दिया है इसलिये, और कुछ उसकी परिस्थितियाँ अलग हैं इसलिये भी,वह कुछ विशिष्ट बन गई है लेकिन कहना इन्हें अपवाद ही होगा।

दूसरी बात का जहाँ तक प्रश्न है, उसका सामान्यीकरण करना कठिन है। इसके लिये हमें यहाँ की जीवन-शैली को देखना होगा। इसमें एक ओर हमारी पारिवारिकता के स्वरूप का समावेश होगा, तो दूसरी ओर सामाजिक-जीवन को भी देखना होगा। हमारी जीवन-प्रणाली पश्चिम के खान-पान, बोली-बानी, वेशभूषा आदि के अन्धानुकरण के बावजूद वहाँ की परिवार-प्रणाली से काफी भिन्न है। यहाँ मेरा अभिप्राय हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली से नहीं है। संयुक्त-परिवार यहाँ भी लगभग टूट चुके हैं या टूट रहे हैं। लेकिन यहाँ के एकाकी-परिवार का स्वरूप भी पश्चिम के एकाकी परिवार से बहुत भिन्न है। पश्चिम में बच्चा वयस्क होते-न-होते, माता-पिता से स्वतन्त्र जीवन जीना प्रारम्भ कर देता है, जबकि हमारे यहाँ वह वयस्क होने के बाद भी माता-पिता के आश्रय में ही रहता है। उसकी उच्च-शिक्षा भी उन्हीं के आश्रय में चलती रहती है! विवाह भी प्रायः प्रबन्धित होते हैं। प्रेम-विवाह भी प्रायः प्रबन्धित विवाह का रूप ले लेते हैं। लड़का-लड़की एक-दूसरे को पसन्द कर लेते हैं; उसके बाद विवाह पूर्ण परम्परागत रीति-रिवाजों से

होता है। कटु सच तो यह है कि माता-पिता यदि विवाह का प्रबन्ध नहीं करें तो आज भी अधिसंख्य बच्चे 'मिठू' का जीवन जीने के लिये अभिशप्त होंगे। यह बात अल्प-शिक्षित या अशिक्षित लड़के-लड़कियों के लिये ही नहीं, ऊँची व्यावसायिक-शिक्षा प्राप्त करने वाले लड़के-लड़कियों के लिये भी सही ठहरेगी! तसलीमा के 'फ्रांसीसी प्रेमी' उपन्यास में कथा-नायिका नीलांजना के पिता-घर में मिठू नाम की एक नौकरानी होती है जो विवाह के लिये तरसती हुई घुट-घुट कर मर जाती है!

माता-पिता की तलाश तो रहती ही है कि लड़का (वर) लड़की (वधू) से अधिक पढ़ा-लिखा हो और अधिक वेतन भी पाता हो, लेकिन लड़की भी इसका विरोध नहीं करती बल्कि स्वयं वह भी यही चाहती है कि लड़का योग्यता, कमाई आदि में भी उससे इक्कीस हो, उन्नीस कदापि नहीं! इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वर का श्रेष्ठत्व वधू को न केवल स्वीकार्य होता है बल्कि वह उसका काम्य भी होता है! ऐसे में पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्त सन्तान उसकी कल्पना भी कैसे होगी?

तथ्य तो यह भी है कि पति-पत्नी दोनों सन्तान के विकास-पथ का निर्माण करने की भूमिका सहर्ष निभाते हैं। पति की मृत्यु के बाद भी पति का स्वामित्व पत्नी को स्वीकार्य रहता है। फिर, पुरुष के पितृत्व के दावे से मुक्ति कैसी ?

स्थितियाँ ही हमारे देश को पश्चिम से अभी अलगाये हुए हैं। पश्चिम में पति-पत्नी में बात-बात पर तकरार होने की स्थिति में तलाक की नौबत आ जाती है। वहाँ के जीवन की यह एक सामान्य बात है लेकिन हमारे जीवन में आज भी यह सामान्य बात नहीं है। इसी तरह, पिता के नाम से रहित सन्तान भी वहाँ सामान्य बात है। कोई इस पर ध्यान नहीं देता। लेकिन हमारे समाज में आज भी यह एक विरल घटना है। ऐसे बच्चे का जीवन स्कूल-कॉलेज, जाति-समाज और कार्य-स्थल पर भी एक अछूत-सा होता है। इसी तरह के अन्यान्य कारणों से पितृत्व के दावे से मुक्त, सन्तान के लिये अभी कोई अवकाश कम ही मिलता है। इसी तरह, सन्तान पर केवल अपना ही अधिकार माँगने वाली औरतों का कोई वर्ग यहाँ दिखाई नहीं पड़ता। तलाकशुदा औरतें भी सन्तान के लिये पुरुष के पितृत्व के दावे को नकारती कम ही देखी गई हैं। ऐसी स्थिति में यौन-स्वतन्त्रता के इस पहलू के समर्थन में भारतीय नारी हाथ खड़ा करते दिखाई नहीं पड़ती। अतः इसका सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता।

अवश्य ही, पिछले कुछ दशकों में समाज ने जिस तेजी से करवट बदली है, उसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। तलाक का प्रतिशत इसी अवधि में बहुत बढ़ा है। उच्च शिक्षा और प्रेम-विवाह के प्रसार के साथ यह प्रतिशत और भी बढ़ने वाला है। न्यायालयों ने भी यह निर्णय देकर इस मार्ग को प्रशस्त कर दिया है कि बिन-ब्याही माँ को अपने बच्चे के पिता का नाम बताने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता; वह अपने बच्चे की अकेली अभिभावक हो सकती है। ऐसी स्थिति में तसलीमा की औपन्यासिक कल्पना को; और यदि वह उसका विश्वास भी है तो उसके विश्वास को भी, यह कहकर उड़ाया नहीं जा सकेगा कि उसकी नारी की यौन-स्वतन्त्रता की माँग भारतीय नारी की माँग नहीं हो सकती। यह ठीक है कि आज यह भारतीय नारी की माँग नहीं है, लेकिन कल भी वह यह माँग नहीं करेगी, ऐसा अभी कैसे कहा जा सकता है। तसलीमा दृष्टा है, उसकी दृष्टि तीक्ष्ण है और उसका श्रवण-सम्वेदन भी प्रबल है। हो सकता है, उसने आगत की पदचाप सुन ली हो, हमारी ही श्रवण-शक्ति इतनी मन्द पड़ गई है कि हम उसे सुन नहीं पा रहे हैं।

यह लेख मोहन कृष्ण बोहरा की वाणी-प्रकाशन, नयी दिल्ली से शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक, 'तसलीमा संघर्ष और साहित्य' से लिया गया है।

लेखक परिचय

यू.आर. अनन्तमूर्ति, कन्नड़ भाषा के महान भारतीय लेखक। कई उपन्यास, कहानी-संग्रह और निबन्ध संग्रह प्रकाशित। देश के महत्वपूर्ण बैद्धिक। संस्कार, अवस्था, भारतीपुर, भव आदि उपन्यास, घटश्राद्ध आदि कहानी संग्रह। प्रकाशित ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। पिछले बरस मृत्यु।

कमलेश, हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि, विचारक, अनुवादक और राजनीतिकर्त्ता । इनके तीन कविता संग्रह, 'जरत्कारु', 'खुले में आवास' और 'बसाव' प्रकाशित हुए हैं। कमलेश जी की कविताओं में भारतीय परम्परा की समृद्धि को अनेक आलोचकों ने रेखांकित किया है। आपने पाब्लो नेरूदा की प्रसिद्ध कविता 'माचू पिच्चू के शिखर' समेत अनेक कविताओं के अनुवाद किये हैं। कमलेश जी ने साहित्य और इतिहास आदि अनेक अनुशासनों की पुस्तकों पर विस्तार से लिखा है। पिछले दो वर्षों में कमलेश जी ने सोवियत संघ के चार विलक्षण कवियों एवं कुछ कलाकारों पर पुस्तकाकार निबन्ध समास के तीन अंको (८-१०) में प्रकाशित किया था। कमलेश जी ने भारत की जाति-व्यवस्था आदि अनेक संस्थाओं को औपनिवेशिक विचारों के कुहासे से बाहर निकालकर सम्यक आलोक में देखने का महती प्रयत्न किया है। २७ जून २०१५ को कमलेश जी का निधन हो गया।

राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत के अध्येता, सम्पादक और पूर्व कुलपति हैं। आपका नाम देश के वरिष्ठतम् संस्कृत अध्येताओं में गिना जाता है। पारम्परिक नाट्यशास्त्र और साहित्यशास्त्र पर आपने विस्तार से विचार किया है। अनेक संस्कृत नाटकों और अन्य कृतियों के हिन्दी में अनुवाद किये हैं। संस्कृत नाट्यशास्त्र और नाटकों पर विचार की पत्रिका 'नाट्यम्' के सम्पादक हैं। इन दिनों भोपाल में रहते हैं। फ़ोन - ९९९९८३६०८८

जयशंकर, कथाकार। इनके प्रकाशित कथा-संग्रह 'शोक गीत एवं अन्य कहानियाँ', 'लाल दीवारों का मकान', 'मरुस्थल' और 'चेम्बर म्यूज़िक' हैं। जयशंकर को लिखे प्रसिद्ध हिन्दी लेखक निर्मल वर्मा के पत्रों का संग्रह, 'देहरी पर पत्र' प्रकाशित हुआ है। आप इन दिनों नागपुर में रहते हैं। फ़ोन - ९४२१८०००७१, ७१२२५४९८८५५

गगन गिल, हिन्दी कवि एवं गद्यकार हैं। 'एक दिन लौटेगी लड़की', 'अँधेरे में बुद्ध' सहित कुछ कविता संग्रह और 'अवाक्' आदि रचनाएँ प्रकाशित हैं। 'वामा' आदि पत्रिकाओं में साहित्य सम्पादन किया है। दिल्ली में रहती हैं। फ़ोन - ९८१०८६०९९३

रामशंकर द्विवेद्वी, अनुवादक और समीक्षक। बांग्ला की श्रेष्ठ कृतियों का ४५ वर्षों से बांग्ला से हिन्दी में निरन्तर अनुवाद करते रहे हैं। इनके अनुवाद हिन्दी की तमाम पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकाकार रुप में प्रकाशित होते रहे हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के सौन्दर्य बोध पर आपने शोध किया है। समास के पिछले कुछ

अंकों में आपके किये अनुराधा महापात्र, जीवनानन्द दास आदि के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। वर्ष २००० में द्विवागीश पुरस्कार, वर्ष २००४ में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। आप उरई (उ.प्र.) में रहते हैं। फ़ोन - ९८३९६१७३४९

सीरज, सिरेमिक शिल्पी एवं चित्रकार। देश एवं विदेशों में अनेक एकल समूह प्रदर्शनियाँ। समय-समय पर लेखन कार्य। दिल्ली में रहते हैं। फ़ोन - ९८६८५१४५३४

विवेकानन्द झा, कहानीकार और अभिनेता। इन्होंने सतोहल, मण्डी में स्थित नाट्य विद्यालय से अभिनय की शिक्षा प्राप्त की है। हिन्दी एवं मैथिल में कहानियाँ प्रकाशित। आगामी फिल्मों 'गुलमोहर' एवं 'रेशमा चौहरमल' में मुख्य पात्राभिनय । आप मुम्बई में रहते हैं। फ़ोन - ८८२८३९९९०६

नीरज पाण्डे, दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक करने के पश्चात् कुछ वर्षों तक एनीमेशन इण्डस्ट्री के लिए कार्य। नाट्यलेखन एवं अभिनय में विशेष रुचि। इन दिनों मुम्बई में रहकर कविताएँ, नाटक आदि का स्वतन्त्र रुप से लेखन। फ़ोन - ९८१९४४४९७२

संगीता गुन्देचा, हिन्दी की कथाकार, कवि और संस्कृत की अध्येता। समकालीन रंगकर्म पर कई पुस्तकें प्रकाशित। पिछले दिनों एक पुस्तक 'कावालम नारायण पणिक्कर : परम्परा और समकालीनता' प्रकाशित। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के भोपाल परिसर में सहायक आचार्या। 'समास' में सम्पादन सहयोग। फ़ोन - ९४२५६७४८५१

सैयद मुज्तबा अली, बीसवीं शती के आरम्भ के महान बांग्ला गद्यकार। शान्ति निकेतन में अध्यापन और जर्मनी और शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ टैगोर के निर्देशन में अध्ययन। इनको बांग्ला का श्रेष्ठ गद्यकार माना जाता है। सुनील गंगोपाध्याय जैसे प्रसिद्ध समकालीन लेखक भी इनके गद्य को अपना आदर्श मानते थे।

रिज़वानुल हक़, उर्दू के अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न कथाकार। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अध्ययन। कहानी-संग्रह 'बाज़ार में तालिब' प्रकाशित। शोधकार्य 'उर्दू फिक्शन और सिनेमा' भी प्रकाशित। भोपाल में रहते हैं।
फ़ोन -९९७७००६९९५

इस अंक के लेखक

बी.एन. गोस्वामी

कमलेश

दीन मुहम्मद

सैयद मुज्तबा अली

अशोक सेक्सरिया

नय्यर मसूद

रामशंकर द्विवेदी

राधावल्लभ त्रिपाठी

मोहनकृष्ण बोहरा

जयशंकर

रिज़वानुल हक़

गगन गिल

ज.न.तेजश्री

विवेकानन्द

संगीता गुन्देचा

सीरज सक्सेना

नीरज पाण्डे